ISSN 2321-1288

Registered & Listed in UGC (Care List)

RAJASTHAN HISTORY CONGRESS

Chief Editor
Professor S.P. Vyas
Ret. Professor & Head, Jai Narain Vyas University, Jodhpur
Emeritus Fellow, UGC ; SAF, ICHR, New Delhi

Editor
Dr. Manorama Upadhyaya
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, Jodhpur

Managing Editors
Dr. T.V. Vyas
Dr.Anil Purohit
Dr. Ravindra Tailor

PROCEEDINGS VOLUME XXXIII

DEPARTMENT OF HISTORY
MAHILA P.G. MAHAVIDYALAYA, JODHPUR

FEBRUARY - 2019

www.rajhisco.com
rajhisco@gmail.com

Editorial Board takes no responsibility for inaccurate misleading data, opinion and statement appeared in the articles published in this Proceedings. It is the sole responsibility of the contributors. No part of this Proceedings can be reproduced without the written permission of the Secretary, who also holds the copyright © of the 'Proceedings Rajasthan History Congress'.

❏ *Published by :*
Prof. S.P. Vyas
Secretary, Rajasthan History Congress
Department of History
J.N.V. University, Jodhpur

❏ *To be had from* :
Dr. Manorama Upadhyaya
Hony. Treasurer, Rajasthan History Congress
Mahila P.G. Mahavidyalaya, Jodhpur

❏ ISSN 2321-1288
❏ Registered & Listed in UGC (Care List)

The Publication of this Proceedings' Volume has been financially supported by the Indian Council of Historical Research, New Delhi. The responsibility for the facts or opinions expressed in the articles is entirely of the authors and not of the ICHR.

❏ Price :
Rs. 250/- only

❏ *Printed at :*
Jangid Computers, Jodhpur
M. : #91-6376545732

Preface

I feel honoured and proud, to present before the readers and scholars, the proceedings of 33rd session, organized by Mahila P.G. Mahavidyalaya, Jodhpur from 5-7 February, 2019. In placing the learned, scholarly papers, chronology has been adhered to, as far as possible. A number of papers of outstanding merit were presented in this session, breaking new ground and adding new research areas and elements to the history and culture of Rajasthan.

I am grateful towards Prof. Shashi Deora for delivering the Presidential Address and I believe that under her presidentship we will be able to make more improvements in the institution of Rajasthan History Congress.

My thanks are due to Dr. Manorama Upadhyaya, Tresurer, Rajasthan History Congress for undertaking the responsibility of preparing and bringing out this volume. Despite all care, mistakes are bound to creep in. I hope readers will overlook them.

I also extend my thanks to all those who have made the publication of this proceeding possible. I humbly acknowledge the guidance of Prof. P.R. Arya. I appreciate the hard-work and sincere efforts of Dr. Tejendra Vallabh Vyas, Dr. Anil Purohit, Dr. Ravindra Tailor in the publication of the proceedings. Thanks are also due to Mr. Bhanwarlal Suthar and Mr. Sunil of M/s. Jangid Computers for the printing of the proceedings.

Prof. S.P. Vyas
Secretary,
Rajasthan History Congress

सचिव प्रतिवेदन

राजस्थान इतिहास कांग्रेस के 33वें अधिवेशन का उद्घाटन दिनांक 5.2.2019 को प्रात: 10:30 बजे महिला पी.जी. महाविद्यालय में हुआ। उद्घाटन सत्र में प्रो. शशि देवड़ा ने 32वें अधिवेशन के अध्यक्ष प्रो. जहीर हुसैन जाफरी के स्थान पर 33वें अधिवेशन के अध्यक्ष का दायित्व ग्रहण किया। इस सत्र में राजस्थान इतिहास कांग्रेस के सचिव प्रो. एस.पी. व्यास ने 32वें सत्र का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। उद्घाटन सत्र में महिला पी.जी. महाविद्यालय द्वारा इस अधिवेशन की स्मारिका का विमोचन किया गया।

उद्घाटन सत्र में प्रो. शशि देवड़ा ने अपना अध्यक्षीय उद्बोधन 'मध्ययुगीन राजस्थान की नारी : सहयोगी या आश्रिता' विषय दिया। इसके पश्चात् राजस्थान इतिहास कांग्रेस की ओर से प्रोफेसर जहूरखां मेहर एवं प्रो. एस.के. पुरोहित का सम्मान किया गया। इसी सत्र में 32वें अधिवेशन के Best Prize Papers हेतु Prof. Pemaram Prize Dr. Manisha Chodhary और Dr. Gajanand Prize Mohammad Shahnawaz को दिया गया।

प्रथम तकनीकि सत्र में - प्रोफेसर मीना गौड़ ने प्रोफेसर जी.एन. शर्मा मेमोरियल लेक्चर में 'मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन में राजस्थान की महिला संतों का योगदान' विषय पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया। प्रोफेसर याकूब अली खान ने प्रोफेसर आर.पी. व्यास स्मृति व्याख्यान में 'Sufis and Society in Medieval Period' विषय पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया।

दिनांक 06.02.2019 को सांय 04 बजे महिला पी.जी. महाविद्यालय के प्राचार्य कक्ष में आयोजित कार्यकारणी समिति की बैठक में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये गये :-

1. सर्वप्रथम कार्यकारणी समिति के सदस्यों द्वारा 33वें अधिवेशन की अध्यक्ष प्रो. शशि देवड़ा का करतल ध्वनि से स्वागत किया गया तथा सभी सदस्यों का यह कामना की, कि नये अध्यक्ष के नेतृत्त्व में राजस्थान इतिहास काँग्रेस और आगे बढेगी।

2. कार्यकारणी के सदस्यों द्वारा 32वें अधिवेशन के प्रस्तावों का सर्वसम्मति से अनुमोदन किया गया।

3. तत्पश्चात् सचिव प्रो. एस.पी. व्यास द्वारा 32वें अधिवेशन की बैठक में लिये गये निर्णयों पर Action taken report को विस्तार से प्रस्तुत किया। 32वें अधिवेशन के अध्यक्ष प्रो. जाफरी ने राजस्थान इतिहास काँग्रेस का एक Online Portal प्रारंभ करने की बात की थी जिस पर राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति पर लिखी गई मौलिक पुस्तकों को उनके मूल स्वरूप (प्रथम संस्करण) के रूप में शोधार्थियों को उपलब्ध करवाई जा सके। समिति के सदस्यों ने प्रस्ताव पर विचार किया। समिति सदस्यों ने यह कहा कि क्या लेखक, प्रकाशक इस हेतु तैयार होंगें। प्रो. मीना गौड़ एवं डॉ. सुरेश अग्रवाल का यह कहना था कि General House में यह घोषणा की जावे, तथा यदि कोई सदस्य अपनी पुस्तक को राजस्थान इतिहास काँग्रेस के Online Portal पर डालने की स्वीकृति प्रदान करें तो उससे इस आशय का स्वीकृति पत्र अथवा शपथ पत्र प्राप्त कर लिया जावे, जिससे भविष्य में होने वाली समस्याओं से बचा जा सकें।

4. प्रो. जाफरी का यह भी प्रस्ताव था कि राजस्थान इतिहास काँग्रेस की प्रेसिडिंग्स को Online Libraries जैसे Jstor and Internet Archive से जोड़ा जावे। इस पर सचिव महोदय ने Action taken Report प्रस्तुत करते हुए कहा कि इस हेतु, ICHR की Website पर प्रोसीडिंग्स को PDF Format में Upload करने का प्रस्ताव है, यदि सभी सदस्य इसकी स्वीकृति प्रदान करते है तो इस प्रक्रिया को आरंभ कर दिया जायेगा। सभी सदस्यों ने सर्वसम्मति से इसकी स्वीकृति प्रदान की। प्रो. विनीता परिहार ने कहा कि यह एक अच्छा कदम है तथा इससे राजस्थान इतिहास काँग्रेस की प्रोसीडिंग्स की उपलब्धता राष्ट्रीय स्तर पर होगी। प्रो. मीना गौड़ एवं डॉ. हेमेन्द्र चौधरी ने कहा कि Shodhganga, Inflibnet से भी जोड़ने का प्रयास करना चाहिये। प्रो. शशि देवड़ा ने कहा कि इस हेतु Nehru Memorial Library दिल्ली तथा Institute of Advance Study शिमला, की लाइब्रेरी से संपर्क कर उन्हें Proceedings का सेट भेजा जाये तथा उनकी Website पर Proceedings की Soft Copy डालने का अनुरोध किया जाये।

5. अगले अधिवेशन में शोध - पत्रों की प्राप्ति पर विषयानुसार सत्र - विभाजन किया जा सकता है, ऐसा विचार डॉ. मनोरमा उपाध्याय ने प्रकट किया। प्रो.

जाफरी ने विषयानुसार शोध - पत्र के सेशन एवं सेशन - अध्यक्ष की बात गत मिटिंग में की थी।

6. प्रो. एस.पी. व्यास ने कहा कि गत वर्षों की Proceeding के शोध-पत्रों का विषयानुसार प्रो. जाफरी के विचार को अब मूर्त रूप दिया जा रहा है तथा इस हेतु Advisory Board एवं Editorial Board के सदस्य से सहयोग प्राप्त किया जायेगा।

7. गत अधिवेशन के निर्णय के आधार पर इस बार जोधपुर के स्थानीय इतिहासकारों प्रो. जहूरखाँ मेहर एवं प्रो. एस. के. पुरोहित का सम्मान किया गया। जिनके पत्र committee द्वारा अनुमोदित नहीं किये गये, उन पत्रों का सारांश प्रकाशित किये जायें।

8. प्रो. एस.पी. व्यास ने बताया कि ICHR वितीय सहायता हेतु नवीन नियमों के अनुसार संस्था का रजिस्ट्रेशन नीति आयोग में करवाना आवश्यक है तथा इस हेतु आवश्यक कार्यवाही पूर्ण कर ली गई हैं।

9. प्रो. एस.पी. व्यास ने सुझाव दिया कि अधिवेशन अध्यक्ष एवं विशेष व्याख्यान प्रस्तुत करने वाले इतिहासकारों को धन्यवाद पत्र प्रेषित किया जाना चाहियें। सभी ने सहमति व्यक्त की।

10. 32वें अधिवेशन की Proceeding का प्रकाशन हुआ, इसका विमोचन 33वें अधिवेशन के उद्घाटन सत्र में किया गया। गत मीटिंग के निर्णय पर इस बार Proceeding में गत वर्ष दिवंगत इतिहासकारों प्रो. सतीश चन्द्र, प्रो. डी.एन. आसोपा एवं प्रो. एस. भट्टाचार्य को श्रद्धांजलि दी गई है।

11. 34वें अधिवेशन के अध्यक्ष पद हेतु प्रो. एस.पी. व्यास द्वारा प्रो. वसन्त शिन्दे का नाम प्रस्तावित किया। सभी सदस्यों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया साथ ही प्रो. आर.पी. व्यास स्मृति व्याख्यान हेतु प्रो. नीलिमा वशिष्ठ तथा प्रो. जी.एन. शर्मा स्मृति व्याख्यान हेतु डॉ. मयंक कुमार के नाम का अनुमोदन किया गया।

12. 34वें अधिवेशन के आयोजन हेतु तीन प्रस्ताव प्राप्त हुए - 1. डॉ. अविनाश पारिक द्वारा सरदार शहर, चुरू में करवाने का 2. डॉ. अनुराधा माथुर द्वारा अलवर में तथा 3. डॉ. प्रणव देव द्वारा झालावाड़ में करवाने का अनुरोध किया गया था किन्तु

चूंकि लिखित अनुरोध केवल डॉ. अविनाश पारीक द्वारा प्रस्तुत किया गया है अत: उसे स्वीकार कर लिया गया।

13. अधिवेशन में राजस्थान इतिहास काँग्रेस में अधिवेशन को दो-दिवसीय के स्थान पर तीन दिवसीय किया गया था। इस संबंध में प्रो. मीना गौड़, डॉ. हेमेन्द्र चौधरी, डॉ. सुरेश अग्रवाल एवं प्रो. विनीता परिहार ने तीन दिन की अकादमिक छुट्टी प्राप्ति में समस्याओं को इंगित करते हुए इसे पुन: दो-दिवसीय अधिवेशन करने का प्रस्ताव दिया, जिसे स्वीकार कर लिया गया।

14. 32वें अधिवेशन की Proceedings के प्रकाशन हेतु ICHR, New Delhi द्वारा 60,000/- की राशि की Publication Grant दिये जाने के संबंध में समिति सदस्यों द्वारा ICHR के प्रति आभार ज्ञापित किया गया।

15. कोषाध्यक्ष डॉ. मनोरमा उपाध्याय द्वारा बताया गया कि इस वर्ष से Proceedings में गत वर्ष के Audited Accounts को भी प्रकाशित किया गया है। सभी सदस्यों द्वारा इसे सराहनीय प्रयास बताया गया।

16. सभी सदस्यों द्वारा 33वें अधिवेशन के आयोजन हेतु महिला पी.जी. महाविद्यालय, जोधपुर के अध्यक्ष प्रो. पी.एम. जोशी, मेनेजमेन्ट के सदस्यों तथा प्राचार्य को आभार ज्ञापित किया गया। कई समस्याओं के उपरान्त 33वें अधिवेशन के आयोजन की जिम्मेदारी महिला पी.जी. महाविद्यालय द्वारा लिये जाने पर हार्दिक बधाई दी गई एवं स्थानीय सचिव डॉ. अनिल पुरोहित के प्रयासों की प्रशंसा की गई।

17. समिति की बैठक का समापन अध्यक्ष प्रो. शशि देवड़ा को धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुआ।

18. साधारण सभा में सचिव पद, कोषाध्यक्ष पद एवं संयुक्त सचिव पद हेतु प्रस्ताव रखे गये। सचिव पद हेतु प्रो. एस.पी. व्यास के नाम का प्रस्ताव प्रो. वी.के. वशिष्ठ द्वारा रखा गया जिसका अनुमोदन प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा द्वारा किया गया तथा सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। संयुक्त सचिव पद हेतु प्रो. मीना गौड़ का प्रस्ताव प्रो. विनीता परिहार ने रखा जिसका अनुमोदन डॉ. रविन्द्र टेलर द्वारा किया गया। कोषाध्यक्ष पद हेतु डॉ. मनोरमा उपाध्याय का प्रस्ताव डॉ. टी.वी. व्यास द्वारा रखा गया जिसका अनुमोदन प्रो. सुरेश अग्रवाल द्वारा किया गया। इन्हें सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

19. नवनिर्वाचित कार्यकारिणी की बैठक में निम्नांकित सदस्यों को कार्यकारी एवं सहवृत्त सदस्यों को स्वीकृत किया गया-

कार्यकारी सदस्य	सहवृत्त सदस्य
प्रो. सुरेश अग्रवाल	प्रो. विनीता परिहार
प्रो. अनिला पुरोहित	डॉ. हेमेन्द्र चौधरी
डॉ. सुमेष्ठा	वीरेन्द्र शर्मा

अन्त में प्रो. एस.पी. व्यास द्वारा 33वें अधिवेशन को सफल बनाने हेतु सभी सहभागियों को धन्यवाद दिया गया।

प्रो. एस.पी. व्यास
सचिव,
राजस्थान इतिहास कांग्रेस

अनुक्रमणिका

1. अध्यक्षीय उद्‌बोधन
– डॉ. शशि अरोड़ा देवड़ा ... 1

2. प्रोफेसर जी.एन. शर्मा स्मृति व्याख्यान
– डॉ. मीना गौड़ ... 17

3. Professor R.P. Vyas Memorial Lecture
- Dr. Yaqub Ali Khan ... 32

4. An Archaeological Exploration of Marwar & Godhwar
K. P. Singh Deora, Chintan Thakar and Priyank Talesra ... 51

5. Technique and Style of Cave Art
- Virendra Sharma ... 57

6. Medieval Temples of Delwara
- Syed Sumbul Arif ... 62

7. Sair Jihat: A Non-Agricultural Tax of Sanganer
- Jibraeil ... 66

8. Art Activities and Craft Development : A Social History of Medieval Rajasthan (17th -18th century)
- Daraksha Siddiqui ... 72

9. The Contribution of Rajputs in the Construction of Ghat Monuments during Mughal Benares
- Rafiullah ... 81

10. Impact of Rajput Culture on Mughal Culinary Culture
- Safia Shahzad ... 88

11. Fatehpur of the Kyamkhanis : The Capital City of Bagad
- Prateek ... 92

12. The Manipulative Bankers of Jaipur state
- Dr. Mamta Tyagi ... 97

13. Women's Participation in Freedom Struggle (In Light of Women Leaders of Rajasthan)
- Dr. Meghna Sharma ... 106

14. Postal System of the Princely State of Rajputana and the East India Company
- Dr. Nidhi Sharma ... 114

15. Sanitation Campaign of Jaisalmer Congress District Committee in Sweepers' Quarters in Jaisalmer and Public Reactions, 15 August –19 August, 1948
- Prof. V. K. Vashishtha ... 119

16. Exploring some aspects of socio-economic and cultural life of Bhils tribe
- Sukirti Singh ... 129

17. General Characteristics Features of the Forts of Western Rajasthan
- Ms Falak Nawaz ... 138

18. Threads of Desert Life : Grasses and Shrubs (In Reference of Bikaner State)
- Dr. Nitin Goyal ... 146

19. Heritage Monuments of Amber : A Case Study of Bonli
- Haider Saiphullah ... 152

20. A Feminist Reading of Select Rajasthani Folk Tales
- Dr Jagriti Upadhyaya ... 159

21. इतिहासलेखन की आर्षपरम्परा : एक पर्यालोचन
(राजस्थान के विशेष संदर्भ में)
– डॉ. आशुतोष पारीक ... 166

22. मध्यकालीन राजस्थान के सामाजिक
इतिहास लेखन के संदर्भ में भक्ति-साहित्य
– भंवरसिंह भाटी ... 172

23. पूर्व मध्यकालीन अभिलेखों में शिक्षा व्यवस्था- एक अध्ययन
– कीर्ति कल्ला ... 182

24. मध्यकालीन राजस्थान (1200-1600 ई.) में महिलाओं द्वारा
जलस्रोतों का निर्माण : एक अभिलेखीय विवेचन
– डॉ. यशवीरसिंह ... 187

25. चित्तौड़ के सांस्कृतिक इतिहास का प्रमुख स्रोत : चित्तौड़ की ग़ज़ल
– निर्मला दैय्या ... 191

26. राजस्थान में फारसी शिलालेखों में कुरान की आयतें (नागौर क्षेत्र के विशेष संदर्भ में)
– शमा बानो ... 198

27. जोधपुर टकसाल का मूल्यांकन (18वीं सदी) खाना रिकार्ड : खाना-टकसाल के आधार पर
– मरजीना बानो ... 203

28. ठिकाना रोहिट में प्रचलित कर व्यवस्था : एक सर्वेक्षण (20वीं सदी के ठिकाना रिकोर्डस् के विशेष संदर्भ में)
– नयना आचार्य ... 210

29. मारवाड़ के राजघरानें में सांस्कृतिक परिवर्तन एक अध्ययन- दारोगा दस्तरी बही के आधार पर
– निगार खानम ... 216

30. पश्चिमी राजस्थान की लोक – कहावतों में निहित परम्परागत मौसम विज्ञान
– डा. सुरेश कुमार ... 222

31. मेड़ता की शाही जामा मस्जिद का स्थापत्य : शिलालेखो के विशेष संदर्भ में
– संजय सैन ... 229

32. नागौर से प्राप्त फारसी अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन
– फिरदोश बानो ... 232

33. ऐतिहासिक स्रोत के रूप में मालाणी का लोक साहित्य : एक अध्ययन
– सन्तोष कुमार गढ़वीर ... 239

34. मारवाड़ की सेना में सैन्य-बल की आपूर्ति के स्रोत-एक अध्ययन
– डॉ. राजेन्द्र कुमार ... 244

35. मेवाड़ में मानवीय व्यवस्थापन : घोइन्दा से गोगुन्दा
– अजय मोची ... 251

36. मारवाड़ में रामानन्दी सम्प्रदाय की कूवा शाखा का उद्‌भव एवं विकास
– प्रो. सोहन कृष्ण पुरोहित ... 261

37. ***Dr. Gajanand Choudhary Prize Paper***
राजस्थान के धार्मिक सहिष्णुता के संवर्धन में जैन मन्दिर स्थापत्य कला का योगदान
– डॉ. रविन्द्र टेलर ... 270

38. राजस्थान के संतों की भक्ति परम्परा में योग संबंधी
– डॉ. अंशुल शर्मा ... 281

39. मारवाड़ राज्यों की स्थापना में कृषक समुदायों की भूमिका
– डॉ. सूरज भान भारद्वाज ... 286

40. नाथ पंथ के मूल आधार और उदावत राठौड़ इतिहास
– कुसुम ... 292

41. मारवाड़ के वीर व पीर – मेहाजी मांगळिया
– डॉ. सन्दीप प्रजापत ... 298

42. शेखावाटी के संस्थापक महाराव शेखा व्यक्तित्व व कृतित्व
– भगवान सिंह शेखावत ... 302

43. पश्चिमी राजस्थान में दास प्रथा-बीकानेर राज्य के विशेष संदर्भ में (1700-1900 ई.)
– डॉ. कनिका भनोत ... 308

44. ***Rao Ganpat Singh Chitalwana Prize Paper***
18वीं शताब्दी में मारवाड़ में वस्त्र कारीगरों की जाति पंचायतें/न्यात पंचायतें
– डॉ. सुमित ... 313

45 किशनगढ़ राज्य में सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन
– डॉ. अविनाश पारीक ... 318

46. अलवर रियासत में उद्योग धन्धे, व्यापार एवं वाणिज्य (राजगढ़ निजामत के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन)
– डॉ. फूलसिंह सहारिया ... 326

47. 'इजारा व्यवस्था' : जयपुर राज्य के खालसा क्षेत्रों में प्रचलित भूराजस्व प्रणाली (19वीं-20वीं शताब्दी में)
– डॉ. रश्मि मीना ... 340

48. 20वीं शताब्दी के मारवाड़ में वस्त्र उद्योग उत्पादन एवं नीतियाँ : एक अध्ययन
– मंजू चौहान ... 346

49. धाट का प्रथम स्वतंत्रता सेनानी राणा रतनसिंह सोढ़ा
– तनेसिंह सोढ़ा ... 352

50. हाड़ौती क्षेत्र में सामाजिक जागरण के अग्रदूत : पं. नयनूराम शर्मा
– डॉ. अर्चना द्विवेदी ... 360

51. मेवाड़ पुरोधा : श्री भूरेलाल बया
– डॉ. मनोज दाधीच ... 368

52. झालावाड़ राज्य के सामाजिक जागरण में 'गौरी शंकर आर्य' का योगदान
– डॉ. प्रणव देव ... 375

53. रियासती राजस्थान के जनजागरण में स्त्री अस्मिता सम्बन्धि मुद्दे
– श्याम सुन्दर ठेनुआं ... 381

54. साम्राज्यवादी दौर में उदारवादी शासक : महाराज राणा भवानीसिंह
– डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल ... 389

55. शाहपुरा राज्य में उत्तरदायी शासन
– श्रीमती रोशन गहलोत ... 396

56. राजस्थानी काव्यधारा का बिजौलिया के किसानों की जनजागृति में योगदान
– डॉ. भरत देवड़ा ... 400

57. मेवाड़ प्रजामण्डल और उदयपुर का 1948 का धारासभा चुनाव
– डॉ. हेमेन्द्र चौधरी ... 409

58. बीकानेर राज्य की जल संरक्षण नीति एवं प्रयास
– डॉ. मीना कुमारी ... 418

59. बीकानेर रियासत की विश्वविख्यात 'गंगा रिसाला' (ऊंट वाहिनी सेना) द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दी गई योद्धिक सेवाएं
– गिरधारी सिंह ... 424

60. बीकानेर राज्य के महाराजा सूरतसिंह के काल में सैन्य संगठन
– डॉ. मोहम्मद फारूक चौहान एवं डॉ. शारदा शर्मा ... 428

61. नारी संघर्ष के विभिन्न आयाम राजस्थान इतिहास के आइने में
– शिवरतन सिंह यादव ... 435

62. ग्रामीण पर्यटन के प्रेरक राजसमन्द के प्रमुख मेले एवं उत्सव
– डॉ. दिग्विजय भटनागर ... 443

63. राजस्थान में भक्ति साहित्य में निदर्शित आधुनिक युगीन परिवर्तन
– डॉ. ओंकार नारायणसिंह ... 450

64. थार मरुस्थल के लोक कलाकार– लंगा मांगणियारों के विशेष सन्दर्भ में
– पंकज चांडक ... 458

65. मारवाड़ की चित्रकला : भारत कला भवन के विशेष सन्दर्भ में
– कु. ज्योति ... 465

66. हाड़ौती धरा में वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव
– डॉ. श्रीमती संगीता गुप्ता ... 472

67. मालानी क्षेत्र के कृषक समाजों में सामुदायिकता एवं सहकारिता (सन् 1818 से 1947 तक)
– शंकरसिंह पोटलिया ... 476

68. अठारहवीं शताब्दी के मारवाड़ के इतिहास में धायभाई (मुत्सद्दियों) की भूमिका
– अजय शंकर ... 480

69. मारवाड़ के स्वतंत्रता सेनानी स्व. श्री उदयराज पुरोहित
– डॉ. तेजेन्द्र वल्लभ एवं मुनीराज ... 485

70. जोधपुर राज्य का विशेषाधिकार प्राप्त नींबाज ठिकाना
– डॉ. दिनेश राठी ... 488

71. भूगोल की बदलती समझ : राजस्थान के विशेष संदर्भ में एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण
– मयंक कुमार ... 491

ABSTRACTS / lkjka'k

1. A Cenotaph (Chhatri) for Pet Animal from Jodhpur: A Study in Cultural and Historical Context
- Ms Garima Chaudhary ... 497

2. Conservation of National Heritage of Rajasthan: Jaigarh Fort
- Ms Anu Sharma ... 498

3. Merchants, Mutsaddis and the Princely State of Bikaner
- Ms Kavita Jotoliya ... 499

4. महाराजा जसवंतसिंह : पट्टा परगना हाँसी-हिसार मध्यकालीन हरियाणा परगनों का आर्थिक-प्रशासनिक विश्लेषण
-निशा ... 499

5. जोधपुर शासक महाराजा गजसिंह जी प्रथम (1619-1638) का स्थापत्य कला में योगदान
- उपासना दाधीच ... 501

6. उहड़ राठौड़ों के इतिहास लेखन में शिलालेखों का महत्व
- सपना कुमारी ... 502

7. नागौर एवं मूण्डवा मेलों की व्यवस्था तथा कतिपय प्रसंग 18वीं शताब्दी के संदर्भ में)
- कामिनी जांगिड़ ... 503

8. सूरदास और उनकी गोपियाँ
- विनिता श्रीवास्ताव ... 504

9. बीकानेर में लोक नाट्य : ख्याल एवं रम्मत परम्परा - एक परिचय
- डॉ. महेन्द्र पुरोहित ... 505

10. नागौर अधिपति : राव अमरसिंह
- कमलेश राठी ... 507

11. प्राच्य संस्कृति में दान का स्वरूप
- डॉ. रक्षा कंवर ... 508

12. मेवाड़ की मृणशिल्प-मोलेला के विशेष सन्दर्भ में
डॉ. ममता पूर्बिया ... 509

13. पूर्व मध्यकालीन मत्स्य की एक मन्दिर-नगरी राज्यपुर (राजगढ़)
- आशिद खान ... 510

14. दादू के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का विश्लेषण : मध्यकालीन राजस्थान के ऐतिहासिक सन्दर्भ में
- अमृता जायसवाल ... 511

15. पश्चिमी राजपूताना में डाक व्यवस्था के संचालन में निरन्तरता एवं परिवर्तन:मारवाड़ के विशेष सन्दर्भ में (1750-1900 ई.)
- सोनिया शर्मा ... 512

16. पश्चिमी राजपूताना में दशनामी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मठ व अखाड़े
- श्रीमती पंकज परमार ... 513

17. धौलपुर राज्य के सांस्कृतिक परिदृश्य में लोक संगीत
- धीरेन्द्र कुमार ... 514

18. महाराजा भीमसिंह का प्रशासनिक संगठन (1793-1803 ई.स.)
- ममता रानी ... 515

19. महेचा राठौड़ों का इतिहास
- महेन्द्रसिंह राठौड़ ... 516

20. भक्ति और कला का संगम : रणकपुर जैन मंदिर
- खुशबू जैन ... 516

21. अतीत का उज्जवल पृष्ठ सिन्धु देश
-डॉ. सूरजमल राव ... 517

22. राजस्थान में 1857 के विद्रोह के कारण एवं आमजन की भूमिका
- सतीश महला ... 518

23. मेवाड़ और गुजरात का रामसेतु : उदयपुर हिम्मतनगर रेलवे लाई
- मनोज कल्याणा ... 519

List of Members ... 520

Audit Report ... 535

Presidential Address

मध्ययुगीन राजस्थान की नारी सहयोगी या आश्रिता

डॉ. शशि अरोड़ा देवड़ा

माननीय अध्यक्ष महोदय, राजस्थान इतिहास कांग्रेस के 33वें अधिवेशन के सचिव, कार्यकारिणी सदस्यगण, महिला पी.जी. महाविद्यालय की प्रिंसीपल महोदया एवम् अधिकारीगण, स्थानीय सचिव एवम् उनके सहयोगी, सम्मानित अतिथिगण, विद्वतजन एवम् इतिहास कांग्रेस के सभी प्रतिभागी,

यह मेरे लिए अत्यन्त हर्ष एवम् गौरव का विषय है कि राजस्थान इतिहास कांग्रेस की कार्यकारिणी ने इस 33वें अधिवेशन के लिए मुझे अध्यक्ष चुना। मैं इस सम्मान के लिए उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

मेरे आख्यान का विषय 18वीं-19वीं शताब्दी के काल में समाज की आधी आबादी के जीवन की समस्याओं व उथल-फुथल का परीक्षण करना है। राजस्थान में नारी की स्थिति वैसी नहीं रही जैसी कि मुगलकाल में थी अथवा औपनिवेशिक काल की ऊँचाईयों के समय हुई। इसकी संरचना में अभिलेखीय सामग्री का महत्वपूर्ण योगदान है।

मध्यकालीन राजस्थान के सामाजिक इतिहास को समझने, परखने एवम् परीक्षण करने के लिए जितना राजनैतिक इतिहास पर निर्भर होना पड़ता है उतना ही आर्थिक इतिहास पर भी। राजनैतिक दायित्वों का निर्वहन करते करते राजस्थानी समाज कब आर्थिक इतिहास पर अवलम्बित होकर-सामाजिक वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, जातिगत विच्छेद तथा अनुशीलन का अनुयायी बन गया पता ही नहीं चला। समाजिक स्तर पर स्तरीकरण की प्रक्रिया कब भू-राजस्व की विभिन्न जातिगत दरों में उलझ गयी-क्षैतिज व उर्ध्वाकार दोनों स्तरों पर विभक्त होकर अपनी भूमिका दक्षता से निभाती रही निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। संभवत: मध्यकालीन राजपूत राज्यों का प्रशासनिक स्तर पर कुलीय-कबीला व जन-जातीय सामाजिक व्यवस्थाओं को वर्ण व जाति व्यवस्था में जकड़ने का यह प्रयास रहा होगा। इस प्रकार के अध्ययन का श्रेय प्रोफेसर सतीश चन्द्रा[1] एवम् प्रोफेसर जी.एस.एल. देवड़ा[2] उन राजस्थानी स्रोतों को देते हैं जो अभिलेखागार में सुरक्षित हैं तथा यह मानते हैं कि आर्थिक इतिहास पर आधारित होकर सामाजिक इतिहास का पुनर्निर्माण किया जा सकता है तथा ग्रामीण समाज के गठन व उसके स्तरीकरण की प्रक्रिया को भी समझा जा सकता है।[3]

वस्तुत: मध्ययुगीन समाज इसी विविधता व जटिलता को प्रदर्शित करता है। सामन्तीय ढ़ांचे के अन्तर्गत शासक, उसके सहायक या सहयोगी सामन्तगण, प्रशासन की सुविधाजनक कार्य-प्रणाली के संचालक अधिकारी व कर्मचारीगण, राजस्व चुकाने वाले प्रजाजन - सभी परोक्ष-अपरोक्ष रूप में मध्ययुगीन वातावरण को तो प्रस्तुत करते ही हैं साथ ही इनसे जुड़े हुए इनके व्यवहारिक व अव्यवहारिक पक्ष को भी उजागर करते हैं। दोहरे मापदण्ड, बदलते आचार-विचार, बनते-बिगड़ते सामाजिक दायित्व, वर्ण-व्यवस्था की विभक्त होती शाखाएं व नये कर्तव्यों युक्त जातियों का निर्माण - इन सभी ने 18वीं-19वीं शती के समाज को ना केवल एक नयी पहचान दी बल्कि नये सामाजिक रिश्ते, संवाद, गिरती समृद्धता व बदलती आचार संहिता के साथ 19वीं शती के सुधार, संवैधानिक कानूनों का सूत्रधार बनने का माध्यम एवम् नयी परिपक्व दृष्टि भी प्रदान की है।[4]

समाज के बदलते परिवेश में सबसे अधिक प्रभावित पक्ष सामाजिक सम्बन्धों का रहा। ये सम्बन्ध श्रेणीगत विभाजन में समाज के तीनों वर्गों, जो आर्थिक स्तर पर विभक्त माने जाते रहे हैं, के साथ सम्बद्ध रहे हैं। इस दृष्टिकोण से स्त्रियों की दशा व उनके अधिकारों की चर्चा करना, उनकी बदलती स्थिति के लिए उत्तरदायी कारणों की व्याख्या जितनी रोचक हो सकती है, उतनी ही संवैधानिक भी हो सकती है। मेरा दृष्टिकोण संसार की आधी आबादी की दशा, स्थिति, गरिमा व उपादेयता को निर्धारित करने का है जिसकी पृष्ठभूमि में ना केवल स्त्रियों की वस्तुस्थिति का मूल्यांकन हो सके बल्कि समाज की प्रगति व अवरोध दोनों का अध्ययन किया जा सके और यह समसामयिक भी है। अब तक दो प्रकार के अध्ययन किये जा चुके हैं। पहला, नारी की स्वतन्त्रता व अधिकारों को प्रतिकूलता के साथ प्रभावित करने वाले तत्वों की समीक्षा करना तथा दूसरे, सामाजिक असमानता व नारी के प्रति किये जाने वाले अमानवीय व्यवहारों को रोकने की पृष्ठभूमि में बने संवैधानिक कानूनों के माध्यम से। ये दोनों ही अध्ययन सामाजिक व आर्थिक सम्बन्धों के विकास को तो दर्शाते हैं पर इनके विपरीत मैं जिस बात की पैरवी कर रही हूँ वह 18वीं-19वीं शती के समाज को उनके अपने सांस्कृतिक मूल्यों व परम्पराओं के अन्तर्गत उनका मूल्यांकन करने की है, जो इस समाज को गतिशील बनाने के लिए उत्तरदायी था। साथ ही स्थानीय तत्वों व आर्थिक आवश्यकताओं, प्रशासनिक अपेक्षाओं तथा पर्यावरणीय स्थितियों की अनुकूलता या प्रतिकूलता को आधार मान कर अध्ययन करना भी आवश्यक है ताकि नारी अधिकारों व संघर्ष की स्थिति

को और भी स्पष्ट किया जा सके व स्वीकार भी किया जा सके।[5]

प्रो. एस.पी. गुप्ता[6], प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा[7] तथा प्रो. जी.डी. शर्मा[8] के मन्तव्यानुसार मुग़ल सत्ता के साथ जुड़ाव ने राजपूत राजकुल की परिभाषा को बदलना प्रारम्भ कर दिया था। राजकुल का प्रधान अब केवल 'राय' या 'राव' नहीं बल्कि सशक्त राजतन्त्र में विश्वास करने वाला राजा व महाराजाधिराज हो गया था। मुग़ल दरबार में एक अमीर व बादशाह के लिए सैन्यदायित्वों का निर्वहन करने वाला मनसबदार अपने 'वतन' में सर्वशक्तिमान 'राजराजेश्वर शिरोमणी अन्नदाता' कहलाने लगा, तो सामाजिक परिपेक्ष्य में भी अब नयी परिभाषाएं बनने लगी थी।[9] बड़ी-बड़ी जनानी ड्यौढ़ियां, विभिन्न राजकुलों से वैवाहिक सम्बन्ध, प्रतिष्ठा व वैभव का प्रचार- प्रचार व संस्कृति की प्रगति के नाम पर नये आचार-व्यवहार का अनुकरण इन सबने नारी की सामाजिक स्थिति को प्रभावित किया। पौराणिक वैवाहिक परिपाटी धूमिल होने लगी, वैदिक रीति-रिवाज क्रमशः बदलने लगे व वैभव व शक्ति पर आधारित हो उन्हें नये नामों व विशेषणों के साथ समाज में मान्यता प्राप्त होने लगी। विशेषाधिकारों के नाम पर कर्तव्य बढ़ने लगे व अधिकारों की न्यूनता व उनका विलोपीकरण होने लगा।[10] यह स्थिति तब और बढ़ी जब मुग़ल परमोच्च सत्ता का पतन होने लगा क्योंकि शासक को ना चाहते हुए भी अब पुनः सामन्तीय आधार पर ठाकुरों या सामन्तों की महत्वाकांक्षाओं पर आश्रित होना पड़ा।

परन्तु स्थानीय शासक चूंकि अब तक इन व्यवस्थाओं का आदी हो चुका था अतः उसका आचरण वही बना रहा। सामाजिक स्तर पर विवाहिता पत्नियों के साथ-साथ बिना विवाह किये साथ रखने वाली गैर-राजपूत (Non-Rajput) उपपत्नियों की संख्या बढ़ने लगी। नये-नये विशेषणों व उपनामों के साथ उन स्त्रियों को भी महल में रखा जाने लगा। पड़दायत[11], पासवान[12], खवास[13], राजमहलों में रानियों, महारानियों, राजमाताओं के अनुरूप ही भौतिक सुख-सुविधाओं का उपभोग करने लगी। आमोद-प्रमोद व सेवा सुश्रुषा के नाम पर गायिकाओं, नृत्यांगनाओं व दासियों की संख्या में वृद्धि होने लगी।[14] तब ऐसे में वैधानिकता के नाम पर 'अधिकारों' की मांग प्रभावित होने लगी। शासक की व्यक्तिगत उपस्थिति, रुचि व सार-संभाल तक यह संकुचित होती गयी व नया शासक बनने पर नयी स्त्रियां, नये उपनाम, नयी दासियां उनका स्थान लेती चली गयीं।[15] तब यह स्वाभाविक प्रश्न उपस्थित होता है कि इस भीड़ तन्त्र में कौन से अधिकार सुरक्षित रह सकते हैं? कौनसे सम्बन्ध अटूट रह सकते हैं? तथा कौनसा वैभव स्थिर रह सकता है? सम्बन्धों के नाम पर गहराई अब दिखलाई नहीं पड़ती, केवल राजकुल की स्त्रियां ही सुरक्षित व संरक्षित हो सकती थी, बिना राजपूत जाति की स्त्रियां सती, परित्यक्ता व 'खालसा'[16] जैसी स्थितियों को विकल्प के रूप में अपना सकती थीं। वैसे भी ख्यातकारों व स्थानीय लेखकों ने इन स्त्रियों की महत्वाकांक्षाओं को बढ़-चढ़ा कर लिखा है। उनके

राजनीतिक दखल को व शासक पर उनके प्रभाव को सही कदम ना मानते हुए पनपते षड़यन्त्रों, सामन्तीय विद्रोहों तथा अपकीर्ति को ही उन्होंने अधिक रेखांकित किया है। महत्वाकांक्षाओं का अन्त कितना भयंकर हो सकता है इसका गवाह मध्यकालीन स्थानीय इतिहासकार है।[17] निश्चित तौर पर प्रतिष्ठा, समृद्धता व शक्ति ने समाज के इस उच्च वर्ग में स्त्रियों के अधिकार को शासक की सार्वभौमशक्ति के साथ जोड़ दिया तथा आर्थिक उपादेयता के नाम पर प्रश्न-चिन्ह लगा दिया।

शासक की इसी सार्वभौमिकता ने उन वर्गों को अपना अनुकरणीय बनाया जो प्रशासनिक व्यवस्थाओं में कार्यरत हो उनका साथ देते थे। एक सशक्त राजन्त्रात्मक नृपतन्त्र की छांव से निकलकर मुग़ल प्रशासनिक व्यवस्था की बारीकियों को समझते हुए जब विकेन्द्रीकरण शासन-व्यवस्था की ओर बढ़ने का शासकों ने प्रयास किया तो शासनतन्त्र को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए नये-नये विभागों की स्थापना की आवश्यकता उन्हें महसूस हुई जिनमें सक्षम व गुणी व्यक्तियों की नियुक्ति की जा सके।[18] वैसे भी मुग़ल मनसबदारी को निभाने के लिए ऐसे कामकाजी, कर्मठ, विश्वसनीय व केवल शासक के लिए उत्तरदायी वर्ग की उन्हें प्रबल आवश्यकता थी।[19] इस अभिजात्य वर्ग को एक सामूहिक नाम 'मुतसद्दी' व 'कामदार' दिया गया।[20] यद्यपि यह वर्ग सामन्त वर्ग से भिन्न एक वेतन भोगी वर्ग था तथा इनकी नियुक्ति, पदौन्नति व पदमुक्ति सभी कुछ शासक की इच्छा पर निर्भर रहती थी। फिर भी कुछ ऐसे लोग भी थे जो वेतन के बदले में पट्टा-जागीरों का सम्मान प्राप्त करते थे। परन्तु उनकी जागीरें या चाकरी पट्टा मध्यकालीन व उत्तर मध्यकालीन राजस्थान की Landed Aristocracy के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं की जा सकती थी।[21] उनके द्वारा आर्हतित की गयी पट्टा जागीरें ना तो सामन्तों की भांति वंशानुगत थीं क्योंकि उनके पद की समाप्ति के साथ ही वे समाप्त हो जाती थीं तथा ना ही वे राजपूत सामन्तों की भांति जागीरी क्षेत्र में अपने कायदे-कानून लागू करने के लिए सक्षम थे। परन्तु, प्रशासन में ऊँचे पदों के दायित्वों का निर्वहन करते हुए कई बार ये किसी साधारण ठाकुर या सामन्त से अधिक प्रभावशाली भी बन जाते थे।[22] राजस्व विभाग या दीवान का पद पाने के बाद उनकी शक्तियों में सामान्यतः वृद्धि हो ही जाती थी व उनका स्थान भी राजनीतिक स्तर में उच्चता की ओर इंगित करने लगता था।

कामदार व मुतसद्दी वर्ग में कौन से वर्ग सम्मिलित थे यह जानना भी समीचीन होगा क्योंकि इन्हीं वर्गों को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि राजस्थानी समाज की संरचना को उन्होंने पूर्ण किया था तथा मध्यकालीन समाज का 'मध्यम वर्ग' बन कर शासक व शासित वर्ग के मध्य की रिक्तता को पूर्ण किया था। इनमें मुख्यतः कायस्थ व वैश्य जाति के लोग सम्मिलित थे। कायस्थों में भी प्रमुख माथुर थे। परन्तु, 18वीं शती

तक इनमें अन्य समाजों से ब्राह्मण तथा विभिन्न जातियों में 'चारण' व 'माली' को सम्मिलित कर लिया गया था।[23] वैश्य समाज से मोहता, नाहटा, सिंघवी, भण्डारी, टावरी, नाटाणी आदि प्रमुख थे।[24] नि:सन्देह राजा व सामन्तों के अतिरिक्त इस नये वर्ग ने कार्यों व संख्या के आधार पर एक वृहद आकार ले लिया था तथा निरन्तर इस वर्ग की महत्वाकांक्षाएँ समय की मांग के साथ परिवर्तित होती रही थीं। राजपूत राज्यों में कामदारी वर्ग का वैश्य वर्ग जो पहले व्यापारी, दुकानदार, सर्राफा, साहूकार, आसामी, खंजान्ची, पटवारी जैसे अनेक व्यवसायों व दायित्वों को निभाते हुए एक समृद्ध व प्रभावशाली समाज का निर्माण कर रहे थे, अब 18वीं शती के उत्तरार्द्ध व 19वीं शती के प्रारम्भ तक आते-आते प्रशासनिक स्वरूप से बाहर निकलने की छटपटाहट महसूस करने लगे थे। तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने उनका साथ दिया और वे व्यापार वाणिज्य के लिए प्रोत्साहित हुए।[25] इनकी मजबूत आर्थिक स्थिति का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है कि 19वीं शती के प्रारम्भ में जब राजपूत शक्तियां ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ संधियों को तत्पर थीं उस समय अधिकांश राज्य बनियों के कर्ज़दार थे।[26]

इन दो नये वर्गों के उदय ने अपनी कार्यशैली, पारिवारिक गठन तथा गतिविधियों से ना केवल समाज में वर्गीकरण को एक नयी दिशा प्रदान की बल्कि सामाजिक सम्बन्धों को पुष्टता भी प्रदान की। चूंकि विशिष्टता के साथ यह वर्ग दरबारी संस्कृति से अधिक प्रभावित था तथा सामाजिक प्रतिष्ठा, सम्मान व वैभव को इन्होंने बहुत करीब से देखा था अत: उन्हीं के अनुकरण में ही इन्होंने सुरक्षा महसूस की। वैसे भी दरबारी संस्कृति की अतिरंजित व्यवस्थाएं, उनका अलगाववादी दृष्टिकोण, अतिरिक्त प्रतिष्ठाओं तथा सम्पन्नताओं से ओत-प्रोत उनकी जीवन शैली समाज में शेष वर्गों के लिए एक आकर्षण का केन्द्र थी। उत्सुकता कहें या तुलनात्मक दृष्टिकोण दोनों ने ही इस उच्च वर्ग को जनता के सम्मुख एक अनुकरणीय प्रतीक बना दिया था। ऐसे में इन वर्गों का उदय चूंकि प्रशासनिक व्यवस्थाओं की पूर्ति के कारण ही हुआ था, अत: इनकी चकाचौंध से बच पाना संभव नहीं था। परिणामस्वरूप प्रामाणिक सामग्री के आधार पर इस वर्ग की सामाजिक संरचना का अध्ययन करते समय हमें कई बार भ्रमित हो जाना पड़ता है कि कहीं हम उच्च वर्ग का ही तो अध्ययन नहीं कर रहे हैं?[27] सामाजिक सरोकार से जुड़े सभी रीति-रिवाज, संस्कार, दान-पुण्य, जीवन शैली, लेखन शैली सभी कुछ उच्च वर्ग का प्रतिबिम्ब सा प्रतीत होता है। घरों में नौकर चाकरों की चहल-पहल, अस्तबल में पशुओं की संख्या, ड्योढ़ी में पत्नियों की उपस्थिति, पुत्रियों के विवाह की उत्सुक्ता, दहेज का वैभवपूर्ण चित्रण, शिशु का नामकरण आदि शासक व सामन्तवर्ग के आचार-विचार से भिन्न नहीं दिखलाई पड़ता है।[28] यहां तक कि बड़ारन व पातुरों की ड्यौढ़ी में उपस्थिति व उपपत्नियों का उल्लेख[29] तथा पर्यावरणीय संरक्षण के कार्य जो आर्थिक

सम्पन्नताओं के कारण संभव हो पाये थे उन्हें शासकीय परिवारों के समीप लाकर खड़ा कर देते हैं।[30] स्पष्टतया: इस वर्ग में भी नारी अधिकारों की बात करना शून्य के बराबर ही था क्योंकि प्रतिष्ठा व वैभव से जुड़ जाने के बाद उनका रहन-सहन उच्च वर्ग की भांति ही शानोशौकत प्रदर्शित करता है।

उच्चता व भव्यता के ठीक विपरीत समाज का तृतीय एवं जनसाधारण या ग्रामीण कहा जाने वाला तृतीय वर्ग अपनी प्रकृति व गठन में बिल्कुल भिन्न था। उसके पास उपर्युक्त दोनों वर्गों का अनुकरण करने के लिए कुछ भी नहीं था बल्कि उनका जीवन तो आर्थिक विपन्नता, अभावों, आवश्यकताओं तथा समस्याओं से जूझने में ही व्यतीत हो जाता था। यह वर्ग कृषक, शिल्पकार व दस्तकार, श्रमिकों एवम् कबीलावादी जातियों से मिलकर बना था तथा समाज का एक वृहद आकार इसी तृतीय वर्ग से सम्पूर्ण होता था।[31] बल्कि यह कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि शासक व प्रशासनिक वर्ग के लिए यह वर्ग उनकी सम्पन्नता बनाये रखने, शासन तन्त्र को चलाये रखने एवम् निरन्तर कानून-व्यवस्था बनाये रखने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण था। राज्य के राजस्व का लगभग सारा भार इसी वर्ग पर बना रहता था। राज्य की समृद्धि हेतु कृषि योग्य भूमि, उसका उत्पादन, पशुचारिता, उससे जुड़ी भूमि, विभिन्न व्यवसायों में संलिप्तता व क्रय-विक्रय सभी कुछ समाज की गति व निरन्तरता के लिए इतना महत्वपूर्ण था कि इस जनसाधारण वर्ग की उपस्थिति के बिना राज्य के अस्तित्व के विषय में सोचा ही नहीं जा सकता था। विशिष्ट बात इसके संदर्भ में यह थी कि यह वर्ग विभिन्न जातियों व समूहों से मिलकर बना था जिसमें सभी के अपने-अपने नियम, अपनी-अपनी परम्पराएं एवम् उन परम्पराओं के अनुपालन हेतु कायदे-कानून थे।[32] यह वर्ग वंचित अधिकारों के मापदण्डों की सहेजता हुआ भी अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति सजग व सचेत प्रतीत होता है। अपनी ही जाति विशेष के नियम-परम्पराओं की अनुपालना में ही स्वयं को सुरक्षित व संरक्षित महसूस करता था। जहां तक नारी अधिकारों का प्रश्न उठता है तो अभावों के बावजूद भी इस वर्ग की नारी सजग, सचेत व सक्षम दिखलाई पड़ती है। प्रतिष्ठा व सम्मान के साथ जुड़े, सामाजिक कुरीतियों की जो संलग्ता व सापेक्षता उच्च समाज में दिखलाई पड़ती है वह इस समाज में निंदनीय व दण्डनीय रही है। यदि 18वीं शती के अंतिम वर्षों व 19वीं सदी की नारी की विवेचना करें तो इन तीन सम्बोधनों में उसका वर्गीकरण किया जा सकता है।[33]

सुरक्षा, संरक्षा व सहभागिता - ये तीनों शब्द बड़े गहरे अर्थों में ग्रामीण समाज या जनसाधारण समाज की सारी गतिविधियों पर लागू होते हैं। जबकि इन तीनों शब्दों ने आज 21वीं-22वीं सदी की नारी के सम्मुख प्रश्नचिन्ह लगा रखे हैं व जिनका समाधान अभी भी दुर्लभ कार्य है। मध्यकालीन राजस्थानी समाज में ये शब्द कमोबेश नारी-अस्मिता

के साथ जुड़ चुके थे। सुरक्षा इस संदर्भ में कि एक ऐसा संगठन, ऐसी व्यवस्था जिसे 'पंचायत'[34] कहा जाता है, के सम्मुख अपनी बात कह पाना, जातीय परम्पराओं व नियमों के अन्तर्गत निर्णय प्राप्त करने की अपेक्षा रखना बड़ा ही अविश्वसनीय सा लगता है विशेष कर उस परिस्थिति में जबकि समाज का प्रतिष्ठित वर्ग शासक की इच्छा व तत्कालीन परिस्थितियों पर आधारित हो सामाजिक कुरीतियों को भी चलाने के लिए मजबूर था। परन्तु यह सत्यता थी कि राजस्थान में पंचायत-व्यवस्था बहुत मजबूत संस्था थीं जिसके संरक्षण व न्याय में स्थानीय जातियाँ अपनी समस्याओं का निवारण पा सकती थीं। विभिन्न जातियों के विभिन्न नियम थे परन्तु उन सबकी अनुपालना इसी पंचायत के माध्यम से हो पाती थी। यही कारण रहा कि ग्रामीण समाज की सामाजिक मान्यताओं व परम्पराओं के द्वारा सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखना शासक व राज्य की महत्ती आवश्यकता बनी रही। इस हेतु सदैव शासक व उसकी सर्वोच्च न्यायिक शक्ति ने इस बात के प्रयास किए हैं कि स्थानीय रीति-रिवाज व परम्पराएं ग्रामीण समाज की जाति विशेष के नियमों के अनुसार ही निर्मित हों।[35] इस कार्य के लिए शासक व उसकी न्यायिक शक्ति 'प्रथागत विधि' या 'कस्टमरी लॉ' का अनुपालन करने में जाति पंचायत व गांव पंचायतों पर निर्भर दिखलाई पड़ती है।[36] विशेष बात यही है कि यहां प्रत्येक जाति के अलग-अलग नियम थे जो न्याय व्यवस्था के पूरक अंग थे व जिनका उल्लघंन दण्डनीय था। चूंकि पंचायतों के पास वित्तीय अधिकार नहीं थे इसलिए उनके निर्णयों की अनुपालना कई बार जातीय हित में नहीं हो पाती थी व समस्या का रूप ले लेती थी तब शासक की न्यायिक शक्ति जिसके वित्तीय अधिकार थे, के पास निर्णय हेतु पहुंचती थी जिसे वह अनुमोदित करते हुए निर्णय पुन: पंचायतों के पास पहुंचाकर कर वसूलियां करवाता था।[37]

वस्तुत: पंचायत का कार्य स्थानीय जातिगत परम्पराओं व रीति रिवाजों के साथ जाति की पवित्रता को बनाने के प्रयास करते रहना था। इनमें आये व्यवधान के लिए वह 'गुनेहगारी' शब्द का प्रयोग करके 'अपराध' की श्रेणी में उस घटना व व्यक्ति को रख देता था । क्योंकि अपराध की गंभीरता पूरी जातिगत व्यवस्था को चुनौती देती थी।[38] अत: कई बार नकद वसूली के साथ साथ 'न्यात' को भी सम्मिलित कर लेता था। उस परिस्थिति में सम्बन्धित व्यक्ति को आस-पास के गांवों की जाति को भी इसका जुर्माना चुकाना पड़ता था। आर्थिक परिस्थितियों में ये दण्ड अत्यधिक कठोर थे परन्तु जातिगत नियम-परम्पराओं को बनाये रखने के लिए एक दिशा-निर्देश का कार्य करते थे।[39]

उदाहरणार्थ - ग्रामीण समाज में सगाई सम्पन्न करते समय वर पक्ष की ओर से वधुपक्ष को 'रीत' दी जाती थी जिसमें रुपये, गहने, कपड़े आदि सम्मिलित होते थे। रीत की यह रकम व रस्म अलग-अलग जाति में उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार सम्पन्न

होती थी। यदि कहीं यह कपड़ों, नारियल, रुपयों व गाय देकर सम्पन्न होती थी तो कहीं केवल 10/- रुपये देकर भी सम्पन्न की जाती थी[40] और रुपये भी पूरे ना दे पाने के कारण कुछ भाग ही दिया जाता था। जब तक पूरे रुपये जो निश्चित किये गये वे नहीं दिये जायेंगे तब तक विवाह सम्पन्न नहीं हो सकता था।[41] तब यह समस्या बनकर जब पंचायत व न्यायिक दरबार में पहुंचती थी तो 'रीठ कर' लगाकर दोषी व्यक्ति को आश्वासन पूरा करने को कहा जाता था।[42] राजस्थान की पर्यावरणीय पृष्ठभूमि में यह कई बार संभव था कि अकाल की स्थिति आ जाये। तब ऐसे में सगाई से विवाह तक पहुंचने में समय लग जाता था। ऐसे में पंचायत व राजदरबार का दबाव ही काम आता था।[43]

इस दबाव में राज्य का सुधारवादी दृष्टिाकोण भी यह दर्शाता है कि नारी का भविष्य सुरक्षित था - किसी लड़के का अपंग होना[44], चोर हो जाना[45], हत्यारा हो जाना[46] आदि परिस्थितियों में रीत के रुपये लौटाने व सगाई लड़की के हित में छोड़ने के भी आदेश देता था[47] अन्यथा एक बार जहां सगाई हो चुकी हो, उसे छोड़ पाना किसी के लिए भी संभव नहीं था। इसके बाद भी कई बार विवाह में देरी हो जाती थी व सम्बन्धित पिता यह कह कर कि अब ''म्हारी बेटी मोटी हुवी घर में खटावै नहीं'', इसे राज्य का दायित्व घोषित कर देता था।[48] राज्य भी पंचायतों के माध्यम से निराकरण प्रस्तुत करने का प्रयास करता था। ना मानने पर आर्थिक दण्ड 'गुनेहगारी' लगाकर, व्यवस्था कायम रखने का प्रयास करता था।[49] पंचों की भूमिका को और प्रभावशाली बनाने के लिए पंचों को 'नानकर' भूमि भी दी जाती थी तथा 'पचोदरा' (लगान में 5%) पाने का अधिकार भी दिया जाता था।[50] इस संदर्भ में राज्य व पंचायतों की भूमिका नारी के भविष्य को सुरक्षित करने की ही रहती थी। पंचायत व राज्य को दायित्व सौंप देना, इस वर्ग का जातिगत नियमों के अन्तर्गत सुरक्षा पाने का एक अलग सा प्रयास महत्वपूर्ण है।[51]

जहां तक 'संरक्षा' का तात्पर्य है ग्रामीण समाज राजकीय प्रशासन को अनेक करों का भुगतान करने के बावजूद भी अपनी जातीय परम्पराओं व नियमों को गतिमय बनाने के लिए या अक्षुण्ण रखने के लिए अपने ऊपर लागू किये जाने वाले आर्थिक दण्डों का भी वहन करता था। स्वयं नारी भी इस आर्थिक दण्ड से अछूती नहीं थी बल्कि 'आर्थिक दण्डों' को वहन करते-करते अपने अधिकारों का उपभोग करना उसकी नियति बन चुकी थी। ऐसे में 'अधिकार' शब्द बहुत भ्रामक तो लगता है परन्तु उत्तर मध्यकालीन परिस्थितियों जिसमें राज्य कई प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहा था, में पंचायत की 'संरक्षा' (Protection) में इसे प्राप्त कर अपनी इच्छानुसार उपभोग करना कहीं ना कही उच्च व मध्यम वर्ग को चुनौती अवश्य थी। यदि इसमें 'सीमित अधिकारों' की अपेक्षा करके भी अपनी बात रख सकूं तो भी अन्यथा नहीं होगी क्योंकि कोई पुकार, कोई अर्जी, कोई गठन नहीं दिखलाई पड़ता उच्च व मध्यम वर्ग में जिस पर आधारित

होकर नारी अपनी बात कह सके। संभवत: यह तत्कालीन युग की आवश्यकता थी या फिर आर्थिक तन्त्र की अत्यधिक उपादेयता, कि अभावों में जीते हुए भी ग्रामीण समाज की नारी संरक्षित है साथ ही आशान्वित भी। उदाहरणार्थ – बहुपत्नित्व प्रथा को जीना उच्च वर्ग का अधिकार सा बन गया था जबकि ग्रामीण समाज में यह किसी भी कीमत पर मान्य नहीं था बल्कि द्विपत्नित्व (Biogamy) जो कि 'नाता-विवाह' के फलस्वरूप उपस्थित हो जाती थी कभी-कभी, उसके लिए भी इस समाज में विरोध के स्वर मिलते हैं।[52] द्विपत्नित्व (Biogamy) के उदाहरणों में पहली पत्नी के अधिकारों की संरक्षा पंचायत व राज्य दोनों की ओर से की जाती थी।[53] जोधपुर के गांव हरीया डाणां के जाट कुशला की पत्नि ने बतलाया कि उसके पति ने उसे लिखित में देकर छोड़ दिया व दूसरी औरत को नाता करके ले आया। लिखित यह थी कि रोटी, कपड़ा व घर में से आध ा-आधा हिस्सा उसे दे देगा परन्तु अब वह दे नहीं रहा। जब इसकी शिकायत पंचायत व उसके पश्चात् राजदरबार में हुई तो उस लिखित पत्र को गांव के जाने-माने लोगों के द्वारा देखे जाने के बाद उस पहली पत्नि को उसका अधिकार दिलवाया जाये इस बात के आदेश दिये गये।[54] इसी भांति बीकानेर गांव सुहीरा के चौधरी उमाल ने अपने बड़े भाई की बहू को घर में डाल लिया व अपनी पत्नि को निकाल दिया जो अब पीहर में रहती है। परन्तु पीहर में उसके मां बाप दोनों की मृत्यु हो गयी व उसकी देखभाल करने वाला नहीं है तब अपील करने पर उस पत्नि को उसी के पति को उसकी देखभाल करने के लिए आदेशित किया गया।[55] यहां तक कि मेड़ता के रंगरेज ने अपनी बहू पर बांझपन का आरोप लगा कर विवाहित स्त्री को घर से निकाल दिया। परन्तु उस पत्नी की पुकार पर दरबार द्वारा उसे उसके घर भिजवा दिया गया व ताकीद की गई कि निगरानी रखी जावे ताकि वह अब अपनी पत्नि को छोड़ नहीं सके।[56]

सहभागिता का जहां तक प्रश्न है यह शब्द विशेष इस ग्रामीण समाज के स्वरुप व गठन को समझने में अत्यन्त सहायक है व नारी अधिकारों की आवश्यकता को महसूस करवाने का प्रबल दावेदार बिन्दू है। श्रम व परिश्रम से जुड़ा यह वर्ग जहां एक ओर अपने-अपने पैतृक व्यवसाय के संरक्षण के लिए प्रयासरत रहता था वहीं दूसरी ओर अपनी प्रतिदिन की जिन्दगी में रोजी-रोटी जुटा पाने की भरसक कोशिश में लगा रहता था। इस कार्य के लिए उसे परिवार के हर सदस्य के सहयोग की आवश्यकता थी जो पारिवारिक, सामाजिक के साथ-साथ राजस्व के दायित्वों के निर्वहन में सहायता कर सके तो दूसरी तरफ सामाजिक व्यवस्थाकारों व प्रशासनिक दायित्वों का निष्पादन करने वाले राज्य व उसके अधिकारियों के लिए भी समाज के इस वर्ग की निरन्तरता, गतिशीलता बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक था।[57] अत: इस समाज की परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाये रखना राज्य व प्रशासन की महत्ती आवश्यकता थी। संभवत:'सहभागिता'

की उपादेयता को ध्यान में रखते हुए सामाजिक मूल्यों की चुनौतीपूर्ण ही सही एक नई व्याख्या इस वर्ग में दिखलाई देती है तथा सीमित अर्थों में ही सही नारी के श्रम को, उसके योगदान को, उसकी निपुणता या कौशलता का उपभोग करने के प्रयास अधिक दिखलाई पड़ते हैं। राजस्थानीय पृष्ठभूमि में अकाल-अनावृष्टि कोई नयी बात नहीं थी परन्तु ऐसी स्थिति में सबसे अधिक मार नारी पर ही पड़ती थी क्योंकि पुरुष प्रधान समाज में नारी को बेचना एक सरल उपाय था तुरन्त आर्थिक लाभ पाने का। वैसे भी सामान्य परिस्थितियों में तो उसे व कन्या के रूप में भी उसे बेचा जाता था परन्तु भीषण परिस्थिति में तो यह उपाय कारगर साबित होता था। जब व्यवस्थाएं व पर्यावरणीय वातावरण सामान्य हो जाता था तो यही स्त्री आवश्यकता बन जाती थी पारिवारिक कामकाज की खेत खलिहानों में श्रम की। तब बेची हुई नारी को पुन: प्राप्त करने के प्रयास प्रारम्भ हो जाते थे व पंचायत व दरबार भी उसे उसके पहले परिवार में पहुंचाने हेतु तत्पर हो जाता था।[58] अकाल के समय मालवा की ओर चले जाना आम बात थी ऐसे में जोधपुर राज्य के गांव मांगलीया बड़ा का जाट देवला जब मालवा चला गया व उसकी पत्नी को बेचे जाने के दो साल बाद वापिस आया तो उसने अपनी पत्नी वापिस दिलाने की मांग की, दरबार से आदेश दिया गया कि इसके पति को इसकी पत्नि लौटा दी जावे।[59] यहां तक कि कुंवारी लड़की को भी बेच देने के पश्चात् उसे वापिस मांगने के लिए जब लड़की का चाचा पहुंचा तो उसे दरबार से वापिस देने का आदेश दिया गया, ताकि उसका विवाह किया जा सके।[60] यहां तक कि इस वर्ग में अन्तर्जातीय विवाह भी मान्य नहीं थे। अपनी जाति से अलग जाति की स्त्री को अपने घर में रखने पर ब्याहता पत्नी के अधिकारों को ही स्वीकृति दी जाती थी व दूसरी जाति की स्त्री को उसके अपने घर पहुंचाने हेतु प्रयास किये जाते थे। ना मानने पर उन पर आर्थिक दण्ड भी लगाये जाते थे जिन्हें पूरा करना आवश्यक था।[61]

इन संदर्भों में एक बात अत्यन्त महत्वपूर्ण उभर कर हमारे समक्ष उपस्थित होती है कि ग्रामीण समाज के झगड़ों में पंचायत अपनी जाति की परम्पराओं को बनाये रखने का भरसक प्रयास करती थी चाहे आर्थिक दण्ड का सुझाव देकर, या जातिगत नियमों की दुहाई देकर। परन्तु राज्य या प्रशासन का मुख्य स्वार्थ कर वसूली में ही अधिक रहता था। वह यथास्थिति (status quo) को बनाये रखने में ही विश्वास करता था इसलिए वह पंचायतों के निर्णयों को लागू करवाने में ही प्राथमिकता से प्रयासरत रहता था तथा सामाजिक श्रेणीबद्धता की पुनरावृत्ति में ही विश्वास रखता था। संभवत: पितृसत्तात्मक समाज में नारी की प्रजनक (reproductive) क्षमताओं को क्षति पहुंचाने की यह एक महत्वपूर्ण मुहिम थी जिसे चुनौती देने की त्वरित आवश्यकता है।

मेरी यह अपेक्षा है कि आधुनिक सामजिक शोधकर्ताओं को और भी वैज्ञानिक

दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। नारी की क्षमताओं तथा उसके योगदान का विश्लेषण और भी अधिक प्रश्नों को समझते हुए होना चाहिए ताकि 19वीं सदी तक की सारी विवेचनाएं और अधिक मुखरित होकर उपस्थित हो सकें इसके लिए हमें जिन बातों पर गहन विचार करना चाहिए वे इस प्रकार रेखांकित है-

A. नारी की स्थिति का अध्ययन एकाकी रूप से नहीं बल्कि समग्र रूप से राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक पृष्ठभूमि के बनते-बिगड़ते स्वरूप व सम्बन्धों की समीक्षा करते हुए किया जाना चाहिए।

B. राज्य की निरन्तर बढ़ती करों की मार तथा भूमि की बढ़ती शुष्कता के कारण लोगों द्वारा जातीय सम्बन्धों की परवाह किये बिना कृषि छोड़कर चारागाह व्यवसाय की ओर प्रवृत होने से जो भिन्नता आयी, का विश्लेषण किया जाना चाहिए।

C. ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नमक, अफीम व अन्य जिन्स के उत्पादन पर एकाधिकार से राजस्थान के क्षेत्र से पैतृक व्यवसायों को छोड़कर लोगों को जंगलों की ओर जाने पर विवश होना पड़ा जिसमें कोली, भील व मेर जाति प्रमुख थी, के विषय पर गहनता से कार्य अपेक्षित है।

D. व्यापारिक वस्तुओं के आवागमन पर जो अधिकार 'बंजारों' का था अब 19वीं शती में अन्य जातियों में विशेष तौर पर व्यापारिक वर्ग द्वारा छीन लिया गया तथा वे खानाबदोश जीवन व्यतीत करने पर मजबूर हो गये तब उनकी स्त्रियों की स्थिति पर क्या प्रभाव पड़े, पर अध्ययन अपेक्षित है।

E. उत्तर मध्यकालीन काल में उत्पन्न हुआ वह गंभीर संकट जो विभिन्न सामाजिक समूहों के भीतर उनकी पैतृक व्यवसायों व कार्यों के बीच उठ खड़ा हुआ था तथा जिससे सामाजिक-आर्थिक स्तर पर महत्वपूर्ण बदलावों को प्रस्तुत किया। ऐसे में नारी की स्थिति प्रभावित हुए कैसे रही का अन्वेषण किया जाना चाहिए।

F. अब तक परिगमन की प्रवृति बहुत गहरी हो चुकी थी अतः इन परिस्थितियों से स्त्रियों ने किस भांति समझौता किया, विचारणीय बिन्दू है।

G. पैतृक सम्पति में अधिकार के संदर्भ में 'जजमानी' अधिकार क्षेत्र का विवेचन शोधपरक है।

H. स्थानीय वात-साहित्य का यह दावा कि दरबारी संस्कृति के बावजूद भी कबीलावादी व खानाबदोशी संस्कृति की लोकप्रियता अपनी-अपनी सामाजिक व्यवस्थाओं में बची रही जिसका श्रेय इस वर्ग की स्त्रियों को जाता, पर पूर्णतः शोध किया जावे।

I. महत्वपूर्ण रूप से यह परीक्षण हो कि 19वीं-20वीं सदी के औपनिवेशिक सुधार वास्तव में सामाजिक-धार्मिक पृष्ठभूमि की देन थे या फिर औपनिवेशिक शक्ति को दृढ़ता से स्थापित करने के मात्र साधन ? विचारणीय है।

पाद टिप्पणियाँ

1. *सतीश चन्द्र, मेडिवल इण्डिया - सोसायटी, जागीरदारी क्राइसिस एण्ड दी विलेज, दिल्ली, 1982, पृ. 2-9*
2. *जी.एस.एल. देवड़ा, राजस्थान के इतिहास के अभिज्ञान रूप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010-11, पृ. 2-9.*
3. *जी.एस.एल. देवड़ा, दी इण्टरनल एक्सपानशन् ऑफ सोसायटी एण्ड फोरमेशन ऑफ मेडिवल पोलिटी'', अध्यक्षीय व्याख्यान, सेक्शन बी, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसिडिंग्स, 1998*
4. *शशि अरोड़ा, उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान के सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में नारी का संघर्ष, पेपर प्रस्तुतीकरण, नेशनल सेमीनार, राजस्थान स्टडीज सेन्टर एवम् महिला इतिहासकार संगोष्ठी, 11-12 जनवरी, जयपुर, 2018*
5. *विभिन्न शोध प्रपत्रों पर आधारित निष्कर्ष.*
6. *एस.पी. गुप्ता, दी एगरेरीयन सिस्टम ऑफ ईस्टर्न राजस्थान, मनोहर प्रकाशन, दिल्ली, 1986, पृ. 1-27*
7. *जी.एस.एल. देवड़ा, राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था, बीकानेर के विशेष संदर्भ में, धरती प्रकाशन, बीकानेर, 1981, पृ. 20-25*
8. *जी.डी. शर्मा, राजपूत पोलिटी, रावत प्रकाशन, जयपुर, 1977, पृ. 25-44*
9. *जी.एस.एल. देवड़ा, राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था, बीकानेर के विशेष संदर्भ में, धरती प्रकाशन, बीकानेर, 1981, पृ. 153-157.*
10. *शशि अरोड़ा, राजस्थान में नारी की स्थिति - 1600 ई. से 1800 ई.; तरूण प्रकाशन, बीकानेर, 1981, प्रस्तावना, पृ. क, ख*
11. *शासकों की वह उपपत्नि जो विशेष पदवी से अलंकृत होती थी। विस्तृत विवरण हेतु देखिये - शशि अरोड़ा, जनानी ड्यौढ़ी की डावड़ियां-एक अध्ययन, पेपर प्रस्तुतिकरण, आई.सी.एच.आर. सेमीनार, महिला पी.जी. महाविद्यालय के संयुक्त तत्वाधान में - पैलेस्स, गार्डन्स एण्ड वाटर बॉडिज़ : ए स्टडी ऑफ दी अरबन स्पेश इन इण्डिया, जोधपुर, 25-26 जुलाई, 2016*
12. *उपर्युक्त*
13. *उपर्युक्त*
14. *शशि अरोड़ा, राजस्थान में नारी की स्थिति - 1600 ई. से 1800 ई., तरुण प्रकाशन, बीकानेर, 1981, पृ. 56-70*

1859 मिती जेठ बद 3, भैय्या संग्रह, बीकानेर. रा.रा.अ.बी.

30. लीलावती रानी अने सुमति विलासनों रास, पंडित उदयरत्न महाराज कृत, प. 11, पृ. 11; श्रीपाल राजे का रास, श्री जिन्न हर्ष गणिवर कृत, पृ. 10, नाहटा संग्रह, बीकानेर

31. शशि अरोड़ा, सामाजिक प्रथागत नियमों की निरन्तरता में सहायक कर व्यवस्था (प्रकाशित पेपर) आई.सी.एस.आर. एवम् राजस्थान शोध संस्थान, चोपासिनी, जोधपुर के संयुक्त तत्वाधान में - राजस्थान के इतिहास के आर्थिक स्रोत, 10-11 मार्च 2017, प्रकाशित 2018

32. उपर्युक्त

33. उपर्युक्त

34. पंचायत व्यवस्था की कार्य प्रणाली के बारे में बीकानेर रामपुरीया संग्रह की कागदों की सभी बहियां विस्तृत रूप से प्रकाश डालती हैं। यह सम्पूर्ण विवरण 'सनद', 'लिखत' व 'रीठ' कागदों में उपलब्ध होती है। इस विषय में प्रस्तुत विवरण के लिए कागदों की बही संख्या 1 से 21 तक चुनी हैं जो वि. स. 1811/1754 ई. से वि. स. 1873/1816 ई. की है - रामपुरिया रिकार्ड्स, बीकानेर, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

35. कागदों की बहियां, नं. 1 से 21 तक, वि. स. 1811/1754 ई. से वि.स. 1873/1816 ई. तक; जोधपुर सनद परवाना बही नं. 1 से 23 तक, वि. स. 1821/1764 ई. से वि. स. 1834/1767 ई. तक(कोटा भण्डार नं. 1, बस्ता नं. 1 से 75 तक, वि. स. 1729/1672 ई. से वि. स. 1850/1793 ई. तक, रा. रा. अ. बी.

36. बही हासल रे लेखे री, वि. स. 1749/1692 ई., नं. 28, पृ. 22-25, रा.रा.अ.बी.

37. शशि अरोड़ा, उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान के सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में नारी संघर्ष, 18वीं शती के संदर्भ में, पेपर प्रस्तुत किया, आई.सी.एस.आर., सेन्टर फोर राजस्थान स्टडीज एवम् महिला इतिहासकार परिषद, इतिहास संकलन समिति, जयपुर प्रान्त - वीमन इन पब्लिक लाइफ इन राजपूताना स्टेट्स स्पेशल रैफरेन्स टू पोलिटिक्स, रीलिजन एण्ड एजूकेशन, 6-7 जनवरी 2018

38. राजस्थान राज्य अभिलेखागार में संग्रहित व संरक्षित राजकीय बहियों के दस्तावेजों के आधार पर(शशि अरोड़ा, राजस्थान में नारी की स्थिति द्धपूर्व उल्लेखितऋ, तरूण प्रकाशन बीकानेर, 1981, पृ. 25-33, 43, 45, 64-65, 73-75, 76-77

39. उपर्युक्त

40. जोधपुर सनद परवाना बही, काती बद 8, वि. स. 1832/ 8 अक्टूबर 1775 ई., नं. 6, पृ. 752, रा. रा. अ. बी.

41. कागदों की बही, बीकानेर, वि. सं. 1811/1754 ई.(नं. 1, रीठ के कागद, रा.

15. उपर्युक्त

16. शशि अरोड़ा, जनानी ड्यौढी की डावड़ियां - एक अध्ययन, आई.सी.एच.आर. नेशनल सेमीनार - पैलेस्स, गार्डनस् एण्ड वाटर बांडीज : अ स्टडी ऑफ दी अरबन स्पेस इन इण्डिया, महिला पी.जी. महाविद्यालय, जोधपुर, 25-26 जुलाई, 2016

17. शशि अरोड़ा, कनक्यूबाइनस् का एक अध्ययन - वनमाली दास के विशेष संदर्भ में, आई.सी.एच.आर., नेशनल सेमीनार, रोल ऑफ थर्ड जेण्डर एण्ड कनक्यूबाइनस्, महिला पी.जी. महाविद्यालय, जोधपुर, 25-26 जुलाई 2018.

18. जी.एस.एल. देवड़ा, ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान - 1746 ई. - 1829 ई., धरती प्रकाशन, बीकानेर, 1979, देखें, इण्ट्रोडक्शन, पृ. गपए गअए गपप

19. अबुलफज़ल - अकबरनामा, अनुवादक एच. बेवरिज, भाग 4, ऐशियाटिक सोसायटी, बंगाल, कलकत्ता, 1897-1910, पृ. 490-94, 511, 533-34

20. राज्य प्रशासन में प्रशासकीय वर्ग के लिए 'मुत्सद्दी' शब्द का प्रयोग 17वीं शताब्दी के अन्त में अधिक प्रचलित हुआ है अन्यथा 'कामदार' शब्द का ही अधिक प्रचलन था। ख्यातों में सदैव इस संदर्भ में मुतसद्दी शब्द का ही प्रयोग आया है। - बीकानेर राज्य की ख्यात महाराजा सुजानसिंह जी सूं गजसिंघ जी ताई, पृ. 38; मोहता ख्यात, पृ. 57 - जी.एस.एल. देवड़ा, राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था, धरती प्रकाशन, बीकानेर, 1981, पृ. 97

21. परवाना बही, नं. 22/23, वि. स. 1740/1683 ई., कामदारी पट्टे, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

22. उपर्युक्त

23. जी.एस.एल. देवड़ा, ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान (पूर्व उल्लेखित) धरती प्रकाशन, बीकानेर, 1979, देखें, इण्ट्रोडक्शन, पृ. गपए गअए गपप

24. बीकानेर रै कामदारां वगैरा री पीढ़ियां, नं. 229/2, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर(परवाना बही, वि. स. 1800/1743 ई., राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 77, 126

25. जी.एस.एल. देवड़ा, राजस्थान के इतिहास के अभिज्ञानरूप, (पूर्व उल्लेखित) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 208, 214

26. उपर्युक्त

27. शशि अरोड़ा, राजस्थान में नारी की स्थिति (पूर्व उल्लेखित), तरूण प्रकाशन, बीकानेर, पृ. 10-11

28. भैय्या संग्रह, घरूलेखा री बही, रोजनावो, वि. स. 1837/1780 ई. रा.रा.अ.बी.

29. लीलावती रानी अने सुमति विलासनों रास, पंडित उदयरत्न महाराज कृत, पृ. 10, नाहटा संग्रह, बीकानेर, पृ. 11; बाई जैतां रो पत्र भाई नथमल के नाम, वि. स.

रा. अ. बी.

42. उपर्युक्त

43. विभिन्न झगड़ों के निष्पादन में निर्णयों पर पहुंचे दस्तावेज जो पूर्व में उल्लखित बहियों, बस्तों व अड़सट्टों में उपलब्ध हैं, रा. रा. अ. बी.

44. बही पेशकसी रे लेखे री, बीकानेर, वि. सं. 1833/1765 ई., पृ. 60(कागदों की बही, बीकानेर, वि. सं. 1840/1783 ई., रा. रा. अ. बी.

45. कागदों की बही, बीकानेर, वि. सं. 1857/1800 ई., नं. 11, पृ. 195, रा. रा. अ. बी.

46. जोधपुर सनद परवाना बही, वि. सं. 1824/1767 ई., नं. 6, पृ. 3, पोस सुद 1, वि.स. 1824/28 मई 1767 ई., नं. 8, पृ. 152, रा. रा. अ. बी.

47. उपर्युक्त

48. शशि अरोड़ा, राजस्थान के ग्रामीण समाज में नारी की स्थिति के कतिपय पहलू - 1700-1800 ए.डी., पेपर प्रस्तुत किया गया। नेशनल कान्फ्रेंस ऑन इण्डियन हिस्ट्री राइटिंग: प्रजेन्ट सीनेरियो एण्ड प्रोस्पैक्ट्स, इतिहास एवम् संस्कृति विभाग एवम् भारतीय इतिहास संकलन समिति के संयुक्त तत्वाधान में, जयपुर, 19-20 जनवरी 2018

49. शशि अरोड़ा, सामाजिक प्रथागत नियमों की निरन्तरता में सहायक कर-व्यवस्था, 17वीं व 18वीं शती, पेपर प्रकाशित आई.सी.एच.आर. तथा राजस्थान शोध संस्थान, चौपासिनी, जोधपुर - राजस्थान के इतिहास के आर्थिक स्रोत, 10-11 मार्च, 2017, प्रकाशित 2018

50. जी.एस.एल. देवड़ा, राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था द्धपूर्व उल्लेखितऋ, धरती प्रकाशन, बीकानेर, 1981, पृ. 156-57(शिवकुमार भनोत, राजस्थान में पंचायत व्यवस्था, जयपुर, 2000, पृ. 30-55

51. उपर्युक्त

52. शशि अरोड़ा, 18वीं व 19वीं शती में विवाह एवम् पुनर्विवाह में आये सामाजिक परिवर्तनों की समीक्षा - नाता-विवाह, प्रकाशित, जी.एन. शर्मा मेमोरियल व्याख्यान, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, 31वां सैशन, दिसम्बर, सरदार पटेल यूनिवर्सिटी पोलिस, सिक्योरिटी एण्ड क्रीमीनल जस्ट्स, जोधपुर, 16-18 दिसम्बर, 2016

53. शशि अरोड़ा, नारी बसाव एक प्रशासनिक एवम् सामाजिक चुनौती - 18वीं शताब्दी, पेपर प्रस्तुतीकरण, इतिहास विभाग, महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय एवम् संस्कृत अकादमी, बीकानेर के संयुक्त तत्वाधान में - माइग्रेशन, सैटलमेन्ट, स्टेट फोरमेशन एण्ड लिटरेचर, मार्च 21-22, 2017

54 जोधपुर सनद परवाना बही, नं. 11, पोस सुद 15, सोमवार, जोधपुर, वि. सं. 1821/1764 ई., पृ. 10, रा. रा. अ. बी.

55. कागदों की बही, बीकानेर, वि. सं. 1853/1796 ई., नं. 10, रा. रा. अ. बी.

56. जोधपुर सनद परवाना बही, नं. 8, फागण बद 2, गुरुवार, वि. सं. 1825/1768 ई., पृ. 89, रा. रा. अ. बी.

57. शशि अरोड़ा, राजस्थान के ग्रामीण समाज में नारी की स्थिति के कतिपय पहलू - 1700-1800 ई., पेपर प्रस्तुतीकरण, नेशनल कान्फ्रेंस ऑफ इण्डियन हिस्ट्री राइटिंग : प्रेजेण्ट सीनेरियो एण्ड प्रोसपेक्ट्स,, इतिहास विभाग एवम् भारतीय इतिहास संकलन समिति के संयुक्त तत्वाधान में, जयपुर, 19-20 जनवरी, 2018

58. उपर्युक्त

59. जोधपुर सनद परवाना बही, नं. 2, मिति चैत सुद 2, वि. सं. 1822/1765 ई., पृ. 24, रा. रा. अ. बी.

60. जोधपुर सनद परवाना बही, नं. 6, नागौर कचैड़ी, वि. सं. 1824/1767 ई., पृ. 27, रा. रा. अ. बी.

61. जोधपुर सनद परवाना बही, नं. 8, मिति फागण बद 3, गुरूवार, वि. सं. 1825/1768 ई., पृ. 89, रा. रा. अ. बी.

62. जी.एस.एल. देवड़ा, राजस्थान इतिहास के अभिज्ञान रूप, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 231-233

63. जी.एस.एल. देवड़ा, राजस्थान इतिहास के अभिज्ञान रूप, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 180-181

64. उपर्युक्त

प्रोफेसर जी.एन. शर्मा स्मृति व्याख्यान

मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन में राजस्थान की महिला संतों का योगदान

डॉ. मीना गौड़

माननीय अध्यक्ष महोदय, राजस्थान इतिहास काँग्रेस के 33वें अधिवेशन के अध्यक्ष, सचिव, कार्यकारिणी सदस्यगण, महिला पी.जी. महाविद्यालय के स्थानीय सचिव एवं सहयोगी दल, सम्मानित अतिथिगण, विद्वत्जन एवं इतिहास काँग्रेस के प्रतिभागीगण।

मैं आज स्वयं को बहुत गौरवान्वित महसूस कर रही हूँ कि मुझे प्रसिद्ध विद्वान इतिहासकार प्रो. जी.एन. शर्मा की स्मृति के आयोजित व्याख्यान में व्याख्यान देने के लिए अवसर प्रदान किया गया है। मैं विनम्रता के साथ आप सभी का आभार प्रकट करती हूँ।

राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसर गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के इतिहास विभाग में आचार्य, राजस्थान स्टडीज रिसर्च सेन्टर के डायरेक्टर व एमिरिटस प्रोफेसर रहे। आपने इतिहास संबंधी 25 ग्रन्थों की रचना की। आपकी पुस्तकों में 'मेवाड़ एन्ड द मुगल एम्परर्स', 'सोशल लाईफ इन मिडीएवल राजस्थान 1500–1800', 'ग्लोरीज़ ऑफ मेवाड़', 'महाराणा प्रताप एन्ड हिज टाईम्स', 'सोशल एन्ड पोलिटीकल अवेकनिंग एमंग द ट्राईबल ऑफ राजस्थान' आदि पुस्तकों को इतिहासकारों, विद्वानों एवं शोधार्थियों के मध्य काफी लोकप्रियता एवं सराहना मिली। राजस्थान इतिहास में सामाजिक इतिहास लेखन की शुरूआत कर आपने इतिहास शोध को एक नया आयाम दिया। आपने अपने गहन शोध एवं परिश्रम द्वारा राजस्थान इतिहास की आजीवन सेवा की तथा अत्यधिक समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया है। इतिहास विषयक अपने उत्कृष्ट अनुसंधान, शोध कार्यो तथा लेखन के चलते प्रो. जी. एन. शर्मा को जीवन पर्यन्त अनेकानेक सम्मान पुरस्कार प्राप्त हुए जो इनके अप्रतिम योगदान एवं अवदान के साक्षात प्रमाण थे। आपके योगदान के प्रति इतिहास जगत सदैव आपका ऋणी रहेगा।

मैंने अपने व्याख्यान के लिए जिस विषय का चयन किया है वह मध्ययुगीन

 ISSN 2321-1288

भक्ति आंदोलन में राजस्थान की महिला संतों के योगदान पर आधारित है। सामाजिक परिवर्तन एक सतत प्रक्रिया है। आज वर्तमान में हम जिस स्थान पर खड़े है उसमें अनेक कारकों एवं तत्त्वों का योगदान रहा है, किंतु हमारी सोच वर्तमान पीढ़ी के योगदान पर ही मुख्यत: केन्द्रित रहती है। पहले की घटनाओं को हम प्राय: महत्वहीन या विस्मृत कर देते हैं जिनके कारण हमारा अस्तित्व है।

इसी प्रकार का चिंतन मुझे मध्यकाल की उन महिला संतों के सन्दर्भ में होता हैं जिन्होंने मध्ययुग की विषम सामाजिक स्थिति में भी अपनी बौद्धिक, आध्यात्मिक सोंच तथा प्रगतिवादी विचारों द्वारा समाज में सामंजस्य और समन्वय की बात की। सामाजिक रूढ़िवादिता के खिलाफ अपनी लेखनी उठाई और दृढ़ता, आत्मविश्वास के साथ अपने व्यक्तिगत आचरण को अपने तरीके से जीने का साहस किया। निश्चित रूप में यह संत महिलाओं द्वारा उठाया गया क्रांतिकारी कदम था।

भारत में सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलनों का एक लंबा इतिहास रहा है। दीर्घकालीन अवधि तथा विशाल संख्या में इन आंदालनों के होते हुए भी इनके उद्भव, प्रकृति, उद्देश्य तथा परिणामों को लेकर अभी तक विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विद्वानों ने समय-समय पर मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के कारक तत्वों को ढूंढने का प्रयास किया है।

प्रसिद्ध इतिहासकार ताराचंद ने अपनी पुस्तक 'इनलुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर' में मध्यकालीन भक्ति आंदोलन को इस्लाम धर्म की देन माना है।[1] जबकि पाश्चात्य विद्वान जार्ज ग्रियर्सन भक्ति आंदोलन को ईसाई धर्म से प्रभावित मानते हैं।[2] किंतु ये सभी मत तर्कहीन प्रतीत होते हैं, क्योंकि भारत में भक्तिपरम्परा प्राचीन काल से विद्यमान है।

मध्यकाल में भारत में भक्ति आंदोलन के आधार का निर्माण करने वाले रामानंद वैष्णव धर्म के अनुयायी थे।[3] रामानन्द बड़े उदारचेता मनस्वी थे। उन्होंने सामाजिक हीनता और असमर्थता की भावना को समूल नष्ट कर साधना का ऐसा द्वार निर्मित किया जो सबके लिए खुला हुआ था।[4] रामानन्द के पूर्व भारत के महान दार्शनिक एवं धर्म प्रवर्तक शंकराचार्य ने 8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही अद्वैतदर्शन को ठोस आधार प्रदान किया व सनातन धर्म की विविध विचार धाराओं का एकीकरण किया।[5] साधु समाज में यह दोहा अत्यंत प्रचलित है।

भक्ति द्रविड़ उपजी, लाए रामानंद
प्रकट किया कबीर ने सातद्वीप नौ खंड।[6]

अत: भक्ति आंदोलन को हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ही एक आंदोलन कहना ज्यादा उचित होगा। प्राचीन काल से ही ईश्वर अराधना एवं मोक्षप्राप्ति के साधन के रूप में तीन

मार्गों कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का उल्लेख प्राप्त होता है। समय-समय पर इन मार्गों में से किसी एक मार्ग की धारा बलवती हो जाती थी, तो दूसरी धाराएं क्षीण हो जाती थी। किन्तु मध्यकाल आते-आते अन्यान्य कारणों से भक्ति मार्ग की धारा प्रभावकारी हो उठी। मध्यकालीन संतों एवं भक्तों के प्रयासों से इसने एक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया और भारत के एक बड़े भूभाग पर यह आंदोलन फैल गया। इसने तत्कालीन समाज पर गहरा प्रभाव डाला।

भक्ति आंदोलन ने जिस भक्ति पर बल दिया उसका स्वरूप अत्यंत सरल एवं पवित्र था। इसे समतावादी समाज की स्थापना और ब्राह्मणवादी एकाधिकार के खिलाफ विरोध के रूप में जाना जाने लगा। अनेक भक्त सम्प्रदायों ने गृहस्थों के लिए मुक्ति की अनुमति दी। तप को अनावश्यक बताया। महिलाओं तथा शूद्रों के लिए मोक्ष को अधिक सुलभ बना दिया। लगभग सभी संतों ने बाह्य-आडम्बर, कर्मकांड और बहुदेववाद का विरोध किया। एकेश्वरवाद का प्रचार तथा सामाजिक समानता पर बल दिया। कहा जा सकता है कि संत सम्प्रदाय विश्व सम्प्रदाय है और उसका धर्म विश्वधर्म है और इस विश्वधर्म का मूलाधार है-हद्य की पवित्रता।[7]

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के सन्दर्भ में राजस्थान का अपना महत्व है। भौगोलिक रूप से राजस्थान का क्षेत्र मध्यकाल के विभिन्न खण्डों में विभक्त था। राजस्थान की रियासतें यद्यपि भौगोलिक रूप से एक दूसरे से जुड़ नहीं पाई थीं किंतु यहाँ विभिन्न संतों के प्रचलित अनेक मतों, धाराओं एवं सम्प्रदायों ने इस प्रदेश को परस्पर जोड़ रखा था।

यहाँ जिन संत सम्प्रदायों का विकास हुआ उनमें चरणदासी, लालदासी, हरिदासी, निरंजनी, सूफी, जसनाथी, विश्नोई व नाथ प्रमुख हैं। महिला संतों की भी बृहत शृंखला है। इन महिला संतो में मीरा बाई, सहजो बाई, दयाबाई, सोढ़ीनाथी व राना बाई के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने अपनी साहित्यिक रचनाओं और उनमें निहित दर्शन द्वारा समाज में नई चेतना को जन्म दिया। इन संत कवयित्रियों की रचनाओं में भी संत काव्य की प्रत्येक प्रवृति सम्मिलित हैं। अपने पूर्ववर्ती और समकालीन संतों का प्रभाव ग्रहण करते हुए इन महिला संतों ने भी आत्म विश्वास, साहस एवं निर्भीकता के साथ प्राचीन रूढ़ परम्पराओं एवं अवधारणाओं को तोड़ा,[8] स्थानीय आम बोलचाल की भाषा में अपनी कविताओं एवं पदावलियों की रचना कर समाज में व्याप्त आडम्बरों, पाखण्डों, कुरीतियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया। जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय के स्तर पर व्याप्त कटुता की भावनाओं को अपने उपदेशों एवं शिक्षाओं से दूर करने का प्रयास किया।

मध्य युग ने मुस्लिम आक्रमण एवं भिन्न सांस्कृतिक परिवेश की स्थापना के साथ भारत में पहले संघर्ष और बाद में सांस्कृतिक परिवर्तन के लिये जमीन तैयार की।

इस परिवर्तन के कारण महिलाओं की स्थिति में सबसे अधिक गिरावट आई। जो स्त्रियां ऋग्वैदिक काल में धर्म और समाज की प्राण थीं उन्हें अब श्रुति का पाठ करने के अयोग्य घोषित कर दिया गया।[9]

'स्त्री शूद्रो नाधीयताम' जैसे वाक्य रचकर उसे शूद्र की कोटि में रखा गया। तुलसीदास ने 'ढोल, गंवार, शूद्र, पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी'[10] कहकर स्त्रियों के सम्मान और गरिमा को ठेस पहुँचाई तो दूसरी ओर संत कबीर ने 'नारी की झांई परत अंधा होत भुजंग' कहकर नारी की परछाई से ही बचने का उपदेश दिया।[11] इसी काल में प्रचलित बालविवाह, सतीप्रथा तथा अविद्या का अंधकार नारी समाज के लिए अभिशाप सिद्ध होने लगे।[12] सामाजिक जीवन के पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण स्त्रियों के प्रति भेदभावपूर्ण रवैया अपनाया गया।

किसी भी देश या समाज में नारी की स्थिती को दयनीय बनाने में धर्म, धर्मगुरुओं तथा धर्मशास्त्रों का विशेष स्थान रहा है। मनु स्मृति में मनु ने स्त्रियों के संबंध में जो निर्देश दिये उससे समाज में स्त्रियों को निबर्लता और हीनता का पर्याय माना जाने लगा।[13] उस काल में राजा और पुरोहित एक दूसरे के पूरक हो गए। इस स्थिति में समाज के लिए जो भी आचार संहिता बनी वे स्वभाविक रूप से दलितों, पीड़ितों, नारियों तथा दुर्बल जातियों के विरुद्ध थे। ठीक इसी तरह की मनोवृति स्त्रियों के प्रति हम 15वीं शताब्दी के पूर्व, यूरोप में भी पाते है।[14] किसी भी समाज की स्त्रियों की स्थिति के विश्लेषण एवं उनके प्रति सामाजिक रवैये का मुख्य मापक उस समाज के शिक्षित पुरुषों द्वारा स्त्रियों के प्रति व्यक्त किये गये विचार और लेखन कार्य को देखकर लगाया जा सकता है।[15] चूँकि स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखने वाले पुरुष थे अत: स्त्रियों की छवि को सही ढंग से प्रस्तुत नहीं किया गया।

भारत का मध्य काल सामाजिक एवं वैचारिक दृष्टि से सर्वाधिक कुण्ठा तथा संक्रमण का काल था। ऐसे में भक्ति आंदोलन के रूप में स्त्रियों को अपने लिए आशा की किरण दिखाई दी। मीरा के अलावा अनेक संत महिलाओं ने निर्मल और भक्तिपूर्ण पदों की रचना की। उन्होंने धर्म गुरुओं द्वारा निर्धारित व निर्देशित नारी के बंधनों एवं वर्जनाओं को तोड़ने का साहस किया। इन संत महिलाओं की प्रगतिवादी सोंच किसी मौन क्रांति से कम नहीं थी।

मीरा बाई

मध्य काल की महिला संतों में मीरा का स्थान सर्वोपरि है। मीरा में भक्ति के संस्कार बाल्यकाल से ही गहरे और मजबूत हो गये थे। नारी की अस्मिता की पहली आवाज मीरा के काव्य में सुनाई पड़ती है। मीरा के काव्य में एक ओर स्त्री की पराधीनता और यातना की दु:खद अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर व्यवस्था के बंधनों का पूर्ण निषेध

और उनसे स्वतंत्र होने का संघर्ष है। उसकी स्वतंत्रता की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है उतनी ही सामाजिक भी। आज स्त्री विमर्श के बुलन्द नारों के बीच मीरा का व्यक्तित्व और उसका काव्य अधिक प्रासंगिक हो गया है।[16]

मीरा का समय वह युग था जब राजस्थान में सामन्ती समाज का वर्चस्व था और नारी की अपनी कोई स्वतंत्रता नहीं थी। रीति-रिवाजों, परम्पराओं एवं कठोर अनुशासन का पालन करना राज परिवार व अन्य स्त्रियों की नियति थी। पर्दा प्रथा, सती प्रथा इस काल का युग धर्म था। अत: जब वह मेवाड़ राजपरिवार की युवरानी बनकर आई तो सामन्ती जीवन मूल्यों और उसके जीवन मूल्यों में संघर्ष होना स्वाभाविक था।[17]

मीरा का विवाह मेवाड़ के महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ था।[18] शादी के कुछ वर्षों बाद ही 1515 ई. में भोजराज की मृत्यु हो गई।[19] राजपरिवार की परम्पराओं के अनुसार मीरा को सती होने की सलाह दी गई किन्तु मीरा ने यह कहकर सती होने से इन्कार कर दिया कि 'गिरधर गास्यां सती न होस्यां, मन मोइयो घण नामी।'[20] आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व सामंती व्यवस्था की परम्पराओं के विरुद्ध यह शब्दघोष कर मीरा ने अपने आत्मबल का परिचय दिया। अपमान, तिरस्कार और घोर यंत्रणाओं से भी वह विचलित नहीं हुई। मीरा ने तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं, रूढ़ियों और परम्पराओं का अपने ढंग से विरोध किया एवं उन पर प्रश्न चिह्न लगाया। लोक लाज, कुल मर्यादा के नाम पर नारी स्वातंत्रय पर समाज द्वारा जा शक्तिशाली बेडियां डाली गयी थी मीरा ने उन्हें काटकर फेंक दिया और घोषणा की—

सांवरे रंग राची, तज सिंगार,
बांध पग घुंघरू, लोक लाज तज नाची।।[21]

मीरा के अद्‌भुत व्यक्तित्व और तत्व ने हमें जो अमूल्य उपहार प्रदान किये हैं उनका आध्यत्मिक मूल्य के अलावा सांस्कृतिक मूल्य भी है जिसने भारत जैसे विशाल राष्ट्र को अपने काव्यों, भजनों और पदावलियों द्वारा भावात्मक एकता के सूत्र में बांध दिया है।

कृष्ण के प्रति मीरा की कर्मकांड रहित अगाध भक्ति और उनके आम भाषा में प्रचलित भजनों ने आम जनता को काफी प्रभावित किया।

भक्तमाल में अनेक ऐसे शासकों के नाम का उल्लेख है जिन्होंने मीरा के बाद भी मीरा की भक्ति को अपना आदर्श बनाया। इनमें ईडर के अक्षयराज, बीकानेर के पृथ्वीराज और जयपुर के जयसिंह मुख्य है।[22] मीरा राजपरिवार की अनेक महिलाओं की प्रेरणा स्रोत एवं आदर्श बनी। जिनमें मारवाड़ के पृथ्वीराज की रानी राणावती एवं मारवाड़ की रानी खाचणी के नाम महत्वपूर्ण है।[23]

मेवाड़ में राजकीय परिवार की रानियों द्वारा मीराबाई के नाम पर एक छोटे पंथ की स्थापना हुई। इसकी स्थापना ब्राह्मण व अन्य जाति की विधवाओं के सहायतार्थ किया गया था। इस सम्प्रदाय की महिलाऐं मीरा जैसी ही वस्त्र पहनती थीं और कृष्ण के प्रति समर्पित थीं। इन मीरा बाईयों के जीवन यापन के लिए 'मेवाड़ धर्मार्थ कोष' द्वारा सहायता दी जाती थी तथा जनता द्वारा दिया गया दान पुण्य भी उनके जीवन निर्वाह में सहायक था। 17वीं शताब्दी के मेवाड़ के राजकीय अभिलेखों में इनका विवरण प्राप्त होता है।[24]

सहजो बाई

संत काव्य परम्परा में सहजो बाई का नाम भी प्रसिद्ध है। सहजो बाई ने महात्मा चरणदास को अपना गुरू माना[25] व उनके 108 शिष्यों में वरिष्ठता प्राप्त की। सहजो बाई द्वारा 1744 में लिखित ग्रंथ 'सहज प्रकाश' का प्रकाशन 1920 में हुआ।[26] उनके पदों में गुरु के प्रति भक्ति, निष्ठा, प्रेम, वैराग्य और ज्ञान का भाव दिखाई देता है। उन्होंने गुरू को ईश्वर से भी अधिक उच्च और पूज्य माना है।[27] उनका मानना था ईश्वर अप्रकट है जिसे केवल ज्ञान के द्वारा जाना जा सकता है और इस ज्ञान को देने वाला गुरु है। अत: ईश्वर उपासना से अधिक महत्व उस गुरु का है।[28] जाति पांति के विरोध में सहजोबाई ने यह मत प्रकट किया-

जो आवे सतसंग में जाति वरण कुल खोय,
सहजो मैल कुचैल जल, मिले सु गंगा होय। [29]

उन्होंने सबको एक साथ मिलकर रहने की प्रेरणा दी और समन्वयवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया।

आन धर्म कूं नाहि जानूं, जपू हरि-हरि एक [30]

दया बाई

दया बाई भी संत चरणदास की शिष्या थी। उनके द्वारा रचित दयाबोध (138 दोहा चौपाई) एवं विनय मालिका (105 दोहा) उपलब्ध है। दया बाई की रचनाओं मे दया, दयादासी एवं दयाघुंघरी इन तीनों नामों से उनके पद मिलते हैं।[31] दयाबोध में प्रेम, जप, बैराग्य व गुरू भक्ति का सम्मिश्रण दिखाई देता है।[32]

राना बाई

कृष्ण भक्त उपासिका मीरा बाई की समकालीन प्रसिद्ध महिला संत राना बाई का जन्म मारवाड़ के एक जाट परिवार में हुआ था। उन्होंने पालड़ी के संत चतुरदास जिनका उपनाम खोजी जी था का शिष्यत्व ग्रहण किया।[33] राना बाई ने कृष्ण को अपना ईष्टदेव मानते हुए मारवाड़ी भाषा में अनेक पदों की रचना की।[34]

गवरी बाई

गवरी बाई को 'बागड़ की मीरा' के नाम से जाना जाता है वे बाल विधवा थी और वैराग्य तथा आत्मज्ञान से ओत प्रोत थी।[35] उनके काव्य में ज्ञान एवं वेदान्त का सम्मिश्रण है। उनके पदों में गुजराती, ब्रज व वागडी बोली का स्पष्ट प्रभाव है। उनके द्वारा रचित 652 पदों का प्रकाशन गवरी कीर्तन माला के नाम से हुआ है।[36] गवरी बाई ने राम और शिव की स्तुति में भी पदों की रचना की, पर उनके अधिकांश पद कृष्ण को समर्पित हैं। गवरी बाई ने अपने पदों के साथ-साथ राग रागिनियों, बसंत, सारंग, भैरव, मलहार, धमाल आदि का उल्लेख किया है।[37]

सरूपा बाई

सरूपा बाई का भीलवाड़ा शाहपुरा के एक माहेश्वरी परिवार में जन्म हुआ था।[38] ये स्वामी रामचरण की शिष्या थी। उनके फुटकर पद प्राप्त होते हैं।

सुन्दर कुंवरी

सुन्दर कुंवरी रूपनगर (किशनगढ़) के महाराज राज सिंह की पुत्री और नागरीदास की बहन थी। वह वृन्दावन के राधा वल्लभ सम्प्रदाय की अनुयायी थी जिसमें राधा को ज्यादा महत्व दिया जाता है। इनके गुरू वृन्दावन देव थे।[39] सुन्दर कुंवरी बाई ने कृष्ण भक्ति की अनेक रचनाएँ रची। इनके द्वारा ग्यारह ग्रंथों की रचना की गई[40] जो इस प्रकार है-नेहनिधि, रामरहस्य, संकेतयुगल, गोपी महात्म्य, रसपूंज, सार संग्रह, वृंदावन गोपी महात्म्य, भावना प्रकाश, रंगझर, प्रेमसंपुट और राम रहस्य। राम रहस्य रचना का केन्द्र राम कथा है, जबकि अन्य रचनाएँ कृष्ण लीला से सम्बंधित है। इनकी भाषा व भाव में सामजस्य है तथा यह बहुत शिष्ट एवं सुव्यवस्थित है।[41]

करमा बाई

इनका जन्म राजस्थान नागौर जिले के कालवा ग्राम के एक जाट परिवार में हुआ। ये बाल विधवा थी।[42] उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन ईश्वर भक्ति में समर्पित किया।[43] ऐसी मान्यता है कि उन्होंने खिचड़ी बनाकर ईश्वर को भोग लगाया जिसे ईश्वर ने सहजता के साथ स्वीकार किया। आज भी पुरी के जगन्नाथ मंदिर में राजभोग के पूर्व जगन्नाथ भगवान को करमा बाई के नाम से खिचड़ी का भोग लगाया जाता है। भक्तमाल में करमा बाई के संबंध में पद है जिसमें इस घटना का उल्लेख प्राप्त होता है।[44]

छत्तर कुंवरी बाई

किशनगढ़ के राजा नागरीदास की पौत्री थी। इनके हृदय में बाल्यवस्था से ही कृष्ण प्रेम का अंकुर फूट चुका था। यही प्रेम भावनाएं कालान्तर में काव्य रचना की प्रेरणा बनी। उनके पदों में राधा कृष्ण के जीवन के अनेक विनोदपूर्ण हास परिहासों का

चित्रण है। इनका विवाह खांडादे के गोपाल सिंह के साथ हुआ था। इनका ससुराल पक्ष सलेमाबाद के निम्बार्क सम्प्रदाय का अनुयायी था। छत्तर कुंवरी बाई ने 'प्रेम विनोद' नामक ग्रंथ की रचना की।[45]

जोधपुर की प्रताप कुंवरी बाई

कवयित्री रानियों में प्रताप कुंवरी बाई की सबसे अधिक कृतियां मिलती हैं। इन्होंने काव्य रचना के माध्यम से रामभक्ति का प्रसार किया। इनकी रचनाओं में 'रामचन्द्र महिमा', 'रामगुणसागर', 'रघुवर स्नेह लीला', 'राम सुजान पचीसी', 'राम प्रेम', 'सुखसागर पत्रिका', रघुनाथ जी के कवित भजन पर 'हरिजस', 'प्रताप विनय', 'श्रीराम चन्द्र विनय' और 'हरिजस गायन' के नाम प्रमुख हैं। इन्होंने 15 ग्रन्थों की रचना की थी। ये रामानुज सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत पूरणदास जी की अनुयायी थीं।[46]

समान बाई

इनका जन्म 1825 ई. में राजस्थान के ख्याति प्राप्त कवि रामनाथ कविया के यहाँ (सियासा गांव तिजारा) अलवर में हुआ। इन्हें 'मत्स्य की मीरा' भी कहा जाता है। समान बाई के काव्य का संपादन बसुदेवसिंह द्वारा मुक्तक काव्य और गीतिकाव्य के रूप में किया गया है।[47] इनके काव्य में कृष्ण की महिमा का व्यापक चित्रण मिलता है।[48]

सोढ़ी नाथी

सोढ़ी नाथी के काव्य साहित्य को प्रकाष में लाने का श्रेय एल.पी. टेसीटरी को है। आपने 8 ग्रंथों की रचना की जिनमें बाल चरित एवं हरीलीला प्रमुख है।[49] अपने पदों के माध्यम से सामाजिक बुराइयों के खिलाफ आवाज बुलंद की। जातिप्रथा का विरोध किया और ईश्वर की समर्पित भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का द्वार बताया।[50]

ब्रजदासी रानी बांकावती

बांकावती का जन्म 1713 ई. में जयपुर के कछवाहा वंश में हुआ और 1728 ई. में किशनगढ़ के राजसिंह के साथ इनका विवाह हुआ। इन्होंने 'श्रीमदभागवत' का ब्रज भाषा में 'ब्रजभाषी भागवत' के नाम से पाँच खण्डों में अनुवाद किया। इन्होंने 'ब्रजदासी' नाम से भक्तिपरक काव्य की रचना की। यह ग्रंथ जोधपुर में रामस्नेही साधु आरत राम जी के पुस्तकालय में सुरक्षित है।[51] इनकी ईश्वरभक्ति, समर्पण, ज्ञान और वैराग्य ने उन्हें राजस्थान की अग्रणी महिला संतों में स्थान दिया है।[52]

रसिक बिहारी

किशनगढ़ के महाराज सावन्त सिंह (नागरीदास) की उपपत्नी थी। दोनों पति-पत्नि कृष्ण के अनन्य भक्त थे। रसिक बिहारी का असली नाम बनी-ठनी था। किन्तु इन्होंने

अपनी काव्य रचना रसिक बिहारी के नाम से की। इनकी स्वतंत्र गंन्थ रचना नहीं मिलती है किन्तु 100 से अधिक फुटकर पद मिलते हैं। उत्सव माला ग्रंथ में बनी-ठनी के तीन पद तथा चार दोहे मिलते हैं। वे राघा-कृष्ण के युगल रूप की उपसिका थीं।[53]

ताज

मुस्लिम परिवार में जन्म लेकर भी ताज के संस्कार वैष्णव जैसे थे। यह कृष्ण की परम भक्त थी। ताज ने गणेश स्तुती, सरस्वती आराधना, भवानी वन्दना, मुरलीधर कविता, दशावतार वर्णन आदि साहित्यिक रचनाएं रची। सामन्ती वातावरण में पली ताज ने ईश्वर के सगुण रूप को स्वीकार किया।

इन महिला संतों के अलावा भी अन्य अनेक महिला संतों की लम्बी सूची है जिनमें रानी रूपा देवी[54], जानखुशाली[55], फूलीबाई[56], रानी अनूप कुंवरी[57], गंगा बाई, ज्ञानमती बाई, भोली गुर्जरी व रानी रत्नावती महत्वपूर्ण हैं।

प्राय: सभी महिला संतों के भक्ति मार्ग में समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था एक चुनौती थी। प्रारम्भ में इन महिला संतों को पारिवारिक और सामाजिक प्रतिरोध और प्रताड़ना का सामना करना पड़ा, किन्तु बाद में ईश्वर के प्रति इनकी अगाध भक्ति को समाज में स्वीकृति और सम्मान मिला तथा आध्यात्मिक स्तर पर उनके सतीत्व रूप की समाज ने आराधना की।

राजस्थान के भक्ति आंदोलन से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियां दिखाई देती है जैसाकि पहले भी कहा जा चुका है कि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के लगभग सभी पुरुष संतों ने विशेषकर निगुर्ण संतों ने (नानक को छोड़कर) स्त्रियों को मोक्ष प्रति में बाधक माना, उसकी निंदा की तथा उसके मनोहारी रूप को सर्वथा त्याज्य बताया। लेकिन दूसरी ओर उन्होंने नारी के गृहस्थ, पतिव्रता रूप तथा मातृशक्ति का सम्मान भी किया। भक्ति मार्ग द्वारा ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष का अधिकार स्त्रियों को भी है इस बात को अपने प्रवचनों में कहा। स्त्रियों को भोग्या की स्थिति से ऊपर उठाने के लिए वेश्यावृति, परस्त्री गमन की निंदा की। समाज में व्याप्त बहुविवाह, बालविवाह और विधवाओं की हीन दशा पर अपनी लेखनी चलाई। भक्ति आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने उस जड़ता को समाप्त किया, जिसके अन्तर्गत महिलाओं को वेद पठन-पाठन के अधिकार से वंचित किया गया था।

भक्ति मार्ग के विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा स्त्री पुरुष की समानता को स्थान दिया गया। परिणामत: विष्णु के साथ लक्ष्मी, कृष्ण के साथ राधा और राम के साथ सीता की भक्ति और पूजन का महत्व बढ़ा।[58] स्वामी रामानंद ने भक्ति की जिस विशिष्टताद्वैत (जगत राममय है) का प्रवर्तन किया उसके बारे में कहा जाता है कि इस धारा की मूल

प्रेरणा स्त्रोत सीता है।[59] स्त्री पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं इस प्रकार के विचार को समाज में बल मिला।

कुछ सम्प्रदायों के संतों ने महिलाओं के उत्थान के लिए भी अपनी शिक्षा में स्थान दिया। जसनाथी सम्प्रदाय ने कन्या के विवाह में रुपये नहीं लेने अर्थात् कन्या विक्रय नहीं करने की बात कही। लालदासी सम्प्रदाय ने परस्त्री गमन को अनैतिक बताते हुए उसका विरोध किया और शुद्ध दाम्पत्य जीवन पर बल दिया। चरणदासी सम्प्रदाय के संस्थापक चरणदास जी ने अपनी शिष्या के रूप में रामसखी, सहजोबाई, दयाबाई और रामरूप आदि अनेक महिला शिष्याओं को अपने जीवनकाल में ही दीक्षा दी और महिलाओं को पर्याप्त सम्मान दिया तथा स्त्री पुरुष समानता को व्यवहारिक रूप प्रदान किया।[60]

राजस्थान की महिला संतों की भक्ति की विशेषता कृष्ण उपासना तथा उनके सम्बन्ध में रची गई काव्यों की प्रधानता है। तत्कालीन उत्तरी भारत में कृष्ण भक्ति और काव्य परम्परा की एक लहर चल रही थी। इस लहर का श्रेय वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्र विठ्ठलनाथ को प्राप्त है। उन्होंने पुष्टिमार्ग को आधार बनाकर कृष्ण भक्ति की स्थापना की।[61] कृष्ण भक्ति की इस लहर ने मुस्लिम धर्मावलंबियों तक को भी प्रभावित किया। राजस्थान से अलग अन्य प्रदेश में अमीर खुसरो, रसखान, रहीम ने कृष्ण की स्तुति कर दोनों धर्मो के मध्य सेतु बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कृष्ण भक्त कवयित्री ताज का उल्लेख करना भी यहाँ प्रांसगिक होगा।

भक्ति आंदोलन ने जाति, वर्ग और लिंग के समानता की बात की थी, और व्यावहारिक रूप से भी हमें इसकी प्रकृति में यह स्पष्टता दिखाई देता है। भक्ति आंदोलन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, गुर्जर व चारण जाति की महिलाओं का प्रतिनिधित्व था। ये समाज के सभी वर्गों से संबंधित थीं। इनमें कुछ राजपरिवार की थी, तो कोई जाट कृषक या गुर्जर परिवार से। इन सभी वर्ग की महिला संतों के लिए स्वयं की अभिव्यक्ति और अपने तरीके से जीवन जीने का चुनाव करना आसान नहीं था। किंतु इसके बावजूद भी उन्होंने अपने जीवन के लिए भक्ति और आध्यात्म के मार्ग का चुनाव किया। कुछ के लिए भक्ति स्वांत: सुखाय का कारण था तो कुछ के लिये जीवन की निराशा और कुंठा से विरत होने का मार्ग। भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्ति उनके जीवन का उद्देश्य था। अपने रचे गये पदों एवं काव्यों द्वारा उन्होंने अपनी भक्ति भावना को प्रकट किया तथा साहित्य समृद्धि में अपना योगदान दिया।

यह महत्वपूर्ण है कि पुरुष संतों की तुलना में स्त्री संतों का प्रभाव समाज पर ज्यादा पड़ा। महिलाओं का संत रूप समाज के लिए नवीन था। अत: लोग उनकी शिक्षाओं से ज्यादा प्रभावित हुए। महिला संतों की सौम्यता, उदारता, सहजता ने लोगों का

ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। मीरा की सामाजिक प्रतिष्ठा, एक युवरानी द्वारा अपनाया गया सन्यासी वेश, त्यागमयी व भक्तिपूर्ण भावना लोगों के मध्य उसकी लोकप्रियता को बढ़ाने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। मीरा के भजन पत्रावलियां राजपरिवार से लेकर निम्न वर्ग तक के स्त्री-पुरुषों के लिए लोक विरासत का रूप ले लिया। इसे इस उदाहरण से भी समझाया जा सकता है कि मीरा की परवर्ती महिला संत राना बाई, फूली बाई, करमा बाई सभी नागौर से तथा विभिन्न जातियों से सम्बन्धित थी। धीरे-धीरे मीरा के इस भक्तिवृत्त में न सिर्फ राजस्थान बल्कि सम्पूर्ण भारत समाहित हो गया। मीरा की इस लोकप्रियता से प्रभावित हो अनेक सम्प्रदायों ने भी मीरा को अपने सम्प्रदाय में जोड़ने की कोशिश की। इस तरह के साक्ष्य उपलब्ध है कि एक सम्प्रदाय विशेष ने तो मीरा द्वारा पत्र लिखकर उनके सम्प्रदाय में दीक्षित होने का झूठा प्रचार तक कर दिया था। दौ सो बावन वैष्णवन की वार्ता के वल्लभ सम्प्रदाय के बारे में यह उल्लेख मिलता है।[62]

किंतु महिला संतों की शिक्षाओं का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ने के बावजूद उनका प्रभाव स्थायी नहीं रहा। इसका पहला महत्वपूर्ण कारण उनके द्वारा किसी सम्प्रदाय विशेष की स्थापना का अभाव था। इस कारण उनकी शिक्षा का विस्तार व्यापक स्तर पर नहीं हो सका। दूसरा महिला संतों का उद्देश्य अध्यात्म तथा व्यक्तिगत मोक्ष प्राप्ति तक सीमित था। उनमें स्वयं को प्रचारित प्रसारित करने एवं लोकप्रिय होने की महत्वाकांक्षा का अभाव था।

वर्तमान समय में इन महिला संतों की प्रासंगिकता बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। आज हमारे देश में दलगत राजनीति के कारण जातिवाद, धार्मिक विभेद, कट्टरता और साम्प्रदायिकता पुनः अपना पैर पसार रहे हैं। इन महिला संतों ने जो न तो बहुत शिक्षित थी और न किसी विश्व विद्यालय की उपाधि धारक विदूषी थी। इसके बावजूद उन्होंने अपने विवेक और ज्ञान के द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त बाह्य आडम्बर, रुढ़िवादिता, वैमनस्य के विरुद्ध समन्वय और सामंजस्य की बात की। जाति, धर्म के आधार पर किसी प्रकार के विभेद का विरोध किया। इन महिला संतों ने अपनी बातों के प्रचार के लिये कोई आन्दोलन नहीं चलाया लेकिन अपने प्रवचनों द्वारा समाज में इन आदर्शों को स्थापित करने की बात कही।

यह आश्चर्य है कि इतने महत्वपूर्ण विषय महिला संतों एवं उनके काव्य के बारे में शोधार्थियों का ज्यादा ध्यान नहीं गया है। इन महिला संतों के संबंध में राजस्थान के अभिलेखागारों, प्राच्य शोध प्रतिष्ठानों एवं विविध शोध केन्द्रों में विपुल शोध सामग्रियां, पदावलियों, दोहों, परचियों और वाणी के रूप में उपलब्ध हैं। उनके भजन एवं गायन जनसामान्य के मध्य आज भी प्रचलित हैं। अतः आवश्यकता है कि इन महिला संतों के साहित्य पर शोधकार्य हो, ताकि इतिहास में उन्हें उचित स्थान प्राप्त हो सके। लैंगिक

समानता के बावजूद हर देश में स्त्री संघर्ष का अपना इतिहास है जो अपने लिए एक अलग सैद्धांतिकी की मांग करता है, जिसके आधार पर वहां के स्त्री विमर्श को समझा जा सकता है।

संदर्भ

1. *ताराचंद - इनलुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, द इंडियन प्रेस लि. इलाहाबाद 1922, पृ. 111-112*
2. *जार्ज ग्रियर्सन, जनरल ऑफ रायल एशियटिक सोसायटी, 1920*
3. *रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, ईलाहबाद 1956, पृ. 270*
4. *डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशलन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1973, पृ. 126*
5. *(अ) स्वामी शिवानंद, भागवत गीता-डिवाईन लाईफ ऑफ सोसायटी, टिहरी, गढ़वाल, पृ. 156-157*
   (ब) डॉ. नगेन्द्र, उपरोक्त
6. *रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, ईलाहबाद 1956, पृ. 270*
7. *डॉ. नागेन्द्र, हिन्दी साहित्य का विकास, पृ. 123*
8. *राजस्थान का संत साहित्य, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर 2014 में प्रकाशित डॉ. उषा कंवर राठौड़ का लेख 'राजस्थानी संत कवयित्रियों के काव्य में सामाजिक चेतना', पृ. 65*
9. *स्त्रियों में शिक्षा का पर्याप्त प्रसार होने के कारण ही वैदिक युग में अनेक स्त्रियां कवि तथा मन्त्रदृष्टा ऋषि हुई। 'सर्वानुक्रमणिका' में ही बीस ऐसी ऋषियों के नाम उपलब्ध है जिन्होंने ऋग्वेद के मन्त्रों या सूक्तों की रचना की जैसे -लोपामुद्रा (1/179), विश्ववारा (5/28), सिक्ता निवावरी (8/91), घोषा (10/39, 10/40), अल्तेकर ए.एस., पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ. 10*
10. *तुलसी दास, रामचरित मानस, सुन्दरकाण्ड, 58 वर्ण, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2040, पृ. 444*
11. *डॉ. युगेश्वर, समग्र कबीर, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स, प्रा. लि., पृ. 286*
12. *रेखा कस्तवार - स्त्री चिंतन की चुनौतियां, राजकमल प्रकाशन, 2006, पृ. 64*
13. *मनुस्मृति, अध्ययन स्त्री धर्म निरूपण, सं. गणेश दत्त पाठक, वाराणसी, पृ. 191*
14. *"Women are created for no other purpose than to serve men and be their*

helpers. If women grew weary or even die while bearing children, that doesn't harm anything. Let them bear children to death, they are created for that".
Martin Luther, Sammtliche Werke (Erlangen and Frankfurt 1826-57), vol, xx p. 84.
Quoted from Merry E Wiesner, Women and Gender in Early Modern Europe, p.9

15. उपरोक्त
16. मीरायन, वर्ष 3, अंक 1, मार्च-मई 2009, मीरा स्मृति संस्थान में प्रकाशित एस. एन. समदानी का शोध आलेख, भक्त मीराबाई एक पुनर्मूल्यांकन, पृ. 140
17. उपरोक्त
18. प्रियदास, भक्तिमाला टीका पद 1165, फाईल ।4, अनुवादित, वि.स. 1789
19. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 359
20. मीरा वृहत्तपदावली, भाग 1, पृ. 316
21. उपरोक्त
22. जी. एन. शर्मा, सोशल लाईफ इन मिडाइवल राजस्थान, बुक्स ट्रेजर, जोधपुर, 2011, पृ. 265
23. उपरोक्त
24. (अ) सदाव्रत तालका बही चितौड़ 17वीं से 20वीं शताब्दी
(ब) परमार्थ काचरी बही, उदयपुर 18वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी
25. चरण दास गुरूदेव चितावे, सहजो बाई यही विचारे' कल्याण विशेषांक, संतवाणी, अंक वर्ष 29, संख्या 1, गीता प्रेस, गोरखपुर जनवरी, 1955, पृ. 273-274
26. उपरोक्त, पृ. 6
27. राम तजूं गुरू न बिसारू, गुरु के साम दृष्टि को न निहारूं
चरणदास पर तन मन वांरू, गुरु न तजूं हरि को तज डारू,
सहज प्रकाश, पृ. 30-31
28. गुरू बिना मारग न चलै, गुरू बिना लडे न ज्ञान,
गुरू बिना सहजो धुन्ध है, गुरू बिन पूरी हान।
सहजो बाई की बानी, गुरू महिमा, दोहा संख्या 45, पृ. 10
29. (अ) सहजो बाई की बानी, साध महिमा,, दोहा संख्या 13, पृ. 9, वल्वेडियर प्रेस प्रयाग, 1937
(ब) कल्याण विशेषांक, नारी अंक वर्ष 22, अंक 1, गीता प्रेस गोरखपुर, 1948, पृ. 658
30. सहजो बाई की बानी, मिश्रित पद 54
31. कल्याण विशेषांक, नारी अंक वर्ष 22, अंक 1, गीता प्रेस गोरखपुर 1948, पृ. 271

32. हीरालाल माहेश्वरी, हिस्ट्री ऑफ राजस्थानी लिटरेचर, पृ. 132
33. पेमाराम, राजस्थान में भक्ति आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2014, पृ. 201
34. गौड़, मीना (सं.) मध्यकालीन भारत में सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलन, हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर 2009, में प्रकाशित प्रो. पेमाराम का लेख, राजस्थान की दूसरी मीरा भक्त शिरोमणी राना बाई, पृ. 7
35. गुजराती साहित्य ना मार्ग सूचक स्तंम, पृ. 177
36. सारस्वत ओझानंद, मध्यकालीन राजस्थानी दोहा साहित्य, राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल, संपादक-नारायण सिंह भाटी, परम्परा शोध पत्रिका, मार्ग 15-16, पृ. 158
37. गवरी कीर्तनमाला, गुजरात वर्नाकूलर सोसायटी संग्रह, अहमदाबाद, 1937
38. सिंहल ब्रजेन्द्र कुमार व एस.एन. समदानी, राजस्थान के संत व उनका साहित्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2013, भूमिका, पृ. 12
39. सिंहल ब्रजेन्द्र कुमार व एस.एन. समदानी, भूमिका, पृ. 12
40. उपरोक्त, नेहानिधी, वृंदावन, गोपी महात्म्य, संकेत युगल, रंगझर, रसपुंज, प्रेम संपुट, सार संग्रह, भावना प्रकाश, राम रहस्य व पदस्फुटकवित्त।
41. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल व एस.एन. समदानी, पृ. 123
42. (अ) पेमाराम- राजस्थान के जाटों का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2010, पृ. 142
(ब) रितु शर्मा, वीमेन सेंटस ऑफ राजस्थान, बुक ट्रेजर, जोधपुर 2016, पृ. 113
43. सुखसारा की करमाबाई की परची 1285/11, राजस्थान ओरियेन्टल रिसर्च इस्टीटयूट, जोधपुर
44. हुती एक बाई ताको करमा सुनाम जाति, बिना रीति भोग खिचारी लगावही, जगन्नाथ देव भांप भोजन करत नीके, जिते लगे भोग तामे कह अति भावही, (अ) भक्तमाल, पृ. 400-402; (ब) रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़, 1891 ई., पृ. 62
45. रितु शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 121
46. सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां पृ. 198-201
47. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल व एस.एन. समदानी, पृ. 126
48. कल्याण विशेषांक, संतवाणी वर्ष 29 संख्या 1 गीता प्रेस, गोरखपुर जनवरी 1955, पृ. 423
49. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल एवं समदानी, पृ. 119
50. जाति-पांति कल नाहि पीयो जन परिशरे। नामें को कूल कंण नाथी मन निरसरे। पृ. 269-271

51. डॉ. शशि अरोड़ा, पृ. 95
52. सावित्री सिन्हा, 269-271,
53. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल व समदानी, पृ. 126
54. रानी रूपादेवी मालानी के राव भाटी की शिष्या तथा निर्गुण सन्त परम्परा में प्रमुख थी। इन्होंने बालसखा धारू मेघवाल के साथ समाज के दलित मेघवाल समाज में भक्ति व जागृति फैलाई। यह मीरा की परवर्ती थी। यह तोरल जेसल देवी के रूप में पूजी जाती हैं।
55. जानखुशाली चरणदास के शिष्य आत्माराम के शिष्य अरखेराम की शिष्या थी। इन्होंने 'साधु महिमा' तथा 'बुध विलास' नामक ग्रन्थों की रचना की थी।
56. फूलीबाई जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह की समकालीन थी। स्त्री शिक्षा व उदारता के प्रसार में विशेष योगदान दिया। वे नारी संतों में निगुर्ण धारा की प्रमुख संत थी। कृष्ण की उपासिता थी। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में इनके सम्बन्ध में विशाल साहित्य उपलब्ध है।
57. रानी अनूप कुंवरी, किशनगढ़ नरेश कल्याण सिंह की बुआ थी। आजीवन वृन्दावन में रहीं। ब्रज व राजस्थानी भाषाओं में कृष्ण श्रृंगार व लीला पर अनेक पदों की रचना की।
58. प्रीति गोयल, भारतीय नारी विकास की ओर, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर 2009, पृ. 151
59. उपरोक्त,
60. अनुपम राजेश, राजस्थान के संत, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 35
61. सिंहल ब्रजेन्द्र कुमार एस.एन. समदानी, पृ. 110
62. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, वल्लभ सम्प्रदाय के बारे में यह उल्लेख मिलता है। माधव हाड़ा, मीरा का जीवन और समाज, पचरंग चोला पहन सखी री, वाणी प्रकाशन, पृ. 154

Professor R.P. Vyas Memorial Lecture

Sufis and society in medieval period

Dr. Yaqub Ali Khan

Born on August 12, 1922 at Jodhpur, Dr. R.P. Vyas belonged to a traditional Pushkarana family. He took up his early education at Sujangarh and Ratangarh and higher education at Jodhpur. After completion of his education he served the various colleges of Rajasthan, including S.M.K. College, Jodhpur, Government College, Didwana and Government College, Sardashahar, as Lecturer in History. On the establishment of the University at Jodhpur in 1962, he joined its Department of History and continued to serve it till attaining the age of superannuation in 1982. He also headed the Department, though intermittently, for not less than five years.

Dr. R.P. Vyas has produced several monographs and numerous research papers, the most important of them being his doctoral dissertation entitled, "Role of Nobility in Marwar (1800-1873 A.D.)" in which an attempt has been made to give a comprehensive picture of the nobles of Marwar as an institution. His work depicts the origin, growth and relations of the nobles vis-à-vis their sovereign in historical perspective.

Founder Member, Rajasthan History Congress established in 1967. Local Secretary of the First Session of the Rajasthan History Congress, 1967 held at Jodhpur. Organizing Secretary - Eighth Session of the Institute of Historical Studies, Calcutta 1970 at Jodhpur. Joint Secretary 1967-70 and Secretary 1970-76 of Rajasthan History Congress. Member of the Executive Committee 1969-80. Presided over the 14th Session held at Bikaner in 1984. It is a rare distinction that he is offered second time to preside over the 25th Session to the held at the Mahila P.G. Mahavidyalaya, Jodhpur 2009.

R.P. Vyas is of the view that no historical analysis is without a point of view or a commitment to some particular values, though it is obviously

against his belief in the Bhandarkarian myth. According to him, a history book on Rajasthan with what he calls "an integrated and policy-oriented approach within a broad national spectrum" is an urgent requirement.

Sufism or Tasawwuf is the name for various mystical tendencies and movements in Islam. It aims at establishing direct communion between God and man through personal experience of mystics which lies within Islam. Every religion gives rise to mystical tendencies to its fold at a particular stage of its evolution. In this sense, Sufism was a natural development with in Islam, based on the Holy book, Quran and the life and teachings of the Prophet Muhammad.[1] *Tasawwuf* is essentially in its origin is as true as the fact that as the mystic movement spread to various regions, it assimilated and imbibed elements from various cultures and religions.[2]

The Quran is often allegorical with a mystical touch. The germination of mystic spirit may be traced back to the days of the Prophet who himself used to retire to the cave of *Hira* to meditate for certain period of time every year. Some seventy persons, known as *Ahle-Suffa,* lived in by the side of the mosque of the Prophet, on a raised platform; prayed day and night in his life time. They had no earthly attachments and no worldly engagements. Apart from it, two companions of the Prophet – Abu Zar-Ghiffari and Huzaifa who were known for their piety and other worldly outlook, set the traditions of mystic attitude in Islam.

After a long sojourn in Arabia, Sufism reached to India. As the Muslims entered into India by the mercantile or military movements through the Khaibar pass or sea route; Many Sufis came with them and settled in Sindh, Multan, many parts of north-west frontiers and coastal area of Indian sub-continent. Many Hindu classes joined the circle of Islam under the influence of the Sufis.[3] The establishment of Sufi orders in India coincided with rising political power of the Muslims.[4]

After the firm development of Sufism in Indian soil, they tried to setup a framework of their activities and within a short span of time, the entire country from Multan to Lakhnauti and from Lahore to Deogir was studded with *Khanqahs, Jamat Khanas* and *Zawiyahs*. Early in the 14th century a traveler informed that in Delhi and its surroundings there are about two thousand *khanqahs* (hospices) and *jamat khanas*.[5] These

khanqahs, numerous and extensive as they were, soon wove themselves with the complex cultural pattern of India and helped removing the spirit of mistrust and isolation which honeycombed the relations between the various cultural groups of India. The popularity and success of Sufi movement in India was due to their understanding of the Psyche of Indian people. Unless the saint of a *silsilah* associated with the social problems of Indians, their movement would float in a vacuum and would fail to take firm roots. Hence they adopted many local Indian customs and traditions.[6]

The contribution of the Indian Sufis to society lies in their sincere and dedicated struggle to find a unity for the heterogeneous elements that make up its totality. They appreciated the multi-social, multi-religious and multi-lingual pattern of Indian society. For them God was not logical abstraction of Unity, but a living reality who can be approached by the service of mankind.[7] Their efforts were, therefore directed towards the creation of a healthy social order, free from dissensions, discords and conflicts. It was a herculean task but they undertook it as a divine mission. In love, faith, toleration and sympathy they found the supreme talisman of human happiness. Professor Gibb remarks-'from the thirteenth century, Sufism increasingly attracted the creative social and intellectual energies within the community to become the bearer or instrument of a social and cultural evolution.' Perhaps no other country were the effects of this social and cultural revolution so marked and so far reaching as in India.[8]

The pivotal point in the thought of the early Indo-Muslim Sufis was their concept of religion which also constituted the basis of their attitude towards society. They looked upon all the men as members of a common human family. They rejected all ideas of social and racial superiority. A mystic does not recognize slavery. They rejected completely the idea of physical pollution through contact with any human being. There are instances of many saints dining with low caste people and Shaikh Nasiruddin had no hesitation in mixing even with the lepers.[9] This humanism helped the Muslim saints in understanding India and the basic character of her composite society. For them India was neither *dar-ul-harb* nor *dar-ul-Islam*. It was God's earth with variety of men and stories of wisdom.

Sufism, as a moral and spiritual way of life, and as a current of thought with universal appeal, found in India an exceptionally congenial

ground for its growth and spread. Indian mind, from the earliest phases of its history, had a strong tendency towards mysticism, and almost all the mystical tenets that developed in other religions and philosophical schools, find their clearest expressions in Vedic and *Upanisadi*c literature of ancient India. On account of their catholic and humanistic attitude, as against the so called orthodox outlook of the *Ulam*a, the Sufi saints had an important part to play in creating an atmosphere of mutual trust and understanding between the two communities. Mystical ideas of Islam and the Sufi way of life were so appealing to the Indian mind that even the Brahmins did not remain unaffected by their influence. Professor Suniti Kumar writes , 'from one of the sixteenth century biographies of Chaitanya that in the 15-16th centuries, Brahmans were taking heterodox ways ,like wearing a beard instead of being clean shaven, walking with a big stick, reading and reciting the Mathnawi.[10]

All the great Sufis particularly from the Chishti order, discussed the concept of social hierarchy and adopted the idea of social service to not only human beings, they extended it up to animal beings also.[11] Shaikh Nizamuddin Auliya often cited in his assemblies a remark of Shaikh Abu Said Abul Khair that though there were myriads of routes and roads leading to God, none was quicker and more effective than bringing happiness to the hearts of human beings. We find some information about the Khwaja Muinuddin Chishti's religious and social ideology in the discourses recorded in Siyar-ul-Auliya. Explaining his views about the Universe the great Shaikh said – 'when we transcended the externals and looked around, we find the lover, the beloved and love (itself) to be one, i.e. in the sphere of Oneness all is one'.[12] Once Khwaja Muinuddin Chishti was asked about the highest form of devotion, he simply replied that is was nothing but it is to redress the misery of those who are in distress, to fulfill the needs of the poor or helpless and to feed those who are hungry.[13] The great saint considered service of humanity as the highest form of devotion. If a man became ego-centric, limited his sympathies and cut himself off completely from the social life, he failed to fulfill the mystic mission. Shaikh Nizamuddin Auliya advised to his audience that one should live in the society and bear the blows and buffets of the people.[14] He also further said devotion to God is of two kinds: *lazmi* (Intransiitive) and *muta'addi* (transitive).In the *lazmi* devotion the benefits which accrues is confined to the devotee alone.

The *muta'addi* devotion on the contrary, brings advantage and comfort to the others. The reward of *muta'addi* devotion is endless and limitless A mystic's work was to strive day and night to bring happiness to the hearts of men and alleviating their miseries.[15]

Khwaja Muinuddin Chishti describing the qualities which makes a man dear to God said,- 'first a man should possess the quality of river like generosity, secondly; sun like affection and thirdly earth like hospitality.'[16] Muslim mystics of India demonstrated the working what they preached to the society. They tried to impress both by precepts and examples, upon the mind of their followers the fact that a true mystic should always strive to create love and affection in the hearts of human being.

As we know that Sultan Iltutmish was too much impressed by the personality of Shaikh Qutubuddin Bakhtiyar Kaki. Once Shaikh advised him- ' O! Ruler of Delhi, it is incumbent on thee to be good to all poor's, mendicants, dervishes and helpless folk. Treat all kindly and strive for their welfare. Everyone who thus behaves towards his subjects is looked after by the Almighty God and all his enemies turn into friends.[17]

Shaikh Hamiduddin Nagauri living in Nagaur respected the feelings of the people and adopted many local traditions, one of them was most important due to the influence of surroundings residents, particularly the Jain community, he became strict vegetarian. It was his deep faith in *Ahimsa* cult which made him strict vegetarian. He exhorted his disciples again and again to develop vegetarian tastes. He extended the application of his principles and practices of non-violence to all being creatures and warned his disciples not to slaughter the animals for the physical pleasure. He also warned his disciples not to distribute meat preparations for blessings his soul after his death.[18] His vegetarian taste, whether due to spiritual or social consideration – was bound to increase the area of contact with Hindus. He preferred to be vegetarian in the larger interest of achieving Hindu –Muslim unity. Shaikh Nuruddin Rishi of Kashmir preached non-violence to accommodate all the sections of the Indian society as an essential component to achieve the principle to live and let us live throughout his life.

With the establishment of Turkish Empire there came urban revolution which brought many moral laxities and social vices. Medieval

mystics raised the voices against all the moral laxities and social vices such as slavery, hoarding, black marketing, profiteering, wine and sex. Ziauddin Barni, great historian of the Sultanate period, very significantly remarks that as the result of teachings of these mystics, these social vices and crimes were reduced.[19]

Shaikh Hamiduddin Nagauri vehemently criticized the practice of *Ihtikar* (hoarding food grain to sell on higher prices) which is a reflection on the current trading practices and also point to a situation of growing money economy. In this regard, the Shaikh warns that *Ihtikar* brings happiness to the hoarder of grain (*muhtker*) and misery for the common people which does not like by the God. He further argues that good rainfall resulting increased production of grain which brings happiness for common men. He thus, warns to people not to cultivate the habit of *Ihtikar*, otherwise they might be suffered by droughts.[20]

The Shaikh boldly criticized the rulers who used to neglect administration and remained busy in merry-making and pleasure. He praises a Hindu ruler who is described as a promoter of justice, a ruler who treated his subjects fairly and always respected to ladies. That is why there was peace and prosperity during his reign.[21]

The Sufis did not criticize Hindus on the matter of their way of worship. Contrary to this they appreciated them saying thus, 'O, you ,who sneer at the idolatry of the Hindu, learn also from him how worship is done ?'[22]

The eagerness of the Muslim mystics to establish closer relations with the Hindus and understand their religious life and thought facilitated the evolution, a common medium for the exchange of ideas. Since the earliest known sentences of the *Hindavi* language are found in the mystic records, the fact that the birthplace of the Urdu language were as the *khanqahs* of the medieval Sufis can hardly be doubted.[23] In the matter of language the mystic attitude has been neatly epitomized in the verse composed by the famous Poet Sanai in which he says, 'What matters it whether the words thou utters in prayer are Hebrew or Syrian or whether the place in which thou seekest God is Jabalaqa or Jabalsa.[24] From the thirteenth century onwards the mystic poetry composed in this language came to be recited in the Sufi *khanqahs.* The Sufis believed that *Hindavi* verses were more effective than Persian in arousing ecstasy. The term *Hindavi* was used by Persian-speaking Muslims to denote the various

regional dialects of India, and they adopted it for interaction with local people. For instance, when someone asked Khwaja Muhammad Gesu Daraz about the reason for popularity of the *Hindavi* in the Sufi Sama, the Shaikh emphasized that it was a soft and heart-touching language and he was very much attracted to it.[25]

There are so many examples of it that the most of the Sufi carried their discourses in local dialects and composed poetry in regional language. Some early Hindi works such as *Chandayan* by Mulla Daud, the *Mrgawati* of Shaikh Qutban, the *Padmawat* of Malik Muhammad Jaisi and the *Madhumalti* of Manjhan, combined mysticism with Hindu mythology and philosophy. The importance of this Premakhyan literature lies in their detailed description of the manifold aspects of Indian life – the socio-economic life of the masses, customs and ceremonials, feast and festivals, the various kinds of dishes, ornaments, garments and utensils.[26] The use of Nath-Yogi elements in these Sufi poetic works brings out the fact well that they played a central role in North Indian popular religion and had a hold on religious movements in Northern India especially in the lower strata of the society.

The Sufi folk literature of the later times was mix of the simplest precepts of Islam and Sufi terminology and the existing popular imagery and idiom and thus contributed to the growth of eclectic religious life, particularly in the rural areas. They disliked linguistic chauvinism and regarded all languages as different vehicles for the communication of feelings. They were instrumental in the rise of a common *lingua franca*.[27]

We find some manuscripts having the contents of some Sufi folk literature which have tremendous impact on the masses irrespective of caste and religion. The few studies that have been made of Dakani folk literature trace it to the efforts by Sufis to expand their teachings among the unlettered folk of the Deccan plateau.[28] This Sufi folk literature can be found today in both written and oral traditions. Some of them are known as *chakki-nama ,charkha-nama* and *sugun- nama*. Two other *chakki-namas* are attributed to the most famous sufi of the Gulbarga, Syed Muhammad Banda Nawaz Gesu Daraz. [29] These songs were popular among the masses. He was well versed in Hindu philosophical matters and had studied Sanskrit.

In the Chishti *khanqahs Hindawi* came to be used from the time

of Shaikh Farid and Shaikh Hamiduddin Nagauri. It is significant that a large number of Shaikh Farid's *Hindawi* verses are found in *Guru Granth Sahib* of Sikh and the *Panchwani* compilations of the Dadupanthis, of course with some variations. His Punjabi poetry which is full of teachings and mysticism is given place in *Guru Granth Sahib* as it was very liked by Guru Nanak. *Guru Granth Sahib* has a chapter entitled, '*Shalok Shaikh Farid ke*' which contains 112 *Shalokas* of Shaikh Farid.[30]

The *khanqah* of Baba Farid which became the centre of mystic activities and its door was open till midnight to all the needy people without any distinction of caste or creed. Even yogis used to visit his *khanqah* and discussed various religious matters. His message of the fatherhood of God and the brotherhood of Man delivered to the people in their own language went right home into their hearts and attracted them to his presence and views.[31] Baba Farid used to say 'do not use a harsh word for anyone, for the True Lord abides in all and break not the heart of anyone as they are priceless gems .On an occasion he told a visitor, 'Do not give me a knife, give me a needle. The knife is an instrument for cutting and the needle for sewing together.'[32] He was the first Indian Sufi who had established cordial relations with the Hindu religious and thinkers and yogis. Shaikh Hamiduddin Nagauri and his family members carried on the conversations in *Hindawi* and it was freely used for expression of spiritual matters. [33] Shaikh Sharfuddin of Panipat (Shah Abu Ali Qalander), Shaikh Sharfuddin Yahya Maneri,Shaikh Rizqullah Mushtaqi were much attracted to *Hindavi* verses and *dohas* to popularize their teachings among the common people.

Shaikh Abdul Quddus Gangohi (1456-1537) wrote *Rushdnama*, containing verses of Sant, Sufis and Yogis. Its distinct character lies in profound use of Hindi verses composed by him and his teachers and those of Bhakti saints like Kabir, Nathpathis, Yogis and Siddhas. Later on this Persian text was translated in Hindi bearing the title '*Alakhbani*'. [34] Sufis had Sanskrit treatises on spiritual exercises and philosophy translated into Persian. The first work in the Persian translation of the Sanskrit classic is *Amrit-kund* that is entitled as Hauz-ul-Hayat.

Shaikh Muhammad Ghaus of Gwalior had close contacts with the Hindu saints and Yogis, knew Sanskrit, and had studied Hindu philosophy.

His Persian translation of a philosophical work called *Amrit-Kund* is still available to the students of the yoga philosophy.[35]

Indian provincial languages are very much indebted to the Indo-Muslim mystics whose hands they served as powerful vehicles for the propagation of the Sufi doctrines in the medieval period. About the end of fifteenth century *Masnavi Prem Kavyas* were first composed in the Awadhi dialect of Hindi. The *Madhumalti* of Manjhan was a poem very well known to contemporary Hindus and Muslims alike and furnished the model for similar attempts in Dakhini (Urdu)but the celebrated *Padmava*t had been ,far and away ,the most popular of these love –poems. *Chandayan* , the earliest extent work in Awadhi in the Sufi tradition, was written by Mulla Daud, the disciple of Shaikh Zainuddin during the reign of Sultan Firoz Shah Tughlaq. [36]

Like the Bhakti saints-poets, the Sufis too rejected the artificial diversion of society into various strata based on caste and other considerations. Muhiuddin -ibn-al-Arabi propounded the doctrines of *Wahdat-ul-wujud*, Oneness of Being. It considered all human being, and in fact, all created beings, are as Manifestation of God. He used to say,-' My heart is a mosque, a temple and synagogue of Church.'[37] In fact this doctrine demolished all barriers between communities as real being is One and all human beings are the manifestation of this Real Being. The interaction between the Sufis and the Hindus gave rise to theistic trends in the Indian society on one hand and the Sufis got acquainted with the religious Yogic philosophy on the other .The Sufis evinced interest in the ascetic exercise of breath control(*pas-anfas*).

The Sufis also practiced full equality between genders. Among the women saints Rabia Basri was a Sufi par excellence.[38] The dominant role played by women in Indian folk Islam cannot be underestimated. Women attracted to the Sufis of the period were probably of the same social origins as those presently participating in the social life of the *khanqahs.* One could speculate that non-elite women living on the fringes of Hindu society would have gravitated towards Sufis and their tombs as place of religious refuge from any number of worldly concerns. Most of them certainly have included the widows of mostly lower castes, for whom organized Hindu society has little room. Then, too, one could expect that barren women of various castes would have been attracted to the *dargahs*

because of the latter's association with fertility and other worldly matters.[39]

Most of the Sufis seem to have favored gender equality. Baba Farid and Shaikh Nizamuddin Auliya considered the women of Inderprastha, models of piety and righteousness and they hold great respect and affection to religious minded women. Men and women were admitted in the circles of their *murids* and did not differentiate one from the other in providing spiritual knowledge and guidance. [40] The Sufis were not reluctant even to help prostitutes, if they were found in need.[41] Widows also got an allowance from Shaikh Nizamuudin Auliya, if they were left without any financial assistance. Following the tradition of his *murshid*, Shaikh Nasiruddin Chiragh treated men and women equally. His chief disciple ,Syed Muhammad Gesu Daraz, tells us that he distributed his spiritual relics among four disciples, one of them happened to be a lady. [42] The Sufis, irrespective of their *silsilah*, appear to have treated their wives as life partners.

As far as the role of Sufis in the society is concerned, it is said that, they have stretched the openness of Islam; they opened their doors to accept all other religions without distinction. The Sufis call to all people ,just as God sends His mercy to all humanity, without distinguishing between those who believed in His existence and those who do not .The renowned Naqshbandi sufi saint Bayazid-al-Bistami said,-' Sufi in general seeks God's mercy for everyone, not solely for the Muslims.'[43]

Al-Junaid Baghdadi said, 'we do not take *tasawwuf* from' 'this one said' or 'that one said' as the scholars did but we took it by feeling of the hunger, by feeling abandoned in the desert with the homeless, by feeling the wealth of the rich in accompanying them, by feeling the pain of the ill, feeling the pain of the injured. That is how we come to this understanding. [44]

The Sufis lived in the midst of lower strata of society and identified themselves with the problems and perplexities of the people. Shaikh Hamiduddin Nagauri lived in Suwal, a village near to Nagaur like a *Rajasthani* peasant cultivating a single *bigha* of land. He mixed with people of all castes and creeds and adopted vegetarian habits. [45] Baba Farid and his family and the inmates of his *khanqah* lived upon *Pilu* and *delah* which grow in Punjab. Eminent Sufis and Yogis used to meet at his *khanqah* to discuss and practice of Sufism. [46]

Shaikh Hamiduddin Nagauri did not permit his disciples to use the terminology of *kafir* and *momin* as the basis of any social discrimination.[47] 'You never know', he told the erring disciple,' what the inner spiritual life of this man is! Shaikh Abdul Quddus of Gangoh thus admonished his disciples in a letter:

'Why this meaningless talk about the believer, the *kafir* ,the obedient, the sinner, the righty guided, the misdirected, the Muslim, the pious, the infidel, the fire worshipper? All are like beads in a rosary.'[48] It will be in vain and whimsical to think that they did not believe in their religious identity. Which firmly adhering to the basic principles, they did not carry this difference to social relationship. Their toleration was the toleration of a spiritually powerful man admires other forms of thought and behavior. When Shaikh Nizamuddin Auliya saw some Hindus bathing in the Jamuna and singing devotional songs, he said- 'Every people have their own path, their own religion and way of worship.'[49]

Sufis have relationship with the mystics of the other religions also. They appreciated their spiritual performances and discussed on various matters. Once Shaikh Hamiduddin Gagrauni (Mithe Shah) had discussions with the *jogis* of Bholanath and Kanphata sects of the Nathpanthis.[50] Shaikh Mitthe Shah was a Sufi of Hadauti. He made cordial relations with the local people and opened the door of his *khanqah* for all irrespective of caste, religion and creed.[51]

As the views of Khwaja Muinuddin Chishti's as stated above, the phenomena of nature make no distinction between any creature of God, like wise man should not discriminate between the human being and others. The *khanqahs* of these Sufis supplied food and shelter to all sorts of people, no matter to what religion they belonged. Shaikh Nizamuddin Auliya used to fast regularly. When food was served to him at the time of breaking of fast and of *Sahri*, morsels would stick in his throat as his mind went back to those persons who had gone to bed without food. [52]

One of the most significant areas where the Sufis contribution seems to be very effective was in the process of urbanization. Those regions where the sufis established their *khanqahs* and after their death their *mazars* (dargahs), attracted a large numbers of people to flock to the town and city, giving rise to a growing urban population. Some of the Sufis chose to reside amid dense forest and subsequently the forest was

cleared and the land around it made arable. Thus, the Sufis did contribute to the extension of cultivation and urbanization.[53] This process has been vividly described by Ziauddin Barni. This is almost exactly what happened when Shaikh Nizamuddin Auliya settled at Ghiyaspur on the outskirt of Delhi. Barni says that Shaikh Nizamuddi Auliya opened the door of his *khanqah* for all and all sort of people rushed to his *khanqah*. Many platform with thatched roof over them, were constructed on the way from the city to Ghiyaspur, wells were dug, water –vessels were kept, carpets were spread and a servant and a Hafiz (reciter of the Holy Quran and to lead the prayers) was stationed at every platform so that the people going to Shaikh may have no difficulty in saying their prayers. [54]

Sufi *khanqahs* were the centre of refuge of both Hindus and Muslims who sought the help of the Shaikh or wished to be protected by them. When Kumbhadev and Mazandarani were defeated in their rebellion against Muhammad Shah Bahmani, they fled to the *khanqah* of Zainuddin Daud and took refuge with him. The Shaikh advised them not to shut themselves in the fort. They had still in their possession, and told them to go secretly to Gujarat. He gave shelter to them till their wives and children joined them, and then, putting his hand on their shoulders, gave them his blessings and prayed for their safety.[55]

The Sufi saints were, in general, highly respected by the non-Muslim population and the Hindus often treated them with a deep sense of trust and veneration .Syed Sultan Ahmad, better known as Sakhi Sarwar had a large number of Hindus among his follower and was known to them as Lakhi Data. Similarly, the famous Sufi of Suhrawardi silsilsh, Lal Shahbaz Qalander, was given the popular name, Raja Bharatri by the Hindus who were attached to him.[56] To these names we may add many others, among which those of Shah Karim of Sind and his grandson ,Shah Latif and Shah Inayat deserve special mention. 'When the Hindus of Sind, under the oppression of Kalhora kings, were fleeing in numbers to save their lives and faith, it was Inayat Shah who sheltered many such fugitive families in his own *khanqah.*[57]

In Islam, ill-treatment towards the slaves was considered as an offence. The Prophet had advised to his followers to keep in their minds to behave justly to their slaves irrespective of caste, religion and color and advised to grant freedom to them on humanitarian grounds. Islam advocates

the equality and brotherhood to the whole human being. The Sufis belonging to various silsilahs followed this tradition. Baba Farid Ganj-i-Shakar and his spiritual successor Shaikh Nizamuddin Auliya not only followed the path of piety but also followed the path of humanism.[58] As the service to humanity had become a mission of their life, they appear to have developed abhorrence towards the institution of slavery. [59] They did not have their own slaves and instructed to their disciples by their conduct and teachings to do justice with the slaves. Their devout murids used to purchase and set slaves free. Shaikh used to advise to his *murids* to grant freedom to the slaves as like as to revive the dead body. In this respect they even ignored the cannon law if it came in their way.[60] As a matter of fact, the conversation of Shaikh Nizamuddin Auliya and other Sufis reflects their cosmopolitan approach. They considered the whole world as a single family and human beings as the fellow travelers. The service of mankind had become a significant aspect of their life and mission.

At the time of arrival of the Sufis in India, the Muslim population was negligible. But there was no opposition from the side of indigenous people. Sufis established their *khanqahs* outside the cities/villages where the lower sections of the Indian society were residing. The unassuming ways of the mystics, their broad human sympathies and the classless atmosphere of their *khanqahs* attracted those deprived section of the society to its fold, where they found a social order entirely different from their own. All discrimination and distinction, which the Hindu society had imposed upon them, had no meaning here. [61] The gates of their *khanqahs* were open for all. People rushed to them for the mental peace and spiritual solace where all inmates of the *khanqah* lived, prayed, worked and slept under one roof. The *khanqahs* did not form part of any political authority. A penniless pauper was received there in the same way in which the Sultan of any place was received. Turkish Sultans refused even to talk low-born persons, but these saints threw open the gates of their *khanqahs* to all sort of men. Sultan Balban might refuse to talk to low-born persons in his court, but when he visited the cloisters and *khanqahs* of Sufis, he must have realized that there were places in his empire of Hindustan where his own position was not more exalted than that of any ordinary human beings.[62] Most of the Sufi *khanqahs* had the practice of *langar* or open kitchen. Whatever was received by these Sufis as gifts and *futuh*,

they cooked the meals for the permanent residents and the visitors of the *khanqah*. Consequently, an open kitchen (langar) became a regular feature of the *khanqah* life of the Sufis. It was the *khanqah* where Sufis coming from different background got an opportunity to live together, perform prayers in congregation, eat together, talk and converse each other..This naturally gave great impetus to a emergence of a healthy atmosphere of brotherhood and fostered the spirit of sharing each other's problems which ultimately resulted inculcating a sense of concern for human beings at large. It thus acted as a powerful incentive for the service to humanity, to the growth of religious harmony and vernacular languages.[63]

When Muslims had settled down in Indian –subcontinent, conciliation and concord between various cultural groups was not only a moral and intellectual demand, but also an urgent social necessity. They cannot continue to rule while majority of their subjects were different from them in race, religion, language and culture. Muslim mystics rose to the occasion and released syncretic forces which liquidated social, ideological and linguistic barriers between various cultural groups of India and helped in development of a common cultural outlook. As their *khanqahs* were only places where people of different shades of opinion, professing different religion and speaking different languages met, and these *khanqahs* became the centers of cultural synthesis, where ideas were freely exchanged and we had earlier stated that a common medium, the exchange of their ideas and views was evolved.[64]

Living in these *khanqahs*, Sufis adopted many Hindu customs and ceremonials in the initial stages of the development movement in India .The practice bowing before the Shaikh, presenting water to the visitors, circulating *zambil* (a bowl made of dried and hollow gourd),shaving the head of a new entrants to the mystic circle, audition assemblies and *chilla-i-makus* (ulti sadhana) had a close resemblance to Hindu and Buddhist practices and consequently ,the appeal of the Sufis in non-Muslim environment was tremendous. The *khanqahs* provided both Hindu and Muslims with amulets, talismans and charms designed to prevent sickness, disease, misfortune, and damage to crops by natural calamities and other catastrophes. [65] Since it was believed that a saint could heal both mental and bodily ailments, many visitors asked for *tawiz* (amulets) which were freely distributed. If there was huge crowd in the *khanqah* of a saint and

prevented a saint to pay personal attention to every visitor, he would say to them to come to him one by one so that he may attend to every visitor personally.

The Sufis of the different silsilahs thus helped to maintain social peace and harmonious atmosphere among the followers of different religions. The Sufi *khanqahs* mobilized resources and supplied food and shelter to all sorts of people, no matter to what religion they belonged. Shaikh Pir Muhammad of *Khanqah-i-Karimia* of Salon, *suba* of Awadh, was advised by his spiritual master to avoid the path of confrontation and try to become acceptable to all persons. We came to learn from a *Farman* of Bahadur Shah (1708) which informs that Shaikh Ashraf of the same *khanqah* was engaged in propagating the tenets of s*haria* and *tariqat* in the area and that in some for these villages he had established *musafirkhanas*, and in barren land, he had caused habitations. Shah Panah Ata of the same family was looked upon with great reverence by both Muslims and Hindus due the sanctity of his ancestors and of the institution. He remained there to receive the homage and distribute the needy and the travellers belonging to all religions.[66] There has been close contact, very often cordial between the Sufis and Indian Yogis. The Chishti Sufis held discourses with *Siddhas* and Yogis who made frequent visits to the *Jamaat Khana* at Multan and Delhi.[67]

The preaching of the Sufis on the one hand and the development of Bhakti movement on the other brought the Indian masses together and created an atmosphere in which two could live and co-operate each other. In the words of Kshitimohan Sen- 'Hinduism and Islam, strictly by the tenets of their scriptures, had no points of contact with each other. They were like the two banks of a river ever separated by the stream that flows between them. Who was to build the connecting bridge? The orthodox Hindus as well as the orthodox Muhammadans were unfit for this task, and it was left to the free spirits and lovers of humanity from the both these groups, the Hindu Bhaktas and the Muhammadan Sufis to devote their lives to the construction of the bridge.'[68] The fact that the religious leadership of the Bhakti movements in the fourteenth and fifteenth centuries came from the lower strata of Hindu society-a section which had been deeply influenced by the Muslim mystics and their *khanqah* life-is too significant to be ignored. Probably never before in the long history of

Hinduism had religious leaders sprung from those strata of society to which Chaitanya, Kabir,Nanak ,Dhanna, Dadu and others belonged. There was hardly a saint of the Bhakti school who had not passed some of his time in a *khanqah*.[69]

India's beauty lies in her rich cultural heritage. The *khanqahs,* the *mazars,* the *dargahas* and the *takias* of Sufi saints are the bright jewels in the treasury of rich Indian culture. There is hardly any town without these. The cities of Rajasthan and in many cases even small towns around reflect these cultural expressions. The Sufi saints lived and died like other men but to the masses they are still alive and blessed people. They are not bye gone history for them. They constitute an important element in the contemporary life. The number of *dargahs* and *mazars* of the Sufi saints is very large in Rajasthan but the historicity of many of these is doubtful. A thorough research based on folk literature and oral history is possible so that they may be placed in some historical framework. The very fact that they have been in the minds of the people makes them historical and real.[70]

In bringing about the harmonious atmosphere in society, the mystics were guided by certain basic principles of conduct: (i) They believed that only by doing good to all, a solid base of human relationship can be built up.(ii) They believed that the crime cannot be eliminated through punitive laws. What was needed was not punishment, but sympathetic persuasions .To achieve this, first was to hate the sin and not the sinner. Whoever started hating the sinner closed all time the doors of his reform and the (iii) use of force aggravates human problems. Pacifism and non-violence is bound to move the conscience of the aggressor. Non-violation is not surrender to the strong but an expression of determination to stick to one's principles bravely breasting all misfortunes and calamities that it might entail. [71]

The mystics had their own views about the government and their own assessment of the role of the rulers. They believed that a government in its ultimate analysis reflected the basic strength and weakness of a people. People get the government they deserve. "If a tyrant is placed as a ruler over your head", a great mystic once told to his audience, "Do not curse him. Repent for your sins and mend your ways." This, however, does not mean that they exonerated the rulers of all responsibility in this respect. Usually they advised the rulers indirectly but if circumstances so

demanded they did not hesitate in giving a blunt advise them and warning them against their misdeed. Shaikh Nizamuddin Auliya told Mubarak Khalji that he would be questioned about his company on the Day of Judgment. Shaikh Nasiruddin Chiragh told to Muhammad bin Tughlaq to get rid of his beastly anger. They used to quote the following tradition of the Prophet to bring home to them for responsibilities. "If in any kingdom an old woman goes to bed unfed, the ruler shall be held responsible for this on the Day of Judgment."[72]

These were the Sufis, through their rarefied understanding of the nature of the society emerged as the fountain heads of religious and character. This was because of their openness to all different experiences in religion and philosophy, and their harmonizing ways with all other spiritual influences and backgrounds, coming all together under the perfect human universally, bringing the diverse elements of the societies together under the commonality of the human experience with regard to the differences of culture and the distances of geography. The Sufis nurtured pleasant and congenial social and cultural atmosphere in the history of India by rendering their services to mankind, by their teachings and writings. Toynbee has come to the conclusion that practical taste of a religion, always and everywhere, is its success or failure in helping human souls to respond to the challenges of suffering and sin. The Sufis in India have played the same role. Nicholson observed, -'*Tasawwuf* is a combination and adaption of different philosophies and beliefs by means of which Islamic spirituality disseminated.'[73] The great Orientalist scholar Martin Lings said, -'I am European and yet I found the safety of my soul in *Tasawwuf*.'[74]

References

1. *Some aspects of religion and politics in India during the 13th century, K.A. Nizami, Delhi; 1974, p.50-51*
2. *Ibid, P.50*
3. *Ibid, p.50*
4. *Muslim Almance, ed. Azim. A. Nanji, 1996, p.61*
5. *Masalik-ul-Abrar fi Mumalik ul-Ansar, (Eng Trans),O. Spies, p. 24*
6. *Fawaid-ul-Fuad, Amir Hasan, Lucknow, 1924, p.158, 137; Khair-ul-Majalis, Hamid Qalandar, Ed.K A Nizami Aligarh, p.150; Siyar-ul-Auliya, Mir Khurd , Delhi, 1924, p.66*
7. *Siyar-ul-Auliya, p.45*

8. *Sufism and society in Medieval India, Raziuddin Aquil,p.23*
9. *Attitude of Muslim mystics towards society and state during the Sultanate period, Dr. Aditya Nath Jha Felicitation volume, III.p547*
10. *Aspects of Hindu-Muslim cultural relations, Fathullah Mujtabi, pp.99-100*
11. *Sarur-us-Sudur(MS) Shaikh Fariduddin, p.10*
12. *Siyar-ul-Auliya, p.45*
13. *Religion and politics, Nizami, p.185*
14. *Siyar-ul-Auliya, p.237*
15. *Ibid, P. 411; Fawaid-ul-Fuad,pp.13-14*
16. *Siyar-ul-Auliya, p.46*
17. *Religion and politics, Nizami, p. 189*
18. *Sarur-us-Sudur, p10, 43; Fawaid-ul-Fuad, p.43*
19. *Tarikh-i-Firozshahi, Barni, p. 344*
20. *Sarur-us-Sudur, p.75*
21. *Ibid, p. 35*
22. *The life and times of Shaikh Nizamuddin Auliya,Nizami,p.125*
23. *Sarur –us- Sudur, p.43, 47, 71,104,106 etc.*
24 *Attitude of Muslim mystics towards society and state during the Sultanate period, Dr. Aditya Nath Jha Felicitation volume, III.p549*
25. *Sufism: A celebration of love, p226,*
26. *Ibid, pp.228-29*
27. *Contribution of Indian Sufis to peace and Amity, K.A.Nizami, p.5*
28. *Dakani Geet, Muzallai, Osmania, Dakni Adab No. 15 p.217-18*
29. *Idarah adbiyat-i- Urdu, (MS) No. 120 B, Salar Jung museum, Urdu MSS, Taswwuf and Akhlaq, No. 27*
30. *Life and teachings of Baba Farid,Nizami, Idara-i-Adbiyat,Delhi, p.121*
31. *Socio-cultural impact of Islam on India, Ganda Singh,p.15*
32. *Fawaid-ul-Fuad, p.226*
33. *Khair-ul-majalis,compiled by Hamid Qalandar,ed.K.A.Nizami,Aligarh,1959,pp19,121*
34. *Medieval India-A miscellany, vol-III,Aligarh,pp36-38*
35. *Aspects of Hindu-Muslim cultural relations, Fathullah Mujtabi,p.102*
36. *Journal of the Bombay branch of the Royal Asiatic Society, vol.26,part II ,p.183*
37. *Times of India, Asghar Ali Engineer, Feb.5, 1997*
38. *Ibid. Feb.5, 1997*
39. *Sufi orders in Islam, J. Spencer, Trimingham, Oxford, 1971 p.22; Sufism and society in medieval India, R. Aquil, Oxford, 2010, p.77-78*
40. *Fawaid-ul-Fuad,p.22*
41. *Composite culture under the Sultanate of Delhi, I.H.Siddiqui, pp.169-170*

42. *Ibid, p.170*
43. *The Sufis- Enlightened, community Builders, p.2*
44. *Ibid, p.2*
45. *Sarur –us- Sudur, p.10*
46. *Life and teachings of Baba Farid,Nizami, Idara-i-Adbiyat,Delhi, p.121*
47. *Sarur –us- Sudur,p.48*
48. *Maktubat-i-Qudsiya, Ethe, 1873, Delhi, p.205*
49. *Contribution of Indian Sufis to peace and amity, p.2*
50. *List of objects of antiquarian interest in Malwa, ASI, 1903, p.20*
51. *Muslim monuments of Rajasthan, Yaqub Ali Khan, B.R. Publishing Corporation, Delhi, 2011, p.172*
52. *Contribution of Indian Sufis to peace and amity, K.A. Nizami, p.2*
53. *Sufis and Sufism-Some reflections, ed. by Neeru Mishra,p.93*
54. *Tarikh-i- Fitozshahi, Ziauddin Barni, ed. By Shaikh Abdur Rashid, Aligarh, vol.2, pp343-5*
55. *Tarikh-i-Firishta, vol.I, p.294*
56. *The History and Culture of the Indian people, vol. V, p.467, 461,473*
57. *Cultural Heritage of India, vol.V, p.389*
58. *Fawaid-ul-Fuad, Amir Hasan Sijzi, pp.278-79*
59. *Ibid, pp.316-17*
60. *Ibid, pp.238-39*
61. *Khanqah and development of composite culture, Itihas Darpan,Vol-2,no.2,2007,p23*
62. *Religion and politics, p. 205*
63. *Sufis, Sultans and Feudal orders, ed. Mansura Haider,2004, p.71*
64. *Sufi Movement in Medieval Rajasthan (Unpublished Thesis), Yaqub Ali Khan, Aligarh,1984,p120.*
65. *A history of Sufism in India, SAA Rizvi,Vol -1,p346*
66. *Comparative study of the Waqf from the East, edited by Muira Toru, Tokyo, 2018, pp.199-203)*
67. *Bhakti Movement in Medieval India, Shihabuddin Iraqi, pp. 249-50*
68. *The Cultural Heritage of India, Ed. Haridas Bhattacharyya, Culcutta, vol.IV, p.378*
69. *Sufism and Society in Medieval India,Raziuddin Aquil,p.26*
70. *Sufism and Bhakti Movement, Hamid Hussain, p.85*
71 *Attitude of Muslim mystics towards society and State during the Sultanate, Dr. Aditya Nath Jha Felicitation volume, III.p.552*
72. *Ibid, p.557*
73. *Studies in Islamic Mysticism, R.A. Nicholson, Cambridge, 1967,p.76*
74. *Contribution of Indian Sufis to peace and amity, K.A.Nizami, p.2*

An Archaeological Exploration of Marwar & Godhwar

K. P. Singh Deora, Chintan Thakar and Priyank Talesra

Introduction

Exploration conduct during the time of 2018-19 survey between Pali to Aburoad in Sirohi district headquater in January 2019. Remains of the artifacts and objects were correlate with surveyed and excavated material. Suring the time of survey several cultural period sites were identified in the area. During the time of 1970s-80s survey work done by Prof's. S.N. Rajguru, D.P. Agrawal and V.N. Misra explored and excavted some sites like Shinghi-Talab, Didwana, Baap-Malar, Bhinmaal, Bagor and so on. And recentl excavation at Chandrawati also indicats that sites are like mesolithic and historical period. Trench I9, P35 and DD19 of Chandrawati dates back to 3rd and 4th Centuray CE.

Geology and Geography of the area

Area covers Pali district (Marwar). Off-white, bluish-grey, pink, orange and red varieties of granites mostly belonging to the Erinpura Granite are exposed as sheets and mounds, hillocks and scattered boulders. The granite, medium to coarse-grained in general, is of gneissic variety.

Porphyritic varieties also occur at a few places. The important localities are Chotila, Kerla, Paldi, Sumerpur, Perwa, Kotadi, Erinpura, Nana-Beda, Nadol-Narlai-Desuri, Korta, Kharda, Netra, Sadri etc. Silver-Grey and Pink, Orange and Red are some of the well-known established varieties of this area. Most of the area coverd by nisic granite.

Buried Pediment:- Pediment covers essentially with relatively thicker alluvial, colluvial or weathered materials. Pediment:- Broad gently sloping rock flooring, erosional surface of low relief between hill and plain, comprised of varied lithology, criss-crossed by fractures and faults.

Fluvial

Alluvial Plain:- Mainly undulating landscape formed due to fluvial activity, comprising of gravels, sand, silt and clay. Terrain is mainly rising and falling. Which is produced by extensive deposition of alluvium.

Valley Fill:- Formed by fluvial activity, usually at lower topographic locations, comprising of boulders, cobbles, pebbles, gravels, sand, silt and clay. The unit has consolidated sediment deposits.

Ravine:- Small, narrow, deep, depression, smaller than gorges, larger than gulley, usually carved by running water.

Hills:- Denudational Structural Hill, Linear Ridge, Steep sided, relict hills undergone denudation, comprising of varying lithology with joints, fractures and lineaments. Linear to actuate hills showing definite trend-lines with varying lithology associated with folding, faulting etc. Long narrow low-lying ridge usually barren, having high run off may form over varying lithology with controlled strike.

Area

Erinpura Granites are spread over a large part of the district and occur in the form of isolated outcrops, low lying hummocks and ground level exposures. These are mostly biotite-bearing greyish-white granites. At some places pinkish and red varieties belonging to Jalor Granite of Malani Igneous Suite are also exposed. The important localities are Viroli, Nandia, Rampura, Abu, Veerwade-Arasanaji, Shivganj, etc. are well-known in hydro ecological hub. Land of area is not much fertile but some millets and cereals can grown in the suitable weather are like Bajra, Moong, Mauth. Site is complied with residential house complexes and streets are like three to four meter wide in right angle. Flora is like Khejri (Prosopis cineraria), Kair (capparis decidua), Peelu (salvadora persica), Babul (acecia). Faunna is like Deer (cervidae), Nilgai (boselaphus tragocamelus), Indian Fox (canis lupus), Hyena (hyaenidae), Leopard (panthera pardus), cow (Bos indicus), Goat (Capra hircus), Sheep (ovis aries), horse (equus caballus), Donkey (equus asinus), Buffaloes (Bubalus bubalis), Duck (anas platyrhynchos), kuraj (grus virgo) and so on.

Exploration

Mukanpura

Site is located in the Rohet tehsil of Pali district. Which is laid on geo-cordinates N 25°55'20", E 73°10'52" at national highway number 62. This site having thick deposit of medieval phase, which dates back to

15th and 16th century C.E. This site spread in five acre land. Site has two meter thick deposit. The life line of this site and surrounding area depends on left bank of Rediya river (tributary of Luni river), which is two km far away in the north. The cultural material of site are like two Hero-stones, red ware, gray ware, red painted ware, fine red ware. Pottery is like bowl, pots, storage jars, handi, miniature pots and cooking ware in grey ware.

Main source of water for village is one small pond at the entrance gate of the ancient habitation hierarchy. Most probably this pond played predominant role during that times, because ponds contain sweet water. When water level of Rediya river rises during the monsoon times, it recharge the water bodies and structures of surrounding area. There are two hero stones found, one is on yellowish stone which is carving of one male-female pair with the inscription written on lower part of the stone. This is also encarnation of sun and moon on the top of the stone and top-most portion of the stone is cut with two half cricent moon shaped. Second one hero-stone belongs to 1722 vikram era, lower portion of the hero-stone belongs to inscription, there is mention of one lady (bai)… and 300 number…, upper portion of the hero-stone belonging to Male icon which is holding kamandal from top by left hand, weared with kada (Bangle) and right hand folds on the chest, weared turbine, encarnation of dress is in the shape of the angarkhi (traditional coat) top-most portion is cut by two crisent moon shaped and also sun and moon icons on both side of male figure.

Om Banna/Chotila

Location of sites geo-cordinates are N 25°87'60", E 73°21'24" at national highway number 62. The expansion of site is 400x200 mtrs is East to west and north to south. There are eight to ten factory settlement spots identified in eastern direction. Artifacts discovered are like core, fluted core, flakes and debris were identifed. Basically raw materials are like chert, local chert and flint. Site has also remains of the rock-art icons in the cental northern direction. Which easily coverd the vast area for hunting.

Kharda and sorrunding area were life line of the sites which is located in the eastern side of the sited habitation.

Gajner

This site is located near the Naal sub district headquater of the Bikaner District. Site spread in 5 sq. km. This site is 26 km away from the city in the western direction. This site covered several other sites in the area, which mostly belongs the stone age period.

There are three natural water bodies, which maybe used for the water sources. There is the only source of the sweet water. Tortoise core of the quartzite raw material were identifed and scrapper. More or less tool typology belongs to middle palaeolithic period.

The tool making technology of the stone tools are levalva/levalious typology. There are some potseherds highlited, which belongs to red painted ware and red ware pottery. There were couple of hero stone documented, which belongs to feminine group.

Juna Khandra

The site laid on N 25°05'00", E 72°59'53" at national highway number 62. This site is located in Sheoganj tehsil of Sirohi district. A Posaliya river, tributery of Jawai river flows in south-east direction. Stratigraphy of site were identified in two different habitaional phase, Medieval phase located on the left bank of the river and mesolithic phase.

Medieval settelement also kown as a 'Baiyon Mata ji', there is scatters of the pottery on the surface of the mound. Residential area covered by fired bricks, which measured as 20x15x5 cm. which belongs to Deora dynasty of Chandrawati pottery. Residential complex area were consturcted in right angle and paralled sided walls, bricks were laid on along-away in sequences of the rows. Pottery is red ware and grey ware, pots, jars, handis, bowls.

Jawai river is life line of this area, there are mesolithic cores were found. The raw materils of core is obsidian and flint. The origin of Jawai river is near Bhujeshwar Mahadev Temple at the centre of the Aravallis hill ranges around Goriya and Gogunda.

Viroli

This site is located in Pindwara tehsil of Sirohi district. Which is laid on geo-cordinates N 24°51'55", E 72°57'56" at national highway number 62. The total area of site is 200 sq mtrs. There are two rock

shelters, where historical phase rock-art depiction. Local light green chert were identifeied as a raw material for the making tools. This raw material is common as a Siyawa site near Chandrawati site.

Medieval settlement at Viroli is laid on geo-cordinates are N 24°52'11", E 72°55'21" at national highway number 62. Grey ware pottery are like Pot and Jars, which is similar to last phase of Chandrawati.

Juna Sangwara

Site is located near Pindwara (Sirohi), 3 km away from Kashindra village. Site spread in 19.22 sq. mtrs. Site laid on geo-cordinates are N 24°36'31", E 72°51'37". Site is located on the left bank of Banas River on the edge of the meander of village. Pottery belongs to second and third phase of the Chandrawati, which is moslty in Red ware and Grey ware. The shapes of pottery is like Pots, Jars, Basin, Carinated and miniature pots.

Aruneshwar Mahadev

Site is located near Pindwara (Sirohi), 200 mtrs away from Kashindra village in north direction. Panchyat Nagar style with trirath type of temple. Vishnu, Ganesh, Shiva-Parvati sculputers on the wall. Inscription of temple were disappear few year back by treasurer hunters. The brick size of temple is 32x24x8 cm probably belongs to 12-13th century CE. Site laid on geo-cordinates are N 24°36'31", E 72°51'37". The site located on the left bank of Banas River on the edge of the meander of village. One slab of rock, which engraved of cup-marks that is shifted in garbha grah of the temple. There is one well dredded icon of Brahma-Vishni-Mahesh, which is generally not found in any other sites.

Perwa-Kotadi

Site Perwa is located near Bisalpur (Bali, Tehsil, Pali). This is belongs to Mesolithic phase of stone age. The are two types of local chert which is in black and Brown colour. There is small stream which is flowing in western direction of the site, it maybe local stream from over out lety of Jawai River or Dam, which could be life line of the mesolithic phase. These tools belongs to microlithics from mesolithic phase.

Juna Hanumanji, Lotana

Site is located near Pindwara (Sirohi), Site laid on geo-cordinates N 24°45'49", E 72°54'49". Panchyat Nagar style temple of Shivji, area

covered site is 09.22 sq. mtrs.30x22x7 cm is brick size which belongs to around 15th century CE. Pottery is red ware and grey ware, particularlly pot, basin, bowls, jars, miniature pots and so on.

Concusion

This area was rich in stone age times, at that time there were not shortage of water level. During the times of 12th to 18th centuray CE. Some Palaeobotnical remains indicate dated there was a drought period (little ice age) in early 13th centuray. That times (medivieal period) people were starts storage of water, in form of ponds, dams, lakes, Agor,etc in famine works. Mostley medieval settlements were away from river, but near the streams and natural water bodies depressions.

This tradition is still continues in morden socities, they undertaking water bodies. Morden cities also setteled near the water sources.

Bibligraphy

1. *Kharakwal, J.S. 2018. Excavation at Chandravati. Himanshu Publication. Udaipur.*
2. *Misra, V.N. 2007. Rajasthan:- Prehistoric and Early Historic Foundation. Aryan Publication. New Delhi.*
3. *Misra, V.N. 2007. Van-Vagris of Rajasthan. Man and Environment.*
4. *Srivastava, P. 2001. Geology and Mineral resources of Rajasthan. Geological Survey of India. Jaipur.*

Technique and Style of Cave Art

Virendra Sharma

Prehistory is in fact a record of the creative genius of the early men, available in the remains of the art and primitive culture .The Process of this cultural development covering a long span took a very gradual course and that is why the nature of this development is not easy to explain. The caves and the Shelters were the dwelling of the primitive people. These caves or Shelters have been found located in deep forest region nearby the rivers or tributaries. Different painting style of art simultaneously used in these paintings are generally supposed to be the oldest specimens of Art to assign a precise date to these paintings as the cover a wide span from the pre historic times up to the historical period. This art is entirely primitive and therefore, it is to be minutely studied in the aesthetic value of prehistoric people and their culture. Primitive art, as the term implies has its utmost utility as it covers the entire range of the Prehistoric condition of life and thought.

The extensive surveys of the painted areas have indicated that the pre-historic man occupied the rock-shelters for his dwelling from the time immemorial. Rock-shelters are invariably found on the mountains formed by sand stones such as Vindhyan, Satapura and Aravalli. This type of rock was the outcome of the cementation of sand grains into hard mass. Silica generally constitutes the main mass. Depending upon the cementing material, the colour of sand stone varies from place to place. This type of rock has sedimentary formation and has distinct layers.

In the cretatious age, during the formation of such types of rocks, some clay and mud used to get deposited in between the two layers. This clay is hydrated aluminium silicate in chemical composition and is formed as an alteration product of felspars in humid temperate climate. Such clays with very fine particles of mica and sand consolidated to form rock masses which are called shales and mudstones.

In due course of time on account of weathering, wind and rain activities interlocked shale material between the two layers of sediments

was washed away. Thus cavities were formed in between the two sediments. Such kind of cavities have been found in single, double or even more tyres. These may be big or small and looked as over hanging cliffs. Such cavities served as a shelter house for the pre-historic man.

The term 'cave-paintings' is often used for rock paintings. The word, cave-painting, has been borrowed from France where the paintings have been found inside the lime caverns. The majority of the rock-shelters are situated on the rocky mountains, generally in a chain form. These exposed rock surfaces can be seen from the long distance just below the top of the hills. The shelters could be small, medium or huge in size.

Another variety of shelters are connected with River banks. The river valleys were the perennial source of water and food supply and were ideal for the dwellings of pre-historic man. Such groups have been found in the Chambal valley. There are so many Rock shelters found in south - east Rajasthan on this pattern where pre historic men were lived and near the shelters many factory site also find. Generally Rock-shelters were covered with Green vegetation and were infested with wild animals. Thus the food and drink was easily available to the shelter dwellers at their close vicinity.

These shelters were occupied by the pre historic man as early as Palaeolithic period. The occupation of this type was not an usual feature and was not adopted universally. This was continued upto the middle Palaeolithic period. The Pre historic-man preferred to live in open areas close to rivers and lakes.

This was nomadic hunter till this time and invented bows and arrow along with fire. Before that, he became able to make stone tools for their utility.

With the advent of holocane period a drastic change inthe earth's atmosphere is strongly observed. This was resulted in the revolutionary changes in the animals as well as in the vegetation kingdom. Henceforth the climate was regulated on the earth and with this changed atmosphere. Man had to adjust himself according to the prevailing condition of the new environment.

The stone age man started occupying The Rock Shelters henceforth, The earliest material culture found deposited in the rock Shelters was in

the form of heavily painted microliths. These stone tools are definitely technological advanced than the earlier faze. This shows and advancement in the human culture and also an upperhand over the nature. Gradually , the crude blade industry was replaced by the sophisticated geometric Microliths which were in the later stage added with crude and fine earthen ceramics. The economy of these shelter dwellers still remained hunter and gatherer.

Painting Area :

Mostly the bigger Shelters were utilised as an art gallery. Although paintings are found in small Shelters too but their number is very limited. On the other hand those factors which are sufficiently big are painted so profusely, that sometimes it is very difficult to count them and get the exact number. For drawing of these paintings , selection of the painting surface was an important factor. The painters took full care in selecting the areas to be painted. For this purpose, mostly the inner flat wall which faced the sunlight was chosen. Some of the Shelters even the upper roof wall if it was sufficiently low and easily approachable was utilized. It was seen before drawing and paintings whether, the wall, which was to be painted smooth and even. In some cases, the wall was even smooth before drawing the paintings.

Composition of Colours:

After the selection and preparation of the painting area the other problem were, the colours to be used, the method of colour preparation and the application of the colour. After a careful survey of the painted sites it has been found that the majority of the paintings are as a rule in monochrome. The number of polychrome paintings is much lesser they have been found from everywhere in Central India as well as in Rajasthan. The range of colours is, however, limited. In most of the cases the prevailing colour is red, yellow, pink, black and green were also used by the primitive Painters. The natural pigments, such as manganese, haematite, limonite, ochre, red Chalk, charcoal and vegetable juices were perhaps used for the preparation of the colours. Mostly, the ochre is available as a natural substance was specially useful to the primitive people. Usually colours for painting get from stones, which are found nearby of shelters. Primitive men prefer of those colours which is easily available.

The chalcolithic people also used the ochre, which was commonly used for painting their potteries. Ochre is available as a natural substance , used for colouring the walls of the houses and also for other type of painting purpose. In composition ochre is oxide of iron mixed, more or less, with clay impurities. In colour, they vary from chocolate to light red and from Orange to yellow .In the former case they may be called varieties of haematite, In the latter of limonite. The colours are quite permanent as lasting as that of Rock itself. Beside ochre, another natural mineral ore, oxide of manganese , when powdered gives a blue black pigment. A coal - black colour was obtained from the burnt bones and along with charcoal also was used. The white chalk and a de generated from of lime locally known as 'chhuii' was also used for white colour .That is commonly available and used by the local people for the purpose of white washing in place of lime. The Prehistoric people also used some types of vegetables preparation , the nature of which is not clearly known.

It may have been possible that when the paintings were in the stage of preparation the painters might have rubbed those drops with the help of some material through the scope for this must have been quite Limited. The techniques were used by the primitive Painters in different areas. The outline of the figure was drawn first with the help of colour ,and later on some vegetable juice was applied inside the blank space of that drawn figure which would have acted as fixer to the colour just as apply a gum . Then the dry powder was rubbed over the vegetable juice the colour was applied inside the body of the figure Drawn .

Method of Paint Shelters:

The Method of painting shelters can be verified at so many places where we find the colour of the outline differing from that of the body. This may also explain why the colour drops had no scope to come out of the figure, as the colour was in the form of dry powder. In another Technique , the colour was rubbed as a paste inside the drown figure with the help of finger tips. Here too the outline was essential. In some of the cases only the outline was drawn with the colour paste and the colouring of the body was not done. It is presumed that each time the fingers were used in dipped into the paste and the outline of the figure was sketched. The distance between both the lines in the same everywhere. Apart from

this example there are a number of other figures where this technique seem to have been followed.

For the dilution of the colours, it may be mentioned that the pigments were apparently mixed not only with water but with a slightly sticky substance such as diluted blood ,fat, melted honey , albumen or Vegetable juice which acted as a Binder of the colour . The diluted blood for the fat of the animals or the bird was an easily available substance for the Prehistoric man. The fact that the pigments mixed with fat would have produced some abiding results the figure is remaining till now.

Use of Brushes :

There were two types of brushes seems to have been used by the primitive artist for this purpose. The first type of brush might have been manufactured with the hair of furry animals. Secondly the brushes were probably manufactured from a thin wooden stick. If one end of thin green stick is founded it becomes a brush , and even today such brushes are used for whitewashing the houses the people use the roots of a particular tree locally known as Palash or any other easily found Tree have some fibre in its stem .For this purpose the roots of this tree are taken out and pounded with stone so that the route takes the shape of a brush at one end .The brush so prepared is as good as and more durable then the brushes which are made of hair.

Recent findings about prehistoric sites in south- east rajasthan shows the variety of figures as well as the pattern of cave painting in that area. It shows that the cave and their art work as old as other caves found from various parts of india.

References

1 . *Bedekar, Indian Rock Shelter paintings: Their significance , Rock Art in India, 1984.*
2. *Browen, Percy, Indian Paintings, 1953.*
3. *Gupta, Jagdish, Pragaithasik Bhartiya Chitrakala, Delhi, National Publishing House, 1987.*
4 *Gupta, Jagdish, Bhartiya kala ke pad Chinha. 1960*
5. *Neumayer, E., Pre-historic Indian Rock Paintings, Delhi, Oxford University Press, 1983.*
6. *Pandey, S.K., Indian Rock Art, Aryan Book International, New Delhi*
7. *Upadhyaya, B.S. Adim Manav Ki Khojne, Bharati, 1961*

Medieval Temples of Delwara

Syed Sumbul Arif

It is a historical fact that temples have a special place in ancient architecture and even continued ahead in India. It is equally a fact that the objective behind building a temple in Indian culture has an implication that a religion should be established, that the public can be easily received and practised. In this connection the temple is identical of Indian culture (culture of the different regions of India). Society and social work were directly or indirectly connected to the temples and still is almost correct for the mentioned recognition too. As a result of it, the concept of temples in ancient as well as medieval India were projected, as was developed in various froms in different region. The various forms and techniques which were developed in ancient and medieval temples of Delwara is taken in account. The present paper is a survey based study of Delwara, a semi-urbanised medieval settlement located 28 kms north of Udaipur, Rajasthan. Shri Harak Lal Pamecha, a retired lecturer and resident of the place, accompanied me for the survey. Delwara was a part of a very large settlement called *Devikul Patan Nagri* that stretched from Kailashpuri to Gandak Sagar. It was a very large and prosperous settlement with more than hundred Hindu and Jain temples. Due to the curse of a *rishi* (holy man) most of the settlement was destroyed.[1] Today only 25% of the original town remains. Delwara has an ancient and medieval exquisite heritage that consists of temples, mosques, *dargah*, *baori*, *kund* and a fort 17th – 18th century of , now called Devigarh palace.

It is believed that ancient Jain temples of Delwara were built during the reign of Emperor Samprati, grandson of Emperor Ashoka and son of Ashoka's blind son Kunal (224-215 B.C.). Delwara, Nagda and Aayad were the centres of learning and culture before 15th century A.D. Most of the princes of Mewar and adjoining kingdoms were groomed in the art of warfare and formal education at Delwara. Hence, it was also known as *Kunwarpada* – a centre of learning.[2] The kingdom Mewar was divided into 16 *rajwadas* or districts, of which Delwara was one. Along with Badi

Sadri and Gogunda, Delwara was ruled by the *Jhala* Rajputs.[3] An attempt is made in this paper highlighting the surviving temples of Delwara dating as old as 1000 years i.e. between 6th century to 17th century A. D.

Parshwanath Bhagwan Temple

It is believed that it has been built 700 years ago, dedicated to Bhagwan Parshwanath belonging to the *Shwetambara Murtipoojak* sect of Jains. Presently, the whole medieval structure sect has been renovated under the Shri Somchintamani Trust. During restoration process 15 feets deep *tahkhana* was discovered consisting of 13 idols of Jain Tirthankara. The main temple consist of a statue of Bhagwan Parshwanath made of black marble.[4] This temple is believed to be of Sampratikaleen era i.e. around 2200 years old.[5]

Rishabhdev Bhagwan Temple

This temple is located at the edge of the town. It is believed to be the most beautiful temple in Delwara. The famous Dilwara temples of Mount Abu are the copy of this temple from Delwara. There is a story that ministers of the Solanki rulers of Gujarat visited these temples and were impressed by the carving and architecture of the temple. At the request of the visiting ministers, the then rulers of Delwara provided design and drawings of the Jain temples.[6] The temple consists of carvings and decorations of Hindu styled temple like dancing Gods and goddesses, flora, fauna, etc. There is a notable image of a Hindu goddess sitting on an elephant back over the *shikhara.*[7] This temple was attacked by Sultan Alauddin Khilji during his Mewar campaigns but was repaired during the time of Maharana Lakha and Maharana Mokul.

Adeshwar Jain Temple

It is dedicated to the first Tirthankara of Jainism , Rishabhdev also called Bhagwan Adinath. The unique feature of the temple is that it is crowned by a tall tower or *shikara*. It is considered by the locals to be the oldest surviving temple of the town as old as the town itself i.e. of sixth century A.D. The temple consist of 13th and 14th centuried statues of Jain Tirthankaras. The main prayer hall of the temple consist of 27" high white statue of Bhagwan Adinath.[8] Mainly the temple is made of stones. Presently the temple is in the worst of its condition and needs immediate attention for renovation.

In general these three Jain temples of Delwara have similar features being plain outside but profusely decorated inside, having a large walled courtyard, the centre of the courtyard consisting of the main image of the deity. Around the large courtyard, are the numerous small chambers, each housing an idol of Jain Tirthankara. The ceiling of the temple have intricately decorated concentrated ring forming a dome above roof. The temple consist of a number of elegantly carved pillars, having images of *yaksha*, *yakshnis*, animals, etc.[9]

Kasheshwara Temple

The ancient Hindu temple of Delwara is Kasheshwara temple also known as *Pancha Dev Upasana*, i.e. for the worship of five Gods (4 *dev* and 1 *devi*). It is said that this temple was constructed around 1000 years ago during the rule of Hindu rulers. This historic temple is presently in ruined form. It is located on the higher part of the town. The temple was renovated in 1784 V.S./ 1727 A.D. by Rajrana Raghav Dev. As mentioned earlier this temple is for the worship of five Gods namely *Laxmi Narayan, Ambika Mata, Shiv, Hanuman and Ganesh.* In the centre there is a tower called *Brahma Stambh.* The outside and staircase of the temple is intricately carved and decorated but in ruined form.[10]

Laxmin Narayan Temple

It was built in the 16th century, located near the *kund*, at the base of the fort, this temple of the town managed by *teli* community. This temple is decorated with the mirrors and paintings.[11]

Conclusion : Delwara has the potential to be developed into a heritage town, like other towns of the state. The town comprises of a number of religious and secular buildings ranging from temples, mosques, *dargah, talab, baori, kund, haweli,* etc. This town has the privilege of having oldest Jain temples along with 2000 years old idols. The town need attention of government and Archaeological Survey of India in order to conserve these ancient and medieval heritage structures. In return the town will add to the economy of the country.

References:

1. *Delwara: A Baseline Study, prepared by Seva Mandir, Udaipur, NFI, New Delhi, 2004.p 13.*
2. *Pratap Singh Mehta,* Delwara History before Medieval Period, *Mumbai,*

2018. p 3.
3. *A Guide to Delwara: the Town of the Gods, Culture Trip,(cyclostyle).*
4. Devkulpatak; Delwara, *edited by Virendra Siroya, Somchintamani Prakashan, 2015, pp 57- 59.*
5. *Emperor Samprati from Mauryan Empire, grandson of Emperor Ashok is believed to have constructed 1,25,000 Jain temples all over India. The temples of his period are referred as Samprati Kaleen.*
6. *Pratap Singh Mehta,* Delwara History before Medieval Period, *op.cit, p 4.*
7. *Mohanlal Bolya,* An Ancient Pilgrimage to Delwara Jain Temples, Delwara Jain Society, *Udaipur, 2006. p17.*
8. *Ibid. p 48.*
9. *Temples physically surveyed by the author of the paper.*
10. *Temple physically surveyed by the author of the paper.*
11. *As told by Shri Harak Lal Pamecha, who accompanied the author of the paper during physical survey of the site.*

Sair Jihat: A Non-Agricultural Tax of Sanganer

Jibraeil

The evidence on non-agricultural taxes under the head (sair-jihat) is of extreme importance. It has varieties of information in which arhsatta qasba Sanganer is very rich for the study of Sanganer.

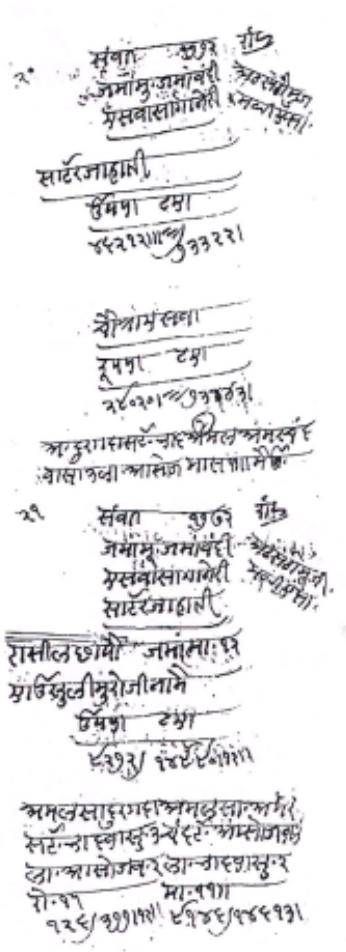
Sanganer, a famous textile centre of Rajasthan, has come a long way in mastering the art of textile printing and related works. A position which it still enjoys in the textile field, and has emerged as a great centre of textile printing and gained the recognition not only in Rajasthan and India but also in countries such as the USA, Canada, Mexico and in Europe. Thus, through exports it has become a huge earner of foreign exchange.

Sanganer is situated at a distance of about 13 kms to the south of Jaipur. Its earlier name, as found in inscriptions and prashastis, were Sangrampura which is said to have been founded by Sanga, a Kachhwaha prince in the sixteenth century; but its antiquity goes beyond that period[1]. In 1561, Bharmal, the Kachhwaha chief, extended a warm welcome to the Mughal Emperor Akbar at this place, when he was going to Ajmer to pay homage to the shrine (dargah) of Khwaja Moinuddin Chishti[2]. Later, in the sixteenth century Raja Man Singh of Amber had also developed close relation with Akbar and became one of his most trusted and loyal commanders[3]. The Kachhwaha rulers of Jaipur took keen interest in the development of trade, commerce and industries in the eighteenth-nineteenth century and as a result, Sanganer emerged as one of the calico printing centres. In the beginning of twentieth century almost all important towns of the state of Jaipur were well-connected by road and a few towns by train also. Jaipur is well connected with most important towns including Sanganer[4]. This strengthened the handicraft manufacturing industry here especially cotton and woollen-cloth, and the capital city in particular was highly developed.

A survey of the existing works on calico-printing and dyeing shows that the majority of the scholars have highlighted the centres such as Surat, Dhaka, Chittagong, Sonargaon, Sironj and Chanderi but neglected Sanganer altogether because they mainly relied on Persian chronicles as well as account of European travellers. Even some other centres of Rajasthan find place in their writing but not the premier printing centre in eastern Rajasthan. To highlight the real significance and the role of this place in the calico printing sector we have utilized the arhsattas, which offer information on crops, taxes on calico-printing with the names of calico printers and other professional groups.

The non-agricultural taxes designated as sair-jihat are important for the study of the non-agrarian sector. Keeping in view the importance of sair-jihat, an attempt has been made in this paper to utilize them to trace the development of handicrafts and other industries in qasba Sanganer. Craft production for the market seems to have been largely organized in two forms: first, as domestic industry in varying degrees of association with agriculture; and second, as full-fledged autonomous production, mainly in the town.[5]

Cotton was produced in sufficient quantity in the qasba in the eighteenth century[6]. This in turn promoted manufacturing of cotton cloths here. Mention may also be made here of the weaving, dyeing, and printing of cloths which were important branches of the industry in the town[7]. The people were very fond of wearing colour fast cloths such as red, saffron, blue and black.[8] Blue colour was made by dyeing with indigo, which was produced in qasba Sanganer itself. The town was renowned for its tie and dye work: chundaris and lahariyas. There was a great demand for tie and dye work throughout northern India. In chintz production the names of Sanganer and Bagru had by then acquired the status of trademark[9]. Fateh Mohammad and Dost Mohammad, as has been mentioned in arhsatta karkhanazat, were famous calico printers of Jaipur[10]. Chhinpas lived in the qasba in large numbers.[11]



A Sample to show the Sair Jihat of Arhsatta Qasba Sanganer

The arhsattas contain valuable information on sair-jihat i.e. hasil chhapa, hasil bhet, hasil arairooi, hasil paina, hasil tulai and va rooi amal khalsa, etc. It is important to know the proportion of income from dyeing-related industries.[12] The data is given in Table 1.

Table 1

Sair-Jihat in Qasba Sanganer

Total amount of Sair-Jihat in rupees	Collected amount from Chautra Qasba		Baqi Muqarrara Jama Bandi		Item of Sair-Jihat (in Chautra Qasba)		(E) as % of B
					Item	Value	
A	B		C		D	E	
Rs.46213 (Kharif+Rabi) Year VS.1772/ AD.1715	Rs.29020	62.80%	Rs.17193	37.20%	CHAUTRA QASBA	29020	
					1.Amal Sahu Durgadas	626	2.16
					2.Amal Sahu Amarchand	28394	97.84
					HASIL BHET	8	0.03
					Amal Amarchand	8	0.03
					HASIL CHHAPA (Jama month-12)	9272	31.95
					1.Amal Sahu Durgadas	126	0.43
					2.Amal Sahu Amarchand	9146	31.52
					HASIL ARAI ROOI	3383	11.66
					1.Amal Sahu Durgadas	6	0.02
					2.Amal Sahu Amarchand	3377	11.64
					HASIL PAINA	3981	13.72
					1.Amal Sahu Durgadas	300	1.03
					2.Amal Sahu Amarchand	3681	12.69
					HASIL TULAI	6530	22.50
					1.Amal Sahu Durgadas	266	0.92
					2.Amal Sahu Amarchand	6264	21.58
					VA ROOI AMAL KHALSA	355	1.22
						1	0.003
					1.Amal Sahu Durgadas	354	1.22
					2.Amal Sahu Amarchand	5501	18.96
					Miscellaneous (Name of the sahukars are not mentioned)		
Rs.42434 (Kharif+Rabi) Year VS.1775/ AD.1718	Rs.30323	71.46%	Rs.12111	28.54%	1. Amal Ramchand	3247	7.65
					Sobhachand	39187	92.35
					2. Amal Ramchand	30323	
					Man Rai	1954	6.44
					CHAUTRA QASBA	28369	93.56
					1. Amal Ramchand	4	0.01
					Sobhachand	-	-
					2. Amal Ramchand	4	0.01
					Man Rai	4164	13.73
					HASIL BHET		
					1. Amal Ramchand	385	1.27
					Sobhachand	3779	12.46
					2. Amal Ramchand	2530	8.34
					Man Rai	28	0.09
					HASIL CHHAPA	2502	8.25
					(Jama month-12)	4273	14.09
					1. Amal Ramchand	488	1.61
					Sobhachand	3785	12.48
					2. Amal Ramchand	617	2.03
					Man Rai	72	0.24
					HASIL ARAI ROOI	545	1.79
					1. Amal Ramchand	506	1.67
					Sobhachand	1	0.003
					2. Amal Ramchand	505	1.67
					Man Rai	18229	60.12
					HASIL PAINA		
					1. Amal Ramchand		
					Sobhachand		
					2. Amal Ramchand		
					Man Rai		
					HASIL TULAI		
					1. Amal Ramchand		
					Sobhachand		
					2. Amal Ramchand		
					Man Rai		
					VA ROOI		
					1. Amal Ramchand		
					Sobhachand		
					2. Amal Ramchand		
					Man Rai		
					Miscellaneous (Names of the sahukars are not mentioned)		
Rs.17307 (Kharif+Rabi) Year VS.1785/ AD.1728	Rs.14124	81.61%	Rs.3183	18.39%	CHAUTRA QASBA	14124	
					Hasil bhet	1	0.007
					Hasil chhapa	7769	55.01
					Hasil arai rooi	52	0.36
					Hasil paina	-	-
					Hasil tulia	1874	13.27
					Va rooi	-	-
					Miscellaneous	4428	31.35

The documents throw light on prominent sahukars such as sahu Durgadas and sahu Amarchand in V.S.1772/A.D.1715;13 sahu Ramchand Sobhachand and sahu Ramchand Man Rai in V.S. 1775/A.D. 1718;14 who were engaged in the collection of revenue from the dyers on dyeing and printing. These taxes were known as chhapa (printing), arai rooi (raw cotton), paina (water), tulai (weighing) and rooi (cotton).15 The total revenue from sair-jihat collected in the year A.D. 1715 comes to Rs. 46,213 in round figure 16, of which Rs. 29,020 came from Chautra qasba.17 Under this head the collection was made from various items such as chhapa (printing), arai rooi (raw cotton), paina (water), tulai (weighing) and rooi (cotton). The revenue from chhapa constituted 31.95 per cent of the total collection. It is followed by tulai (22.50 per cent), paina (13.72 per cent), arairooi (11.66 per cent) and rooi (1.22 per cent) and other miscellaneous taxes whose revenue comes to 18.90 per cent.18 The percentage of these taxes vary in different years.19 It indicates that

the dyeing and textile industries were flourishing and that the revenue collected from chhapa (sair-jihat) was higher than the other items related to dyeing and printing.

End Notes

1. *K.C. Jain, Ancient Cities and Towns of Rajasthan, Motilal Banarsidas, Delhi, 1972, p. 455.*
2. *Abul Fazl, Akbarnama, translated into English by H. Beveridge, Vol. II, reprint, Low Price Publication, Delhi, 1993, pp.510-511*
3. *John Irwin and Margret Hall, Indian Painted and Printed Fabrics, Vol. I, Calico Museum, Ahmedabad, 1971, p. 110, Cf R.N. Prasad, Raja Man Singh of Amber, Calcutta, 1966, pp.106-19.*
4. *Rajasthan District Gazetteers, ed. Savitri Gupta, Jaipur, 1987, pp. 318-19.*
5. *Arhsatta mujmali, and Arhsatta ek harfi, Arhsatta of different years of Sanganer. V.S.1772/A.D.1715, V.S.1775/A.D.1718, V.S.1785/A.D.1728, V.S.1750/A.D. 1733, V.S.1812/A.D.1755, V.S. 1817/A.D.1760, V.S.1820/A.D.1763, V.S. 1825/A.D.1768, V.S.1827/A.D.1770, V.S.1828/A.D.1771.*
6. *B.L. Bhadani, Peasants, Artisan and Entrepreneur- Economy of Marwar in the 17th Century, Jaipur, 1999, p.360.*
7. *Arhsatta qasba Sanganer, op. cit.*
8. *Rajasthan District Gazetteers, Jaipur, K.K. Sehgal, Jaipur, p. 318.*
9. *B.L. Gupta, Trade and Commerce in Rajasthan during 18th Century, Jaipur, 1987, p. 57. [The saffron colour was dyed with the flower of a tree named kasooli the red with a kind of timber dust named kasoomb. Whereas, blue was dyed with indigo]. Indigo was being very much produced in Sanganer. See different years of Arhsattas of Sanganer, op. cit.]*
10. *B.L. Gupta, Trade and Commerce in Rajasthan during 18th Century, op. cit., p.57.*
11. *Arhsatta karkhanazat (chaapa khana), Bhadrapad Sudi 3, V.S.1794/A.D.1737; Jaipur records available in R.S.A., Bikaner. Also see Sumbul Halim Khan, Art and Craft Workshops under The Mughals: A Study of Jaipur Karkhanas, Primus Books, New Delhi, 2015.*
12. *Arhsatta karkhanazat (chaapa khana), V.S.1823/A.D.1766.*
13. *Arhsatta qasba Sanganer, op. cit.*
14. *Ibid., V.S.1772/A.D.1715.*
15. *Ibid., V.S.1775/A.D.1718.*
16. *Arhsatta qasba Sanganer, op. cit.*
17. *Ibid., V.S.1772/A.D.1715.*
18. *Ibid. For more details see Jibraeil, Economy and Demographic Profile of Urban Rajasthan (Eighteenth-Nineteenth Centuries), Routledge Taylor & Francis Group, London and New York, 2018, pp.86-90.*
19. *Ibid*

Art Activities and Craft Development : A Social History of Medieval Rajasthan (17th -18th century)

Daraksha Siddiqui

Medieval India witnessed a marvelous growth in art and handicraft activities which found the core of the economic development. Rajasthan was one of the leading regions which showed a great deal of progress in the development of variety of art and handicraft activities covering textile production, designing of gem and manufacturing of various handicraft materials. This paper is an attempt to trace the development of art and handicraft activities as evidenced by the contemporary records such as Rajvilas, Budhivilas Veervinod and other similarly so works.

Rajasthan is one of the most famous regions of India known for its art & craft. Due to its craft production Rajasthan is called the "Treasure trove of Indian handicraft."[1] Jaipur, Jodhpur, Udaipur, Bikaner, Kota, Bundi are the famous centers of craft production in Rajasthan. There urban areas and small towns hosted all kinds of manufactures like textile industry, Jwellery (Lacbangles), production of dyes, oils, sugar, brassware, householed utensils, leatherwork tools, wooden things etc.[2] The Majority of craftsman were engaged in manufacturing these items which are the basic necessity of human life and are required by high and low.[3]

The craft production is an important sector of economy and artisans played a significant role in satisfying the needs of rural as well as urban population in 17th-18th century Rajasthan. We find many more sources and archieval documents of different Rajput states which record the existence and functioning of various crafts in rural as well as urban sector at varying level in the 18th century Rajasthan.[4]

The Ghazals, literary composition composed by the Jain Munis employ a single term Chhatispawan to indicate thirty six occupational castes.[5] These are from arisans, Professionals, service caste, performing artists and others. The sources gives us more information about cloth

making and dying like 'Sabha Sringara' and Nuskh-Khutstul Mujjarebatt. The Sabha Sringara, a literary work composed between the 16th and 17th century mention as much as 130 kinds of textiles.[6] The Nuskh Khutsatul Mujarrebatt, an early 18th century chemical treatise, describes 77 operations for making 48 colours and shades.[7]

The evidence on crafts and artisans is scattered in our sources. These sources mostly provide data about cotton carders (Pinjaras), Calico printer (Chinpa), tailor (Darzi), Goldsmith (Sunar) Bangle Makers (lakhera) Cobblerr (Mochis) etc.[8] We get some information about artisans and crafts in Buddhivilas of Bakhat Rama Saha. This seems in these lines.

कहु रतनजड़ित जड़िया सुनार, मुलमची वेगड़ी सिकलगार।

वस्मागर वुनगर वरक साज, कहु बेचत गुड़ी पतंगबाज।।22।।

There is Ratanjadit Sunar, Mulmachi, an artisan expert in silver or zinc plating), Vegadi (a diamond cutter), Sikalgar (An artisans who sharpens the blades), Vasmagar (ash makers), Vunger (Bunker), Varksaaz (type of design which making on the cloths), Gudi Patangbaaz (A kite seller). These artisans are engaged in their work.

काछी कलार लोहे लुहार, मोची कहुं जीन रचै संवार।

बढ़ई पिरजापति आदि और, व्यौपारी फुन कसवी करोर।।23।।[9]

There are Kalaar, (A wine maker and seller), Lohar (ironsmith) cobbler (Mochi is making Jeen) carpenter (Badhai) and Potter (Pirjapati) busy in making items.

The 18th century sources also inform about 'Nurdeah' who stretched and measured clothes, 'Raffugar' who darned the small holes and knotes on the clothes. It is also said about Raffugar that 'some shawls were woven in parts and then a special craftsman (raffugar) joined them so nicely that nobody could see or feel the stitch.'[10] The other one is Daghdhobi whose job was to remove all stains. Naqqash was an artist who created on paper the pattern for the future fabrics. Talimguru had to sort the threads colour-wise and make the interweaving scheme (for choice shawls etc)[11]. There was also a special community or group of workmen known as sanakars or reed-makers.[12]

The craft production was carried out in two sector : Rural and urban. The traditional rural craft production was subordinate to the

agriculture. Secondly the craft production in urban sector was not blended with agriculture. It was an autonomous commodity production done by the professional artisans. Another category of artisans were employed in different departments and Karkhanas of the state. All necessary materials and tools were purchased by the Karkhana officials. There are different karkhanas were also connected with the market.[13] Here a craftsman was able to safely produce the item of high quality and artistic perfection only for a fixed customer.[14] Because these Karkhanas were administred by the Court. This type of Karkhana were situated in urban areas. In Ain-E-Akbari Abul Fazal briefly describes this type Karkhana. The Mughal Karkhanas covered a wide range of craft like textile (manufacturing all kinds of fabrics, shawls, tents carpets etc.) jewelry, perfumery, arms manufacturing etc.[15]

In contemporary records it's mentioned that the Raja Jai Singh, the ruler of Jaipur had made Karkhanas on Mughal pattern in the state. But he changed the name in hindi to persion. In Budhivilas the author has mentioned, thirty-six Karkhanas which were essentially the same as mentioned by Abul Fazal in his Ain.

तहे रहै कारषाने छत्तीष, यह हुतौ कारषाने न नौस

पारसी नाम ता मद्धि दोस, नृप काढ़ि हिदंवी नाम कीन,

गृह संग्या यहठानी नवीन।।152।।[16]

In Veervinod, Kavi Shyamal Das also deals with some departments like SilahKhana (armoury), Panera (Medical), Shilpsabha (crafts), Farrashkhana (textile like tents, Parde & carpets etc.)[17] The managing staff of these Karkhanas were same as Mughal Karkhanas.[18]

Rural Area Artisans :

The craft production of rural area was done by craftsman who were permanent residents of villages such as carpenters, Lohar, Dhedh, Mochi, Kumbhar and Kalal. Generally these artisans manufactured such type of things which were useful to villagers in daily life. like that the village Luhar manufactured domestic items like knives, sickles, axes, yokes and spades. While 'balais' were engaged in tanning of animal skin, whereas chamars prepared shoes, leather buckets (charas) for lifting water from the well. The carpenters makes wood wares.[19] Bikaneri wooden toys are very famous. The rural women also took interest in spinning cotton fibers

on the spinning wheel or charkha apart from their regular domestic work. Hand spinning and hand weaving (including handlooms) both of cotton and woolen textile and leather tanning constitute the main type of cottage industry spread all over in villages and towns of Bikaner districts.[20]

Due to their works these artisans serve as village servants and known in archieval documents as Karu Kamin. The word Karu means a

person who earns his livelihood by doing labour for other and Kamin means a menial. These two words are jointly employed which assigns them a lower social status in society.[21]

Urban area artisans :

In 18th century we can see that due to the decline of Mughal Empire, many artisans began to los their means of subsistence, and were looking for new opportunities of livelihood. They scattered in cities as well as towns (qasba). This type of artisans also came in mid 18th century Rajputana. These artisans brought with them new forms of techniques and designs of arms manufacturing which were now introducing in princely states.[22] Some Autonomous Rajput chiefs established that type of state workshops which fulfil their luxury and military requirements. These state workshops were based on the Mughal Pattern Karkhanas. Amber rulers established this type Karkhanas in 18th century.[23]

They are also shown in these lines-

बहु बसे आय के सिल्पकार, बहु भातिन के घड़ि संग सार।

देहुरे और मंदिर जु आदि, तिनके लावत करि सिल्प आदि।।[24]

Moreover the aristocratic and rich class (as well as others) had developed taste for decorative products in woods, metal, stone and leather etc. Princely demands of these items further expanded the artisan production sector.

Weavings (Julahas)

The sources at our disposal are replete with the references of Julaha. Their main occupation was weaving of clothes. The reference of cotton production in 18th century Rajasthan is referred in our sources. Cotton (ban) was produced in large scale in Kota due to the availability of black soil there.[25] Jaipur, Kota, Bikaner, Jodhpur and Udaipur are the famous centres for weaving production in 18th century Rajsthan.

In Jaipur there was a qasba named Sanganer which was an important centre of weaving, spinning and dying in 18th century. Plain clothes are obtained from Bombay and Ahmedabad and exclusive design with highly decorative motifs are printed on them by skilled craftsman. Bagru was also famous for this. The printing was famous as calico printing and the important items of print were Sarees, bed spread, table cloth, curtain cloth and scarves etc.[26]

Napasar, a place in Bikaner was famous for the superior quality of Lios and it was one of those items which could attract a very good market outside.[27] In Jodhpur weaving was practised at Nagaur. We find some information in archival documents about 'Peskas Tax' which was given by the state to weavers to promote the weaving industry at Nagaur.[28] In Jodhpur the Mahajans were engagged in making the Phulmala (An embroidered silk knotted thread for wearing on the turban).This was very famous and peculiar in Marwar.[29]

We also find some information in 'Buddhivilas' about types of clothes which were sold in the local market-

कहु महुर रूपैया लेत–देत, जौहार विकत सुवरन समेत

कहु वस्त्र पाटके बहुरि स्वेत, महमूदी षासा तनसुषेत।

The Mahur coin (Gold coin bearing the seal of Maharazas) was used in soling the items. There are many types of clothes in the market (Mahmudi, Shasa, Tansuchat and Patka vastra) which were sold in the market for the public. (All the three varieties find a mention in Ain-i-Akbari).[30]

A detail account of textiles made during this period was mentioned in Rajvilas were Mukhmal Massagger, Kunjar, Bajaj etc. The varieties of clothes were decorated by embroidery work.

कितै बहु मौलिक वस्त्र बजाज, मंडे जरबाफ मुखमल साज।

मसज्जर नारिय कुंजर मिश्रु, सुभै सिकलात दुमास सहस्त्रु।।[31]

Tie and dye works

The contemporary records of the 18th century Rajsthan refer to the Calico printers (Chepa) and dyers (Rangarez and neelgars). Calico Printing was very famous in the market. Many sources have given information about the emergence of specialized centres of dying and

printing in the region. In Kota chechat, Basai, Baran and Rampur were the Major centres of Calico Printings.[32]

Sanganer was famous in Jaipur for this. Sanganer had acquired eminence for its tie and dye works particularly in Chundries and Lahariyas all over the Northern India.[33] In Buddhivilas and Rajvilas we get information about Chunri coloring as well as lahariyas colring.

किते रंगरेज रंगै बहु रंग, सु चुनरिपाग कुसुंमिया चंग।[34]

रंगरेज रंगत कहू पट सुरंग, लहरिया जु बांधत करि उमंग।।[35]

The Nathania mulmal was famous in Jaipur. Nathania mulmal and silk mixed with cotton was usually used for Bandhini purpose.[36] Similarly lahariyas and Chunariyas also had found a good market.

The Rajsthani tie and die work was not only popular here in India but was also in great demand in far off places. (European countries)

Bangles and ivory works

Some places of Rajasthan were famous for his its bangles. In contemporary records we find two terms for these artisans e.g Churigars and Lakhras. They were making Chura's of lac so they called lakhras. In Budhivilas there was an information about Chura making and selling in the local market. It was worn by the lower section of society.

कहूं चूरा चित्रत है चतेर कहूं बेचत है तिनकौ लषेर

(The Bangles were manufactured by professionalist and the lac items were sold in the market).[37] Lac bangles and Ivory jewellery was generally used by the women of aristocratic class as well as of the affluent families.[38] Bangles were also manufactured in Jalor, Jaipur and Jodhpur etc. In Jaipur these bangles prepared by a class called Manihars. For the making of lac bangles and other items it was procured from all over the Rajasthan and also from west Bengal and Madhya Pradesh.[39] We get an instance of a lakharra named Karna of Jaipur who brought lac form tonk for making bangles.[40]

Gem and Jewellary

Bikaner, Jaipur and Jodhpur were also very famous for its jewellary, enamel work and stone carvings. The Maharajas of Jaipur were also very fond of ornaments therefore they encouraged and promoted this industry.

Udaipur was also famous for this. Man Kavi depicts in Rajvilas the Jauhari & Sunars work in 'Rajsabha Varnanam.'

कितै तहे जौहरी जौहरवाल, सुमारिक मुध्रिाय लाल प्रवाल
पना पुखराजरू लीलक पच्च, मंडै नग हीर जिंगमिग जच।107।
कितै तहे कुदन रूप सुनार, सुगारत यंत्रनि कट्टत तार।
गढ़ै बहु भूषन भांति बनाऊ, जिंगमिग हीत जरंत जराऊ।।101।।[41]

The above mentioned Poetic lines clearly refered to the production of gem works on a large scale. A number of gem stones were in demand need including laal pravaal' as they were possessed by local middle class in order to maintain their social prestige.

Its also noticable that these lines get information about 'Lal pravall'. It was very precious. It shows that in those times jewellers (Jauhari & Sunar) had this 'Lal pravaal' and they used this in Jewellary making.

Jaipur was also well known for enamel work and Kundan work. The design and the way the jewels are cut in Jaipur represents the admixture of Mughal and Rajput style.[42]

Perfumery

The perfumery sector developed due to the liking of common people as well as that of the rulling and wealthy sections of society. From the contemporary documents we come to know that scents such as amber, agar, Ketaki rose, Kewada and sandal were made in profusion. Rose water from flowers of rose oil from Juhi and Jasmine flowers was prepared.

कितै तहें गंध सुगंधिय तेल, जुही करनी मुगरेली चपंल।
सु केतकी केवरा कुदंरू जाई, गुलाब सु मालति गंध सुहाई।।125।।[43]

In the state of Jaipur there was a separate department of perfumeries popularly knowns as Khusbukhana. This Karkhana made different kind of perfumes like rose, Sandal, khas etc.

Other type of artisans like Carpenter, Darzi, Potter, Ironsmith, Mochi, brassware makers were also developed in 18th century Rajasthan. Many source, and archival documents are scattered here and there which gives us information about these artisans and crafts. These artisans were supported by the state rulers because the items they made were usually used in their regular life. The rulers also wanted to developed their state Capital.

References

1. *Gupta, Savitri, 'District Gazetteer of Jaipur, Mahavir Printing press, Jaipur, 1960, pg. 220.*
2. *Habib, Irfan, 'AnAtlas of the Mughal Empire', Oxford University Press, Delhi, 1982.*
3. *Vanina, Eugenia, 'Urban crafts and craftsmen in Medieval India', Munshiram Manoharlal Publishers, 2004, P.G. No.10*
4. *Chicherou, A.I., 'Mughal Kalin Bharat Ki Aarthik Sanrachna', Tr. Mangalnath Singh, Granth Shilpi, Delhi, 1965.*
5. *Shri Khetal, 'Chittor Ki Ghazal', in Shri Nagar Varnatmak Hindi Padya Sangrah, ed. Munikant Sagar, Surat, 1948.*
6. *Vanina, Eugenia, "Urban crafts and craftsmen in Medieval India', Munshiram Manoharlal publishers, 2004, pg. 30.*
7. *Vanina, Eugenia, "Urban crafts and craftsmen in Medieval India', Munshiram Manoharlal publishers, 2004, pg. 36.*
8. *Chicherov, AI, 'Mughal Kalin Bharat KiAarthik Sanrachna', Tr. Mangalnath Singh, Granth Shilpi, Delhi, 1965, pg. 27.*
9. *Saha, Bakhat Rama, 'Buddhivilas', ed. Padma Dhar Pathak, Rajsthan oriental research Institute, Jodhpur 1964, pg. 19.*
10. *Vanina, Eugenia, "Urban crafts and craftsmen in Medieval India', Munshisam Manonarlal Publishers, 2004, pg. 37.*
11. *Vanina, Eugenia, "Urban crafts and craftsmen in Medieval India', Munshisam Manonarlal Publishers, 2004, pg. 40.*
12. *Vanina, Eugenia, "Urban crafts and craftsmen in Medieval India', Munshisam Manonarlal Publishers, 2004, pg. 40.*
13. *Vanina, Eugenia, "Urban crafts and craftsmen in Medieval India', Munshisam Manonarlal Publishers, 2004, pg. 95.*
14. *Vanina, Eugenia, "Urban crafts and craftsmen in Medieval India', Munshisam Manonarlal Publishers, 2004, pg. 99.*
15. *Vanina, Eugenia, "Urban crafts and craftsmen in Medieval India', Munshisam Manonarlal Publishers, 2004, pg. 94.*
16. *Saha, Bakhat Rama, 'Buddhivilas', ed. Padma Dhar Pathak, Rajsthan oriental research Institute, Jodhpur 1964, pg.2*
17. *Dadhwadia, Shymaldas, Veer Vinod, ed. Dr. Raghubeer Singh, Mayank Prakashan, 1986, pg. 143-146.*
18. *Op.cit. pg. 2*
19. *Chicherov, AI, 'Mughal Kalin Bharat KiAarthik Sanrachna', Tr. Mangalnath Singh, Granth Shilpi, Delhi, 1965, pg.4*
20. *Sehgal, KK, 'District Gazetteer of Bikaner', Government centre Press, Jaipur, pg. 168-169.*
21. *Parvana Bahi Jodhpur.*
22. *Halim Khan, Sumbul, 'Art and Craft workshops under the Mughals', primus book publication, 2014, p.g. No. 432-435.*
23. *Roy, Ashin Kumar, History of Jaipur city, Manohar Publishers and distributers, Jaipur 1978, pg. 56-57.*
24. *Saha, Bakhat Rama, 'Buddhivilas', ed. Padma Dhar Pathak, Rajsthan oriental research Institute, Jodhpur 1964, pg.18*
25. *Sethia, Madho Tondon, 'Rajput polity', Rawat Publication New Delhi, 2003, pg. 240*
26. *Gupta, Savitri, 'District Gazetteer of Jaipur, Mahavir Printing press, Jaipur, 1960, pg.22*
27. *Sehgal, KK, 'District Gazetteer of Bikaner', Government centre Press, Jaipur, pg.169*
28. *Sanad Parwana, 'Bhai Jodhpur', No.14*
29. *Agrawal, B.D., 'District Gazetteer of Jodhpur', Mahavir Printing press, Jaipur, 1960, pg. 153*
30. *Saha, Bakhat Rama, 'Buddhivilas', ed. Padma Dhar Pathak, Rajsthan oriental research Institute, Jodhpur 1964, pg.17*
31. *Mankavi, Rajvilas, E.d. Motilala Menaria, Nagri Pracharini Sabha, Kashi, pg. no. 35.*
32. *Sethia, Madho Tondon, 'Rajput Polity', Rawat Publication, New Delhi, 2003, pg. 239*
33. *Gupta, Savitri, 'District Gazetteer of Jaipur, Mahavir Printing press, Jaipur, 1960, pg. 221*
34. *Mankavi, Rajvilas, E.d. Motilala Menaria, Nagri Pracharini Sabha, Kashi, pg. no.37.*
35. *Saha, Baknat Rama, 'Buddhivilas', ed. Padma Dhar Pathak, Rajsthan oriental research Institute, Jodhpur 1964, pg 18.*
36. *Gupta, Savitni, 'District Gazetteer of Jaipur, Mahavir Printing press, Jaipur, 1960, pg.221*
37. *OP. cit, pg. 18*
38. *Dadhwadiya, Shymaldas, Veervinod.pg. 114.*
39. *Gupta, Savitri, 'District Gazetteer of Jaipur, Mahavir Printing press, Jaipur, 1960, pg.221*
40. *Sethia, Madho Tondon, 'Rajput Polity', Rawat Publication, New Delhi, 2003, pg.*
41. *Mankavi, Rajvilas, E.d. Motilala Menaria, Nagri Pracharini Sabha, Kashi, pg. no.35.*
42. *Gupta, Savitni, 'District Gazetteer of Jaipur, Mahavir Printing press, Jaipur, 1960, pg.222.*
43. *Op. cit. pg. no. 36.*

The Contribution of Rajputs in the Construction of Ghat Monuments during Mughal Benares

Rafiullah

Indian art and architecture are very famous in the world such as Taj Mahal of Agra, Lal Qila of Delhi, and Jama Masjid of Delhi. As earlier, Indian architecture developed as Hindu architecture which is exemplified in the temples of the early medieval period. Besides, for the protection, ancient texts Arthashastra also counted like seven types of durg (castle) which were invigorated with a different style. During medieval India, the architecture developed a new Indo-Islamic India and some Iranian influences became the subjects of architecture. The Muslims built mosques for prayer, madarsa for education, and tomb for their grave, residential building for the stay. When Babur (d. 1530) conquered India, he also constructed the Chahar bag and monument. Humayun the successor of Babur, ruled India and constructed some building like Din-Panah of Delhi. During the medieval period, development of architecture can be seen in the four-way. First, when Turks became the ruler of Hindustan, they built their mosque, mansion, tomb and school building. They migrated from Central Asia and were influenced much from Iran. Apart from these, the Turks were followers of Islam and sharia, so they did not build any human or existent kind like human, animals, birds etc. Second, Afghani architecture, which was based on Indian style of art and the glimpses of that may be pointed out in the buildings of Tughlaq, Syed ruler, and Lodhi period as well as Sharqi Dynasty of Jaunpur. Third, the architecture of early Mughal Emperors whith illustration depicted in the building and garden buildings of Babur, Humayun and Sher Shah. And fourth and last is, from the period of Akbar to Aurangzeb. In the period of imperial Mughal, some inventions were made with the monuments of those time. Such as, in the reign of Akbar, red sand stone was used for the construction of buildings. Apart from these, some glimpses of Buddha and Hindu style were followed in

the monuments of Akbar. Furthermore, during the period of Jahangir and Shahjahan, white marbles and precious stones became a part of the decoration which is called as Pietra-dura.

The sacred city of Benares is one of the most famous spiritual centres of India. This is not only a holy religious site but also a centre of economic and different cultural activities. We see that Benares was an important sarkar under the suba of Allahabad during the Mughal period. This city was located on the bank of the Ganges.[1] Since time immemorial Benares has been linked with many famous cities of India both by road and river. The constancy of the Mughal rule gave an umbrella under which people from all over India came and gave new life to the city. During the Mughal period, the main city was a paragana administered by Rajputs.[2] These Rajputs undertook different types of construction activities in Benaras and this is reflected in buildings like Maan Mandir Ghat, Rana Mahal of Sisodiya, and Draupadi Kund of Todarmal. Benares was a religious centre, therefore some immigrants also settled in Benares and built their houses there. For instance, Sundardas came to Benares from Rajasthan for the purpose of study in 1663 with partner Rajjab and Jagjivan.[3] Apart from these, Benares was also influenced by the culture of Rajasthan. In this paper, an attempt has been made to seek the contribution of Rajput and Rajasthan in the field of education, astronomy, and architecture in Mughal Benares. In 1738, 1454 temple and 272 mosques were situated in the region of Benares.[4] During the Mughal period some temples, ghats, mosque, pond, and other buildings were constructed for further uses. Girvanpadmanjari also mentioned names of some ghats near Punchganga ghat, in which, Manikarnika ghat was also very famous for the gathering of crowed and fairs.

The architecture of Rajputs achieved a high position in the history of architecture under the Mughals. During this time Rajput rulers constructed their monuments with their local or regional influences along with the additions of certain Mughal features of the architecture.[5] Chittor, Bikaner, Jaisalmer, Jodhpur, Nagaur and Jaipur are some of the famous cities where the Rajput architecture is well-reflected. The basic feature of Rajput architecture may be seen in the buildings of these cities which were built in the classical way of indigenous architecture.[6] It may be said that during the period of Rana Kumbha (1433-1468) some new architectural

features were added in the architecture of Rajput.[7] He was the spearhead of the cultural reformation in Rajputana. Most of the structures of Rajasthan were constructed infort style (durg). For instance, the fort of Bikaner was constructed with largely curved arches and colourful plasters and sandstone of Aravali mountain range.[8] Sculptures were a famous feature of the embellishment of these monuments. The pillars were built in slope and simple style. Windows were the main features of the architecture of Rajasthan.[9]

Maan Singh (1589-1611) was an important noble in the reign of Akbar (1556-1605), who was a Maansabdar[10] during Akbar's time.[11] The history of Benares region would not be completed without a mention of the contributions of Raja Maan Singh. It may be said that the Rajputs of Rajasthan constructed their colony at the riverside of Ganges, for the opportunity of rituals and customs in Benares. For instance, Rana Surjan Rao came to Benares for the moksha at the last time of his life.[12] Surjan Rao also built pools and some buildings there but there are no remains of them. Mullah Abdul Qadir Badayuni remarked that Maan Singh and Shamsuddin came to Benares, but he did not mention about there activities.[13]

The seventeenth-century text GirvanpadaMaanjari mentioned about Maan Mandir Ghat which was built by Raja Maan Singh in the year 1586 at the riverside of Ganges.[14] But E.B. Havell argued that it was built in 1600 AD. It is a general perception that Maan Singh decided to build thousands of temples in Benaras in one day, but he could not succeed and sculptured some stones for this purpose.[15] This building was a college where the princes of Rajpoot nobles used to study astrology, maths, and Sanskrit. Tavernier, a French traveller, also visited that school and mentioned some information related to it.[16] He also informed us that the sons of royal families studied there. After some time, Jay Singh the grandson of Maan Singh, on the top floor of this building constructed an observatory in 1693.[17] Sir Robert Barker reported to his senior officer Sir John Pringle and informed him that the observatory of Benares was built by Jai Singh on the order of Mughal Emperor Akbar.[18] But he made some mistake as Jai Singh did not serve under Akbar, he had 7000/6000 Maansab under the Mughal emperor Muhammad Shah.[19] The Maan Mandir Ghat which is also known as Manasarovar Ghat is a mixture of Mughal-Rajpoot style of architecture. This building is situated between Dasasamedha and

Manikarnika Ghat. This is one of the oldest buildings of Benares. The entire structure is constructed with the stone of Chunar and lime. It is very famous for its beautiful balconies and window architecture.[20]

The ceiling of the Maan Mandir is decorated with a colourful design. The ceiling of the Maan Mandir supported with the wooden obstinacy. The drawing of the ceiling is decorated in five rows and each row is different. The red, green, yellow and golden colours were used in those pictures.The balcony of the building was the main feature of the times of Raja Maan Singh, which was decorated and sculptured with stone.[21] Madhuri Desai, a modern scholar, identifies this structure as a haveli (presidential palace) and argues that balcony was constructed for the purpose of jharokha- darshan style of Mughals and this is also cited from the structures of Fatehpur Sikri.[22] She also divides the ground plan of Maan Mandir in Zanana Mahal and Mardana Mahal.[23] But it may be said that the building was built for the purpose of college as Tavernier mentioned it. Apart from these, the balcony of Maan Mandir situated at the side of Ganges, then how it can be used for jharokha. It may be said that it was also built for the purpose of merriment of watching the rising sun and Ganges.

The features of architecture of Maan Mandir Ghat is totally different from that of Rana Mahal of Sisodiya Rajpoot of Rajasthan.[24] Maan Mandir was divided into a hall and two rooms, were constructed on both sides with the courtyard on the outside. Apart from these, two large rooms were built in both corners. The entrance gate is attached to the main hall. The way of the entrance portal of every room and hall was associated with it. The building was built on a high ground keeping in mind the flooding. One distinct feature of difference can be seen if we observe the beautifully carved brackets. In most of the medieval buildings, there are brackets with slanting eaves or chajjas but in this structure, there are flat eaves or chajjas. The arches of the gate are slightly different from the Mughal arches as they seem to be multi-foliated but there is no pointed apex, the arches seem to be semi-circular and curved.

The Maan Mandir building can be seen as a transition in architecture from the 16th century to early 18th century of the Mughal architecture. In the architecture of Maan Mandir, two great personalities, Maan Singh and Jai Singh contributed. The difference between architectural patterns

may be seen in the brocade of walls and inside of the Jantar-Mantar of Benares.[25] In the observatory of Benares, the equipment named Samrat Yantra is also constructed like other Jantar-Mantar Delhi, Ujjain, Mathura etc. but it is small than others. Besides, some other device built i.e. Nadivalaya Yantra, Digansh Yantra and Chakra Yantra.[26]

James Princep a British scholar, drew the map of Benares and sketch the historical position of Maan Mandir. The area of the Maan Mandir is 0.61 hectare near the Someshawar Temple.

No building in the town, now standing, can be traced to higher antiquity then the time of Maan Singh, who was Raja of Jaipur in the …the geographical position of Benares was determined by Reuben Burrow, who places the Maan Mandir, or observatory, in lat. 25°18'36"N. and long. 82°59'45" E. More recent make the latitude 3 seconds and the longitude about two miles less.[27]

Another main Ghat is Rana Mahal, which was constructed by Rana Jagat Singh (1628-52) of Udaipur in 1672. It is a myth that when Rana Jagat Singh visited Benares he stayed here, but the structure was built after him. He became the Raja of Udaipur after the death of his father Maharaja Karn Singh and obtained 5000 of Maansab from Mughal Emperor Shah Jahan.[28] He also donated a lot of gold and other precious goods in the favour of Brahmins of Benares.[29] The architectural features of the Rana Mahal were designed simply and built with the features of Hindu and Sultanate architecture of pavement and mini domes at corners in the fort style.[30]

On the basis of the above-mentioned ideas, concepts terms and arguments, I have attempted to emphasize the explicit characteristics of the architecture of Maan Mandir Ghat. Apart from their specific architectural characteristics these building had also an important role in the expansion of educational and cultural activities, like the observatory built at Maan Mandir Ghat played an important role in the study of astronomy and metrological studies in Mughal Benares. These buildings also had cultural importance. They provided a sacred space for different kinds of rituals and offering at the banks of holy Ganges. Apart from these, Bindhu Madhav and Adi Keshav temple were constructed with affording of Rajputs of Rajasthan. Thus the Kachawahas brought Vaishnvasm idea of 'Krishna

Bhakti' which probably influenced by Mathura's pattern of Bhakti and constructed some temples in the city of Benares.

References

1. *Abul Fazl, Ain-i-Akbari, Vol. II, Low Price Publication, Delhi, 2011, p. 169. See for details, Alexander Cunningham, The Ancient Geography of India, Low Price Publication, Delhi, 2006 (1990), pp. 368-369.*
2. *Ibid, p. 173.*
3. *Swami Narayandas (ed.), Sundardas Garnthavali, Veer Seva Mandir Trust Prakashan, Pushkar, Samvat 2046, p. 02.*
4. *M. A. Sherring, Benares the Sacred City of Hindus, Pilgrims Publication, Varanasi, 2016 (1868), p. 31.*
5. *Catherine B. Asher, The Cambridge History of India Architecture of Mughal India, Cambridge University Press, New Delhi, 1995, p. 310-314.*
6. *Saleem Zaweed, "Architecture Techniques in Palatial Structure of Western Rajasthan" Proceeding of Indian History Congress, 74 (2013) p. 878.*
7. *Saleem Zaweed, "Rajput Architecture of the Mewar from 13th to 18th centuries", Proceeding of Indian History Congress, 73 (2012), p. 402.*
8. *Raghavendra Singh Manohar, Rajasthan Ke Pramukh Durga, Rajasthan Hindi Granth Academy, Jaipur, 2018, pp. 116-117.*
9. *H. Geotz, "The First Golden Age of Udaipur: Rajput Art in Mewar during the Period of Mughal Supremacy" Art Oreintalis, 02, 1957, pp. 429-432.*
10. *Mansab was a post which created in the reign of Akbar. M. Athar Ali, The Apparatus of the Empire Awards of Ranks, Offices and Titles of the Mughal Nobility (1574-1658), Oxford University Press, Delhi, 1985, pp. XI-XIII.*
11. *Shah Nawaz Khan, Ma'athir-ul-Umara, tr. H. Beveridge, Vol. II, Low Price Publication, Delhi, 1999, pp. 48-56.*
12. *Chandrasekhar, Surjancharitmahakavyam, ed. & tr. Chandradhar Sharma, Banaras Hindu University, Varanasi, 1952, p. 216.*
13. *Abdul Qadir Badayuni, Muntkhabu-t-Tawarikh, tr. George S. A. Ranking, Vol. II, Atlantic Publisher & Distributer, New Delhi, 1990, p. 357.*
14. *Varadraj, GirvanpadaMaanjari, ed. Umakant P. Shah, p. 02.*
15. *Motichandra, Kashi Ka Itihas, Vishwavidhyalaya Prakashan, Varanasi, 2010 (1962), p. 167.*
16. *V. Ball (ed.), Travels in India by J. B. Tavernier, Vol. II, Low Price Publication, Delhi, 2015, p. 183.*
17. *Diana L. Eck, Banaras: City of Light, Penguin Books, 2015 (1983), p.*

228.
18. *Sir Robert Barker, An Account of Brahmin's Observatory at Benares by Sir Robert Barker in a Letter to Sir John Pringle (29 May 1777).*
19. *Zahir Uddin Malik, The Reign of Muhammad Shah 1719-1748, Icon Publications Pvt. Ltd., New Delhi, 2006, p. 386.*
20. *E. B. Havell, Benares the Sacred City, Vishwavidayalaya Prakashan, Varanasi, 1990, p. 126.*
21. *James Prinsep, Benares Illustrated in a Series of Drawing by James Prinsep, Vishwavidyalaya Prakashan, Varanasi, 1996 (1833), p. 31.*
22. *Madhuri Desai, Banaras Reconstructed: Architecture and Sacred Space in a Hindu Holy City, Orient Black Swan, Delhi, 2017, p. 45.*
23. *Ibid, p. 46.*
24. *Ibid, p. 49.*
25. *G R Kaye, The Astronomical Observatories of Jai Singh, Archaeological Survey of India, New Imperial Series, Vol. XL, Calcutta, 1918, p. 64.*
26. *Gorakh Prasad, Bhartiye Jyotish Ka Itihas, Prakashan Bureau Uttar Pradesh Sarkar, Lucknow, 1956, p. 233.*
27. *James Prinsep, op. cit. p. 12.*
28. *Gauri Shankar Hirachand Oujha, Udaipur Rajya Ka Itihas, Vol. II, Ajmer, Samvat 1988, p. 521.*
29. *Ibid, p. 527.*
30. *James Prinsep, op. cit., p. 63.*

Impact of Rajput Culture on Mughal Culinary Culture

Safia Shahzad

Indian culture is the most unique and colorful in the world. Culture includes values, beliefs, language, art, craft, festivals, music, food, architecture, costumes, and pattern of communication, practices that people share in common. And when it comes to food, India has one of the most aromatic and colorful cuisine in the world. Indian cuisine is famous for its large variety of dishes. This variety comes from various regions, for example, North Indian cuisine, South Indian cuisine, Bengali cuisine, Hyderabad cuisine, Kashmiri cuisine, Gujarati cuisine, Punjabi cuisine, Rajasthani cuisine, Mughlai cuisine, and so on. During ancient and medieval times, people from different culture came to India and left a long lasting impact on every aspect of culture including culinary culture. During medieval time, Mughals came to India from Central Asia, were had a rich cultural background.[1] Mughals, who had an elevated impact on literature, music, and architecture, also revolutionize the culinary art. They mixed Indian spices, and Rajput Cuisine with the Persian and Central Asian cuisines, refining it to please eyes, plate, as well as the stomach. Mughals changed country's cooking style by inter mingling the Persian and Central Asian cuisine with Indian Rajput cuisine, and produced most delicate Mughal cuisine. Being royals, Mughals always had an amazingly delicious variety of food and they used to maintain their kitchen as treasures.

'Culinary', word is related to the practice of cookery or the activity or skill of cooking. According to Priscilla Parkhurst Ferguson, cuisine is

"…the code that structures the practice of food and allows us to discuss and to represent taste".[2]

Zaheeruddin Babur, who established the Mughal Empire in India, in his autobiography Baburnama, discussed food and feasting tradition and dinning customs of India. After defeating Ibrahim Lodi, the last of the Delhi Sultans, Babur wanted to try Hindustani dishes, he ordered that his

predecessor's cooks be brought to him, and four were employed[3]. Ibrahim Lodi's mother tried to murder him by enlisting one of the cooks to sprinkle poison on his meal of bread, hare, fried carrots and dried meat.[4] The attempt failed. Servants, who were behind this, were punished severely.[5] Humayun temporarily lost the empire to Sher Shah Suri, and with his wife, Humayun took shelter at the Safavid court in Persia, where Shah Tahmasp received him in impressive manner.[6] In 1555, Humayun regained his empire and ruled only for few months, and little is known regarding his culinary practice.

From Akbar's reign, Mughal imperial kitchen became a laboratory for Mughal culinary practices. Even Abul Fazl devoted some chapters to this in his profound work Ain-e-Akbari.[7] He starts with the saying that "His Majesty (Akbar) even extends his attention to this department, and has given many wise regulations for it...."[8] Akbar divided his household into various departments with a separate staff to look after the work. The Matbakh or imperial kitchen, which prepared the dishes for the emperor; the Abdar Khana which supervised drinking water, and other drinks like sharbat and wine; the Mewah Khana which provided fruits; the Rikab Khana or bakery, provides bread.[9] Sometimes Akbar himself checks everything related to these departments.[10] All these show a big concern of Akbar for culinary other than, politics, administration, army, and economy. Jahangir considers himself as a connoisseur of art and his claim expressed in his refinement of taste.[11] This shows in the field of food as well. On several occasions throughout his memoirs, Jahangir composes remarks on the taste of various foods that he tasted. On one occasion, in comparing the flavours of various species of fish, he said, "…only a person with refined taste could discover that the taste of the rohu is a little better."[12] Jahangir's cookery experiments with hunted meat, and taste of various fruits, went beyond the appealing taste of a particular variety of flesh and fruit, but satisfied his art of tasting. Shah Jahan preserved and slightly extended the legacy of his forefathers. Shah Jahan's reign was known for flourished literature, poetry, and also for cuisine. During Shah Jahan's rule, art of cuisine was at its peak.[13] Techniques like Tandoor cooking and dum cooking were used on a large scale. His reign was a period of peace and this is well reflected in the cuisine, which was very extensive and displayed a variety of dishes. Another characteristic feature is indeed the

obvious Indianisation in the cooking style and ingredients used. Aurangzeb had little desire for any kind of enjoyment since he took over the throne. Travernier mentions that since he became an emperor, he abstained from any kind of flesh and drink except drinking water.[14]

Almost all the great Mughals had a good taste that is why they had a large variety of victuals, beverages, and fruits at their table.

Priscilla Parkhurst Ferguson said, "cuisine cannot exist without food; nor can it survive without words."[15] This does not mean that cookbooks are an identical form of particular cultural information; they vary greatly in style, content and context. It shows the commonalities that are reflective of culturally shared concepts of taste, food, and cuisine. Secondly, culinary texts were not only practical guides, but often provide an overall view of the period in which it was written. This may be clearly seen in the manuscript named, "Aiwan-e-Niamat"[16], which is attributed to Emperor Shahjahan. The text contains a number of recipes commonly found in Indo-Persian cookbooks of this period. These includes chapters, each devoted to , nan, qalyyas, dopiyazas, bhartas, kababs, rice dishes such as tahiris, pulaos, zerbiryans, and khichris, as well as khaginas, achars, and halwas. This is followed by chapters dealing with dishes such as bhartas, karahi with barii(dish with a chickpea flour base served with fried dumplings) dals (pulses and lentils), chani (chutney), sag (greens) and achar. The last chapter covers jams (murabba), achar, para, sweets (sharana), warm pudding (-alw-) and finally some basic recipes for yoghurt. Contents of this manuscript show that Indian dishes were added to the royal cuisine of Mughals.

Cooking opens the doors of many cultures, and geography plays a very significant role. When they came to India from Central Asia, where they had their contacts with Armenians, Tajiks, Tatars, Turkemans, etc. with them, Mughal brought all the influences to India. Akbar's alliances with Rajputs helped in broadening the field of mixing and understanding both the cultures and created most of the best 'Mughal Cuisine' in which Indian spices and dishes mixed with the Persian and Central Asian recipes of dishes and produced delicacies. With Indian Rajput, Central Asian, and Persian influences, culinary art during Mughal era reached the peak of sophistication.

References

1. *i.e, Timurid and Persian; Mughals have their routes from Taimur, their forefathers ruled many parts of Central Asia and they had very direct contact with their direct neighbours, i.e. Persians.*
2. *Ferguson, Priscilla Parkhurst Accounting for Taste, University of Chicago Press, 2006, p. 18.*
3. *Babur, Baburnama, tr. Beveridge, New Delhi, 1970, p. 518.*
4. *Ibid, pp. 541-43, 590, 654.*
5. *Ibid, pp 541-43; GulbadanBano Begum, Humayunama, tr. A. S. Beveridge, New Delhi, 1983, p 108.*
6. *JauharAftabchi, Tezkirah-al wakiat, tr. Stewart, Delhi, 1972. Pp 73-74,: Bayazid Bayat, "Tarikh-iHumayun", Calcutta, 1941, Persian text, p. 15.*
7. *AbulFazl, Ain-e-Akbari, tr. Blochman, Calcutta, 1977. Pp59-61.*
8. *Ibid, p 59.*
9. *Ibid, pp 57-59, 61.*
10. *Ibid,p 59.*
11. *Jahangir famously claimed that he could distinguish the artists who had painted different parts of a portrait:, Jahangir, Tuzuk-e- Jahangiri, tr. Roger, Delhi, 2006. p 354.*
12. *Ibid,p, 414.*
13. *Salma Husain, Nuskha-e-Shahjahani, Pulaos from the Royal Kitchen of Shahjahan, New Delhi, 2007.pp.6-9.*
14. *Travernier, Travels in India, tr. V. Ball, New York, 1889, p. 313.*
15. *Ferguson, Accounting for Taste, p. 19.*
16. *'Aiwan e Niamat', MSS NO. 187, available in Department of History, Aligarh Muslim University, Aligarh. (This manuscript bears no date or colophon. The text stars with the name of Shahjahan, and this is the only simple single line of introduction)*

Fatehpur of the Kyamkhanis : The Capital City of Bagad

Prateek

Bagad is a semi-arid area of the great Thar Desert in the North West India. The area encompasses some portion of the modern states of Rajasthan, Haryana and Punjab. It signifies a geographical area cum cultural zone; and the people and dialect of Bagad is known as Bagadi. In local parlance Bagad amounts to an arid and unproductive land. Bagad came under the subas of Ajmer and Dilli. Under suba Ajmer, sarkar-Nagor, Fatehpur and Jhunjhunu were the main parganas whereas most of the Bagad was under suba Dilli, sarkar Hisar-i Firuza. The parganas of Bagad region in sarkar Hisar-i Firuza were Sirsa, Beniwal, Siwani, Puniya, Sheoran, Sidhmukh, Tosham, Bhiwani, Nohar, Bhatner, Hisar-i Firuza and Fatehabad.

Fatehpur is currently known as Fatehpur Shekhawati, giving it a distinct identity of belonging to the region of Shekhawati. However, Fatehpur was built and nurtured by Kyamkhanis whose legacy have been downplayed and forgotten by the Shekhawats. The city saw a steep decline during the Shekhawat period and lost upon the former glory it had achieved during the previous rule, so the story of Fatehpur needs to be revisited. The city of Fatehpur was founded by Fateh Khan Kyamkhani in 1448 A.D. At that time, the region was known as Bagad and after the foundation of Kyamkhani rule in the region, the Kyamkhanis became famous as the 'Bagadis' that show the identity of the rulers getting defined by the territory of their rule. However, Bagad had another historically important city of Jhunjhunu that was ruled by Kyamkhanis but Fatehpur emerged as the centre of Bagad.

Kyamkhanis were Chauhan Rajputs who hailed from Dadrewa which is in Churu district at present. They ruled over a small estate of Dadrewa during Sulatanate period when Firuz Shah Tughlaq took the son of the chieftain Mote Rao Chauhan to Hisar and made him his slave. The boy Karam Chand was then converted with the help of the Chahar Qutub

Chishti Sufis of Hansi and was named Kayam Khan which in Rajasthani is pronounced as Kyamkhan. Kyamkhan became the muqti of Hisar-i Firuza during the Syed Khizr Khan's period but was put to death by him in June 1419 after a failed attempt to coup. The descendants of Kyamkhan were then known as Kyamkhans. They took the advantage of a weak Delhi Sultanate during Syed dynasty and founded their rule in Bagad at two places in Jhunjhunu and Fatehpur. Jhunjhunu was ruled by Muhammad Khan who was the son of Kyamkhan whereas Fatehpur was founded by Fateh Khan who was the grandson of Kyamkhan and son of Taj Khan.

The Brahmbhat of Fatehpur Kishanlal's record show that Fateh Khan invited important traders and Brahmins from Hisar in V.S. 1503 or 1446 A.D. The record says that prominent people who came along with Fateh Khan were Khemraj Chaudhary, Tuhinmal Sarawagi, Bhotan Das Purohit, Ishwari Das Bhojak, Bastiram Khedwal etc.[1] Fateh Khan stayed at village Rinau till the city was built and formally inaugurated in 1451 A.D.[2] Fateh Khan got the support of religious groups from the beginning such as Nathpanthis, Jains and Sufis. The Kyamkhanis gave land grants and monetary help to all these groups which helped them build a rapport with these groups and eventually established Fatehpur as a deeply religious place where sants from various ideologies stayed and increased Fatehpur's reputation. It was entirely the ruler's prerogative to decide which buildings are to be constructed and who should be allowed to reside in their territory and it was the extension of their ideology which got manifested and reflected in the scheme of settlement of a city or town. The Kyamkhani rulers also called as 'Diwans'[3] very consciously developed the city of Fatehpur.

There are some literary texts which show that Fatehpur had become the paramount city of Bagad. Niyamat Khan 'Jaan' in Kyamkhan Rasa has used the term 'Bagadpati' or the masters of Bagad for the Nawab Sardar Khan Kyamkhani. The Kyamkhanis became synonymous to Bagad:

रूप उजागर बागड़ को पति
लागत है दिन ही दिन नीकौ।[4]

The celebrated local Dadupanthi sant Bhikhjan wrote that Bagad is situated in Jambu Dweep or Jambu Island wherein a city of cities Fatehpur is situated.

जम्बूद्वीप देश तहाँ बागर, नगर फतहपुर नगरां नागर
आसि पासि तहाँ सोरठ मारु , भाषा भली भाव पुनि सारू

राजा तहाँ अलफखां जानऊ , चाहवान हठी का पहिचानहु
ताकर कटक न आवे पारा , समद हिलोरनि क्यों अधिकारा।[5]

Another example by Bhikhjan tells that Fatehpur is the paramount city of Bagad where Chauhan king rules all around.

बागर मधि गुन आगरो , सुबस फतेहपुर गांव.
चक्रवतह्न चौहान नृप, राज करत तिहां ठाँव।।[6]

The region of Bagad was an arid region that was dependent on agro-pastoralism so the Kyamkhani Jalal Khan cultivated beed extensively in the Fatehpur patti which helped in sustaining agro-pastoralism. The resources were limited so the money was spent judiciously on Bawadis and wells to provide water to the city. It showed their practical and utilitarian approach. The Kyamkhanis were Muslims but they did not built lavish masques but only a small and simple mosque inside the fort. Almost all the iconic buildings of medieval Fatehpur were constructed during the Kyamkhani rule from 1448 to 1736 that characterises Fatehpur even today. Few of the examples are following:

i. Bawadi: It was constructed during Alaf Khan's reign in 1521 A.D. It is one of the most iconic building of Fatehpur which was famous all over Rajputana for its depth and grand structure.

ii. Fatehpur Fort: It was first built in 1451 A.D. by Fateh Khan but palaces and other structures were added eventually by different rulers. The fort was guarded by moats and was surrounded by dense trees and then high rise sand dunes. The Beed also added to the protection of the fort. The fort was about 2 km in length and 1 km in breadth. The outer wall was 25 feet broad and 70 feet high.

iii. Ganganath Temple: It was built in honour of Ganganath who belonged to Nathpanth. He not only supported Fateh Khan in construction of the city but also fought against Rao Kandhal's army when he had attacked the city in absence of Fateh Khan. The Nawabs had great faith in Ganganath.

iv. Alaf Khan's Tomb: It was made in remembrance of Nawab Alaf Khan who was very popular among the masses. Alaf Khan was revered as a pious man who had magical powers and was believed to have solved poor peoples' problems. Therefore, his tomb was also called dargah where common people came to pray regularly.[7] It

was also the first tomb made in Fatehpur of the Kyamkhani Nawabs.

Fatehpur was also an intellectual, educational and spiritual abode. The Kyamkhani nawabs were interested in education and learning themselves and asked the Sufis of Hansi to settle down in Fatehpur for teaching and guiding them. The number of manuscripts found belonging to Fatehpur suggests that a number of scribes were living at Fatehpur during Mughal period who wrote and copied texts on clients' demands. It was also home to Nirgun sants of Dadupanth, Niranjanis and Nathpanth. They were involved in theological debates and produced high standard texts in furthering their cause of spirituality. The Kyamkhanis supported the Nirgun sants and subscribed mainly to Sufism and Nirgun philosophy of religion. Their support encouraged sants like Pragdas to setup a Dadu dwara in Fatehpur which was joined by sant Sundaras as well. He was the most prolific and learned writer of Dadupanth and stayed in Fatehpur for almost 70 years. He had cordial relations with Nawab Daulat Khan which is even described in Raghav Das's celebrated Bhaktamal. It is also probable that Niyamat Khan 'Jaan', also had amiable relations with him and probably learned from him as his writings clearly show the impact of Nirgun Bhakti. He was known as Sant Saundar Das Fatehpuriya. His following lines for Fatehpur's women are very famous:

सूचि अचार कछू न विचारत मास छठे कबहुँक सनहाहीं
मुंड खुजावत बार परे गिरते सब आटे में वोसनि जांहि
बेटी रू बेटन को मल धोवत बैसेल्ह हाथन सों अन्न खाँलीं
सुन्दरदास उदास भयो मन फूहड़ नारी फतेहपुर माहीं।।[8]

The tradition of learning and writing was continued by sants like Bhikhjan. Fatehpur became a centre for spiritual discourse wherein sants, sadhus and sufis flocked regularly and stayed at many maths, temples and ashrams setup by people ascribing to different ideologies.

The importance of Fatehpur as the capital of Bagad was firmly established during the medieval period especially during Mughal period when it reached the zenith of prosperity. It not only became a prominent military centre but also happened to be the seat of learning and spirituality. It is not less than wonder that such a small principality with such limited resources could grow into a flourishing intellectual centre. The contribution of Kyamkhani Nawabs should be duly acknowledged in this regard.

References

1. *Ratanlal Mishra, Kyamkhani Vansh ka Itihas evam Sanskriti, Jodhpur: Rajasthani Granthagar, 2002, p.74.*
2. *Inscription on the Jain temple of Fatehpur is dated 1448 A.D. whereas Niyamat Khan 'Jaan' in Kyamkhan Rasa has mentioned 1451 A.D.*
3. *Niyamat Khan 'Jaan,' the famous writer of Kyamkhan Rasa has used the title of 'Diwan' for the rulers of Fatehpur and not 'Nawab' which is more famous. The inscriptions and literary sources also does not indicate the use of 'Nawab' as a title for the Kyamkhanis.*
4. *Niyamat Khan 'Jaan,' Kyamkhan Rasa, ed. Ratanlal Mishra, Jodhpur: Rajasthan Kyamkhani Shodh Sansthan, 2007, p.175.*
5. *Ratanlal Mishra, Kayamkhani Vansh ka Itihas evam Sanskriti, Jodhpur: Rajasthani Granthagar, 2002, p. 154.*
6. *Ibid.*
7. *Niyamat Khan 'Jaan,' Kyamkhan Rasa, ed. Ratanlal Mishra, Jodhpur: Rajasthan Kyamkhani Shodh Sansthan, 2007, p.155.*
8. *Sundar Das, "Introduction" in Sundar Granthawali, ed. Ramchandra Mishra, New Delhi: Kitab Ghar, 1992, p.39.*

The Manipulative Bankers of Jaipur state

Dr. Mamta Tyagi

The most noticeable feature in the commerce of the eighteenth century Jaipur state was the existence of large banking and exchange business carried out in the capital and other towns. In the absence of chartered banks and other financial institutions, the leading business houses performed the role of bankers and commission agents in various states. They provided loans to the rulers and jagirdars. A large number of business houses engaged in transit trade of foreign and Indian goods expanded their business to other states. For instance, Seth Sanwal Das Ram Chandra, Bakhtawar Mal Rekh Chand and Bhim Raj Bhakhtawar Mal of Jaipur were the leading business houses who dealt in transit trade.[1] The two leading bankers cum business men of Jaipur city during the eighteenth century were Loonkaran Natani and Chaudhari Kushal Singh. These business men made the city of Jaipur as their prime base and opened numerous branch-offices (hatis) located in various parganas and other areas outside the state. Their branch-offices were well connected and regulated. These big firms had their gumashtas (agents) in other branch-offices for running their business smoothly. Loonkaran Natani employed many gumashtas in his firm. Mansa Ram, Roop Chand Koolwal and Sahaj Ram Agarwal were the gumashta of his firm in 1750 and 1738 respectively.[2] One Manikchand was the gumashta of the firm of Magni Ram and Zorawar Mal.[3] Even the state officials employed gumashtas to do trade.[4] Small merchants or individual bankers served as financiers to big banking firms, rich merchants and state. Apart from these big firms the Bohras, Sarrafs and Mahajans were the small bankers who provided moderate finance to shopkeepers, artisans and peasants in the urban and rural areas.

Interestingly, some of these bankers began their career as amil of a pargana and gradually they established themselves as successful financers. For example, Loonkaran Natani began his career as amil of pargana Bahatri in 1720.[5] Later with the help of his son he established a firm called as Loonkaran-Lakshman Das.[6] These merchants enjoyed influential positions

 ISSN 2321-1288

due to their wealth and very often were conferred with important titles. In 1733, Sawai Jai Singh conferred the title of Nagarseth upon Loonkaran at a ceremony in the temple of Thakurji.[7] A visit of the king of Jaipur to his house to offer his condolence to Loonkaran's family highlights his status.[8] Other important and influential merchants were also conferred with important titles. Seth Dhanesar Das was a big Bohra of Jaipur and he made huge fortunes out of the hundi business. He was held in high esteem and bestowed with the title of Omkareshwar Vyas by the Jaipur ruler.[9] His head office was situated in Hindaun and his hundis were famous for their reliability. Even the Marathas insisted for being paid through his hundis. As his residence-cum-office was located in Sanganer, the road approaching his house was known as Seth-Dhanesar-ka-Rasta.[10] The naming of a road is clearly a marker of his status in society. Even a cursory look at the primary documents shows that maximum time the state took loans from him to pay tribute to the Marathas.[11] In lieu of the financial support these bankers grappled important administrative positions for themselves. They seldom failed to seize the opportunities provided by the changing configuration of economic and political forces in the eighteenth century. During this century, these merchants successfully emerged as powerful politicians, administrators and businessmen. With the help of their monetary power they managed to successfully penetrate into the overall economy and polity of the Jaipur state.

The bankers performed a variety of commercial functions such as advancing of loans, issuing and discounting of hundis, standing surety, and the exchange of coins. The inter-related mercantile activities increased their wealth and power manifold. They enjoyed undisputable control over the money market and credit structure which provided them powerful and influential position in the society as people from all strata were dependent on this community to fulfill their requirements.

Bankers stood as guarantor (zamini) for the ijaradars at the time of obtaining ijaras. The increasing role of the banking firms in writing surety enhanced their hold on the fiscal machinery and financial muscles of the state. It is evident from the incidences when the state in its transactions with local potentates obtained zamini from big firms.[12] There are numerous cases of the Jaipur ruler or its tributaries obtaining ijara rights from the Mughal emperor with the banking firms furnishing surety on their behalf.

The Jaipur ruler obtained suba Ajmer on ijara from the Mughal emperor after submitting a surety from Loonkaran Laksman Das Natani for an amount of Rs. 7,36,000.[13] It becomes clear, that the requisition of zamini (surety) by the ijaredars from the bankers, Mahajans or Bohras became a compulsory norm. The state made it a point not to grant the ijara without the production of a surety. The obtaining of ijara was completely rested on the willingness of the banker who stood as a guarantor. The system of zamini led to the smooth functioning of the fiscal transactions.

The merchants used to cater to the requirements of the Kachhwaha darbar. They were able to exercise an influence at the court by virtue of their business connections and his vast riches. They were the envy of many exalted notables of the court. British agents appointed in the state also had their contacts with the rich Seths and bankers to carry out all kind of commercial transactions and trade. British agents always supported the merchant class. Thus, the rulers of the states and their vakils and other people made their approach to the bankers and Seths to get their work done.[14] British agents preferred to be in good terms with the bankers of Jaipur as after the treaty of 1818, the Jaipur state paid its tribute through the hundis issued by these banking firms. For instance, 18 hundis amounting to Rs. 8,00,000 drawn from the firm of Gyan Chand and Surat Ram, the Minister's gumashta, payable at the shop of Daulat Ram at Delhi, within 61 days. Clearly, these banking firms paid the tribute on behalf of the Jaipur state due to non-availability of funds with the state. As it is evident from the report of a British agent that during the regime of the Regency Council the British discovered that the amount of tribute fixed on the state was in reality a burden that could be hardly borne.[15]

The income generated from ijara was quite handsome and this activated the interest of the merchants to invest in it. At the village level Sahukars and Mahajans could easily manage to procure ijara. Besides standing surety (mal-zamini) to other ijaradars, they also started investing their money in obtaining ijaras for themselves. They found making investment in ijara quite lucrative.[16] Gradually in the eighteenth century land under the ijara system increased in the Jaipur state. Most of the ijaredars were patels, Mahajans, qanungos and Sahukars.[17] Even, the Mahajans while obtaining ijaras for themselves had to produce a surety before the state. Kushyal Chand Patani obtained village Balheda of pargana

Khohri on ijara and obtained the surety of Purohit Gangaram Kirparam.[18] Gradually the big banking firms also entered into the system of ijara.[19]

The system of hundi was operated both by individual bankers or big banking firms. The bankers were engaged in the business of purchase, sale or discount of hundis. The continuous movement of goods and services across various markets and the reciprocal flow of money in the reverse direction was supported by an organised system of mercantile credit. The hundis became important as they were used in almost all financial transactions and hence the dependency on the bankers also increased. The practice of sending the collected revenue through hundi had become a common feature.[20] It is important to note here that whenever the amil was unable to collect the revenues, a matching amount was sent to the state through hundi. This practice was resorted to in order to avoid any financial crisis. Moreover the sate encouraged tip hundi (agreement of bill) to ensure its uninterrupted income from villages under ijara. Consequently, it resulted in the use of increasing paper money and decrease in the physical movement of actual coins.

The hundis were also issued to meet the cost of local administrative expenditure.[21] Whenever the state was in financial crisis its officials used to raise loans by means of hundis to meet their requirements.[22] Gradually, the state became more and more dependent on the bankers' loan to extricate itself from mounting fiscal problems. Immediately after the death of Sawai Jai Singh in 1743, the letters dispatched by Diwan Vidhyadhar to pargana officials give an impression of a financial crisis faced by the state. In order to overcome this crisis the state procured hundis from one set of Sahukars in order to repay the loan of other Sahukars.[23] Thus, the hundi system became an important mechanism through which state officials usually raised loans.

The state also resorted to hundi as an important source of raising money to meet the expenditure of the royal household. Even the members of royal family including the queens contracted loans in the form of hundis.[24] Even the state officials began to borrow money in order to finance their personal needs.[25] Bankers played a pivotal role in the maintenance of army. There are instances when the money for the maintenance of lashkars (armed contingent) was also sent in the form of hundis.[26] In addition to individual capital, state treasury was also transferred from one place to

another through hundis. Transmission of large amount of money through hundis might have caused abundance of money in a particular city; thereby, enabling the state to overcome temporary scarcity of money in that city. In the event of disturbances in an area, hundi was the safest possible way to send financial assistance.[27]

In the second half of the eighteenth century when the Jaipur state was forced to pay tribute to the Maratha sardars (chiefs), the payments were largely paid in the form of hundis.[28] Once, Sawai Madho Singh, king of Jaipur, requested three bankers of pargana Hindaun to provide loan to the state through hundis for making payments to the Marathas.[29] The state duly utilised the services of the big firms which came forward to write hundis for making payments to the Marathas.[30] These bankers were honoured by the king who bestowed robe of honour on the Nagarseth such as Nagarseth Loonkaran Natani. He was also honoured with a siropao (headgear) in the darbar (court).[31] It may be noted here that most of the hundis in favour of the Marathas were written by Seth Dhanesar Das. On many occasions, he issued hundis of hefty sums on behalf of the Jaipur ruler to various Maratha sardars after charging appropriate hundawan. At times, bankers collaborated with each other to pool cash and hundis in order to bail out the state from excessive Maratha demand for tribute.[32]

Thus it is quite clear that the practice of borrowing from the Sahukars of Jaipur had become an important mode of money transactions by the rulers of Jaipur from seventeenth to nineteenth century. The Sahukars earned good profit through the hundi business by charging rate of hundawan which sometimes went upto Rs. 25%.

From the study of our sources it also appears that there was a brisk hundi trade between Jaipur and distant cities/towns. The city of Jaipur had become a major hub of bankers who wrote hundis. The movement of hundis between cities other than Jaipur was also quite brisk.[33] It may be noted that hundawan rates were quite high on the hundis written for distant cities. In this inter-regional hundi network, Jaipur had emerged as a major centre for the exchange of all types of hundis. During the eighteenth century hundis issued by the Sahukars of Jaipur were even preferred by the lashkars of other states. Many important cities like Aurangabad, Naurangabad, Ujjain and Udaipur were linked with Jaipur in this transactional grid.[34]

The bankers also started a new system of insurance and made the transport of goods over long distance free from risks.[35] Even the small traders covered their goods in transit according to their capacity through the big traders with ample resources or funds and with the help of their own agent's branches carried out this business in a more systematic manner. The charges for insuring goods depended on the risks involves on a particular route and the type of goods to be transported. If the insured goods were lost or looted before reaching the destination the merchant undertaking the bima had to compensate for the loss.

Money-lenders formed a highly specialized commercial group which practiced usury, issuing of hundis and sometimes acted as brokers. These commercial groups belonged to the Bania community; but this profession was also practiced by members of other castes. They were engaged in usurious practices either individually or in groups who offered small or large personal or commercial loans at high rates of interest. These money-lenders became an integral part of the administrative system in the Jaipur territories because of their position and importance. They played an important role in the village economy especially at the time of natural disasters. They provided agricultural loans to the peasants at the time of scarcity or famine.[36]

The increasing power and acquisition of land by the Mahajans also caused harm to the state. The Mahajans were also involved in agricultural activities and for which they either purchased the land or kept the mortgaged land of the peasants in lieu of money lent by them to the latter. As a result a sizeable land of the peasants was converted into Mahajans' own gharuhala holdings.[37] This converting of raiyat-holdings into gharuhala holdings led to the loss of revenue to the state as the Mahajans being charged on concessional rate of land revenue on their agricultural holdings.[38] Clearly, the increasing role of the usurer was at the cost of both the peasantry and the state.

With the foundation of the Jaipur city there was a considerable change in the scope of money-lending. Money-lending became the most profitable venture in a competitive setting. The role of petty money-lenders began to shrink while the big firms emerged in their place. The situation of petty bankers became somewhat uncertain. The petty money-lenders even mortgaged their assigned rights of money-lending in allotted areas to

big firms or switched over to other vocations. New big and rich Bohras were entering in this field by obtaining these rights from the state. In such events, the state consented to their demands and asked them to pay the mortgaged amount to the mortgagee.[39] These big firms gradually penetrated in the countryside and built an extensive network of money-lending business with their branch-offices at each pargana headquarters. In the process the big fish succeeded to swallow the small ones.

During the nineteenth century there existed in Jaipur as many as seven banking firms whose aggregate business amounted to about 2.5 crores of rupees and who possess a capital more than 6.5 crores of rupees. In addition to these, there were several minor houses whose collective business may be estimated at half a crore a year. Exchange and banking constituted the greater portion of the trade of the place.[40]

Thus, the guarantee of local credit and the support of service groups for a variety of reasons were clearly envisaged as a basic ingredient to state building in the eighteenth century. The foremost trading and banking community of the region operated a well integrated and complex credit exchange system that fulfilled the needs of regions' expanding commerce. This symbolic relationship was based on reciprocity and mutual advantage where the bankers' sought security and protection from the administration. It may be stated in nutshell that, rise of bankers and banking firms was not a dramatic event. They emerged from various sources by dint of resorting to complex means of enhancing their wealth. Their rise was greatly facilitated by a favourable state apparatus and bureaucratic dispensation.

References

1. *Gopal Narayan Bahura and Chandramani Singh., Catalogue of Historical Documents in the Kapad-Dwara, Jaipur Printers, Jaipur, 1989, No. 1015*
2. *Dastur Komwar Mahajan, pp. 71, 232 and 477*
3. *Foreign and Political Department, Consultation No. 5, dt. 8 October, 1832*
4. *Without taking the state's permission officials were not allowed to do trade in the Jaipur state. Haqiqati Arzdashti, Nakal (copy) Parwana, dt. Bhadwa Sudi 10, V.S. 1783/1726, amils and chakars of the state were instructed not to do trade of grains*
5. *S .P. Gupta, The Agrarian System of Eastern Rajasthan, Manohar Publications, Delhi, 1986, p.192*

6. *Chithi, dt. Sawan Sudi 5, V.S. 1802/1745*
7. *Dastur Komwar Mahajan, p. 384 Loonkaran Sukhram ka Pathu ka Pota Mahajan Natani Sahukar, dt. Pos Sudi 11, V.S. 1790/1733*
8. *Shyah Huzur, dt. Bhadwa Sudi 15, V.S. 1814/1757*
9. *Parwana Khas Mohar issued by Sawai Prithvi Singh to Dhanesar Das, dt. Jeth Sudi 12, V.S. 1826/1769*
10. *Shyah Huzur, dt. Pos Sudi 10, V.S. 1828/1771*
11. *Yaddashti, hisab Seth Dhanesar Das and hundi Dakhniyo-Ki, dt. V.S. 1812/1755; Yaddashti, dt. V.S. 1812/1755*
12. *Nakal (copy) Chithi to Chaudhari Nanu Ram and Shah Nihal Chand, dt. Asoj Sudi 12, V.S. 1795/1738*
13. *Chithi to Loonkaran-Lakshman Das Natani, dt. Kati Sudi 6, V.S. 1799/ 1742*
14. *Kapad Dwara, Vol. 1, No. 940*
15. *Kapad Dwara, Vol. 1, p. XXXVI*
16. *Dilbagh Singh, 'Ijara System in Eastern Rajasthan, Proceedings of Indian History Congress (PIHC), 1973, pp.60-67, p. 65*
17. *Fahirsati Detai, pargana Khohri, dt. V.S. 1768-1807/1711-1750*
18. *Arsattha of pargana Khohri, dt. V.S. 1781/1729*
19. *See Table 5.4*
20. *Amber Record, dt. Fagun Vadi 8, V.S. 1746/ 1689*
21. *Amber Record, Harihar to Vidhyadhar, dt. Bhadwa Sudi 2, V.S. 1801/ 1744*
22. *Arhsatta of pargana Hindaun, dt. V.S.1803/1746. In the following year the interest rate rose to monthly rate of Rs. 2.5%.*
23. *Yaddashti, hisab Seth Dhanesar Das and hundi Dakhniyo-Ki, V.S. 1812/ 1755*
24. *Chithi to amil Shah Shri Nanig Ram, dt. Kati Vadi 2, V.S. 1793/1736*
25. *Chithis to amils of pargana Hindaun, dt. Fagun Vadi 11, V.S. 1795/ 1738*
26. *Dastur Komwar Dakhini, dt. Miti Asoj Budi 6, V.S. 1815/1758, pp. 465-468, a hundawan of Rs. 8240 at the interest rate of Rs. 5.5% was charged on a hundi of Rs.1,50000 by Seth Dhanesur Das to the Jaipur state*
27. *Amber Record, dt. Kati Sudi 15, V.S. 1766/1709*
28. *Yaddashti, dt. Sawan Vadi 6, V.S. 1813/1756*
29. *Nakal (Copy) Parwana, Sawai Madho Singh to Seth Dhanesar, Kirpa Shankar and Shivdas-Gulab Chand Sarraf, dt. Asad Vadi 1, V.S. 1817/ 1760*
30. *The Maratha raids in Rajasthan started from the second decade of the eighteenth century and after 1740, their raids became more frequent, organized and demanding of money. The fear of the Rajput kings becomes evident from a kharita written on 24th November, 1724, by Maharana*

Sangram Singh to Sawai Jai Singh of Amber.

31. *Dastur Komwar Mahajan, Loonkaran Natani Sahukar, dt. Miti Jeth Sudi 1, V.S. 1794/1737, p. 385*
32. *Dastur Komwar Dakhini, dt. Miti Bhadwa Budi 4, V.S. 1813/1756, p. 897*
33. *Amber Record, dt. Asad Vadi 9, V.S. 1744/1687*
34. *Yaddashti, dt. Kati Vadi 13, V.S. 1782/1725; Yaddashti, dt. Asad Vadi 1, V.S. 1792/1735; Amber Record, 3 Raghunath Rao, Baji Rao to Sawai Madho Singh, dt. Sawan Sudi 4, V.S. 1814/1757; Yaddashti, dt. Mangsar Vadi 11, V.S. 1816/1759*
35. *P. Saran, 'Insurance during Medieval India', in Culture contours of India, V.S. Srivastava (ed.), Dr. Satya Prakash felicitation volume, Lalit Kala Academy, New Delhi, 1981, p. 371*
36. *Dilbagh Singh., 'The Role of Mahajans in the Rural Economy of Eastern Rajasthan during the 18th Century', pp. 20-22*
37. *Ibid., p. 22*
38. *Ibid*
39. *Chithi to amils of pargana Dausa, dt. Mangsar Sudi 5, V.S. 1815/1758*
40. *W.W. Hunter, The Imperial Gazetteer of India, Vol. 4, Trubner & Co., London, 1881*

Women's Participation in Freedom Struggle (In Light of Women Leaders of Rajasthan)

Dr. Meghna Sharma

Under the "Individual Satyagrah" incident, it has been written that there were running many contemporary mass movements. In the history of Rajasthan, the nature of revolution in the preliminary stage was of Prajamandal Movement. Rajasthani women also moved to jails just like other freedom strugglers of the native states.

Mass movements of Rajasthan were a response of general folk to their economic, social and political exploitation by the Native rulers, feudal lords and British colonial administrative system. Significant role was played by press, modern education, social reform organizations like Arya Samaj, Desh Hiteshini Sabha, Waltarkrit Hitkarini Sabha along with political movements in British ruled states, in the spread and development of awareness amongst common man. As a result of such awareness women also participated along with men following the Gandhian pattern of dharnas, demonstrations, strikes and satyagrih etc.

The peasant's movements of Rajasthan contributed a lot in creating an atmosphere of political awareness among the natives of Rajasthan and there is no doubt in saying that the general masses became aware for initiating such movements only by the inspiration of Arya Samaj. This was a direct result of the campaign of social reform and upliftment of women, led by Arya Samaj. Along with institutions and revolutionary men, news papers and journals also played significant role in arousing political awareness among the people. The major among the newspapers of Arya Samaj were *'Arya Mitra'* and *'Arya Martand'.*

It was in the nineteenth century that political awakening aroused among the women of Rajasthan. Many women contributed in the freedom movement of Rajasthan. Prominent among these are Anjana Devi, Durgaprasad, Vimla Devi, Chandrabhanu, Durga Bahan, Haribhauji, Bhagirath Bahan, Tulsi Bahan, Rama Bahan, Krishnadevi, Rukmani Devi

and wives of Krishnagopal Ji Garg and Sumanji with names Shakuntala and Sita Bahan etc.

Dayanand advocated compulsory and free education. Thus the British rulers were never free from suspicion about Swami Dayanand *"whom the highest western thought could not influence,"* and whose *Samaj* was *"so hostile to everything European."*

Most of the women participating in peasant movements came from the lower class peasant or scheduled tribe category, and their leaders from middle class category, whose relatives were already connected to the contemporary political movements against the British.

According to a report an enthusiastic group of women came forward to hinder and put an end to a football match in Kolkata. Indumati Goenka of Kolkata was a newlywed adolescent of just fifteen years. She propagated immensely in favour of the use of Khadi and was arrested for a duration of nine months. According to a report published in 'Abhyuday' (12th Oct. 1930), she was the first Marwari woman of Bengal who left Purdah and came out to support the campaigns of Gandhiji.

Like other freedom fighters of Native States, the women of Rajasthan also went to jails mostly in Prajamandal Movements. Smt Anjana Devi, Narayani Devi and Satyabhama Devi participated in Begun, Warad and Bijolia of Udaipur State. Anjana Devi did Satyagrah in support of the Meena tribes of Amargarh Thikana. Sushila Devi Tripathi in Alwar and Mahima Devi Kinkar in Jodhpur led the women in peasant movements of their region.The thikanas like Shekhawati and Sikar were under the Jaipur State, here too the peasant were being exploited by the Thikanedars, so peasant movements held and women here were led by Jamnadevi Bajaj and Ratna Devi Shastri.

Women followed Gandhism and participated with full zeal in constructive programmes like establishment of Mahila Mandals and night classes in order to spread education. Other constructive programmes included works like propaganda of khadi, charkha, eradication of untouchability etc. One Mahila Vidhya Mandir was established in the Native State of Pratapgarh with the mission of spreading the cause of female education, in this Shantibai Poddar vowed to teach for two hours daily on voluntary basis. Kamla Kumari wrote a letter from Mumbai Camp Jhalawar

to Women's State office of Udaipur in which she proposed to celebrate a Women's day on 2nd May in order to spread awareness. Along with this social, political and economic rights of women were also demanded in the same letter.

As a constructive programme, Gandhian leader of Jaipur Prajamandal Pt. Heeralal Shastri got established the Banasthali Vidhyapeeth in 1929, his wife Smt. Ratna Shashtri had significant role in this step of his. The basic motive of this institution was to construct such dedicated workers who were filled with patriotic fervour and who supported the cause of women's education in order to spread general awareness amongst women.

Ajmer was directly ruled by the British. The women of Ajmer along with school going girls participated with full zeal and excitement in the Salt Satyagrih of 1930. Two school going girls of Sophia High School namely Premlata Bhargava and Rajrani Bhargava led the Satyagrih and were rusticated from the school. This was the first ever example when school going students participated in any movement. Janki Devi Bajaj and Satya Devi Kalanchi organised the meeting of Akhil Bharteey Mahila Mandal at Ajmer and demanded the Right to Vote for women residing in the Native States of Rajasthan. It was the first ever incident when the equality of women at political front was talked about from the dais.

A great number of women participated in the peasant movement of Bijolia, Begu and Barad which started in the Udaipur state of Rajasthan, under the leadership of Anjana Devi, Satyabhama Devi and Narayani Devi. Women commenced *Satyagraha* against the exploitation of the *Meena* caste, in the Amargarh *Thikana*, under the leadership of Anjana Devi. Similar movements were undertaken by women in Alwar and Jodhpur under the leadership of Shrimati Sushiladevi Tripathi and Shrimati Mahimadevi Kinkar. In Shekhawati region women did *Satyagraha* against the Taxation Policy (*Laag-Baag*) of the feudal lords, by means of *'Prabhat-Pheris'* and processions. In 1924, women numbering seven did *Satyagraha* at places like Nathdwara, Bhilwara, Chittor, Choti Sadadi, Jahazpur, Kapasan etc.

Like the peasant movements certain mass-movements also took place in Shekhawati region, in which 10 women were arrested during

Civil Disobedience Movement. *Jankidevi Bajaj* toured places like Sikarvaati, Shekhawati, Toravati, Malpura, Sambhar etc. and spreaded the thought of female education. On January 2nd 1939, Parvati Devi organized a committee on *'Kisan Divas'*, after the death of Jamnalal Bajaj. Women under the leadership of the wife of Ishwarlal Sogani and other women lead a procession from *Chandpol* to *Jauhari Bazaar* at Jaipur. Sushila Devi participated in the Satyagraha of Sawai Madhopur. Government suppressed the movement and arrested many women. Sometimes they were also beaten by the officials and their hair stretched. Still women continued with the movement.

The women who participated in these mass-movements, worked for the spread of principles of *Swadeshi*, boycott and took active part in the activities related with the *Satyagraha* movement. Special contribution was given by Gomtidevi Bhargava, Sushiladevi, Vimladevi, Durgadevi, Bhagirathi Devi, Ramadevi Joshi, Shakuntala Garg, Vijaya Devi, Sita Devi, Krishna Devi, Narayani Devi etc. In 1938, Prajamandal was formed in the state of Bharatpur. It worked for organizing the mass movement against the realization of heavy revenues inspite of the famine of 1939, which destroyed the crops of the land completely. Workers of the Prajamandal alongwith many women under the leadership of Triveni Devi went to Bharatpur and gave a warning to the Secretary and the Deputy Secretary. Not only this, taking along five women with her, Triveni Devi lead a procession and was arrested.

The names of major women who participated in Quit India Movement from different regions of Rajasthan are Bhagwati Devi from Ajmer, Gaurja Devi Joshi (Joshi Ba) from Jodhpur, Shakuntala Trivedi from Banswara, Dheeru Ben Upadhyay fom Mount Abu, Narayani Devi Verma from Udaipur etc. who were also arrested for durations of three to four months and sometimes one year too. Smt. Ratan Shastri from Banasthali was providing with every possible support to the Satyagrahis which included girl students and service groups of the teachers as well. She prevented herself from going to jail for the purpose of saving underground revolutionaries of Banasthali and providing them with safe places to hide. Anjani Devi Chauhan and Bhagirathi Devi Upadhyay of Ajmer were already working in full zeal with the constructive programmes and movements of Bapu.

Smt. Shanta Trivedi already raised voice and led the awareness programmes among the women from Scheduled castes and Harijan community. She also lead the movement of acess to harijan women in Jagdish temple. Janki Devi Bajaj keeps a different and very distinct place amongst the women workers in the constructive programmes of Gandhiji. Her personality and story of profound sacrifice is certainly great and to be mentioned every time we talk about constrictive programmes of Gandhiji.

Year 1946 was the most significant year in the history of freedom struggle of the state of Alwar. *Satygaraha* started from August 24, 1946. Women also participated whole heartedly. Prominent among them were Rama Pandey, Jagrani, Prem Tyari, Kalavati, Shakti Gupta, Kailashvati Upadhyay, Uma Mathur, Kamla Jain, Kamla Data and Vimla Sharma etc. Police used to fill them in trucks and left them in the far off jungles but these women did not lose hope and walked back barefooted to join the movement.

Similarly Smt. Khetu Bai of Bikaner state also left her home and joined the movement for freedom. Kali Bai of Dungarpur was shot by the police when she was leading a procession which was a part of the movement for the cause of freedom. She was so badly struck by the bullet that her ribs hung out of her body. The massacre of Neemuchana was much more than all these. So much so that it is often compared with the brutal massacre of Jallianwala Bagh (April 13, 1919).

In 1930, a woman namely Krishnadevi of Ajmer burnt foreign cloth and did picketing in front of the alcohol shops, and asked people to wear swadeshi cloth. In Jaipur also women took active part in all the movements, sung patriotic songs like *'Vijayi Vishwa Tiranga Pyara.…..'* and participated in processions and conferences.

Smt. Bharati Devi was filled with patriotic feelings, so it was quite obvious that she participated whole heartedly in the movements directly or indirectly connected with the freedom struggle of India. She organized Satyagraha on the call of Prajamandal, along with a group of women. She was arrested and kept in Jaipur central jail for three months.

Smt. Gorjadevi Joshi *'Ba'* was the first women who wore *'Khadi'* instead of their traditional costume during the *'Hukumat'* movement, and came out in the streets of Jodhpur carrying the tricolour in her hands for

the performing Satyagraha. She was joined with several other women. She was arrested for a period of nine months. After she was released from the jail, she devoted whole her life for the cause of upliftment of women**.**

Smt. Sushila Devi of Meerut performed in the field of spreading *'Hindi'* and also took over the responsibility of the women's branch of *'Hindustani Seva Dal'* in 1933; she performed *Satyagraha* at Chandni Chowk area of Delhi. She was arrested, imprisoned for six months and kept in the women's cell of Lahore**.**

Smt. Shakuntala Trivedi of Banswara became active in the sphere of public service through '*Gujarati Mahila Samaj'* and C Ward Congress Committee. She participated not only in various conferences and movements but also exhibited valour and zeal during the Quit India Movement. She was arrested for three months but kept in the jail for a period of seven months. After she was released from the jail, again she led the movement.

Smt. Anjanadevi Chaudhari along with her husband joined social service and dedicated her life to work for the poor, on the directions of Mahatma Gandhi. Uptill 1921 she performed Satyagraha and works of social reform in regions like Mewar and Bundi. For this, she was arrested and exiled from the State of Bundi. She led a group of around 500 women and forced the government to release all the arrested peasants. During 1932-35 she was arrested for two times. In 1937 she worked for serving the Bhils in the state of Dungarpur. From 1939-42, she stayed in the Sevagram Ashram and participated in the social service under Bapu. She also conducted the women's branch of Indian Servants' Society and toured several states.

Smt. Shanti Trivedi established Women's Council at Udaipur. Similarly Smt. Durgadevi Sharma led the national movement by leaving her college and participated the Non-Cooperation Movement, under the directions of Mahatma Gandhi. She was arrested for two months and played active role in the *Salt Satyagraha.*

Smt. Jankidevi Bajaj was born at a place called Lakshmangarh. She organized many conferences and encouraged women to raise voice against social evils and also inspired them to organize themselves against the British.

Out of these most of the women belonged to *Marwari* Caste who burnt foreign cloth and spread the concept of *Swadeshi.*

Among women who were directly connected with Arya Samaj and took part in the freedom struggle were, Susheela Didi who shot British officer along with Durga Bhabhi, at Bombay; Sarla Devi Chaudharani, wife of Chaudhary Rambhaj Dutt and neice of Rabindranath Tagore; the wife of Chaudhary Deshraj namely Smt. Chandravati; Smt. Chandravati Lakhanpal, the daughter of Gyani Pindidass; and Parvati Devi, the sister of Jaychandra Vidhyalankar. etc. These women took direct participation in the freedom struggle by following movements led by the Indian National Congress. Some of them also remained in jails for the cause of freedom.

To commemorate the sacrifice and contribution of these women leaders and freedom fighters, the government of Rajasthan inaugurated the panorama of Shaheed Kalibai at Mandwa Khaparda village of Dungapaur in July, 2018. On 28th July Karni Mata panorama was inaugurated at Deshnok, Bikaner.

References

1. *Arya Martand, April 1929, Paropkarini Sabha, Kesurgunj, Ajmer*
2. *Arya, Prof. Jaydev, Article published in Bhartiya Swatantrata Sangram Mein Arya Samaj ki Dein, Uakant Uadhyay (Ed.), Arya Samaj Calcutta, p. 129*
3. *Chaudhari, Ramnarayan : Beesvin Shatabdi ka Rajasthan, Jodhpur, 1988.*
4. *Chaudhari, Ramnarayan : Beesvin Shatabdi ka Rajasthan, Jodhpur, 1988.*
5. *Choudhary Sumnesh; Rajasthan Mein Swatantrata Sangram ke Senani*
6. *Choudhary, R.N; Anjana Devi Choudhary, Ajmer, 1972*
7. *Kaluram Sharma and Prakash Vyas; Rajasthan ke Itihaas ka Sarvekshan*
8. *Kennedy. J : The Tendencies of Modern Hinduism, East and West, Vol-III, 1905.*
9. *Mehkma Khaas, Jodhpur File 2/10, Bag no. 6, 1938-45, Rajasthan State Archives, Bikaner.*
10. *Menaria, Shivcharan : Rajasthan ke Swatantrata Senani, Jaipur, 1995.*
11. *Parihar, Dr. Vinita; Rajasthan mein Prajamandal Andolan*
12. *Pemaram; Rajasthan mein Kisan Andolan*
13. *Pemaram; Shekhawati mein Kisan Andolan*
14. *Records from Jaipur State (1930-40), Rajasthan State Archives, Bikaner.*

15. *Saini, Harinarayan; Azaadi ka Andolan aur Alwar, Alwar Zila Swadheenta Swarn Jayanti Samaroh Samiti, 1928*
16. *Sarkar, Sumit; Modern India*
17. *Saxena, K.S; Rajasthan mein Rajnitik Janjagran, Jaipur, 1972*
18. *Saxena, R.K; Social Reform, Infacnticide and Sati*
19. *Sobhag, Dr. Mathur; Struggle for Responsible Government in India.*
20. *Sood, J.P; Adhunik Rajneetik Vicharon ka Itihas, Meerut*
21. *Special edition of Dainik Bhaskar on the memoir of the freedom strugglers of Wagad on 57th Independence Day, August 2004*
22. *Sujas, Monthly Journal, June-July 1998, Editor : Amar Singh Rathore.*
23. *Tyagbhoomi, Falgun Samvat 1985*
24. *Yadav Santosh : Unneesvin aur Beesvin Shatabdi Mein Striyon ki Stithi, Jaipur 1987.*

Postal System of the Princely State of Rajputana and the East India Company

Dr. Nidhi Sharma

Treaties of 1818 between the princely States of Rajputana and the East India Company brought some major and fundamental changes towards the infringement of sovereignty of the former. These developments were unseen and unpredicted. One such area trespassed by the Company was related to the DAK or the postal system of these States.

There was in fact no regular postal system for transmission and distribution of *daks* in these States. The traders and the general public were left to themselves to make their own arrangements in this context whenever the occasion demanded.[1] The *Kassid* or runner were maintained for conveying official messages and government *dak*. Similarly *Mahajanee dak* was maintained by traders , big firms and wealthy people for conveying messages of transactions, mostly financial.

When the Company employed its personnel in various States, means of correspondence became a major issue. Correspondence between the A.G.G. and Political Agents stationed elsewhere managed their *daks* through their own carriers. These carriers had to pass through various native States.

The issue acquired several dimensions. One and the major among them was the issue of law and order. Raids and loot of the posts of the Company caused a major concern. The carriers, although, on a constant move, demanded facilities like escort, food and rest in these States. This was the second issue. Thirdly, the rulers also saw this as an aberration of their sovereignty in way of conceding routes for the Company.

Postal operation was manifold. For carrying correspondence between various States, newer and shorter routes were suggested. Movement of *dak* between the Company officials gathered another dimension. Then, the position of Ajmer among the various States gave it a peculiar status. Daks of various States for correspondence between

themselves had to pass through Ajmer, which was a British Territory. Then, there was *dak* from Princely State to various British provinces, majorly administrative and financial(in form of *hundis* and *mahajanee*). And a final route of *daks* was between two British provinces which had to pass essentially through the native States of Rajputana.

The Company and its officials tried to simplify (so to say) all these arrangements and suggested various measures to accomplish them right from 1822 C.E. The rulers of these States were apprehensive. They sometimes relented, resisted and refused these arrangements on other occasions.

The Resident at Delhi, Ochterloney as early as 1822 C.E., suggested to the government that the Hadoti and Udaipur Agencies be placed on the same footing as to the office establishments.[2] He had received a communication from Capt. Waugh complaining about the inadequacy of postal arrangements in Udaipur State. Ochterlony suggested that the expenses of new arrangement of postal services from Neemuch to Udaipur should be borne by the State itself without laying extra burden of the Agency itself.

In 1826 C.E., he also receives suggestion from Political Agent at Kota that a new route between Kota and Jaipur should be laid down as the present communication via Neemuch or Gwalior is expensive as well as time consuming.[3]

Clearly the Company had set out to search for newer and faster routes for its *dak* unmindful of trespassing any princely states' territory. In 1832, a new arrangement for conveying *dak* from Ajmer to Sirohi was made.

A major policy change, however, came in 1837 C.E., whereby through an Act, the Company set out to regulate its postal policies in India. This 'Post Office Act' reserved with the government the exclusive right to convey letters in the territories of the East India Company. The Act was bound to have major ramifications The princely States of Rajasthan could no longer send its *dak* to British territories in personal capacity. The Act defied their sovereignty and right to privacy and caused a serious concern among them. A Kharita was accordingly issued to the rulers of the princely states informing them of the Resolution passed by the

Governor General of India relating to the establishment of government *daks* and suppression of those maintained by the Native States.

Voices of dissent emerged not only from the States but also from A.G.G. Rajputana, N. Alves as well. Writing to the Secretary to the Government of India on 15th March 1838, Alves expresses his difference of opinion on interpretation of Regulation 37 in the Act by Metcalfe.[4] He opined that the Regulation was applicable only to prohibition of *dak* running from place to place within Company's territory and was not applicable to restricting *daks*(in this case) of Jaipur and Alwar to Delhi. The implication of carrying out this Regulation, he felt, would result into inconvenience, distress and expenditure.

A.G.G. Rajputana circulated a letter to the Political Agents of Hadoti, Mewar and Jaipur respectively regarding suppression of native *dak* of these States in British territories on 21st August,1839. Both Alwar and Jaipur resisted such a diktat. Jaipur State *vakil*, through a verbal representation stated his case on stopping of this *dak* institution at Delhi and that the State was much averse to entire sudden suppression. 'The *dak* has been in existence for a long period and the British government always upholds ancient privileges and usages; while inconvenience and certain degree of discredit would accrue from its abolition..we beg that the permission of your government be obtained for continuance of the Raj *dak* and the officers attached to it shall receive injunctions related to the exclusion from the packets of letters of individuals residing in British territory", writes Jaipur government to the P.A. Jaipur. The Rao Raja of Alwar sent a Kharita to the A.G.G., Rajputana dated 14th February 1838 which mentions great inconvenience caused to the State as all the daks of the State with Lala Ramji Mall sahukar at Delhi has stopped. Metcalfe wrote from Delhi (26th February 1838) to Alves that the continuance of private daks has been strictly prohibited and considered himself interdicted from complying with Alwar's application.

But the resistance continued and the A.G.G. issued a Circular dated 21st August 1839[5] which said that, "But should your Highness be reluctant to discontinue your *daks* within that territory, the Governor General would not press this upon you, but will depend on your Highness' making arrangements which will prevent your packets from being made a means of conveying the letters of British subjects within and from British

territories." It was hoped that no undue advantage would be taken of this indulgence by the bank agents employed by keeping the letter bags opened for the transmission of communication from private individuals (vide Political Dispatch to Court of Directors no. 62 of 1838).

In October 1839, the Political Agent, Hadoti Agency informed the A.G.G. Lt.Col. Sutherland that the Kota Maharao had agreed to avail himself of British dak for conveyance of his letters or any of his principal ministers. The Maharaja rana of Jhalrapatan also agreed to the conditions and gave orders to *vakil* for forbidding any mahajanee or other private *daks*. In Kota the only mahajanee dak was maintained by Bahadur Mull and Company and he was given to understand that it had to be discontinued.

The maharana of Udaipur conveyed through is minister Mehta Ram Singh to Major Robinson, the officiating Political Agent in Mewar[6] that he was ready to comply by the diktat only if all the letters of the H.H., his principal chiefs, officers and jagirdars are dispatched free of postage. On the other hand, the Political Agents of various states continued to suggest shorter routes for conveyance of their official *daks* causing much perplexity to the rulers. Management of routes, demands of the *dak* carriers and reimbursement of the losses incurred on account of plunder etc. was to be borne by the respective states.

A major confusion was witnessed in case of Ajmer which was a British territory. Conveyance of *dak* to and fro involved various parties. Some states had to cross the boundaries of this British territory for inter state correspondence. It was a cause of much speculation. Suppression of private *daks* caused much concern. The shroffs and the traders of Kekri sent a petition to the superintendent of Ajmer dated 25th November 1839,[7] complaining of great interruption to their business by stopping of seths Munger Ram and Zorawar Mull's private *daks* from Kekri to other parts of Ajmer. This petition raising the dissent had a due effect on the Government of India. A letter from the A.G,G. Rajputana dated25th December 1839 to the Secretary Government of India suggested that, " We should not for the present do anything beyond attempting to make our own *dak* which has been established on some of the principal lines of road through Rajputana, the medium of conveying all correspondence on those lines by drawing public attention to its cheapness, its safety and celerity and that we should allow the former daks in the Ajmer district and

throughout Rajputana or until they enter some continuous line of our territories." In1840, Secretary to the Government of India writes to the A.G.G. to proceed cautiously about the issue and wait for the effect of their reduction in postage of letters of light weight on native correspondence. It was finally through a Memorandum of November11,1842 from General Department, Shimla , which stated that the G.G. considers that the *dak* in question (Ajmer) can't be justly suppressed. By 1840s the Company started to open dak bunglows throughout India for effectively carrying the dak.

The company also arranged for conveyance of its *dak* from its one province to the other through Rajputana. One example which can be cited was opening of the route from Deesa to Hyderabd in Sindh through Nasirabad and Jodhpur. This line was placed under P.M.G. N.W.P. Agra. Bikaner, however, decidedly refused against passage of *dak* for N.W.F. through its territories. The main reason for reluctance of the rulers for using their territories as a passage was the risk involved and the trouble the carriers caused. The ruler of Alwar in 1853 greatly objected to having a *dak* passing through his State and with much reluctance agreed, protesting, however, against its passing through the capital. The Political Agent at Jaipur suggested that ' "in wake of violence on *dak* and demand for compensation in case of plunder, the same rules may be extended to Rajputana which prevail in British provinces, that valuable property sent by the host *dak* and *bugghy* mails will be at the risk of the sender."

It was only after that the Crown took over that the Native States agreed to join the 'Postal Unity Scheme' of Government of India. Thus it is clear from the above account that the entire exercise by the Company caused much anxiety and doubt amongst the princes who had not foreseen the repercussions of the Treaties of 1818.

References

1. *Sharma, H.S.-Trade and Commerce in Western Rajputana , Literary Circle, Jaipur 2013,p.166*
2. *Foreign Department 26th July 1822/10/P.C./N.A.I.*
3. *Foreign Department 29th September 1826/30/P.C./N.A.I.*
4. *Foreign Department 11th April 1838/55/P.C./N.A.I.*
5. *Foreign Department 9th October 1839/27-28/P.C./ N.A.I.*
6. *Foreign Department 27th November 1839/54-55/P.C./N.A.I.*
7. *Foreign Department 22nd September 1854/94-95/F.C./N.A.I.*

Sanitation Campaign of Jaisalmer Congress District Committee in Sweepers' Quarters in Jaisalmer and Public Reactions, 15 August –19 August, 1948

Prof. V. K. Vashishtha

The Harijans were mostly victims of neglect and contempt among the caste Hindus till Mahatma Gandhi raised his voice in their support in his speech in the Conference of Communities at Ahmedabad on 4 June, 1916 and took the pledge for the eradication of untouchability by non-violent means in India.[1] He organized the *All India Harijan Sevak Sangh*, Delhi in 1932 for the promotion of their welfare and abolition of untouchability. With the similar objectives, he strengthened the *Harijan Sevak Sangh* by transforming the *Sabarmati Ashram*, Ahmedabad into *Harijan Ashram*[2] and also by developing *Sevagram Ashram* (near Wardha in Central India) in 1936 as an epicentre of the constructive programme in the Harijan dominant village of Sevagram (earlier known as Seogaon).[3] Accordingly, his associate A. V. Thakkar, General Secretary, *All India Harijan Sevak Sangh, Delhi* engaged the *Harijan Sevak Sangh* and its provincial branches in cleaning villages and colonies of the Harijans, constructing shifting latrines for them, familiarizing them with cleaner methods for sanitation, for promoting their moral, social and material welfare and also for convincing the caste Hindus that untouchability was repugnant to Hinduism and humanity. These widespread networks of the *Harijan Sevak Sangh* brought the Harijans into closer contact with caste Hindus across the country, while distribution of sweets to one another during sanitation campaigns infused among them a feeling of love and brotherhood. The *Harijan Sevak Sangh* launched such a "Sanitation campaign" in Seogaon[4] in March 1935 and again planned the celebration of the Poona Pact Day all over India as "Harijan Day" on 25 September, 1935.[5] With the similar agenda of the *Harijan Sevak Sangh*, the Jaisalmer District Congress Committee in Rajputana pursued the herculean task of

 ISSN 2321-1288

the inclusion of Harijans in the main stream of the Hindu fold during the post-independent India. Hence, it organized for the first time a sanitation campaign in the sweepers' quarters in Jaisalmer, the capital town of Jaisalmer State, on the Second Independence Day, 15 August, 1948.

The present paper describes the sanitation campaign of the Jaisalmer District Congress Committee in the Harijans' quarters in Jaisalmer on 15 August, 1948 and examines the reactions of the conservative elements against this constructive programme leading to social tensions in the state.

The paper is based on the records of the Ministry of States, Government of India, preserved at the National Archives of India, New Delhi, the *Collected Works of Mahatma Gandhi*, the *Harijan*- Journal of Harijan Sevak Sangh, *the Hindu* newspaper and the relevant secondary sources.

I

Historical and Social background

The Bhati Rajput State of Jaisalmer covered an area of about 16,062 sq. miles, having population of 96,506 in 1941. Its capital town of Jaisalmer was founded by Rawal Jaisal, a descendant of the ancient Yadu kings of Lunar race, in 1156 A.D. The scions of Bhati rulers held in *jagir*, the villages of Tota, Sato, Bhadria, Loharki, Uwai, Ola, Kanod and Pithal.[6] The State had suffered from the invasions of the Sultans of Delhi, Mughal Emperor Humayun and the incursions of the neighbouring States of Bikaner, Marwar (Jodhpur) and Sindh during the medieval period. Of course, the ruler of Jaisalmer developed cordial relations with the Mughal Emperor by enrolling himself as the *mansabdar* of five hundred and marrying his daughter to Prince Jahangir. This paved the way for his successors to serve the Mughal Emperors as the Governor of Orissa and Peshawar.[7]

After the decline of the Mughal Empire, the Jaisalmer State escaped from the ravages of the Marathas owing to its isolated situation. In 1818, Maharawal Mulk Raj II (1762-1819) accepted the protection of the British Government by the treaty of 1818. His successors imbued with feudal values ruled the State as autocrats. It was probable because of the widespread illiteracy and poverty among the masses, and frequent migration of herdsmen due to scarcity of rains and famines to the neighbouring States of Sindh and Bahawalpur.[8] Maharawal Jawahir Singh (1914-1947)

suppressed all attempts of the people to establish the *Jaisalmer Praja Parishad* in Jaisalmer in 1939. Similarly, the death of Sagarmal Gopa, a political activist, under suspicious circumstances in the Jaisalmer jail on 4 April, 1946 created a stir against the Jaisalmer State all over India.[9] Of course, this melancholic event overawed the Maharawal, and facilitated the formation of *Jaisalmer Rajya Prajamandal* in Jaisalmer to ventilate the grievances of the people.[10]

II

Position of the sweepers (*Bhangis*) in the Society of Jaisalmer State

The society in the Hindu State of Jaisalmer was traditionally divided into four *Varnas*, Brahmins, Rajputs, Vaishyas and Sudras.[11] The Rajputs belonged to the ruling class. Among the Brahmins those employed in the Jaisalmer State government service or as priests in the state temples resided in the precincts of the Jaisalmer fort and enjoyed even higher status in the Brahmin community in the State. The remaining ones among them survived on alms from the people. Even among the Vaishya community, such as, Oswals and Maheshwaris were divided into two classes. First, the *Moonhamas* were those who as a tradition always followed and served the Jaisalmer State for sufficient remunerations and some exemptions and concessions. The second, *Shahnmas* were those who were independent of any obligations of feudal service to the royal family of Jaisalmer State. They enjoyed no such concessions and exemptions as were granted to *Moonhamas*. The other castes, such as, Brahmins, Darjis, Sunar and several others enjoyed many concessions and rights for serving the royal family.[12]

The Harijans (untouchables) were outside the pale of Hindu caste organization, as according to Brahmanical notion of pollution they were traditionally associated with the unclean occupations of leather and scavenging. They could not dine, intermarry or participate in any socio-religious ceremonies of the *Savarna* Hindus. Among them, the sweepers called as the *Bhangis* and *Mehtars* formed the lowest stratum in the Hindu hierarchy.[13] The sweepers lived in their hutments on the margin of the capital town of Jaislmer. They depended on the *Savarnas* for the supply of water from the wells and the Gharsisar water tank as they were prohibited from drawing water from these water sources like their counterparts in other Rajputana States. As a result of these restrictions to

use public water bodies they generally faced scarcity of water for washing and drinking purposes. They experienced these hardships even when their manual scavenging services were essential in Jaisalmer town as its draining and sanitational arrangements were still in a very primitive stage. In this context, Archibald Adams, Administrative Medical Officer in Rajputana States observed that:[14]

"Most of the people resort to the jungle for purposes of nature, and there was no well-organized sanitary staff, although cleaning up is done in the capital. The house-latrines are regularly cleaned by 'Birat' sweepers and the streets receive attention on special occasions. However, the burst of the monsoon is too often relied upon to thoroughly clean the streets and lanes."

The conservancy arrangements in Jaisalmer town remained in the developing stage due to the meagre financial resources of the Jaisalmer State till its integration into Rajasthan State under Indian Dominion in 1949.[15] Hence, the formation of a municipality was deferred in the capital town of Jaisalmer till 1941. In fact, the Jaisalmer State had lagged behind the other Rajputana States in the establishment of the municipality. For instance, the Jaipur State had instituted a municipality for conservancy arrangements in the Jaipur city as early as 1869. Thereafter, municipalities were set up in other Rajput states, such as, Jhalawar (1883), Jodhpur (1884), Kota (1895), Bharatpur, Dungarpur (1901), Banswara (1904), Sirohi (1921), Bikaner (1925), Bundi (1928), Alwar (1934), etc.

III

Sanitation campaign in Sweepers' Quarters, 15 August, 1948

Maharawal Jawahir Singh the ruler of Jaisalmer State (1914-1949) even after signing the Instrument of Accession and Standstill Agreement by 15 August 1947, and surrendering on three subjects i.e., Defence, External Affairs and Communications to the Indian Dominion exercised autonomy in the internal administration. However, as a mark of his loyalty to the Indian Dominion, he hoisted tri-colour flag in the Gandhi Chowk in Jaisalmer at a large public gathering on the Second Independence Day, 15 August, 1948.[16] This national celebration was also attended by all the members of the Jaisalmer District Congress Committee. According to their programme of the day, eight members of the Jaisalmer District

Congress Committee in the presence of forty spectators started Sanitation campaign in the quarters of the sweepers (*Bhangis*) at 2.30 p.m. The sweepers welcomed the Congress workers, embraced some and offered them beetle nuts and sweets as a token of love and brotherhood. The Congress workers accepted beetle nuts but did not take sweets indicating their conservatism. After cleaning the quarters, they took bath in the tank nearby in Gulab Sagar and washed all their garments including footwear. Thereafter, as the votaries of Mahatma Gandhi and liberation they dispersed with a smug feeling of complacence for serving and mixing with the sweepers on a footing of social equality.[17]

IV

Response of the conservatives : Maharawal, Dewan and Brahmins

This sanitation campaign of the Congress workers in the capital town of Jaisalmer created consternation in the Hindu conservative circles comprising Maharawal, Dewan and a section of Brahmins under the galling control of the State. Their sanitation programme and mixing with the sweepers and accepting beetle nuts from them caused annoyance among their orthodox relatives and caste fellows who refused to share with them food or mingle with them in the community gatherings and picnics. The Maharawal had instigated these conservative elements against the Congress workers. This was evident by his supplying sweets to the sweepers for entertaining the Congress workers and to counteract their social activities.[18]

The Maharawal further provoked anger among the Congress workers by financing a picnic for those who had gone as spectators to the sweepers' quarters but did not participate in the sanitation campaign. At the top of this, he offended the Congress worker Madan Lal by expressing disapproval of his joining the sanitation campaign. He suspended his father Pokar Das Pujari from the priestly service of temple in the palace of the Jaisalmer fort on the ground that he lived in the same house along with his son who had mixed himself with sweepers. Onkar Singh, the Dewan of the Jaisalmer State justified this harsh measure as it was based on "the old beliefs and orthodoxy and according to usage."[19] Madan Lal, as a progressive Congress worker, protested against the unilateral decision of the Maharawal. As a whistle blower for the abolition of

untouchability in the conservative society of Jaisalmer, he raised his voice against the unjust punishment to his father for the sins of his son. He publicly defied the decision of the Maharawal by resorting to hunger strike at the Congress office on 16 August, 1948.[20]

The harsh and reactionary attitude of the Maharawal had mobilized the conservative section of the Brahmin community against the progressive congressmen. This was perceptible when the Congress worker Booli Dan Bissa, a Brahmin who lived by begging was refused entry in his house by his mother on the ground that he had polluted himself by mixing with the sweepers. As a mark of protest, he also joined his fellow worker Madan Lal in the hunger strike at the Congress office on 16 August, 1948.[21]

Maharawal spearheaded the Conservative faction

On 17 August, 1948, Bhanwar Lal Acharya, President of the Jaisalmer District Congress Committee and his associate Satya Dev Vyas, in their meeting with Onkar Singh, Dewan of the Jaisalmer State alleged that Maharawal Jawahir Singh conspired with the conservative Brahman lobby against the Congress workers. But, Onkar Singh, a protagonist of the conservative bloc spurned this complaint. He asserted that according to prevalent social norms the Maharawal had rightly penalized Pokar Das Pujari for the sins committed by his son by mixing with the sweepers. Even he pressurised Pokar Das Pujari to offer *prashchit* as an atonement for his trangression before entering the *sanctum* of the temple. He remarked that:[22]

"This was required and offered by such Pujaris even when they partake outside the temple since the Pujaris only partake food cooked in the temple."

There was no hope of justice from Dewan Onkar Singh as he was also averse to the sanitation campaign in the sweepers' quarters. Therefore, on the morning of 18 August, 1948, Satya Dev Vyas along with two Congress fellows also went on the fast to strengthen the cause of the hunger strikers, Madan Lal and Booli Dan Bissa and also to attract the attention of the Congress leaders across the country.[23]

End of the hunger strike, 19 August, 1948

Thus, Bhanwar Lal Acharya, President of the Jaisalmer District Congress Committee transformed the local sanitation campaign into a

national issue. He reported about the whole incident of the hunger strike of his fellow workers to A.V. Thakkar, General Secretary, *Harijan Sevak Singh*; Sardar Vallbhbhai Patel, Minister for States; Dr. Rajindra Prasad, President of Indian National Congress; and Gokul Bhai Bhatt, a Congress leader in Rajputana States.[24] In turn, A.V. Thakkar as the head of the Harijan movement all over India and a follower of Mahatma Gandhi resolved to settle the issue by peaceful negotiations. Accordingly, he advised the President, Jaisalmer District Congress Committee to abandon the hunger strike and requested P.S. Rao, Adviser to the Rajasthan Union and Regional Commissioner Rajputana States, Udaipur to resolve the dispute in the Jaisalmer State.[25]

The mounting pressure of the national leaders to call off the hunger strike, and the restoration of Pokar Das Pujari by the Maharawal to the position of the priest in the temple of Jaisalmer fort, convinced the members of Jaisalmer District Congress Committee that it was futile for them to continue the hunger strike. In this favourable situation, Onkar Singh visited the Congress Committee office on 19 August, 1948. On his advice the hunger strikers gave up their fast.[26] The success of the sanitation campaign of the Jaisalmer District Congress Committee, made it crystal clear that in the democratic set up of Independent India, it was no longer possible for the Maharawal and his conservative faction to "neglect the Harijans and to keep them a separate entity."[27] This anti-untouchability narrative marked the triumph of the reformers over the conservative and feudal forces and stressed on the elimination of social discrimination in the Hindu society. It was also indicated in the national policy towards the backward castes. On 5 March, 1948, the Chief Secretary, United State of Rajasthan focused on the social development of the Scheduled Castes and other backward castes.[28] He framed the 'Removal of Social Disabilities Act' for the consideration of the Council.[29]

V

Impact : Abolition of Untouchability and Manual scavenging

It may be argued that it were such petty incidents of protest of the conservative group of Jaisalmer town against the social mingling of *savarna* Hindus with sweepers in the pre and post-Independent India that moved the Constituent Assembly to declare expeditiously the 'abolition of

Untouchability' and imposition of any 'civil disability' on Harijans as an offence on 29 April, 1947, amid the shouting of slogans by its members, "*Mahatma Gandhi ki Jai*" as a tribute to him on the fruition of his life's mission against untouchability. In the shadow of such progressive steps, the Rajasthan State Legislative Assembly abolished untouchability [Rajasthan Harijan Removal of Social Disabilities Act, 1956],[30] restrained perpetration of atrocities on the Scheduled Castes and Scheduled Tribes for protecting their civil rights [Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Amendment Act, 2018],[31] and finally banned manual scavenging in any form in India with the provision to rehabilitate the manual scavengers (Prohibition of employment as Manual Scavengers and their Rehabilitation Act, 2013) for ending social prejudice against them and also granting them social equality and human rights.[32] As a corollary to the abolition of manual scavenging, Prime Minister Narendra Modi revamped the Gandhian sanitation campaign and gave it a broader social base by launching it as a government's flagship *Swachh Bharat Abhiyan* (Mission) in rural areas in 2014 with a vision to see India clean and toilet for every household to eliminate open defecation across the country by 2 October, 2019, the birth anniversary of Mahatma Gandhi.[33] Pandit Jawaharlal Nehru had also visualized the accomplishment of this high level of sanitation as "pinnacle of the progress" for India. However, Modi has the credit to give a concrete shape to the vision of the First Prime Minister of India.[34] He paved the way for the growth of smart villages across India by the *Swachh Bharat Campaign* along with other rural construction programmes, such as, *Jan Dhan Yojana* (bank accounts for all), *Sowbhagya* (electricity for all), *Ujjwala* (cooking gas), PM-Kisan (direct cash transfers to farmer) and the *Ayushman Bharat – Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana* (World's biggest healthcare scheme). These welfare schemes for poor villagers have given a new identity to the Modi government and also provided new opportunities to rural population.[35]

Rreferences

1. Collected Works of Mahatma Gandhi *(*CWMG*), Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, New Delhi, Vol.13, pp.276-77.*
2. *C.C. Mehta,* The Harijan Ashram of Sabarmati, *Navajivan Publishing House, Ahmedabad 1970, pp.22-23.*
3. Harijan, *5 December 1936; Harijan, 25 July, 1937.*

4. Harijan, *4 May, 1935, p.93.*
5. Harijan, *7 September, 1935, p.235.*
6. *L.R. Sikund, Dewan, Jaisalmer State,* Report on the Administration of the Jaisalmer State for the year 1937-38 *(1st November, 1937 to 31st October, 1938), Shree Jawahir Printing Press, Jaisalmer, 1940, pp.1-2.*
7. *K.K. Sehgal,* Rajasthan District Gazetteers, Jaisalmer, *Directorate, District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur 1973, pp.25-31.*
8. *Sikund,* op.cit., *pp.7-8 and Appendix XXV.*
9. *Gopinath Sharma,* Rajasthan ka Swatantrata ka Itihas, *Rajasthan State Archives, Bikaner, 1987, p.324; See also, Vinita Parihar,* Rajasthan men Uttraradayi Shasan ke liye Sangharsh, *Rajasthan Hindi Grantha Akademi, Jaipur 2002, pp.139-40.*
10. *Sehgal,* op,cit., *p.53.*
11. Ibid., *p.66.*
12. *Diwan, Jaisalmer to Resident, Western Rajputana States, 16 February, 1926. F.No.158 (3)-P, 1925, Foreign and Political Department, National Archives of India, New Delhi.*
13. *U.B. Mathur,* Ethnograhic Atlas of Rajasthan *(with reference to Scheduled Castes and Scheduled Tribes), New Delhi, 1969, pp.24-28.*
14. *Arhibald Adams,* The Western Rajputana States: A Medio-Topographical Account of Marwar, Sirohi and Jaisalmer, *1st edn 1899, Vintage Books, Gurgaon, Reprint, 1990, p.231.*
15. *Sikund,* op.cit, *pp.1 and 6; See also, Sehgal,* op.cit., *p.265.*
16. *Report from Onkar Singh, Dewan, Jaisalmer to S. Narayanaswamy, Under Secretary to the Government of India, Ministry of States, New Delhi, 19 August, 1948. F.No.196-RCJ/52, 1952, Ministry of States, National Archives of India, New Delhi (*NAI*).*
17. Ibid.
18. Ibid.
19. Ibid.
20. Ibid.
21. Ibid.
22. *Report from Onkar Singh to S. Narayanaswamy, 20 August, 1948. F.No.196-RCJ/52, 1952,* NAI, *p.51.*
23. Ibid.
24. *Translation of letter No.48/47, 24 August, 1948, from the District Congress Committee, Jaisalmer to the Dewan of Jaisalmer. F.No.196-RCJ/52, 1952,* NAI, *p.57.*
25. *A.V. Thakkar, General Secretary, Harijan Sevak Sangh, Delhi to P.S. Rao, Adviser to the Rajasthan Union and Regional Commissioner to the Rajputana States, Udaipur, 21 August, 1948. F.No.196-RCJ/52, 1952,* NAI, *p.53.*

26. *Report of Onkar Singh, 20 August, 1948,* loc.cit., NAI.
27. *Translation of a letter, No.48/47, 24 August, 1948, from, the District Congress Committee, Jaisalmer to the Dewan of Jaisalmer, loc.cit.,* NAI, *p.57.*
28. *H.V.R. Iyengar, Secretary to Government of India, New Delhi to the Chief Secretaries of all Provincial Governments and the Commissioners of Delhi/Coorg/Ajmer-Merwara/Andaman and Nicobar Islands, 9 August, 1949. F.No.196-RCJ/52, 1952,* NAI, *p.61.*
29. *Chief Secretary, Government of Untied States of Rajasthan to Chief Secretary to Government, Vindhya Pradesh, Rewa, 5 March, 1949, F.No.196-RCJ/52, 1952,* NAI, *p.59.*
30. National Commission for Scheduled Castes and Scheduled Tribes: A Handbook, *2000, p.4.*
31. *"Supreme Court refuses to stay amendments to SC/ST Act",* The Hindu, *2 January, 2019.*
32. *Editorial,* The Hindu, *19 July, 2017.*
33. *"Open defecation continues unabated,"* The Hindu, *5 January, 2019.*
34. The Collected Speech's of Jawaharlal Nehru, *Vol.2, New Delhi. Quoted from Rajeev Kumar Singh, Ziyuddin, "Manual Scavenging As Social Exclusion," in* Economic and Political Weekly, *Vol.44, No.26-27, 27 June-10 July, 2009, p.521.*
35. *Swaminathan S. Anklesaria Aiyar, "Congress gave Slogans, Modi made them real,"* Sunday Times of India, *9 June, 2019, p.12.*

Exploring some aspects of socio-economic and cultural life of Bhils tribe

Sukirti Singh

Bhils, one of the largest tribes in India, were primarily cultivators dispersed in different parts of Rajasthan, Madhya Pradesh and Gujarat. In present day Rajasthan they are resided mostly in parts of Abu, Palanpur and Shrohi. Bhil tribes have been mentioned in various Vedic texts. But their migration in Madhya Bharat is so rapid and dispersed that it is difficult to trace their exact origin. Much of their early history is lost but their references can be found in texts like kathasaritsagar of Gunadhaya. Colonial historians like Colonels Tod and Malcolm in their works have incidental mentioned about this tribe. The earliest refence of Bhils, according to R.E Enthoven, is in the work of Gunadhya's Kathasaritsagar. It is in one instance where Bhil chief opposed the passage of its rival king through Malwa.[1] Mention of bhils have been found in Bhagwat puarna version of which is reported by Sri C.S. Venkatachar. Bhils have emerged from the thighs of veena, the son of Anga who was childless. The story goes like this that a sage rubbed his thighs and produced a man having a black face and a short height. He was named as Nishads, who spread dwelling on the Vindhyan Mountain distinguished by their evil deeds.[2] According to Sri C.S Venkatachara, Bhils version relates the origin of bhils to the union of a dhobi with his sister who was married by Rama, had a son. The story goes like this dhobi was able to save himself and his sister from greatest deluge. When lord Rama came to know about the incidence, he asked the nature of their relationship. Dhobhi with hesitation told she was his wife. Rama then ordered them to produce off springs. From this incestuous union came forth seven sons and seven daughters. Rama gifted a horse to the eldest son. But he left it to go into the forest to gather berries. From this woodsman were descended Bhils who still reside in forest and are known as forest dwellers.[3]

Other refernces of bhils we find in Mahabharat where archer Ekalavya, who resides in forest was a Bhil. Dronacharya did not accept him as his disciple when he approached the latter to learn archery. Ekalavya, though disappointed, made Dronacharya his idol and practiced archery day and night. Later Dronacharya came to him and asked for the thumbs of his right hand as guru Dakshina, which he without any hesitation offered. Another tale from the same source associate Bhils with Parvati, consort of Mahadev, and relates how these forest dwellers once went to visit their kinswoman at the abode of Mahadev. Mahadev gave them a gift of a silver stool, which they carelessly did not see and later, his bull Nandi with an injunction not to miss the wealth in its hump i.e. it should not be put to the plough. But the greedy foresters killed the bull. Parvati cursed them that they and their descendants would never be good cultivators and would always remain poor.[4]

From the references of Bhils given in the work of Tod it appears that the Bhils have been fighting for their existence since the time with land greedy Rajputs and Muslim invaders who grabbed their lands. As consequence Bhils were driven deeper and deeper into the refugee areas of Central highlands and Aravalli belt, where the majority of them remain to this day. Time and again they were beaten up by powerful Rajputs and Muslim invaders who have better and trained army. They were dispossessed of their land earlier by Muslims and Rajputs and later by Marathas and British as a result they remain poor.[5] By the end of fourteenth century the Rajputs seem to have succeeded in oppressing the local Bhil chief and most of the parts of Rajasthan came under the control Rajputs. As result majority of Bhils shifted their base to the parts of Central India. There were only a few powerful Bhil and Bhilala houses such as those of Jambughoda, Mandhata, and Silani. Col. Tod wrote in the Thirties of the last century, Rajputs were freely taking water from the Bhils. Bhils, however do not interdine with Rajputs, probably because of the latter's custom of pork.[6]

Regarding their physical stature, Bhils are normally short to medium height people. They generally have round head with dusky face complexion. Their features exhibit Indo-Mediterranean physiognomy. According to Venkatachar, Rajputs did not hesitate to take wives from tribal origin and were engaged in several matrimonial ties with Bhils women.[7] Sir George Grierson in his work Linguistic Survey of India opines that Bhils dialects are the fusion of Gujarati and Rajasthani influences.[8]

Regarding the economic aspect of Bhils, historically as proven they are primarily cultivators residing in small hamlets. In present scenario they are residing in small village localities having permanent settlement. Each village is under the administrative control of a headman, guided by the talati or the village accountant. 'Most of the Bhils families lives in joint family structure. Usually the members of an agnatic lineage group would have their clearings in the same vicinity. Each family could clear as large an area as they needed, provided that the clearings were not all close together in one area, but widely spaced so as not to damage the forest'.[9] Main crops were maize, wild rice, millets and lentils. Bhils believe in the system of gift giving when a married couple starts making its own home the bride receives the cattle as a gift from her maternal side. This is indicative that the milk of her natal home might never stop to flow in her home.[10] Each family is required to maintain certain amount of livestock. Possession of large livestock means having a strong status quo in community. It also had an added advantage like availability of extra manure. It also fulfils their ritual and social demands. 'One might expect to find in any Bhil family, at least four or five occasions in a year, on which one or more goats and fowl are sacrificed. Most spirits and deities supplicated by Bhils for their various ills and grievances are such are such that demand at least a brace of fowl sacrifice. Even ancestral tutelary spirits demand such sacrifices.'[11] As a result trade in cattle developed quite extensively. People generally go to cattle market to sell and purchase cattle. Often in lonely places cattle were raided by robbers which sell them in far off places. This type of activity was at rampant in the border areas of Bhilwara, Kota and Rajsamand. According to Tod, Bhils came in conflict with Rajputs, who subdued them, with their sheer might. Then with a view to consolidate their authority and control over tribal people, trusted followers were placed by the Rajputs in strategic villages as Jagirdars and ankadidars.[12] They were to pay certain taxes to the government and no questions were asked as to ways and means adopted by them to extract taxes from their tenants. The highest position of power was mainly occupied by Rajputs. In bhils family is a very intimate group, having extensive relation among each member. All members participated in various ritual and cultural activities. Such participation fosters a sense of loving, caring and deeply affectionate bond among family members. 'This unity of the joint family can be seen

clearly in its relations with the other families in the villages. Kingship and affinity stretch across clan, lineage and family and link up individuals and groups in different villages in an extensive network of mutual rights and obligations.'[13]

Bhils major concern is towards their new born children. 'As there is considerably high rate of infantile mortality in this region, it appears that nearly a third of the children born in a family die within the first two or three years.'[14] As a result Bhil parents are more concern towards their new born wellbeing. This situation is reflected in the ritual traditions which Bhils perform when a baby is born. In case of Bhil marriages, they are virilocal. After a marriage bride goes to live in their husband's house. 'Though she does maintain cordial relations with her natal kin group with occasional visits etc., there would be a considerable breach in the solidarity of her natal home, which has to surrender a considerable portion of their rights over her- in personem and in rem, to her husband and their kin group. Bride wealth and its distribution seems to play a very prominent part in the marriages complex.'[15] Bride wealth plays an important role in the marriage complex irrespective of which way marriage took place. Marriage legitimacy is confirmed only through a certain amount of money or cattle wealth from groom family to bride's kin. The amount of wealth varies depending upon the personality of the bride. Cattle is a main element given in the wealth. Cattle yield good manure for their field, and their products such as ghee, milk is used both for consumption and market purpose. According of Radcliff Brown marriage ties as seen as a compensation paid to the bride's kin group, for the breach caused in its solidarity. It is also seen as an expression of the solidarity through a series of wealth exchanges between the two kingroups brought together into affinal relationships.'[16] His theory can be easily implemented in case of Bhils where marriage with implications of virilocal residence inevitably involves a breach in the solidarity of the girl's natal family.

Polygyny can be easily seen in Bhils. Instances of man marrying more than once, are quite common. Polygyny requires that a man must be financially stable to find a bride wealth for each of the bride's family. Having more than one wife also ensures having more children to work in field and in the homestead. Polygyny also make sure the desire for having large number of children. There are continuous cases of sterility and of

infantile mortality. In most of the cases despite of having more than two wives the size of family remains small. There is division of labour between the two wives, senior wife takes a charge of authority and junior wife works under her surveillance. Generally, co-wives work in peace with each other. Although they live in separate medi but for festivities and other religious functions they come together.

'Marriage expand the cordial relationship between two kin groups through a complex pattern of social and economic relations which give rise to a whole complex of behaviour patterns that are referred to as hagai-vehvar, and which occupy a very important place in the normal day-to-day life of a Bhil individual.'[17] The relationship between both husband and wife must be courteous and respectful. They call each other as haga (a formal word to show respect). 'Bhils, in general, seem to believe that a family which has wide spread affinal relationships would tide over most of the critical situations associated with any marriage. 'A kingroup establishes links across the boundaries of its local community, and is brought into personal relations of collaboration and dependency with an entire group of individuals whom they might have never known before, and whom their prestige and status bound up.'[18]

Regarding their tradition religion majority of them believe in idol worship. They worship Hindu Gods whom they consider benevolent, they also believe in dead souls. Apart from this they believe in nature worship, they believe strongly in witchcraft and sorcery. They believe that witchcraft has immense power to harm and destroy people. 'Since the deities are benevolent and may be easily propitiated, the major emphasis in Bhil religion is placed upon the propitiation of the numerous malevolent and malignant spirits by frequent offerings of blood and liquor and on the divining and neutralising of the witches and sorcerers in their midst.'[19] There are priest in Bhil tradition but they do not have formal authority. They believe in life after death but they do not have clear define notion for what is heaven and hell. They believe in the concept of good soul and bad soul, it is believed that a person who died under 'natural' circumstances, become a good soul. On the other hand, if a person died under 'unnatural' death it becomes bad spirit wanders on the Earth with maleficent motive. Therefore, witchcraft is practiced by this tribe to ward off the evil spirit. 'Bhils endow these spirits with all the human attributes of benevolence,

anger and hatred according to the nature of the persons when alive and the circumstances of their death. Being freed from the limitations a corporeal existence, they become much more volatile in their movements and may operate in spheres where no corporeal body can function. So, their capacity whether for doing good or for inflicting damage, is considerably enhanced.'[20]

Mahadev is considered as supreme deity in the hierarchy then comes the position of Indra. Indra-the god resides in sky is considered as controller of rain having direct relation with the success and failure of crops. The third place is assigned to Rama, epic hero of Ramayana. He is considered as foster father of Bhils. Then the place is assigned for lesser deities among them is Hanuman, chief attendant of Rama symbolising continence and steadfast loyalty, and Ganesh, the elephant headed son of Mahadev. They are worshipped whenever any new task is undertaken. Among other deity's goddess kali is worshipped frequently. She is considered as a 'Mother of all the Universe'. She offers protection from the wild animals, and punishes those who have evil tendency. Bhils celebrate and worship this goddess during Holi. Preparations for this festival started before a month. This is a post-harvest festival that falls in march. Mela is organised in their village and young men and women sing goddess kali's song. Other festivals which are celebrated within this community are Akhatrij and Indraj. These deities are worshiped in these festivals also. These deities are regarded as scared and animal sacrifices are not acceptable to them.

However, in case of goddess Kali goat is offered occasionally. It is often believed that goat is offered to make her happy during the Holi when Holi-bon fire lit up. 'Generally, however, the worshipper would dedicate an all-white kid to her and after decorating it with red ochre and festoons of flowers, let it loose in the jungle. No man might kill it. But if it should get eaten up by a denizen of the forest, it is assumed that the "mother" has accepted the sacrifice.'[21]

Goddess kali is also considered as a mother of epidemics such as the cholera, small-pox, dysentery, and plague. So, community pray to kali to carry these children along with her. The victim who is attacked by the epidemic seeks the grace of the spirits so to save him. They do not have faith in modern drugs instead they believe a person so affected by the epidemic is possessed by evil spirit. This possession can only be cured by

the sacrifice to goddess kali. The efforts are made to locate the particular spirit who has seized the victim and then, to propitiate it through sacrifice.'[22] According to villagers, there are different kinds of soul, some of are sad souls which can be warded off after a small prayer by a priest in presence of a victim and his family. Other kind of souls are bad spirit which are stubborn and need special kind of sacrifices depending upon the nature of spirit and her/his desire from the victim. Normally, in such cases special kind of ritual prayer is organised where large beast is offered to please the spirit. If such spirits are not pleased then they cause haunt villagers. Such spirits sacrifice their hunger by killing human and sometimes their cattle. However, it is believed that the good spirits dwell in vicinity of the village and protect the interests of their descendants. Every village has their own grove, which is consecrated to the ancestral spirits as their dwelling place. This grove is named as "the forest of the gods". Villagers protect their grove, as they believe their ancestors resides in the grove, and make sure that no tree is being cut from the grove. All the good spirit is invited, by performing certain rituals, in the grove. During auspicious festivals like Devali and Akhtej, offerings of food and liquor are made to all spirit resident in the grove.

There are other different ways to remember dead ancestor, one such was by erecting a memorial stone in this grove. Generally, memorial stones are plain having a delicate carving in several poses depicting their ancestors heroic act. To remember the deeds of their ancestor certain rituals are performed on certain rituals. Prayers are performed to make them happy so that ancestors will protect villagers from evil forces. In such cases special priests are invited who perform various elaborate rituals. Various kind of offerings are given in these rituals which varies from fruits, meat of animals, and certain kinds of herbs. First offering is made by the oldest male member, as he is considered as having close relation with ancestors. Then in hierarchy second offering is made by his son and so on. This is interesting to note that, in certain rituals woman presence is mandatory while in other she is not needed. If the ancestors are female then woman presence is important, however, if ancestors are all male then women are not required. In most of the cases entire family is present for offering signifying their unity. Such ritual involves considerable expense. All the people of the village have to be invited to witness the ceremony and

to partake of sacrificial meat and liquor.

Priesthood is limited to men. As it is believed in their community that men are pure soul and to remove bad spirit requires lot of physical strength which men have and women lack. However, men underwent an intensive training before attaining the title of priesthood. The training is tough which requires lot of physical activities. The sadhana which they have to go through is rigorous and prolonged. Only few are selected who can deal with notorious spirits. Once this test is completed selected ones are considered as fully qualified priest.

The clear objectives behind prayers and rituals are that tribes to get abundant of crops, good health among the people and their livestock and assured continuity of the lineage through many children. Bhils believe that in the end the good spirits will triumph and evil forces will get defeated. But within that short period, evil forces will cause lot of destruction and to minimise that havoc evil forces must be propitiated and kept in good humour. In villages, the larger emphasis in their ritual complex has been on ghosts and other malignant spirits.

On some occasion mela was organise to celebrate the victory of good over evil. This event is also associated with good harvest where villagers perform some rituals and prayers as act of gratitude for their good harvest. Women gather around and dances on their folkdance and pray for their future harvest. Most of the villagers are busy in singing and dancing only few people like old member of family, priest and a headman of a village attend prayers and rituals.

The term Bhils though used for a large community living in distinct areas of central and western India. But their customs, language, culture and ethnicity are different from each other. Even Bhils community, residing within same border, adjacent to each do not have uniform culture. Thus, lots of microscopic work need to be done to understand the intricacies of their culture and to reveal the underlying differences they have from other tribal community. Such studies will help this community to mark their unique identity within the mainstream society.

References

1. *Enthoven, R.E., Tribes and castes of Bombay, article on Bhils*
2. *Bhagwat purana, Skanda, chapter 14, Sholka 45.*

3. *Venkatachar, C.S., op. cit., p.239.*
4. *Ibid.*
5. *Tod, J., Annals and Antiquities of Rajasthan, pp. 186*
6. *Ibid.*
7. *Venkatachar, C.S., op. cit., p.239*
8. *Greirson, "Linguistic Survey of India", I, pp. 179-9*
9. *Nath. Y.V.S. "Bhils Of Ratamal", School of Oriental and African Studies, University of London, pp.123-24*
10. *Ibid.*
11. *Ibid*
12. *Tod, J., Annals and Antiquities of Rajasthan, pp. 198*
13. *Ratanmal'; Economic weekly, pp. 1355-61*
14. *Rajasthan Gazetteer, IV. PP. 1-3*
15. *Nath. Y.V.S. "Bhils Of Ratamal", School of Oriental and African Studies, University of London, pp 123-25*
16. *Radcliff- brown, A.R., op. cit. pp. 45*
17. *Nath. Y.V.S. "Bhils Of Ratamal", School of Oriental and African Studies, University of London, pp.135-37*
18. *Ibid.*
19. *Evans-Pritchard, 'Witchcraft, oracles and Magic among the Azande' pp. 123*
20. *Nath. Y.V.S. "Bhils Of Ratamal", School of Oriental and African Studies, University of London, pp23-26*
21. *Ibid.*
22. *Evans-Pritchard, 'Witchcraft, oracles and Magic among the Azande', pp.234*

General Characteristics Features of the Forts of Western Rajasthan

Ms Falak Nawaz

The paper is based upon the general characteristics of the fort architecture of Western Rajasthan viz. Jodhpur, Jaisalmer, Bikaner, Nagaur and Jalor. It is an attempt to examine the various architectural features of these forts. Through such a study, an attempt has been made to discern the various features which are necessary for the construction of the fort. The scholars of Indian architecture including Dinanath Dubey, Professor Zahoor Ahmed Khan, RL Mishra, Mahendra Singh Tanwar's *'Munhnot Nainsi Ri Khyat'*, mentioning about the Rajput architecture had beautifully described about the important elements which prevailed in the forts of Western Rajasthan.

There was a great uniformity in the fundamental principles of design. In building of fortifications, there were variations of forms in several countries on the account of difference of climate, material and national characteristics. Fortifications in the early India were raised according to the dictums laid down by the sages of the Military architecture like Manu and Chanakya.[1] The modern excavations have uncovered some ancient fortifications which date from very remote period. Cities and towns were surrounded by thick walls which were of great height.

The components of fortifications consisted of a mud brick rampart of great height, surmounted by a wall built of brick and bitumen. The Rampart wall was enclosed by a Moat, canal or River. The gateways were of great width and height flanked by towers on both sides. There are various components of a fort structure. The rampart wall is one of the first and foremost elements of fortification which is called *Parakara* in ancient literature.

The *Parakara* or Rampart is made on the top of a *Vapra* wall of sand dug out from the fort side. The rampart is to be made of stones or bricks. According to Kautilya, it should be made thin at the top, flat below

and of jug-like shape in the middle.[2] The construction of Rampart varies but generally it consists of a core of Earth and gravel faced at the base with large stones in places of huge granite builders and at the superstructure with ashlars or brick work. There is a wall walk on the top of great width paved with stone. The towers or bastions were built at regular intervals on the Rampart wall.[3] The shape of the bastion may be round, square or rectangular. The sage Chanakya recommends that the towers should have two storeys. The role of the towers is great in defending the fort.

It gives solidity to the parapet and provides good protection to the garrison. The towers are raised at the point of declivity in the Rampart. The *Kapishirshakas* or money heads are to be made on the top of the parapet in a continuous line. There are holes in them which will be used for watching movements of the enemy and pouring missiles like arrows on the enemy which are called *'arrow loops'*. Such loops are built at the lower site and are also meant for pouring burning oil on the enemy. The gateway is the important element of fort structure. It should be constructed to be utilised at the time of difficulty. A small gate called *Bari* is constructed in the Rampart to facilitate the ingress of the garrison. The postern is a side gate in the Rampart for making sorties on the enemy. It should be constructed in the Rampart wall so that the enemy cannot detect it.

The portcullis is a gate of stout timber overloaded with iron and kept in reserve. The barbican is the outer fortification of a fort. It is called *'Garhgaja'* in Hindi and *ghughas* in Rajasthani dialect. It is also known by the name of *Marhala* or *Charbuja* having four bastions at the four corners. It is made up of mud or stone and brick. The machicolations are temporary or stone galleries erected on the outside of the parapet. They are meant to protect the base of the wall against sapping operations. Stone machicolations are erected on the upper part of the main gate to extinguish the fire burnt by the enemy to burn down the doors. They are erected in a shape of a shield and are found in every fort built in Medieval time.

Machicolation are constructed to check the advance of the attacking force by pouring boiling pitch, stones, darts and other missiles. The attacking force tried to push their way by burning down the gates. According to Flagious Vitruvious, it is also necessary to have a projection over the gates with openings from which one can pour water on the fire which the enemy has lighted. Machicolations are actually holes formed in

the roofs of the passages through the gateway or projected out on corbels from the parapets of the walls and gateways. They are rare in North but profuse in the Deccan.[4]

The curtain walls should be at least 15 feet thick built in Gypsum and well bonded to prevent escalade. These walls should be spaced from 12 feet to 18 feet. The sage Kautilya also prescribes construction of one or two curtain walls. These walls should be bonded to curtain walls because owing to the inequality of weight fissures develop and endanger their safety. Another writer, Vitruvius says that the plan of the fort should not be square or have sharp angles but should be polygonal so that the movement of the enemy might not be obscured by salient corners.[5] The ground near the fortification should be made uneven to make the approach difficult. The walls should be of sufficient width. Philo of Byzantium was a specialist who wrote a comprehensive treatise on mechanics and military architecture. According to him the plan adopted for the fortress must be decided and he describes several plans as the ancient ,the saw-shaped, the plan with concave walls and the plan with double walls.[6] Philo says that the Rampart wall should be at least 30 feet high while Chanakya recommends its height to be of 18 feet. The fort becomes vulnerable escalading due to lesser height of the walls. The other difference lies in the construction of bastions. The Indian way of making an *Attalaka* was erecting it as a part of the parapet at intervals while the Western way was a bit different.

The Fort Structure: The Fortresses forms the main point of the Military architecture. The elaborate and comprehensive instructions for erecting strongholds and about the mode of their fortification are found in the *Arthashastra* of Kautilya.

Moat (khaee): It is a deep and wide trench around the Rampart of a fortified place that is filled with water. Chanakya as well as the authorities threw their weight in favour of the hill forts. The ground forts were the effective means for safeguarding which were surrounded by deep ditches. In ancient times, the utility of moat was surrounded by three belts of moats with a width of 84,72 and 60 feet. The ditches were designated as *Parikhas(depthness)* and were prescribed to be infested with wild crocodiles and iron spunks and were to be scattered everywhere. In Rajasthan, there are some famous forts built on the banks of rivers.[7]

Ramparts (Battlement, parapet): In olden times, during the time of Chandragupta ramparts were made of wood or stone. Before that time, the Ramparts were built of sand. Chanakya lays down that the solidity and density of the Rampart walls should be ensured by compressing the sand with the feet of elephants and other animals and that these walls should be overgrown with thorny bushes. During the time, when no such devices as artillery were invented, these crude type of ramparts served the purpose. Later on, massive stone wall pierced by bastions made the solid defence supported by spirals of hill crests for instance the Fort of Jaisalmer. Rampart is the most prominent of fort construction. Weaker or lower rampart had their vulnerability and lay open to the attempts of escalading. Ramparts had battlements in semicircle with embrasures to fire. These small openings were meant for burning oil. The space left between two battlements was used for placing long matchlocks to fire on the advancing force. This was the first line of defence which put up stiff resistance to the invader.

Gates and Doors: Gates *(gopuram)* were constructed in the rampart wall which were provided with the doors with sharp iron spike bars attached to them to ward off elephants. The gateways were a kind of barrier thrown in the way of enemy to check smooth onward march.

Subterranean Passage: In every ground fort, confidential passages were constructed to use them during the time of emergency. These ways went underground and were opened at some distance from the fort behind the besieging force.[8]

Ladies Compartment: The ladies compartment of the fort was also a peculiar construction. Even in forts built in the seventh century, this is not found in strict adherence.

Ascent To The Fort: Rajnivesh is the ninth sector flanked by the residences of *Rajguru, Purohitas* sacrifices of *Rajguru, Purohitas* sacrifice, water reservoirs. *Pakshala* and *Sabhagri* has houses rader's house, account office, goldsmith's shops, place for armoury, residence of controllers of food grains. The six important elements of forts were; *Vapra, Parikkha, Prakaar,* Dwaar, *Attalaka* and *Torana.*

Vapra(counterfort): Fortification of the fort depends upon the type of *Vapra* according to which it has been built.

Parikkha (depthness): After deciding the place where the fort is to be constructed, *parikhas* were being built. There were three kinds of

Parikkhas-Water *parikkhas,* Pank *parikkhas* and Rikta *parikkhas.*

There is a description of *Parikkhas* in Ramayana, Mahabharata and Tamil texts. Apart from land forts, the *parikhas* were also related to rivers and oceans for instance Forts of Allahabad, Gagron, Narwar, Jinji, Aagwad are such forts.

Parakara: Peelni has vividly described about thirty cities who were fortified during the second century. Mathura, Madure, Kanchi and Dwarka etc. Were ancient fortified cities. According to the Shukracharya, the height of the *prakaar* should be built in such a way so that the enemy cannot cross it. Patanjali has considered Prakaar as an essential part from *Pratoli, Attalaka, Indrakosh* and *Devapath.* Patanjali has discussed four types of *Prakaar* (Boundary wall)*: Pratoli, Attalaka, Indrakosh)* and *Devapath.*[9]

Attalaka(Skyscraper): One of the most important elements of the fort was *burja* or *attalaka.* In the *Arthashastra,* there is a mention of two *attalakas* after every 28 metre in all the four directions which beautifies the fort and proved as a *Mukut* to the fort. The soldiers were appointed at the most important parts of the forts of the *Attalaka*.

Pravesha Dwara: The fifth most important part of fortification is the entrance gate. According to the *Vastushastra,* entrance gates are given immense importance. In Kautilya's *Arthashastra,* the entrance gates were called as *Gopuram.* The *Gopurams* are created in such a way that when one enter another the previous gate diminishes. According to *Namangan Sootradhar,* the main doors were divided into; *Mahadwaar, Vakradwaar* and *Pakshadwaar.* They are well connected with the *Raj-Margas*. *Pakshdwar* were being used after the closing of *Mukhyadwaar* and *Vakradwaar.*

Phatak (gate): In the *Arthashastra,* according to Kautilya, the entrance gate should be constructed in three or four layers. There is a mention of keel(nails) in the *Phatakas* of Chittorgarh fort, Daulatabad, Bijapur, Ahmad Nagar's entrance doors which contains nails which are sharp and thick. These nails proved as a protection from those elephants who were brought during the wars. The doors were built in such a way that the king and elephants can enter easily.

After entering into the fort, there were internal parts of the forts; *Raj Mahal*, Ministers, resting place for *Senapatis,* Soldiers, place for ships, *Sankul, Mandiron ki Shrinkhla, Yagyashaala, Koop, Mandap,*

Upwan, Pushpa vatikaayein, Koshagaar, Annagaar, place for arms, flag, and pillars. For instance the Mandu gate of Delhi *Darwaza,* the Delhi gate of Agra fort, the *Lahori* gate of Lal Qila and Pune gate of Singhgarh.

Development Process: A large number of developments have been made in order of fortification. There is a development in the construction of traditional *Parikha, Prakaar, Toran, Rajprasads.* Some forts contain 3, 5, 7 and 9 gates. Now, 4 gates are not found in any of the forts. *Suraj* pol was the first gate. Most of the first gate built in Rajasthan are known by the name *Suraj* pol. The second gateway was known as *Ganesh* pol. Other gateways are being named as per the gods and warriors. In Rajasthan, there were *Jaleb chowks* constructed in order to join *Raj Mahals*. The main gateway was known as Singhdwaar. *Hauz* were being constructed above the entrance gate. Hot oil was being poured at the time of attack. They were being poured in a way so that it would be fatal to the attackers.

It was not easy to enter through the gateway. There was second door after 60 *ansh.* There was a difference of 70 metre between two doors. They were known as *Ghoogas. Ghoogas* are mostly found in *Sthal* forts like Agra, Delhi, Nagaur forts. *Parkotas* were added to the Burjs in order to strengthen the fortification. After the prominence of cannons, they were being put above the *burjas* like Golkunda, Bidar, Bijapur, Chittorgarh *burjas.* The doors of the fort were being poured in hot oil, than the iron was being melted, sharp and thick nails were being attached to it so that the elephants cannot enter easily in the fort.

In order to protect their teeth from being ruptured, the elephants used to protect themselves from such gates for example Golcunda, Ahmadnagar etc. The forts were being constructed for various purposes like construction of buildings, jobs for the poor for instance Jodhpur fort. The fort constructed after the medieval times, were constructed on the pattern of Muslim architecture like Amer, Bikaner, Lal Qila of Delhi and Agra fort. The *Mehrabs* (arches), *Gumbads* (dome) and Jalis are being influenced by the Mughal art. *Silahkhana (Shastragar), Astabal(place where horses are kept), Raniwas, Das Dasi's* room, Ministers, *Havelis* for the soldiers have different architectural features. A mosque or temple was being constructed at the entrance gate of the fort. *Baroodkhanas (place where bombs were being kept)* were there apart from *Shastragaars (armoury)*.[10] Some places are still there in the fort where bombs were

being kept. There were places where flours were being kept to serve the animals. These flours were being boiled and eaten at the time of war for instance they were found in Chittorgarh, Mandalgarh, Bairathgarh.

The mountain which is narrow from the bottom but wide from the top is chosen for the construction purpose. Such forts are considered to be as the safest and cannot get attacked by arrows and cannon. *Kagmukhi mountains*[11] are considered to be as the best form of mountain. Those mountains which are narrow from the bottom and wide from the top are known as Kagmukhi mountain while those in which the width of the front partis greater than the rear of the mountain was known as *Chaajmukhi mountain.*

The security for the king in the *Kagmukhi fort* was easily ensured. Few brave soldiers were appointed who were so brave that they could easily give their life and could kill anyone to protect the fort. The Mehrangarh fort is the best example of Kagmukhi fort. The upper portion of the selected mountain of the fort is considered to be good because instead of being flat it was slopery because the place to stay in the fort was built according to the plan. So, it is very important for one end to be relatively high. Although the highest staying place in the fort was fixed for the king but sometimes instead of these palaces, the temples of gods and goddesses were constructed like the Mehrangarh fort. It becomes very difficult for the enemy to attack on the fort built on a high mountain. The whole Marwar was visible by standing on the high peaks of mountain.

Due to the lack of the plain area, the ponds were created at the base of the fort. In the foothills of Mehrangarh, the ponds namely *Ranisar* and *Padmasar* were being constructed with the objective of fulfilling the water related needs. Beside the palace and the temples, the residential place of queens, prince, Council of Ministers and soldiers were being constructed. After deeply investigating the fort architecture, we get to know the various important elements of it which were-

1. Jeevrakha: In most of the forts, the *Jeevrakha* were being constructed on the sloping path where soldiers were being posted for the security purpose. It was also known as *Angarakha* and considered to be as "*Soul of the Fort.*"[12]

2. Kavsees: A few walkways were built above the fort in such a

way that four to five horses could easily walk and soldiers were also appointed. Such place was known as *Kavsees.*

The construction of forts was important because of the following reasons:

1. In order to protect from the wild animals and other people living in the forest.

2. In order to protect from the attack of other kings.

3. The construction of the fort was important for the king as it was through this that he could save his people.

So, the forts were being constructed in order to protect the king from the foreign attack. Several important features like *Jeevrakha, Kavsees, Ranisar, Padmasar, Ramparts, Gates, Vapra, Parikkha, Dwaar, Attalaka, Torana, phatak, Mehrabs, Jalis, Gumbads* etc were necessary elements for the fort construction. Some features of the fort differs according to their type as whether they are Dhanava durga, Mahi durga, Giri durga, Manushya durga, Van durga, Aadra durga etc.

References

1. *Ratanlal Mishra, Saga of Forts and Fortification of Rajasthan, B. R. Publishing Co., Delhi, 2006, p. 31.*
2. *Ibid,p.31*
3. *Samrangan Sutradhaar,An ancient treatise on architecture,2 volumes,2007,Sudarshan Kumar.*
4. *Dr, Raghvendra Singh Manohar,Rajasthan ke Pramukh Durga,2018,Rajasthan Hindi granth academy*
5. *Dr.Mohanlal Gupta,Jodhpur Sambhaag ka Jilevaar Saankritik evam aitihasik adhyyan,2013,soochna evam jansampark adhikaari,pg.42*
6. *Ratanlal Mishra, Saga of Forts and Fortification of Rajasthan, B. R. Publishing Co., Delhi, 2006,pg.33*
7. *Dinanath Dubey,Bharat ke durga,Soochna aur prasaaran mantralaya,Bharat sarkaar1993,pg.34*
8. *Ibid,pg.37*
9. *Ratanlal Mishra,Military architecture in Ancient India ,BR Publishing company ,p.53*
10. *Dinanath Dubey,ibid,pg.35*
11. *Professor Zahoor Khan Mehar,Jodhpur ka aitihaasik Durga;Mehrangarh,Rajasthani granthagaar,2017,pg.39*
12. *Professor Zahoor Khan Mehar,ibid,pg.40*

Threads of Desert Life : Grasses and Shrubs (In Reference of Bikaner State)

Dr. Nitin Goyal

Desert life was hard and filled with uncertainty. Survival in this marginal environment was dependent upon the timely arrival of rains. It is the rains which ensure ripening of harvest. But in desert uncertainty of rain led to failure of harvest, then grasses and shrubs become source of survival for inhabitants since historical times.

As we know grasses are the ubiquitous plant, that grows in the Thar Desert region. They are almost indestructible and everlasting survivors even during the times of drought. They regenerate easily if parts of them are cut. They flourish and support the area when rainfall is absent and food crops are impossible to cultivate. They are entirely self-sustaining. On the importance of grasses Johan James Ingalls[1] has beautifully said;

"..forest decay, harvests perish, flowers vanish, but grass is immortal. It yields no fruit in earth or air and yet should its harvest fail for a single year, famine would depopulate the earth. Grass softens the rude outline of the world. Its tenacious fibers hold the earth in its place. It invades the solitude of deserts, modifies climates, and determine the history, character and destiny of nations."

Generally, we humans cannot eat grass in its raw form. However, the enormous flocks, found in desert region, of - goats, sheep, camels, cows, deers, oxen, buffaloes, etc. feed themselves over the grasses than any other plant. Cattle as we have discussed earlier play vital role in social as well as economic life of the desert society. In this way, grass comes out to be the most important vegetation of this region. Watson in his Rajputana Gazetteers records that the Bikaner is famous for its excellent fodder grasses.[2] Several kinds of grasses were found in Bikaner. It is these grasses, which supported increasing livestock in Bikaner. Fagan in his Settlement Report mentions the names of principal grasses, Dhaman (Cenchrus setigerus), Sewan (Lasiurussc indicus), Bhurut (Cenchru

sbiflours), Ghantil (Eleusire compressa), Khiv and Munj (Sacchar umbengalense) that grows in the state.[3]

Dhaman grass is also known as 'bird wood grass', which is a hardy and drought tolerant grass. It is a leafy fodder having a tender stem which provide an abundant foliage. On its presence in Bikaner, Fagan writes that the Dhaman grass was confined to the loamy soils of upper northern part of the state, Mirzewala village and Hanumangarh tracts. He further added that if early rain arrived then this grass grew in plenty.[4] Powlett in his Bikaner Gazetteer writes that the Dhaman grass helped in promoting cattle breeding in northern part.[5]

Bhurut grass is most common in the southern half of the state i.e. Nokha and Udaramsar area.[6] This is known as cookery grass in the region and people value it next only to the Bajra crop. It has a high proportion of protein and fat. It is available round the year. It is a good fodder for the cattle and an integral part of food subsistence for the locals. Powlett shows that in the times of drought its seeds were eaten by poor.[7] People even used to cook the chapattis from the seed of Bhurut grass.[8] This grass was so extensively grown in Bikaner that the Raja of Bikaner was known as Bhurutia in Mughal courts.

Sewan, a xerophytic grass, available in greater portion of the state, is extremely palatable and was used for hay and grazing. It grows in all the regions of western Rajasthan. The roots of the grass hold sand dunes together and hence reduces the impact of wind thereby helping in sand dunes management in desert area. Powlett remarks that the Sewan grass is tall and fine[9], and had a good reputation among cattle owners as fodder. This grass is fed to all the animals specifically milch cattle's cows, buffaloes and goat. Its adaptation that connects one Sewan plant (bhujha) with other and stops the sand to flow. It quickly regain itself.

Ganthil and Khiv is a perennial grass, which grow near the capital and Pugal, Chattargad area and the southern part of the state. Powlett mentioned that it derived its name from its top ganth (knot)[10]. This grass is remarkably good and nutritious for the production of wool as preferably eaten by sheeps.

Munja is a large tufted grass. It grows on sandy alluvial deposits in the neighborhood of the streams where the soils is not water logged. This

grass grows throughout the northeast part of the state. The grass is of little use as fodder plant since cattle do not eat it since. A valuable fiber is extracted from the upper sheaths of its flowering part. This fiber is used for making ropes. This is used for tying the animals and hutments. In Bikaner making and disposing munj rope is carried out by a particular caste i.e. Bawari and Sansi.[11]

During good rainfall grasses were stored by the people in kothar (store room) to be used in the times of drought in the form of digli (hay). Since the famine was common in the region, so as a measure of precaution people stored it in bundles.[12] Durbar (administration) levied tax on the cutting of grass from the unoccupied wastelands within the village boundary. On dried fodder, a tax named sukhara was levied by the state. Bundela singh mentioned the rate of this tax as re 1 to be taken for 100 maunds of green grass.[13]

Despite the hot environmental conditions with scanty rainfall, considerable regions of Bikaner show expanse of grasslands intermixed with shrubs and small trees.

A shrub is commonly defined as a plant with branches at or near the base without a trunk. Shrub is distinguished from a tree by its multiple stems and shorter height. They are also known as undershrub's. Among the shrubs prominent are Phog (Colligoneum polygonoldes), Sinia/chag (Aerva pseudo tomentosa), Aak (Calotropis procera), Bui (Aervap seudotmentsa) and Kheep (Leptadenia pyrotechia). These shrubs play vital role in maintaining ecological balance and improving the livelihood of the people of the region. These are important source of forage when herbaceous fodder is not available. They also fulfill the requirements of fuel in the rural as well as in the urban parts. Also it provide food to the humans. Many fruits, leaves, young shoots and roots serve useful food in the dry season.

Phog is a rigid, branched, and an almost leafless shrub, which is commonly found in western Rajasthan. It is a perennial shrub, which grows on the sand dunes and can survive with little water. It is available in the Anupgarh and Pugal ranges of the state. This shrub grows in and around the fields, pastures, grazing and fallow lands. The fruit of this shrub is called-phogala. These are used to mix with butter milk for making

rayata (a protein rich salty butter milk). Cow, buffalo, goat and camel eat the leaves of the plant, known as lahasu. Its wood is used for making hutments, naktoon (wooden piece fixed in the nose of camel) and kheeli (stoppers of irrigated well). The roots of phog are used to prepare charcoal.[14] The majority of village settlers use Phog wood for cooking purpose. This shrub also has its religious significance. At the time Gangaur festival (celebrated in Chaitra month) wooden clay images of goddesses are made. Devotees offer the fruit of Phog in honor of adoring these images. In medieval times the area producing specific vegetation taken as the frontier boundaries of a region. As the region of Bhatner ruled by Bhattis explains as area beyond the Phog producing land by Rajputs.[15]

Aak a common shrub throughout the area, particularly forming dominant element of ruderal vegetation. It grows through the year and its all parts used for varied purpose. As cords and ropes (aankala) prepared form fiber extracted from the stem.[16] Its twigs used for making hutments and fencing purpose. During the ninan process (cleaning of unwanted plant grows in between the crops) farmer keeps few for making hutments and fuel purposes. The pod of Aak is eaten by chinkara (deer), who reside in Bishnoi's[17] villages (as they protect the animal religiously). Aak has its medicinal significance as the juice of the plant is anti-irritant and applied to cure the thorn pricking and joint pains. Its fluid is extracted by a particular caste called, Bhambi, who use it in production the leathers hoes.[18] The wood of Aak is used for roof thatching and for making rope. However, except the camel this shrub is liked by hungry heard of grazing animals and these propensities have been beautifully summarized in a Marwari couplet

'Oont Choode Akaro

Bakri Chhode Kankro'

(Camel will eat everything expect aak but the goat will devour even that, leaving only pebbles)

Presence of Bui shrub is widespread; it is available in every field, as well as unoccupied wasteland. Sheep and goats eat the leaves of the plants. During the field survey[19] I came to know that Bui, and Phog shrubs provide manure to soil and enhance its fertility.

Karil, a leafless shrub is mostly found in the areas of hard surfaces

throughout the state. Its branches are green, and the color of flower is brick red. Its unripe fruit is pickled and also cooked as vegetable with saangari.

Apart from being used as fodder for animals and food subsistence for humans, some shrubs that grow in Bikaner are also used for rope manufacturing. Among these kheep and sinia shrubs are noteworthy. Kheep shrub is found on sand throughout the area. The settlers usually prepare rope from the plant and use it for making kuccha (earthen) hutments. The rope made of kheep protects Pachasa (heap of grasses). It fulfills the fodder needs as well as of the fuel. As medicinal values, its roots applied to cure snake-bite cases.[20] However kheep have adverse impact on fertility and production capability of land. As no vegetation can raise where kheep develops. Its unripe fruit, known as khipoli, used for making vegetables.

Like Kheep, Sinia plant is also found in abundance in the state. Cattle feed on its leaves. Rope and cordage made from this plant is used for tying or constructing the chapra (shade for the animals for protection from the wind and rain). The rope from this shrubs not only very strong but also not prone to decay. Its wood is used as fuel. This shrub usually grows with the Bajra crop.[21]

Thus a glance at grass and shurbs available in Bikaner regions shows that how people optimally use the available resources. Local population used the leaves, twigs, stems, flowers, fruits, roots, and every part of the shrubs and grasses. They also made optimum use of available land. The society shows the way humans have adapted themselves to the adverse climatic conditions.

References

1. *Johan James Ingalls (1833-1900) was senator from Kanas region in America from 1873-1891, He spoke these views in his speech on Blue grass in 1872 in Kentucky. See. Grass - The Yearbook of Agriculture 1948. U. S. Government Printing Press. Washington, 1948.*
2. *C.C.Watson, The Rajputana District Gazetteer Vol-B, Ajmer- Merwara Statistical Tables, Ajmer, 1904, p.311.*
3. *P.G. Fagan, Report on the settlement of the Khalsa village of Bikaner state, Bikaner, 1893, p.10.(here after referred as Fagan)*
4. *Ibid.,*
5. *Captain P.W. Powlett, Gazetteer of the Bikaner State, Bikaner, 1874, p.95.(here after referred as Powlett)*

6. *Powlett showed its presence in the Sujangarh as prime growing grass. p. 142.*
7. *Ibid .,*
8. *Govind Aggarwal, Churu Mandal ka Shodhpuran Itihas, Nagarshri, Churu, 1974, p. 10. Its grains are powdered and made into bred- locally called 'khakara'. A delicious dish-locally called 'Malad', also prepared by the locals after cooking Bhurut flour in ghee and adding sugar in it.*
9. *Powlett, op.cit.,*
10. *Ibid.,*
11. *S.P. Malhotra, H.S. Trivedi and Y.N. Mathur, Agro-Forestry A Judicious Use of Desert Eco- System by Man, CARI, Jodhpur, 1985, p..22.*
12. *Fagan, op.cit.,*
13. *Budela singh Gangeya, 'Archival Records Relating to the Administration of the State of Bikaner (Seventeenth to Nineteenth Centuries)', IHR ,24, no.1, July, 1998, p.93.*
14. *Its roots used by Chuna makers as charcoal for preparing/cooking lime for painting house.*
15. *Harisingh Bhati, Bhatner ka Itihas, Sankhala, Bikaner, 2000.*
16. *M.M. Bhandari, Flora of the Indian Desert, Jodhpur, 1978, p.219.*
17. *To know more about Bishnoi' see Hiralal Maheshwari, Jambhoji : Bishnoi Sampradya aur Sahitya, Vol-1-2, Calcutta, 1970. Bishnoi sect founded in 1485 AD.*
18. *S.P. Malhotra, H.S. Trivedi & Y.N. Mathur, Agro-Forestry A Judicious Use of Desert Eco- System by Man, CARI, Jodhpur, 1985, p..35.*
19. *I did this field survey in March 2014 with the help of Dr. Gopal Vyas from Bikaner.*
20. *M.M. Bhandari, Flora of the Indian Desert, Jodhpur, 1978, p.227.*
21. *M.M. Bhandari, Ibid., p.111.*

Heritage Monuments of Amber : A Case Study of Bonli.

Haider Saiphullah

Rajasthan being a confirm seat of Rajput since the ancient period consist of many monuments in which lesser known monuments also exist in its vicinities, but unfortunately, there is very less work done by the scholars working on the said theme. Among them there is a lesser known fort situated in the Arawali hills of Tehsil Bonli in the district Sawai Madhopur. It is located on latitude of 26.33° North and, longitude of 76.22° East. It is 43 kilometers away from Sawai Madhopur railway station.[1]

We didn't get the political history of this fort yet. According to the popular tradition this fort was built in 12th century, AD. It is said that this fort is contemporary of Chauhan's of Ajmer.[2]

The very first reference regarding this fort is available in Ain-i-Akbari.[3] According to this source the Bonli has a stone fort, and it was under the Sarkar of Ranthambhore.[4] The total area for revenue of Bonli fort was 151,430 bighas and the revenue extracted from there was 1,200,000 dams and sayurgal was 20,209 dams.[5] During the time of Emperor Akbar, Rao Surjan Hada of Ranthambhore surrendered the territory of Ranthambhore to the Emperor.[6] It became one of the Sarkars of the Mughal Empire and was included in the Subh of Ajmer.[7] Bonli was the last boundry of the Ajmer Subah.[8] During the reign of Aurangzeb, the Jats of Bharatpur state threatened the fort of Ranthambhore.[9] Aurangzeb appointed Ram Singh, a Kachhawaha Raja of Amber to crush the Jat rebellion.[10] After Ram Singh's death Raja Bishan Singh Kachhawaha was appointed as Fauzdar of Mathura. Some areas which were in Sawai Madhopur such as Todabhim, Bonli and Malarna were given to him.[11]

Another evidence regarding this fort and town, we found in Vir Vinod, where this town is mentioned in the Nizamat of Sawai Madhopur as the name of Potli instead of Bonli.[12] Potli is situated in the hilly area

where a fort is situated on the top of a hill, where some canons are mounted and hundreds of sepoys are appointed by the government.[13] The reason behind this name changing must be the language barrier, because the writer was using the Persian text and primary sources while narrating the history of Rajasthan. So in Persian text, Bonli and Potli seems similar, which could be the cause of this change.[14]

I visited this fort thrice to identify the surviving structures of the fort. It is a hill fort, but presently it is in ruined condition. Through our survey it is revealed that a number of structures belonging Rajput period and Mughals exists. It is interesting to know that there is an elaborate system of water supply in the fort. Total area of construction of the fort is 34,752 m square or 1.05 square km.[15] Details of the Bonli monuments are mentioned below:

Gateways and Guard Rooms

The main gateway is facing towards the west. The gateway is not in good condition, but one can easily identify that it was the main gateway of the fort. The dimensions of the gateways are approximately 3.2 m width and 4 m height. This gateway was supported by two bastions on both sides. We can assume that it was an arch gateway as other surviving gateways are also arch gateways.

It was the main gateway, and there are 12 surviving remains of staircase towards down can be seen.[16] On the right side of this gateway a guard room is survived and still it is in good condition which is facing east. (See Plate no II) This guard room is attached to the fort wall.[17] Three open arch doorways are contained. On the right side, a separate room also can be seen. On the left side, staircases exists for the roof. On the left side, one single square room is also there which is in ruined condition. The whole structures are built in trabeate pattern of architecture which was prevalent in the monuments of Sultans and Mughals.[18] Stone slabs are used in the ceiling. Material of building like stone, lime mortar, brackets of stone and bricks are easily available in vicinity. On the southern corner of the fort wall, one guard room exists, which is in ruined condition attached with fortified wall.

After entering from the main gateway in the eastern side there is a building in ruined condition. It was a double storied rectangular building

built with the use of bricks and lime mortar and for ceiling stone slabs were also used. There are eight interconnected rooms in a series. Two rooms are well designed in its inside portion, and remains of wall painting can be seen there.[19] In front of this building three rooms exists with arch gateway. These rooms are rectangular and single storied facing toward west side. On the right side, staircases attached to the wall are provided for the room and guard room which existed on the east side of the fort wall.

The second gateway of this fort is facing towards south eastern side. This is an arch gateway measuring of 8.5 feet width and 9 feet height. The gateway is protected by 3 feet thick front wall with an outer gateway.[20] Outside the fort wall, a guard room exists along with four pillars and it is also built on trabeate pattern. On the left side of this gateway, one guard room exists with two gates. Besides this, one guardroom with three doorways exists and both are rectangular in its structures.

On the extreme eastern side, one rectangular guardroom is in good condition having three open doors for entering to the room. On the right side of this building, staircases are attached to reach to the second storey. A square room is built on the guard room provided one doorway to enter inside the room.

Secular Buildings

During the survey of Bonli fort there was no fact regarding any sign of a temple in the fort. Presently, a room in the main compound of the fort is considered as a temple. An idol of the lord Hanuman is installed by locals and subsequently room is repaired with cement and concrete.

One identical mosque is found there which is facing towards west and a front wall with three arches also exists. The height of the wall is 7 feet and width of the mosque is 10 feet.[21] Besides the mosque, there is an open courtyard from east side with twin series of pillars and foliated arches seems like Sabha Kaksh. This building is facing towards west, in the center of this building an arch niche is projected outside and facing west. On both sides of this building, two separate square rooms are attached. On the left side staircases are contained for the roof. The pillars of this building are different from other monuments which shows this monument is built during the Mughal period.

The Palace

The main residential palace is located in center of the fort. This palace is secured with high walls and four cyclopean bastions on each corner. (See Plate no III) This palace is not in good condition, but still the fortification wall of the palace is survived in good condition. The outer dimension of the palace is 274 square m. A gateway is provided to enter the main compound or the palace, facing towards the south east measuring of 7.5 feet width and 9 feet height. This gateway is built on a raised platform of 5 feet. To approach the gateway sloping ramp with 15 feet length existed. (See Plate no IV) On the left side of the gateway two rooms are available in good condition, opens in gallery of the gateway. Two rooms are available on the right side, opens inside the palace. Twin pillars are used in these rooms. All the rooms attached to the main gateway are double storied. The second storey roof is not available but the structure still remains, one can easily understand about the structure.

To understand the palace structure, it is divided into six parts. First portion of the fort is for store houses. On the left side of the entrance gate 3 big rooms with courtyard are available which is for storage houses. In these rooms, sections are made for different type of storage. One room contains six sections, depth of these sections are probably 8 to 10 feet. The courtyard is consisting of seven foliated arches supported by series of twin pillars. On the right side of the gateway, one separate room is available which looks like a store room, but now the local people of the town installed an idol and it is considered a temple now. Besides this, a circular room is also available, which is hollow from inside, like a bastion of the fort.

According to Popular tradition this was the Animal Chakki.[22] A doorway is provided to enter this, where we can see the sign of Chakki, a circular path also exist for an animal to round around the Chakki. At the center of the roof there is a hole to put grain inside the Chakki. In this building for sunlight and fresh air more than 10 ventilators are provided. The height of this building is 20 feet. To approach the roof of this building staircases are provided, attached with storehouse which is now a temple.

A doorway is provided for the second and third section. It is an arch gateway. In this section we find a huge water tank, inside the premise. On the left side of this water tank there are three surviving rooms with

three rectangular doorways. The whole structure is double storied, but the roof has not survived in this structure.

In the northern side of the water tank, one arch gateway is provided to enter the third section of the palace. This section is full of a series of rooms and courtyard with pillars are provided. In this section use of twin pillars can be easily seen. This whole structure is double storied, but some part of second storey's roof has been collapsed. The roof of these rooms are trabeate in nature, use of stone slabs can be seen. More than 50 rooms were there. Arch Jharokhas projected towards east can be seen there. Most probably this portion was for the relatives of the Raja or the Royal family. The dimensions of this area are 180 square m, including water tank comprising 60 feet length and 30 feet width. The courtyard is open and in the center the courtyard has a square water tank with 10 feet of each side is still in good condition.

The fourth section of the fort palace is built in three sections, comprising of a huge water tank, Royal house and a courtyard. It is a rectangular building, with the measurement of 60 m length and 20 m width. To enter this section an arch doorway exists in the third section. Very first room of this Palace is like a big hall; foliated arch screen twin series of pillars are used. Five rooms in a series exists on the left side, and also the sign of wall paintings still remains. The open courtyard exists, besides these rooms, measuring of 90 feet length and 40 feet width. On the right side of this courtyard 8 rooms in a series exist with their collapsed roof.

Canons

The fort of Bonli is basically a defensive fort, it is well protected by highs wall and strong bastions. Two canons were installed there facing towards the north western side. The bastions of the canons still exists in both sides of the Palace. These canons were taken from the fort in year 2000 AD., by the S.H.O. Naseer Khan.[23] Now these canons are installed at Thana of Bonli. The length of the barrel of big cannon is 12 feet, named Dhool Dhani and the length of the barrel of second canon is 8 feet. The barrel of the canon has design of ring on top, made of iron.

Building Material and Type of Pillars

The fort is built on top of the Arawali Range of Bonli. This fort is built by stones which are easily accessible in the vicinity of the fort.[24]

Lime mortar was used in very large quantity, and in some Royal rooms' use of plaster can be seen. Stone slabs are used in very large number for the lintels and the roofs. The pillars of the fort are in a very good condition, five types of pillars are there, twin series of pillars, thick pillars, small and thin pillars, circular pillars, rectangular pillars and octagonal pillars are available. The material of the pillars is mostly red sand stone and some pillars are greyish, and the material is locally available in this region.[25]

Other Monuments in Vicinity

On the top of the Arawali hill, outside the fortified wall one bastion like watch tower is exists in South western side. It is 90 m away from the fort wall. On the northern eastern side 90 m away one more bastion like watch tower exists. Both are built in same manner, one door way for entering the tower, and also one guard room with pillars exists inside the watch tower. To approach the roof of the watch tower a flight of steps exists. On the extreme eastern side of the fortified wall one more watch tower is exist, it is also having same features. In the route of Bonli Town from Sawai Madhopur, three Chhatris exists, these are located five km away from the fort in southern eastern side.[26]

Conclusion

After my survey of the site, it is evident that Bonli fort is unique for its own way. Although no work has been done on Bonli Fort, it is very important fort for its water supply system and its structure of huge tanks and monuments, which still survives and still present in this fort. This fort is unique in many aspects, still it is neglected and ignored by the authorities. In 2004 this fort was sold to a private company without verifying its historical importance.[27] However after much criticism the fort was taken back from that company. Still the fort is neglected and is not under protection of ASI or any other authority, so the government or authorities must take action to protect this unique lesser known fort.

References

1. *Map of Rajasthan, available in the cartography lab of CAS, Department of History, AMU, Aligarh; Habib Irfan, An Atlus of Mughal Empire, Oxford University Press, New Delhi, 1982, p.19, Sheet 6 B*
2. *Physical Survey of the fort and interviews with the Local and knowledgeable persons.*
3. *Abul, Fazl, Ain-i-Akbari, Vol., II, tr. Jarret, (Calcutta, Royal Asiatic Society, 1949), p. 280.*
4. *Ibid, Ain-i-Akbari*
5. *Ibid, Ain-i-Akbari*
6. *Gupta, Savitri, Rajasthan District Gazetteers, Sawai Madopur, Rajasthan Printing Works, Jaipur, 1981, p.34.*
7. *Ibid, p. 34*
8. *Ibid, p.34*
9. *Ibid, p.34*
10. *Ibid, p.34*
11. *Ibid, p.35*
12. *Shyamaldas, Kaviraj, Vir Vinod, vol. II, Reprint, Delhi, 1986, p. 1253*
13. *Ibid, Vir Vinod.*
14. *Ibid, Vir Vinod.*
15. *Physical Survey of the Fort and Measurements Taken.*
16. *Physical Survey of the Fort and Measurements Taken.*
17. *See Fig. I. Map designed by Faiz Habib.*
18. *Percy Brown, Indian Architecture (Islamic Period), D.B. Taraporevala Sons & Co. Pvt. Ltd., Bombay, 1995, p. 3.*
19. *See Fig., XXI.*
20. *Physical Survey of the Fort and Measurements Taken.*
21. *Physical Survey of the fort and interviews with the Local and knowledgeable persons.*
22. *See Fig., X.*
23. *Police Thana Records of Bonli headquarter, and Interviewed Naseer Khan*
24. *Physical Survey of the location with my Team and the native man Abdul Bari (School lecturer). When I was visited the fort I found some pillars same as I saw in the fort of Ranthambhore. I observed in this fort there are five types of pillars, shape of the pillars are circular and rectangular. In one case we found octagonal pillar.*
25. *Physical Survey: I visited the location thoroughly and found many old monuments in the vicinity of the fort, which are old and in very bad condition. In which three square chatris are still existed 5km. away in the eastern side of the fort.*
26. *Interviewed the principle of Government Senior Secondary School of Bonli.*
27. *Interviewed PWD AEN, Mahesh Kumar Meena. He told us about the oxen of the fort; later case was filed in court against the oxen of the fort; Dainik Bhaskar, Sawai Madhopur, A Report on the Fort of Bonli, Jaipur, July, 22, 2019.*

A Feminist Reading of Select Rajasthani Folk Tales

Dr Jagriti Upadhyaya

Folk tales, song and ballads are repositories of the communal consciousness of a society or culture at a given point of time and are rich carriers of meaning continued in the oral tradition. Replete with tropes and metaphors, most of them from mythical or oral traditions, they not only trace narratives of cultural traditions and conventions but also subvert and explode social hierarchies, structures and forms and questions societal mores and norms.

Feminist theories recognize the inherent inadequacy of male created ideas of hegemony and male dominance and seek to recognize the struggle of women for social, economic, political, racial, and gender equality. They aim to give voice to the mute, stifled, oppressed and often silenced voices of women. Referring to Virginia Woolf's work 'A Room of One's Own, Arpita Mukhopadhyaya in her book 'Feminisms' states, "She finds the pervasive inequality among men and women in every level of social, political, economic and literary life. It is topical not just to the time she belonged to, but across time and space. She finds patriarchy in the domestic sphere, in the masculine oppression of wives and daughters, in public spheres of business, law, education and religion; and in the ideological discourses behind imperialism, colonialism and facism." (Mukhopadhyaya, 2016, p. 24)

The folk stories chosen here to analyze from a feminist point of view are from the collection titled 'Manzhal Raat' by Rani Laxmi Kumari Chundawat and the translation of the same referred to is by Prof.(Mrs) Kamini Dinesh. Cultural Feminism celebrates women's special qualities, women's ways and women's experiences and shapes their stories and their vicissitudes in ways different from those of men. Women's stories locate women's cultures, women's way of seeing; they designate meaning to women's voices and make women's consciousness visible to us. In Tapestries of Life' Bettina Apthekar contends that women try to find a

 ISSN 2321-1288

meaning in their daily activities even when their lives are fragmented, dispersed and episodic.

A Eurocentric liberal feminist perspective focuses on how women take up cudgels against a dominating male culture and subvert the patriarchate but indigenous feminism has existed throughout the colonized world since the inception of societies. Indigenous and ethnic struggles in a feudal society also have gendered dimensions. The struggles, paths of resistance and defiance of these marginalized groups challenge the exclusionary approach of Western feminism. In the folk stories of Rani Laxmi Kumari Chundawat we find that women defy male hegemony while maintaining their traditional roles as wives, daughters, mothers, sisters or even paramours. These stories challenge not only the hegemony of the patriarchal paradigms but also undermine the societal gender dualism by articulating what is termed 'aberrant' in heteronormative binaries. Therefore these narratives break stereotypes, deconstruct the meanings ascribed by hegemonic discourses and legitimize the concerns of the 'Other' by foregrounding their voices, at times playfully, at times polemically. They usurp the status quo, subvert institutional and systemic oppression and endorse their own representable space.

The story of Jasma explores how a woman from a low caste community of the Odhs, traditionally mud- diggers, defies the powerful ruler Rao Khangar who falls in love with the beautiful, married Jasma when he espies her working at the site of a pond being dug in his kingdom. He tries to win her over by using temptation, coercion and even underhanded means but the virtuous Jasma is not swayed. Khangar's thoughts about her are full of lust and desire; he compares her matchless beauty to those of the divine nymphs, the Apsaras and tells himself:

''यो रतन झूंपड़यां में रैवानै थोडो ही विधाता सिरज्यो है, रतन तो राज मेंहलां रा सिणगार'' (Chundawat, 2015,p 66)

" This peerless gem has not been created by the Almighty to live in a poor labourer's hut, she should adorn the palace of a king." .(Dinesh, 2010,p.4)

Such are the thoughts of a feudal king for whom women are either objects of desire to be subjected to the whims and fancies of a ruler or ornamental trophies to glamourize their palaces; and they would not refrain

from coveting even the lawful wives of their hapless subjects. Sarah Grimke's "Letters on the Equality of the Sexes" says, "Man has subjugated woman to his will, used her as a means to promote his selfish gratification, to minister to his sensual pleasure, to be instrumental in promoting his comfort, but never has he desired her to elevate herself to that rank she was created to fill."(Bhatnagar, 1999, p. 45).

When Jasma with pots of water on her head is moving towards her hut Khangar addresses her thus:

राजाजी बुलावै जसमल ओडणी ए,
जसमल ! मेहल जोवण आव।
केसर वरणी कामणी ए,
थां पर रीझयो, राव खंगार।। (Chundawat, 2015, P.67)

"Your sovereign calls you, O Jasma of the Odhs,
Come, see the royal palace, O Jasma of the Odhs,
O maiden saffron skinned, O beauty so tender and slim,
He has lost his heart to you, the Rao Khangar." ."(Dinesh, 2010, p 5)

Jasma is startled and taken aback. The King! She shakes like a leaf.Then composing herself she folds her hands and replies

काईं तो जोवूं थारां मेहलने ओ,
भूल्या राजा, म्हांने म्हारी सरक्यां रो कोड। (Chundawat, 2015,p.67)

"Why should I look at your palace, O fond King, (wayward King)
Happy am I in the lowly thatch that is my home." (Dinesh, 2010, p 5)

Rao Khangar persists in his entreaties to her trying to win her over with all temptations possible, inviting her to visit his queens, his princes, but Jasma rebukes him saying she is happy amongst her poor kinsmen. The Rao, inebriated with her beauty, blocks her path saying:

"You have pleased me, woman and be it known to you,
He has lost his heart to you the Rao Khangar."(Dinesh, 2010 p. 5)

Furious, Jasma retorted:

"O King, who wrongs his people,
What care I for your queens.
O Rao, intent on corrupting his people,

He has gone astray, the Rao Khangar." (Dinesh, 2010,p.7)

रैत बिगाडू रावजी ओ,
भेाे राजा! भूल्यो भूल्यो राव खंगार।। (Chundawat, 2015 p. 67).

In his lustful desire for Jasma the Rao forgets that his duty lies in safeguarding his subjects. He is as unruly as his desire and conscious only of his might-"unbridled are the misdeeds of the wayward monarch. When wealth, youth and unbridled power are compounded with indiscretion."

Impassioned and maddened by his desire Khangar still pursues Jasma threatening to kill her husband and her brothers-in-law. Undeterred, Jasma defies him ferociously like a lioness, stamping her feet and looking at him angrily when he tries to grab her hand. Quotes Prof. Dinesh, "She chose to work hard all day to earn her livelihood rather than to live in the zenana of a king. How base and vile were the comforts of the palace obtained at the cost of adulterous infidelity. Life in the lowly thatched hut was happier." In spite of all inducements Rao Khangar fails to lure Jasma away from the path of virtue. In this acerbic language she retorts, अकल अलूंणा रावजी ओ हरामी राजा, भूल्यो भूल्यो राव खंगार।

थें म्हारा धणी हो, धणी व्हेपरजा री इज्जत ले वो।
थांने लाज नी आवें ! हरामी राजा! अकल राखो।

(Chundawat, 2015 p. 70)

"You are our sovereign. Is it not sinful to covet your subject's wife? Are you not ashamed of yourself, O ill-begotten King! Be guided by reason." (Dinesh, 2010,p 8) Her whole body shakes with uncontrollable anger. Here is a portrayal of a truly courageous woman who chooses to fight back even the ruler who was the mightier of the two. Khangar in his infatuation does not understand her unfailing devotion to and her unwavering love for her dark-skinned, poor labourer husband. Rao Khangar assuming that Jasma is afraid of her menfolk tells her, "Say but the word and the lord of your house shall die O Jasma! And as he holds her hand her anger flares up.

जसमल तो एक हाथ सूं दीधौ राव खंगार ने धक्को। भूखी सिंघणी री नांई विकरफ व्हीयां हाथ में फावड़ो ले राजा रे साम्हीं तणश्र ऊभी व्हेगी।

माथो फोड़नै मार अर मर जावूंला, जो एक पांवडो आगै दीधो। सती रो तेज सूरज रा तेज सूं ही धणो व्है। (Chundawat, 2015, p.72)

Pushing him away with all her might she defies him thus, "I will break your skull and dash your brains out and then die myself , if you take one step forward, roared Jasma."

As Prof. Dinesh has translated,"The fiery ardour of the chaste wife surpasses even the splendid brilliance of the mighty sun." (Dinesh, 2010, p 9)

The next day the tents of the Odhs are nowhere to be found. Khangar is furious. Outraged, that a mere woman from a low community had the intrepidity and audacity to outdo him, he orders his men to bring Jasma to him,"Persuade her, force her, abduct her what you will, but bring her to me at any cost." The men set out in pursuit; seeing their horses Jasma trembles. Rather than bring death and destruction to her hapless tribe and dishonour to herself by surrendering to the iniquitous lust of the Rao, she valiantly chooses to immolate herself. "What is this life worth, if the honour and sanctity of a wife's devotion is violated? Is it not better to die?" (Dinesh, 2010, p 10)

When Khangar arrives there Jasma is already aflame. Thus Jasma comes across as a true fighter, a courageous votary of women's dignity and honour.

The story of Piyusindhi focuses on how a young Baluch girl, the daughter of a chieftain of Baluchistan pledges to a dying father that she would avenge the wrongs of the tribe and fight their arch enemy- the Pathans. Piyusindhi then dresses herself like a boy, rides, practices archery and horsemanship, hunts fearlessly with her kinsmen and proudly considers herself the son of her dead father since she has no brother. पिउसंधी माथा रा केसां रो जटाजूट बांध्यो, माथै लपेटो बांध्यो। बाप रा घोड़ा पै जीण कस्यो। बाप रो तीर कबांण संभाऱ्यो। बिलोच जवानां रे लारै सस्तर विद्या सीखै। रोज धोड़ो दौड़ावै। सारो दिन कबांण पै तीर चलावै, रात पड़्यां बिछाणां पै सूती सूती सपना देखै तो ही पठाणां पै तीर फैंकवा रा। (Chundawat, 2015, p. 24)

वा भूलगी के वा एक सोळा बरसां री संदरी है। वीने चेतो ही नीं रियो के मिनख जाति रा अस्त्री अर पुरस दो भेद है। वा सोचती के वा कांगड़ा बिलोच रो बेटो है, "(Chundawat, 2015, p. 24)

None of the Baluch youths can outshine her in archery. While hunting one day she, in the guise of a boy, she befriends a Bhati Chieftain, Bhimji, introducing herself as the son of Kangra Baluch. Together they plan to

plunder the camps of the Pathans and carry away their horses. When the Bhati chieftain informs her that he has three hundred brave Rajputs with him and asks Piyusindhi how many men has she to accompany her she replies "Look not for your companions, O warrior, when you set out to fight; your dagger, the strength of your arms and a courageous heart; know that in these three alone lies your might."

कथा रण में पैंसकै, काई जोवै छै साथ।
साथी थारा तीन है, हियो, कटारी, हाथ।।
ठाकरां! म्हारा तो ये हीज तीन साथी है। तीन सौ कोनी।

(Chundawat, 2015,p 25- 26).

She even challenges Bhimji to a fight when he refuses to give her half her share of the horses that her flurry of arrows from a thousand paces away has helped stop the Pathans in their tracks and win. Soon Bhimji discovers her true identity and having fallen madly in love with her, persuades her to marry him saying that both Baluch Muslims and Rajputs have but one creed- valour. Piyusindhi bears him two equally intrepid sons- Jakhda and Mukhda. These siblings once kill a lion but since the lion is a royal hunt and the preserve of the Nawab of Sindh, Bhimji is summoned to the court by the Nawab. Jakhda fearlessly owes up having killed the lion. Jakhda's boldness and dignified deportment leaves the Nawab wondering about the clay in which he is cast'- meaning thereby his mother. Bhimji is ordered to produce his wife before the Nawab but Piyusindhi realizes the danger of going to the court and presenting herself before the Nawab, whatever his intentions. The clever Piyusindhi disguises herself as Shikar Khan, Kangra Baluch's son and presents herself before the Nawab. Already the reputation of the young Baluch as an excellent marksman and hunter has reached the Nawab and together they go hunting armed with elaborate preparations as befits a Nawab. Piyusindhi, with her matchless hunting skills leaves behind a trail of dead beasts. Pleased with the young Baluch's feat, the Nawab eulogises his hunting feats and invites him to stay back for a few days. When Piyusindhi declines his generous offer, the Nawab presents him a bracelet (Siropav) as a token of royal favour. The next day when the Nawab asks Bhimji to present his wife before him, Bhimji informs him that he has already had her in his presence and laughingly shows him the bracelet and says, "But do you not recognize

this royal favour, the bracelet, that I wear? Wasn't Shikar Khan with you yesterday?"

नवाब अचम्भा सूं बाको फाड़ दीधो।

वाह रे वाह सिकारखां! असी मां हीज अस्या पूत जणै।

(Chundawat, 2015,p 31)

Outwitted by this clever ploy on the part of the brave Piyusindhi the Nawab is rendered speechless. He can only exclaim, "O wonderful Shikar Khan! Only a mother like you can give birth to worthy sons." (Dinesh, 2010,p 43)

Through these stories we can establish that women in traditional societies of the Third world have been vocal in their defiance of not only the patriarchal subordination of women but also have undermined the power ridden feudal structure and exploded the myth of the indigenous or marginalised women as weak and helpless.

References

1. *Agarwal, Swarnlata- Rajasthan Ke Lokgeet, Rajasthan Sahitya Academy, Udaipur, 1967.*
2. *Bhatnagar, Manmohan. K- Feminist English Literature Ed. Atlantic Publishers and Distributors, New Delhi, 1999.*
3. *Butler, Judith- from Gender Trouble in The Norton Anthology of Theory and Criticism, Ed. Leitch, Vincent B. and others, W.W Norton & Company, New York, 2018.*
4. *Chundawat, Rani Laxmi Kumari- Maanzhal Raat, Rajasthani Granthagar, Jodhpur, 2015.*
5. *Chundawat, Rani Laxmi Kumari- Rajasthan ki Prem Kathaye, Rajasthani Sahitya Sansthan, Jodhpur, 2009.*
6. *Dinesh, Kamini- Rani Laxmi Kumari Chundawat's Jasma of the Odhs and Other Tales, (Translated) Indian Map Service, Jodhpur, 2010.*
7. *Doniger, W & Smith, B. K. The Laws of Manu,(Translated), Penguin Publishers, New Delhi,2007.*
8. *Gilbert, Sandra, M. and Susan Gubar- Feminist Literary Theory and Criticism, A Norton Reader, W.W Norton & Company, New York, 2007.*
9. *Mcleod, John- Beginning Postcolonialism, Viva Books, New Delhi, 2010.)*
10. *Mukhopadhyaya, Arpita- Feminisms (Ed. Sumit Chakrabarti), Orient BlackSwan, Hyderabad, 2016.*

इतिहासलेखन की आर्षपरम्परा : एक पर्यालोचन (राजस्थान के विशेष संदर्भ में)

डॉ. आशुतोष पारीक

वर्तमान युग के विकास के उचितमार्ग के अन्वेषण के साथ पूर्वकाल के इतिहास एवं भविष्य की सम्भावनाओं के बारे में जानना प्रत्येक युग के विद्ववत् एवं साधारणजन के लिये आकर्षण के बिन्दु होते हैं। प्रत्येक काल में अध्ययन की रीति एवं नीति बदलती रहती है और यही कारण है कि इस परिवर्तनशील संसार में हमारे आचार-विचार, समाज एवं संस्कार, ज्ञान-विज्ञान, चिन्तन-मनन की विधि-प्रविधि भी परिवर्तित होती रहती है।

शिक्षा के मौलिक सिद्धान्त सदैव एक समान होते हुए भी प्रायः कुछ विविधताओं से परिपूर्ण होते हैं। ये विविधताएँ इन्हें तत्कालीन समाज एवं उस समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने के लिये ही होती हैं। भारत के वृहत्तर इतिहास में कालखण्ड अनेक प्रकार से विभाजित हुआ है। प्रत्येक कालखण्ड की स्थिति एवं परिस्थिति सर्वदा समान नहीं रही और यही कारण है कि शिक्षा एवं उनमें समाविष्ट तत्त्वों को समाज ने विविध दृष्टियों से देखा। भारतीय इतिहास को समझने के लिये हमें तत्कालीन सामाजिक तत्वों एवं उनके चिन्तन को जानना और समझना आवश्यक है। यदि आज के परिप्रेक्ष्य में देखें तो हमें जंगल में रहने वाले साधु संन्यासियों का जीवन अभावग्रस्त दिखाई देता है किन्तु तत्कालीन चिन्तन के आधार पर देखें तो वही जीवन सर्वश्रेष्ठ माना गया है और धीरे-धीरे वर्तमान समाज भी इन विचारों से अवगत हो रहा है।

भारतीय इतिहास लिखना जानते थे या नहीं, इससे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भारतीय इतिहासलेखन में किसे महत्व देते थे ? पं. गुरुदत्त का भारतीय इतिहास-लेखन के विषय में स्पष्ट मत है-'भारतीय इतिहास लिखने का ढंग, घटनाओं की विवेचना और कारण तथा परिणामों सहित लिखने के कारण यूरोप वालों को इतिहास नहीं अपितु कुछ अन्य ही समझ में आता है।'[1] यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि भारतीय लेखकों की इतिहास-लेखनशैली पाश्चात्य इतिहासविदों से भिन्न है, अतः वर्तमानयुगीन विद्वज्जनों को भारतीय इतिहास में घटित घटनाओं की विवेचना के साथ अथवा अलग कर भारत का इतिहास पढ़ना और समझना होगा। 'इतिहास' शब्द इतिह्आस से मिलकर बना है। 'आस' शब्द अस् धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन से निष्पन्न है। इतिहास शब्द का शाब्दिक अर्थ परम्परा से प्राप्त उपाख्यान समूह है।[2]

वर्तमान इतिहासलेखन की कमी को उजागर करते हुये पुरुषोत्तम नागेश ओक अपनी पुस्तक 'वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास' में लिखते हैं-''लड़ाइयों की सनावली और राजाओं की वंशावली तो इतिहास का अस्थिपंजर मात्र है। प्रत्येक देश या राष्ट्र के इतिहास का ऐसा अस्थिपंजर होता है किन्तु उससे उस देश का इतिहास पता नहीं लगता। जैसे कब्रिस्थान से यदि हम कोई अस्थिपंजर प्राप्त कर लें तो उससे उस व्यक्ति के इतिहास का कैसे पता लगेगा कि वह चोर था या साधु? श्रीमान् था या निर्धन? पुष्ट था या दुर्बल? उसका व्यवसाय क्या था? इत्यादि।''[3] भारतवर्ष की ऐतिहासिक दृष्टि का रूप कुछ भिन्न रहा है। डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' के अनुसार-''भारतीय इतिहासकारों ने क्रमिक तिथिक्रमों और घटना-चक्रों को उतना महत्व नहीं दिया है जितना व्यक्तिगत जीवन के उत्कर्ष, नैतिक आदर्श तथा राष्ट्र के अभ्युदय से सम्बद्ध क्रिया-कलापों को। जीवन के शाश्वत सिद्धान्तों को महापुरुषों की जीवनियों में प्रदर्शित करते हुये राष्ट्र का सांस्कृतिक उत्थान करना ही यहाँ इतिहास का लक्ष्य रहा है, न कि शुष्क तथ्यों को क्रम से सजाकर रखना। इसी दृष्टि से हमारे प्राचीन ग्रन्थ रामायण, महाभारत, पुराण आदि 'इतिहास' हैं। इतिहास की भारतीय अवधारणा और पाश्चात्य धारणा में स्पष्ट अन्तर है। तथाकथित ऐतिहासिक काव्य जो संस्कृत में मिलते हैं वे भारतीय धारणा के इतिहास को ही प्रस्तुत करते हैं।''[4] यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि आधुनिक या पाश्चात्य दृष्टि से भी भारतीय इतिहास-रचना के कुछ समर्थक तथ्य मिलते हैं। वैदिक ऋषियों की सूची, महाभारत एवं पुराणादि में दी गई वंशावलियाँ, राजा-महाराजाओं के वंशानुगत इतिहास एवं विभिन्न परिवारों में सुरक्षित एवं संरक्षित वंशवृक्ष के अभिलेखादि अवश्य ही आधुनिक इतिहास-लेखन की विधि के प्रामाणिक उदाहरण हैं तथापि भारतीय इतिहास-लेखन को मात्र इस क्रमिक इतिहास की संकुचित सीमा में बांधने का प्रयास नहीं किया गया। भारतीय इतिहासलेखन की परम्परा को समझने के लिये सर्वप्रथम भारतीय इतिहास लिखने के विविध स्वरूपों को जानना चाहिये। भारतीय वाङ्मय में इन्हें विविध नामों एवं लक्षणों से उद्धृत किया गया है। कुछ प्रमुख स्वरूप इस प्रकार हैं-

1. इतिहास - 'इतिहास' शब्द का प्रयोग वेदादि में भी मिलता है। कालान्तर में 'शौनक ऋषि' ने अपने ग्रन्थ 'बृहद्देवता' में स्पष्टतया इसकी विवेचना करते हुए लिखा है-''इतिहासः पुरावृत्तं ऋषिभिः परिकीर्त्यते।।''[5] अर्थात् ऋषियों द्वारा कही गई पुराने काल की बात इतिहास है। 'इतिहास' को परिभाषित करते हुये आचार्य शौनक ने इन्द्र के आकाश में घूमते हुये मरुत् के साथ गिरने की प्राकृतिक घटना को उदाहृत किया है।

2. आख्यान- आङ् उपसर्गपूर्वक ख्यै धातु से निष्पन्न 'आख्यान' शब्द किसी घटना विशेष के वर्णनार्थ प्रयुक्त होता है। इतिहास व आख्यान वस्तुतः एक ही विद्या के दो अंग हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार-''यद्दैवासुरं यदिदमन्वाख्याने त्वदुद्यतऽइतिहासे

त्वत्ततो ह्येव तान्प्रजापतिः पाप्मनाऽविध्यत्ते ततऽएव पराभवन्निति।।''[6] आधुनिक इतिहासकारों की दृष्टि में यह इतिहास नहीं है किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी प्रदान करने के कारण आर्षपरम्परा में यह भी इतिहास ही माना जायेगा। आज भी किसी युद्ध-क्षेत्र में घटित घटनाओं को पत्रकार द्वारा वृत्तान्त के रूप में बताया जाता है तथा यही वृत्तान्त भविष्य के लिये इतिहासपरक तथ्यों को जुटाने में मदद करता है।

3. पुरावृत्त-अमरकोष के अनुसार 'पुरावृत्त' भी इतिहास ही है। 'पुरावृत्त' को परिभाद्धिषत करते हुये अमरकोषकार का कथन है-''इतिहासः पुरावृत्तमुदात्ताद्यास्त्र्यः स्वराः''[7]

4. ऐतिह्य-इतिहासकथन की विविध शैलियों में से एक 'ऐतिह्य' भी इतिहास ही है।

अमरकोष के अनुसार-''पारम्पर्योपदेशे स्यादैतिह्यमितिहाव्ययम्''[8] अर्थात् परम्परागत कथन जो कि कभी नष्ट न हों, अनवरत पीढ़ी दर पीढ़ी कहे-सुने, लिखे-पढ़े जाते हों, ऐतिह्य कहलाते हैं।

5. पराकृत्य-पराकृत्य अर्थवाद है। पूर्वकाल की बात को कहने की यह एक शैली है। न्यायदर्शन में आचार्य गौतम 'पराकृत्य' को परिभाषित करते हुये लिखते हैं-''स्तुतिर्निन्दा पराकृत्य पुराकल्प इत्यर्थवादः''[9] अर्थात् किसी घटना या वार्तालाप का प्रयोजन बताने के लिये किया गया वर्णनात्मक अर्थवाद ही 'पराकृत्य' कहलाता है।

6. परकृति-अन्य के द्वारा कहे वचनों को सुनकर किसी और को कहना 'परकृति' कहलाता है। वायु पुराण में परकृति को परिभाषित करते हुये कहा गया है-''अन्यस्यान्यस्य चोक्तत्वाद् बुधाः परकृतिः स्मृता''[10]

7. इतिवृत्त-किसी भी ग्रन्थ, लेखादि का संक्षेप 'इतिवृत्त' कहलाता है। यह प्रायः पुस्तकादि के आरम्भिक पृष्ठों में दिया जाता है।

8. उपाख्यान-आख्यान के साथ उपाख्यान जुड़े रहते हैं अर्थात् मुख्य कथा के साथ सम्बद्ध अंश को उपाख्यान कहा जाता है। ये उपाख्यान भी आख्यानों से इतर घटनाओं व ऐतिहासिक वृत्तों को बताने में सहायक होते हैं।

9. अनुचरित-संस्कृत साहित्य में विविध कथाग्रन्थ हैं। बृहत् कथा का संक्षिप्त वर्णन ही अनुचरित कहलाता है।

10. कथा-संस्कृतकथासाहित्य के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में कथाग्रन्थ भी अनेकधा ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुगामी होते हैं। ऐसी साहित्यिक किन्तु ऐतिहासिक कथाओं को भी इतिहास की श्रेणी में रखा जाता है। कथासाहित्य को मूलतः ऐतिहासिक दृष्टि से निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

परिकथा–कथा से सम्बद्ध दूसरी कथा। जैसे वेदव्यास विरचित महाभारत में जब श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को जरासंध को पराजित करने हेतु प्रेरित करते हैं तो वे जरासंध के पूर्वकृत दुष्कृत्यों को कथा के रूप में सुनाते हैं। ये परिकथाएँ ऐतिहासिक तथ्यों के जानने के महत्त्वपूर्ण स्रोत होती हैं।

अनुवंश–जब किसी एक वंश का वर्णन करते हुये उसी वंश की किसी शाखा विशेष का सविस्तार वर्णन किया गया हो तो वह अनुवंश कहलाता है।

गाथा–गाथा कथा से भिन्न होती है। कथा के अन्तर्गत किसी एक मुख्य पात्र का वर्णन किया जाता है किन्तु जब किसी एक कथा से दूसरे की कथा कही जाये तो उसे गाथा कहा जाता है। पं. गुरुदत्त विद्यार्थी के अनुसार–''भारतीय लेखन की विशेषता यह है कि ये सब प्रकार उस समय भी प्रयुक्त होते थे, जबकि किसी श्रेष्ठ लिपि की परिकल्पना भी नहीं हुई थी। तब से प्रचलित ये प्रकार चले थे और आज तक मिलते हैं। इन प्रकारों पर बड़े–बड़े शोधग्रन्थ मिल रहे हैं। जिस देश में इतिहास लिखने के बीसीयों ढंग विद्वानों को विदित हैं, वहाँ इतिहास की कितनी महिमा रही होगी, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।''[11]

भारतवर्ष के ऐतिहासिक ग्रन्थ–संस्कृत साहित्य एवं भारत की विविध भाषाओं में रचा साहित्य इतिहासलेखन की इन विविध परम्पराओं से परिपूरित है। पुरुषोत्तम नागेश ओक अपनी पुस्तक 'वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास' में भारतीय शास्त्रादि ग्रन्थों के ऐतिहासिक महत्त्व को परिलक्षित करते हुए कहते हैं–''रामायण, महाभारत, पुराणादि प्राचीन संस्कृत आर्ष ग्रन्थों को केवल काव्य या साहित्य समझने की वर्तमान परम्परा छोड़ देनी चाहिये। वे इतिहासग्रन्थ हैं। पाश्चात्य देशों में उन संस्कृत आर्ष ग्रन्थों को केवल एक अद्‌भुत साहित्य मानने की प्रथा इसलिये पड़ी कि 19वीं शताब्दी के योरोपीय विद्वान् उन ग्रन्थों में वर्णित माहासंहारी शस्त्रास्त्र, विमान, अन्तरिक्षयान आदि को केवल कविकल्पना समझते रहे। अब जबकि आधुनिक राष्ट्र उसी प्रकार के माहासंहारी अस्त्र और अन्तरिक्ष उड़ानें कर सकते हैं तो आजकल के विद्वानों ने यह समझना आवश्यक है कि कृत–त्रेता–द्वापर युगों के सुरासुर, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, नाग आदि मानव हमसे भी उन्नत और प्रवीण थे।''[12]

वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, आरण्यक, रामायण, महाभारत, 18 पुराण एवं 18 उपपुराणादि के अतिरिक्त संस्कृत में लिखी अपार साहित्यसम्पदा इतिहास के विविध तथ्यों एवं घटनाक्रमों को प्रस्तुत करते हैं। पद्मगुप्त 'परिमल' कृत नवसाहसांकचरितम्, आर्यमंजूश्रीकल्प, बुद्धचरितम्, विल्हण का विक्रमांकदेवचरितम्, कल्हण विरचित राजतरंगिणी, जल्हण का सोमपाल–विलास, जयानक का पृथ्वीराजविजय, जैनमुनि हेमचन्द्र लिखित कुमारपालचरितम्, बालभारतम् एवं त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम्, सोमेश्वर कृत

कीर्तिकौमुदी, अरिसिंह विरचित सुकृतसंकीर्तनम्, बालचन्द्रसूरि लिखित वसन्तविलास, कवयित्री गंगादेवी का मधुराविजयम्, जैन कवि नयनचन्द्र कृत हम्मीरकाव्यम्, रुद्रकविरचित राठौरवंशकाव्यम्, डॉ. काशीनाथ मिश्र का कार्णाटराजतरंगिणी आदि अनेकानेक ग्रन्थों में ऐतिहासिक तथ्यों का पर्याप्त संकलन प्राप्त होता है लेकिन भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक इतिहास को जानने के लिये अन्य महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटकादि विविध रचनाओं में प्रकीर्णांश के रूप में विद्यमान तथ्यों को ही आधार बनाना श्रेयस्कर होगा। जिस देश के रचनाकार अपनी रचनाओं में स्वनाम को भी उद्‌धृत करने में संकोच करते थे उस देश में किसी व्यक्ति विशेष का ऐतिहासिक वर्णन कितना कम महत्त्व का रहा होगा यह हम सोच सकते हैं। आर्ष शिक्षा प्रणाली में सिद्धान्तों पर बल दिया गया है न कि व्यक्ति पर। आर्ष साहित्य समाज एवं अध्यात्मपरक थे न कि व्यक्तिपरक। इसलिये रामायण जैसे महाकाव्य में भी राम से अधिक महत्ता उनके चरित्र को दी गई है। राम की चारित्रिक शिक्षा ही महर्षि वाल्मीकि का एक मात्र उद्‌देश्य था। उनके वंशादि का वर्णन तो मात्र कथा की प्रामाणिकता का पर्याय है।

रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों को जब इतिहास की श्रेणी में रखा जाता है तो आधुनिक इतिहासकार प्रश्न उठाते हैं उनकी सत्यता अथवा असत्यता का। इस सम्बन्ध में यही कहना पर्याप्त होगा कि मात्र इतिहास के क्रमिक अध्ययन में सत्यता के पूर्ण अंश हैं इसकी निश्चितता कैसे सम्भव है? हम देख रहे हैं कि भारतीय इतिहास के बारे में विविध प्रकार की भ्रान्तियाँ विशिष्ट उद्‌देश्यों की प्राप्ति के लिये फैलायी गई है। जिस विश्व में स्वतंत्र लेखन को पूरी तरह से आत्मसात् नहीं किया गया है उस लेखन में प्रामाणिकता के पूर्णांश स्वीकार करना कितना यथोचित होगा? जिस आधुनिक समाज में हम एक राजा अथवा अधिकारसम्पन्न व्यक्ति की वंशावली को इतिहास कहते हैं उस इतिहास में समाज के अन्य सामान्य अथवा अतिसामान्य या पिछड़े वर्ग की वंशावलियों का क्या स्थान है? यदि क्रमिकता ही इतिहास है तो क्रम तो सभी का उल्लिखत, सुरक्षित, संरक्षित एवं सवंर्धित होना चाहिये। तथापि यदि हमें भारतीय इतिहास में वैज्ञानिक तथ्यों का अभाव देखने को मिल रहा है तो इसका मूल कारण इतिहासलेखन का अभाव नहीं अपितु उसे संरक्षित एवं सुरक्षित रखने की इच्छाशक्ति का अभाव है। इन शास्त्रादि में लिखित तथ्यों का लेखक की दृष्टि से अर्थ निकाल पाने की हमारी विश्लेषणात्मक बुद्धि का अभाव है और सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है सदियों की दासता जिसने हमें हमारे ही इतिहास को जानने, समझने और परखने के लायक नहीं छोड़ा है। वर्तमान भारतीय परिस्थिति की आत्मकुण्ठा को स्पष्ट रूप से समझाते हुए पुरुषोत्तम नागेश ओक लिखते हैं–''जब बड़े–बड़े जनसमूह निर्धन, बेबस और निरक्षर हो जाते हैं तो उनका इतिहास अपने आप नष्ट होता है क्योंकि इतिहास–ज्ञाता, अध्यापक, लेखकवर्ग

ही समाप्त हो गया तो इतिहास पढ़ेगा कौन और पढ़ायेगा कौन। दक्षिण अमेरिका के अझटेक् और माया आदि सभ्यताएँ ऐसे ही पूर्णतया नष्ट हो गई। जिस प्रकार एक सघन, सशक्त व्यक्ति दुर्भाग्यवश अपनी ञाक्ति और सम्पत्ति खो देने पर नगण्य बन जाता है वैसे ही मानव-समूह भी प्रगति और वैभव के शिखर से दरिद्रता और अज्ञान की गर्त में गिरते रहते हैं।''[13] अत: वर्तमानजगत् के अनुसार आचरण-विश्लेषण करते हुए आज की महनीय आवश्यकता है कि हम अपने पुरातन शास्त्रादियों का वैज्ञानिक अनुशीलन करें। भारत के योग एवं आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान के समान ही अन्य विद्याओं के शास्त्रादि भी तथ्यात्मक व वैज्ञानिक चिन्तन के आगार हैं। नूतन-चिन्तन और आत्मविश्वास के सुदृढ़ आधार पर स्थित होकर ही हम स्वयं के लिये और भावी पीढ़ी के लिये सर्वकल्याण के मार्ग को प्रशस्त कर सकेंगे।

सन्दर्भ

1. *भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास (2013 ई.), गुरुदत्त, हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली, पूर्वपीठिका पृ. 1*
2. *संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 188*
3. *वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास, पुरुषोत्तम नागेश ओक, हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली पृ. 41*
4. *संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी पृ. 305*
5. *बृहद्देवता - शौनक ऋषि 4.46*
6. *शतपथब्राह्मण 11.1.6.9*
7. *अमरकोश, अमरसिंह, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफ़िस, वाराणसी 1.6.4*
8. *वही 2.7.12*
9. *न्यायदर्शनम् - आचार्य गौतम 2.1.66*
10. *वायु पुराण 59.1.36*
11. *भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास (2013 ई.), गुरुदत्त, हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली, पूर्वपीठिका पृ. 13-14*
12. *वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास, पुरुषोत्तम नागेश ओक, हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली पृ. 82-83*
13. *वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास, पुरुषोत्तम नागेश ओक, हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली पृ. 83*

मध्यकालीन राजस्थान के सामाजिक इतिहास लेखन के संदर्भ में भक्ति-साहित्य

भंवरसिंह भाटी

प्राचीन भारतीय इतिहास - लेखन के अन्तर्गत रामायण एवं महाभारत सदृश महाकाव्यों को इतिहास की संज्ञा से अभिहित किए जाने और पुराणों को उनके समकक्ष घोषित करने से साहित्य की समसामयिक परिस्थितियों को समझने, परखने तथा उनके वास्तविक चित्रण हेतु मौलिक साधन-स्रोत के रूप में व्यवहार किए जाने की परम्परा विदित होती है। इसी स्रोत-शृंखला की अगली कड़ी के रूप में कालिदास, भास, विशाखदत्त, शूद्रक, भारवि, भवभूति, हाल, क्षेमेन्द्र, सोमदेव, गुणाढ्य, कौटिल्य और माघ आदि का साहित्य इतिहास-लेखन के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ। किन्तु मध्यकालीन इतिहास-लेखन के अन्तर्गत समकालीन साहित्य के स्थान पर दरबारी-फारसी विवरणों को महत्व प्रदान किए जाने की प्रवृत्ति ही परिलक्षित होती है।

राजस्थान इतिहास, पुरातत्व तथा संस्कृति से संबंधित सामग्री का अथाह कोश होने के समानान्तर साहित्य एवं कला की दृष्टि से भी अतुलनीय रहा है। किन्तु संस्कृति की यह अमूल्य निधि राजन्य वर्गों की शौर्यगाथा की चमक-दमक के समक्ष धूमिल-सा पड़ गया। उनकी वीरता के महिमामण्डल और यशोगान की प्रवृत्ति के कारण मध्यकालीन राजस्थान में जनसामान्य के विषय में बहुत कम सोचने-समझने तथा लिखने की संकुचित इतिहास-दृष्टि विकसित होने लगी थी। फलस्वरूप मध्ययुगीन राजस्थान के ऐतिहासिक विवरणों के अन्तर्गत प्राय: तत्कालीन शासकों के सत्ता-संघर्षों, मान-गाथाओं, दरबारी वैभव और षडयन्त्रों, सामन्ती जीवन-पद्धति तथा राग-रंग के उल्लेखों की प्रधानता है। जबकि जनजीवन-पद्धति की गतिविधियों, सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यता-विश्वासों, लोकचिन्तन एवं संवेदना-अभिलाषाओं के अनुशीलन में ये मौन प्राय: है।

इस प्रकार मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास-लेखन एक विशेष सीमा में आबद्ध होकर रह गया। जिसके अन्तर्गत इतिहासकारों के प्राय: राजदरबारों में वृत्तिभोगी के रूप में आश्रित जीवन व्यतीत करने के कारण उनका पूर्वाग्रह मुक्त तथा निष्पक्ष होना असंभव प्राय: था। उनके विवरण अपने आश्रयदाता के प्रति अतिरंजनापूर्ण प्रशंसा और विरोधी की अतिशय निन्दा से युक्त होते थे। इस प्रकार उनके उल्लेखों में तथ्य-विलोपन

एवं तथ्य विरूपण की प्रवृत्ति निदर्शित होती है, जो यथार्थ इतिहास के अनुसंधान में सहायक न होकर बाधक की प्रतीत होती है। इस कारण जनसाधारण से सम्बद्ध सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास लेखन हेतु समकालीन साहित्य को ही शोध का आधार बनाया जाना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

मध्ययुगीन राजस्थान की साहित्य-धारा प्रायः चारण, रीतिकालीन और भक्ति-साहित्य रूपी त्रिवेणी बनकर प्रवाहमान रही है। इसके अन्तर्गत जहां चारण-साहित्य युगीन इतिहास लेखन के पूर्वोत्तर दोषों से मुक्त प्रतीत नही होता वहीं रीतिकालीन श्रृंगारिक साहित्य युगगत विलास-प्रवृत्तियों का अनुगामी बनकर राजाज्ञा अथवा राजरंग की अभिरुचिपूर्तियों का पर्याय होकर रह गया था। इसके विपरीत राज्याश्रय की सर्वथा उपेक्षा करने वाले समकालीन भक्त-कवियों का स्वानुभूतिपरक स्वान्तः सुखाय साहित्य युगीन इतिहास के चित्रण हेतु अधिक उपादेय प्रतीत होता है। जनसामान्य के अत्यन्त निकट होने के कारण उनके द्वारा तत्कालीन शोषण-विघगता, संघर्ष-द्वन्द्व एवं उत्पीड़न से उद्भूत विडम्बनागत परिस्थितियों का व्यक्तिगत स्तर पर अवलोकन तथा अनुभव किया गया। फलतः उनके वर्णन अतिरंजनात्मक उल्लेखों के स्थान पर यथार्थ के अधिक निकट हैं, जो ऐतिहासिक अनुसंधान के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक है। इस प्रकार भक्ति-साहित्य द्वारा एक ओर जहां युगीन समाज का लागलपेट रहित निर्भीक प्रतिबिंब प्राप्त हो सकता है, वहीं दूसरी ओर द्वन्द्वात्मक परिस्थितिगत संत्रास-व्यवहार के आध्यात्मिक समाधान की रूपरेखा भी प्रस्तुत होती है। इसके अतिरिक्त भक्तों-सन्तों द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायों की विशिष्ट परम्पराओं और जीवनशैली के माध्यम से समकालीन संस्कृति तथा उसके अंतर्गत बहुआयामी सामाजिक परिवर्तनों का परिचय भी सहज सम्भव है।

लोक-कल्याण से विशेष संपृक्त होने के कारण भक्तकवियों के उद्गारों एवं स्वानुभूतियों के अभिअक्तीकरण के सन्दर्भ में समकालीन परिवेश, विडम्बनाओं तथा व्यवस्था-उपादानों का उनके द्वारा प्रतीकों, रूपकों उपमाओं और उदाहरणों के रूप में अनेकशः व्यवहार किया गया है। जिनका प्रकारान्तर से अध्ययन समकालीन सामाजिक व्यवहार का दरबारी इतिहास-ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर सकता है। विशेषतया - लोक जीवन की सामान्य अवस्था, पारिवारिक परिवेश के अन्तरतम पक्षों की गूढ अनुभूतियां एवं संवेदनाएं, नारी-मन-जीवन की सूक्ष्म तथा कोमलतम प्रतीतियों-आकांक्षाओं की संतुलित अभिव्यक्ति, सामाजिक-सांस्कृतिक रीति-नीतियों, मान्यता-विश्वासों, रूढ़ियों-विकृतियों, अभिरुचियों, विषमताओं और पर्वोत्सव विषयक विशिष्टताओं के वास्तविक निरूपण के संदर्भ में प्रस्तुत आलेख के अन्तर्गत भक्ति-साहित्य के माध्यम से मध्यकालीन राजस्थान के सामाजिक इतिहास के विविध पक्षों के

अन्वेषण का प्रयास सम्पन्न हुआ है यथा-

1. सामाजिक व्यवस्था - मध्यकालीन राजस्थान का समाज परंपरागत वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार वर्णों में विभक्त था।[1] सैद्धान्तिक रूप से समाज के मेरुदण्ड के रूप में प्रतिष्ठित वर्ण व्यवस्था व्यावहारिक रूप से जाति-प्रथा के रूप में परिणत होती चली जा रही है। समाज में व्यवसाय आधारित अनेक जातियां अस्तित्व में आ रही है। यथा - सुनार, जौहरी, माली, गंधी, कुम्हार, धुनिया, कलाल, जाट, केवट, रंगरेज, कसाई, चमार, सरगरा, भील, जुलाहा, तेली, मोची, दर्जी, बढई, लुहार, सिलावट, धोबी, सिकलीगर, दलाल, तम्बोली, नाई, खटीक, गूर्जर, तथा अहीर इत्यादि।[2] इनकी महत्ता पारम्परिक श्रेष्ठता के समानान्तर आर्थिक सुदृढ़ता और प्रशासनिक प्रभाव पर भी आधृत थी। मुस्लिम समाज के अन्तर्गत शेख-सैयद, मुल्ला-काजी, मुर्शद-मुरीद, पीर-औलिया, आदि की चर्चा प्राप्त होती हैं।[3] दोनों सम्प्रदायों के अभिजात वर्गीय समाज के ऐश्वर्य-प्रभुत्व और वैभव-विलास के सन्दर्भ में प्रायः समरूप वर्णन हुआ है।[4] इसी क्रम में अधिसंख्य प्रजा की विपन्नता, बेगार-लूट आदि के रूप में शोषण तथा वस्तियों के समय-असमय उजड़ते रहने के कारण दयनीय अवस्था के उल्लेख भी है।[5]

विविध प्रथाएं - तत्कालीन समाज में अभिजात वर्गीय नारियों के समानान्तर जनसामान्य में भी पर्दा-प्रथा का प्रचलन ज्ञात होता है। मात्र श्रमिक एवं निम्नवर्गीय समाज के अतिरिक्त प्रायः समस्त कुलांगनाएं युगीन परिवेश-परिस्थितियों के कारण पर्दे में रहती थी।[6] आक्रान्ताओं की रूप-लिप्सा से अपने सम्मान की सुरक्षा के परिप्रेक्ष्य में पति की चिता के साथ जलकर सती हो जाने की प्रथा नारी-समाज मे व्यापक हो चुकी थी।[7] उच्चवर्गीय समाज की सेवा-चाकरी के सन्दर्भ में गुलाम अथवा दास-दासी प्रथा विषयक संकेत भी प्राप्त होते है।[8]

सामाजिक प्रताड़ना - सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत मान्य नियम-आदर्शों की अवहेलना करने वालों की समाज के पंचों द्वारा सार्वजनिक रूप से लानत-मलामत करने तथा उन्हें काला मुंह कर गधे पर बैठाकर जूतों से सत्कार सहित जनता हेतु तमाशा बना दिये जाने के उल्लेख समुपलब्ध होते है।[9] इसी प्रसंग में 'काला मुंह और नीले पांव' सरीखी तिरस्कार परक उक्ति प्राप्त होती है।[10]

शिक्षा-प्रणाली - तत्कालीन शिक्षा-अवस्था राज्याश्रित न होकर समाज-आश्रित थी। इसके अन्तर्गत गुरु की महत्ता एवं उनके प्रति श्रद्धा के निर्देश के समानान्तर[11] चट शाला में अक्षर-ज्ञान से शिक्षा के शुभारंभ तथा पठन-पाठन-लेखन के सहायक उपकरणों कागज-पोथी, स्याही-लेखनी, तखती आदि का विवरण उपलब्ध होता है।[12] अध्ययन के विषयों में भाषा (संस्कृत-प्राकृत) लेखन कला (मात्रा-बिंदी) चारवेद, शट्दर्शन, नौ

व्याकरण, अठारह पुराण, काव्य-रचना, ज्योतिष-वैधक आदि प्रमुख हैं।[13] मुस्लिम समाज के परिप्रेक्ष्य में कुरान के ज्ञान का उल्लेख है।[14] अरबी-फारसी भाषा भी अब सामान्य शिक्षा का अंग बन चुकी थी।[15] छड़ी के माध्यम से छात्रों को अनुशासित किए जाने के भी संकेत मिलने हैं।[16]

2. सामान्य जनजीवन - इसके अन्तर्गत खान-पान, वस्त्र-परिधान, आभूषण-श्रृंगार, आमोद-प्रमोद, पर्व-उत्सव, विविध संस्कार तथा लोकजीवन गत विकृतियों की चर्चा की गई है।

खान-पान - मध्यकालीन समाज में सामान्यतः रोटी, गुड़, चावल, दाल, मूंग, मसूर, चना, घी, तेल, मक्खन, दही, दूध, शहद, साग, लहसुन, प्याज, खिचड़ी, छाछ, राब आदि प्रमुख खाद्य पदार्थ थे।[17] विविध व्यंजनों के अन्तर्गत खीर, घेवर, लड्डू, लापसी, मगद, सोलम, सीरा, राजभोग, मावा, पूरी, पपड़ी इत्यादि के उल्लेख प्राप्त होते है।[18] सामिश आहार में बकरा, मुर्गा, हरिण, विविध पक्षियों एवं मछली के सेवन की चर्चा है।

वस्त्र-परिधान - पुरुष प्रायः अंगरखा, धोती, चोला, काछली, साफा, तेवटा, टोपी जामा, पगड़ी, लंगोट आदि प्रमुख धारण करते थे। जबकि महिलाएं ओढनी, चुनरी, साड़ी, चोली, अंगिया, लहंगा, घाघरा आदि पहनती थी।[21] शाल-दुशाला के प्रयोग के समानान्तर वस्त्रों के रूप-प्रकारों (फैशन) संबंधी निर्देश भी उपलब्ध होते हैं। यथा-जरकसी जामा, कसूंबल पाग, दिरवणी चीर, नवरंग चुन्दड़ी, अतलस का लहंगा, बूटादार चोली, पंचरंगा लहरिया और असी मोहर का तेवटा आदि।[22]

आभूषण-श्रृंगार - षोडश श्रृंगार की पारंपरिक अवधारणा के अन्तर्गत उबटन-साबुन लगाकर नाइन के हाथों गरम जल से स्नान, अंजन-मंजन के उपरान्त कंघी से केश-गुम्फन, जूडा अथवा मोती युक्त वेणी-सज्जा, बिंदियां लगाकर मांग में सिन्दूर भरने, तेल-फुलेल-केसर-इत्र-मेहदी-चन्दन लगाकर पुष्प-श्रृंगार द्वारा नारी वर्ग सौन्दर्य निरवारता था।[23] विविध आभूषणों के अन्तर्गत मुकुट, सिरपेच, कलंगी, सेहरा आदि पुरुषों द्वारा[24] तथा शीशफूल, राखड़ी, नथ, कंकण, तिमणिया, पायल, नूपुर, घुंघरू, चूड़ा, चुड़ी, पहुंची, चूंप, नेवरी, गूजरी, बन्धचूड़ आदि महिलाओं द्वारा धारण किये जाते थे।[25] जबकि क्षुद्रघंटिका, दन्तमेख, अंगूठी, कुंडल, हार, माला, कड़ा, बाजूबन्द आदि दोनों द्वारा पहने जाते थे।[26]

आमोद-प्रमोद - मनोरंजन के विविध साधनों के अन्तर्गत जहां पुरुष वर्ग मैदान मे गेंद द्वारा क्रीड़ा, चौगान, पतंगबाजी, नट-नटनी के खेल, मदारी, बाजीगर, कठपुतली के खेल शिकार, तैराकी, कुश्ती, नाटक-नौटंकी द्वारा मन बहलाते थे।[27] वहीं महिलाएं

घर में ही चौपड़, गुड़िया के खेल, भूला भूलना, सुआ पालना, लुका छिपी[28] आदि द्वारा मनोरंजन करती थी।

पर्व-उत्सव - उत्सव प्रिय मध्ययुगीन राजस्थान के समाज के अतंर्गत जहां ऋतुओं से संबंधित वसन्तोत्सव[29], होली के फाग-महोत्सव[30], सावन के उत्सव[31] के आनन्द में सराबोर होने के निर्देश प्राप्त होते हैं। वहीं महिलाओं द्वारा गणगौर-पूजन तथा कज्जली तीज के सुहाग-व्रतों के[32] समानान्तर दूज-पूजन पूर्णिमा और एकादशी के व्रत एवं माघ-कार्तिक स्नान संबंधी संकेत भी उपलब्ध होते है।[32]

विविध संस्कार - तत्कालीन समाज के विविध पारिवारिक संस्कारों के अन्तर्गत जन्म, नामकरण, उपनयन, सगाई, विवाह और अन्त्येष्टि आदि का मुख्य स्थान था।[34] भक्ति-साहित्य में जहां मंगल-गान के साथ पिता तथा नाना द्वारा नेगियों एवं नाई को जन्म-सूचना के नेग स्वरूप बधाई देकर और पारिवारिक जेवनार द्वारा जन्मोत्सव मनाने के उल्लेख है।[35] वहीं विवाह-गीतों के मध्य रंगरंगीली साज-सज्जा युक्त चंवरी में पाणिग्रहण संस्कार, फेरों के उपरान्त वधू को अर्द्धांगिनी के रूप में वर के वाम भाग में अधिष्ठित करना, विदाई के पश्चात् वधू को वर द्वारा अपने घर ले जाना आदि वैवाहिक रस्मों की भी चर्चा हुई है।[36] इसी प्रकार अन्त्येष्टि संस्कार के अंतर्गत शव को अर्थी पर बांधकर श्मशान ले जाकर चिता में जलाने, डोम का कर-स्वरूप वस्त्र तथा कफन देने, कपाल-क्रिया करने एवं शवदाहोपरान्त स्नान[37] करने की जानकारी मिलती है।

मान्यता-विश्वास - समकालीन समाज में भूत-प्रेत-डायन आदि अलौकिक शक्तियों से संबंधित लोक-विश्वास पुरातन परम्परा के अग रूप में विद्यमान था।[38] युगीन रूढ़ि एवं अन्धविश्वास को प्रमाणित करते तांत्रिक क्रियाकलापों श्मशान-साधना, जादू-टोना, डोरा-डंडा, मारण-मोहन, उच्चाटन-वशीकरण, नजर उतारना, छाज बजाना, भुरकी डालना तथा दृष्टि बान्धना आदि के[39] संकेत प्राप्त होते हैं। इसी क्रम में जाहिर पीर, भैरो सेढ (शीतला) माता, श्मशान-काली, भोगिया आदि ग्राम देवता और शेख सद्दो सदृश पीरों की पूजा निर्दिष्ट हुई है।[40] इनके प्रति मनौती मानकर विविध व्यंजन अर्वित करने, पशु-बलि कर उसके रक्त से तिलक करने एवं मांस का प्रसाद-रूप में प्रयोग के भी उल्लेख है।[41] इनके पुजारी 'भोपों' के रात्रि-जागरण तथा उनमें उनके 'भाव आने' के प्रति लोक श्रद्धा बद्धमूल हो चली थी।[42]

इनके अतिरिक्त फलित ज्योतिष, हस्त एवं अंग सामुद्रिक शास्त्र, शकुन-मुहूर्त विचार, इन्द्रजाल के प्रति जन श्रद्धा तथा अगाध विश्वास परिज्ञात होता है।[43]

लोक जीवन गत विकृतियां - मध्यकालीन समाज के अन्तर्गत मादक द्रव्यों शराब, अफीम, डोडा, तम्बाकू, गांजा, भांग इत्यादि के सेवन[44] द्यूत-क्रीड़ा में अनुरक्ति[45]

एवं वेश्या-विलास सरीखी विकृतियां[46] परम्परा के अंग रूप में विद्यमान थी। इनका प्रभाव समकालीन पर्वों-त्योहारों के विकृतीकरण के रूप में प्रकट हुआ। होली के कुत्सित फाग अश्लील क्रियाकलाप, कीचड़ डालना आदि इसके उदाहरण प्रतीत होते हैं।

3. **नारी की अवस्था** - तत्कालीन समाज के अन्तर्गत नारी प्राय: परिवार में पुरुष की अनुवर्तिनी भूमिका का निर्वहन क रही थी। सास और ननद के रूपों के अतिरिक्त उसका कौटुंबिक महत्व क्षीणप्राय: हो चला था। व्यक्तिगत चिन्तन-दर्शन तथा आशा-आकांक्षाओं के स्वतंत्र अस्तित्व एवं विकास के अभाव में उसका जीवन पारिवारिक अनुशासन में विलास और सेवा का साधन-उपकरण मात्र बनकर रह गया था। उसकी दमित अभिलाषाओं की चरम एवं सुललित अभिव्यक्ति भक्ति-साहित्य में 'विरह' तथा 'पीव पिछांण' अंगों के अन्तर्गत हुई है। यद्यपि पारिवारिक और सामाजिक दृष्टिकोण से पातिव्रत्य का आदर्श प्रतिष्ठित था तथापि अपवाद स्वरूप उसमें दोनों पक्षों की ओर से उभरती विकृतियां एवं स्खलन भी दृष्टिगोचर हो रहे थे।

युगीन परिवेशगत विवशताओं के कारण लैंगिक - विषमता की कुप्रवृत्ति के लोक मानस में समाविष्ट होते जाने के फलस्वरूप कन्या-वध[47] एवं कन्या- विक्रय[48] (मूल्य लेकर बेमेल विवाह) के उल्लेख प्राप्त होते हैं। परिस्थितिगत संक्रमण का कुप्रभाव दूतियों के माध्यम से विवाह पूर्व तथा विवाहेतर प्रणय-कलाप संपन्न किए जाने के रूप में प्रकट हो रहा था।[49] परिणामत: कुमारियों के गर्भवती होने[50] और विवाहिताओं के बार-बार पीहर जाने[51] अथवा पड़ोसी के प्रति अनुस्क्त होने[52] के निर्देश प्राप्त है।

उपर्युक्त जारिणियों की कुसंगति से कुलवधुओं के भी टोना-वशीकरण सीख कर पति का बस में कर लेने के संकेत मिलते है।[53] किन्तु सामान्यत: पातिव्रत्य का आदर्श प्रतिष्ठित था।

तत्कालीन समाज के अन्तर्गत आर्थिक विपन्नता, आय-अर्जन के अस्थायित्व एवं शोषण-द्वन्द्वगत आवास-उत्प्रवासजन्य दुखस्था के कारण परिवार के पुरुष वर्ग विशेषत: युवकों के उपार्जन हेतु गौने के पश्चात् परदेश चले जाने के कारण पारिवारिक परिस्थितियों के प्रभाव तले नववधुओं में अपने सम्बन्धों को पति तक ही सीमित रखने की प्रवृत्ति प्रकट हो रही थी। ऐसा संभवत: निर्धारित कुल-आदर्शों की सम्यक प्रतिष्ठा के अभाव में अन्य संबंधों के अन्तर्गत समुत्पन्न विकृतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप भी रहा हो सकता है। प्रवासी पति की विरहिणी के हृदय की सुकोमल संकल्पनाओं-अनुभूतियों तथा आशा-आकांक्षाओं की मानसिक संत्रास के आवरण में मार्मिक चित्रण भक्ति-साहित्य में समुपलब्ध होता है।[54] इसी क्रम में नवदम्पती के वियोगोपरान्त एकान्तिक मिलन का अत्यन्त मधुर, सरस-सजीव एवं चित्राकर्षक वर्णन आलंकारिक रूप से प्राप्त

होता है।[55]

समाज में विद्यवाओं की अवस्था दयनीय थी। कुलीन विधवा हेतु पुनर्विवाह वर्जित था।[56] यदा-कदा स्वाभाविक जैविकीय विवशता और पारिवारिक-सामाजिक विडंबनाओं के कारण विद्यवाओं का गर्भवती हो जाना[57] नैतिक आदर्शों एवं समाज-मर्यादा हेतु गंभीर संकट उपस्थित कर देता था। समकालीन संक्रमणग्रस्त समाज की व्यथित-जर्जरित नारी द्वारा अभिलक्षित आध्यात्मिक सम्बलगत मुमुक्षा उसे साधना-क्षेत्र मे प्रवृत कर रही थी। भक्तों-सन्तों द्वारा उसके स्पर्श से परे रहते हुए उसे माता, बहन तथा पुत्री के रूप में पारमार्थिक कल्याणार्थ उपदेश प्रदान भी किए जाते थे।[58] किन्तु शनै: शनै: लिप्सा-प्रवचना परायण 'गुरुवाद' से[59] विमोहित साधिकाएं युगीन पतन-प्रवाह का अंग बनकर तत्कालीन नाथ-जोगी, दिगम्बर-भगवाधारी, वैरागी-फकीर, यति-जैन, सेवड़ा-संन्यासी आदि संम्प्रदायों के चारित्रिक स्खलन की कारणभूत सिद्ध हो रही थी।[60] इसका दुष्प्रभाव सम्पूर्ण समाज के अन्तर्गत दृष्टिगोचर हो रहा था।[61] समाज के नीति-निर्धारिक, व्यवस्था-नियामक और दिशा-निर्देशक संन्यासियों का यह पतन सर्वसाधारण हेतु विलासगर्त में गिरने का उत्प्रेरक सिद्ध हुआ। राजाओं-सामन्तों द्वारा जहां अनेक पत्नियों के अतिरिक्त पड़दायतों, पासवानों एवं खवासों को रनिवास की शोभा बनाया जाता था वहीं धनिक तथा अभिजात वर्गों द्वारा पर्वोत्सवों, विवाह और मुजरा आदि के अवसरों के समानान्तर रूपाजीवाओं, कसवियों एवंत तवायफों का उपयोग दैनिक विलास-चर्चा का अंग बना लिया गया था।[62] सारांशत: समाज में नारी की स्थिति सिद्धान्तत: आदर्श तथा गरिमासम्पन्न किन्तु व्यवहार में अभाव-अवसाद और आशंका-संत्रासपूर्ण थी। उसकी आशा-आकांक्षाओं पर विभीषिका- विडम्बनाओं के पहरे थे।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध-आलेख मे प्रचलित इतिहास ग्रन्थों के अन्तर्गत नगण्यप्राय: विवरणों का भक्ति-साहित्य के माध्यम से सर्वांगीण चित्रण करने की चेष्टा सम्पन्न हुई है। लोक जीवन से सम्बद्ध विविध क्रियात्मक, भावात्मक और संवेगात्मक पक्षों के विवेचन के समानान्तर नारी-समाज की अवस्था का तथ्य परक उल्लेख मात्र ही नहीं अपितु उसकी व्यथा-वेदना एवं हार्दिक प्रतीतियों के मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्तीकरण का प्रयास भी किया गया है। समग्रत: प्रचलित परम्परा से हटकर राजनीतिक इतिहास के स्थान पर सामाजिक इतिहास-लेखन के सन्दर्भ में अभिनव तथ्यों के अनुसन्धान तथा नूतन विचार-दृष्टि युक्त व्याख्या के माध्यम से सर्वथा मौलिक निष्कर्ष प्रतिपादित किये गये हैं।

सन्दर्भ

1. *ब्राह्मण छत्री बैस्य सूद्र घर। कहीं होय क्यों न बासा।*
चरण दास की बानी, भाग 1, शब्द 19, पृ. 56, बेलवेडियर प्रेस प्रयाग, 1981 ई.

2. चरण दास की बानी, भाग 1, शब्द 19, पृ. 36, बेलवेडियर प्रेस प्रयाग, 1981 ई.
3. दरिया. पृ. 21, अणभैवाणी, पृ. 64, 692
4. संत बानी संग्रह, भाग 1, सहजो बाई पृ. 151, साखी 9, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग,1989 ई.
5. मीरां. पद 74, 395, सुदंर विलास, चाणक को अंग 12
6. घूंघट पट शोलै नहीं.....। (हरिदास. उत्तराखण्ड, पृ. 209)
7. पति से मिलकर चिता जरै। (दरिया साहब की बानी, पृ. 47)
8. मैं तो तेरा चोटी कटा घर का जान गुलांम। (हरि. उत्तर. पृ. 251)
9. पंचौ में नाक कटावै, वह जूती मार दिलावै।
   मुंह काला गधे चढावै, बहु लोग तमासै आवै।। (चरण. भाग 1, पृ. 20)
10. काला मुंह संसार का नीले कीये पांव। (दादू. भाग 1, मधिको अंग 67)
11. सुन्दर विलास, उपदेश चिन्तामणि का अंग, 4
12. सतगुर अच्छर मोहि पढायो।
    लेखनि लिखा न स्याही सेती। ना वह कागद मध्य चढायो।
    गुरु सुकदेव पढायो। (चरण. भाग 2, पृ. 27)
13. च्यार वेद षट शास्त्रतर पुराण अठा रै जोय। (रामदास वाणी, पद, 30)
14. परिहां रामचरण पढ पुरांण बांचता कुरान रे। (अणभै वाणी, पृ. 870)
15. सुन्दर विलास, गुरुदेव को अंग, 16, हरिदास. पृ. 15, साखी 27
16. सन्त सुधा सार, शब्द 24
17. चरण. भाग 1, पृ. 31, भाग 2, पृ. 50, श्री राम स्नेही धर्मप्रकाश, पृ. 166
18. दादू. भाग 1, सांच की अंग 21, मीरां बृहत्पदावली, पद 410
19. दादू भाग 1, मन का अंग 80, भाग 2, सबद 122
20. मीरां. पद 11, 13, 124, 33, हरिदास. पृ. 95, सुन्दर वचन विवेक
21. मीरां. पद 33, 38, 61, 111, 150, 349
22. मीरां. पद 33, 36, 408, 38, 111, 349, 434, 11, 61
23. चरण. भाग 2, पृ. 18 – 20
24. मीरां. पद 14, 220, 127, 61, 221, अणभै वाणी, पृ. 168
25. मीरां. पद 16, 61, 33, 508, 14, 146, 434
26. मीरां. पद 14, 146, 61, 2
27. चरण. भाग 2, पृ. 40, भाग 1, पृ. 2
28. दादू. भाग 2, सबद 410, भाग 1
29. चरण. भाग 2, पृ. 22, 23, शब्द 1–2
30. चरण. भाग 2, पृ. 24 –25, शब्द 4 – 5

31. चरण. भाग 2 पृ. 20 – 21 शब्द 3
32. गौरि पूजि अरू तीज मनावै (अणभै वाणी, पृ. 66)
33. पुन वरत तीरथ देव पूजा पुन स दूज कूं पूजई।
    अरू माच काती मास न्हावत समै पुन गत सूं अई। (गुरु प्रकरण, छंद 201)
34. अणभै वाणी पृ. 1076, 72, चरण भाग 1, पृ. 52, शब्द 12
35. नेगी आया दई जनाई, नाने वाको दई बधाई।
    जन्म पत्रका लेकर नाई, जाइ पिता से लाई बधाई।। (गुरुलीलाविलास)
36. तब मैं पिड का मंगल गाया, जब मेरा स्वामी ब्याहन आया।
    हथलेवा दे बैठी संगा, तब मोहि लीनी बांये अंगा।। (दरिया. पृ. 46)
37. साजन थे सो दुरजन हुए तन को बांधि निकारा।
    चिता संवरि लिहा करि तामें, ऊपर धरा अंगरा।। (चरण. भाग 1, पृ. 72)
38. ते घंट मरघट सारिखा, भूत बसै ता माहिं। (दरिया. पृ. 7)
    मन परेत सूं डर लागै। (चरण. भाग 1, पृ. 14)
39. जन्तर मन्तर सब छुटे री हेली, छुटे बीर मसान।
    मूठ डीठ अब ना लगे री, नहीं घात का बान।। (चरण. भाग 2, पृ. 49)
40. तैसे कलुआ जाहिर भैरो सेढ मसानी काली।
    सद्दो सखर इष्ट धरत है, लोग लोगाई बौरे।। (चरण. भाग 1, पृ. 50)
41. दूध पूत पाथर से मांगैं, जाके मुख नहीं नासा।
    लपसी पपड़ी ढेर करत हैं, वह न खावत मासा।। (चरण. भाग 1, पृ. 50)
42. राति जगावै, भोपा गावै, झूठे मूंड हिलावै। (चरण. भाग 1, पृ. 51)
43. चरण. भाग 1, पृ. 42, 47, भाग 1, पृ. 18
44. भांग तमाखू अमल मद पान न चाखै। (अणभै वाणी, पृ. 122)
45. और जुवा का श्याल। (हरिदास. उत्तराखण्ड, पृ. 193, पद 25)
46. जहां रांडिया भांडिया आय मिलै, विशिया रस गाय विलास। (अणभै वाणी, पृ. 103)
47. जन्मत कन्या मार दे, सुत चाहत कुसलात। (दयालदास की वाणी, छंद 12)
48. जो बेटी का दाम लै, जग में फिट फिट होय। (अणभै वाणी, पृ. 223)
49. गुरू दूती बिन सखी पीव न देखो जाय। (चरण. भाग 2, पृ. 1)
50. कन्या कंवारी सुत जण्यो.....। (अणभै वाणी, पृ. 1033)
51. सुरति टिकै नहीं शाषरै, दौड़ी पीहर जाय।
    धीगां सूं धूंकल करै, पति नहीं आवै दाय। (अणभै वाणी, पृ. 144)
52. नारि कुहावै खसम की पाड़ोसी सूं मेल। (अणभै वाणी, पृ. 42)
53. है कुलवन्ती टोना सीखो.....। (चरण. भाग 2, पृ. 49, शब्द 50)

54. *दुखी तुम्हारै दर्श बिन तुम कब मिलोगे आय। (अणभै वाणी, पृ. 1006)*
55. *विरहिनी अनंद उछाव करि, मिली पीव सूं ध्याय।*
रामचरण सुख सेग पर, सूती अंग लगाया।। (अणभै वाणी, पृ. 11)
56. *भूपति नारि कहो कहां जावै, दूजे घर न समाय। (अणभै वाणी, पृ. 999)*
57. *पिता मरण सुत जन्मियो, निकसे लूकी लाय। (अणभै वाणी, पृ. 1025)*
58. *नारी आवैं प्रीत कर सतगुर परसै आन।*
दरिया हित उपदेश दे, माय बहन घी जान। (दरिया. पृ. 34, साखी 62)
59. *गलियारे गुरू फिरत है, घर घर कंठी देत।*
और काज उनकूं नहीं, द्रव्य कमावन हेत।। (चरण. भाग 1, पृ. 7)
60. *अणमै वाणी-लच्छ अलच्छ जोग, पृ. 988, (बेजुक्ति तिरस्कार पृ. 988-89)*
61. *कलियुग के पंडित पाखंडी, घर में कुबुधि करकसा रंडी। (अणभै वाणी, पृ. 984)*
62. *कामणि संग कूकर ज्यूं लागै, विष की लहरि सुमति नहिं जागै (अणभै वाणी, पृ. 984)*

पूर्व मध्यकालीन अभिलेखों में शिक्षा व्यवस्था- एक अध्ययन

कीर्ति कल्ला

भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से ही शिक्षा पर बल दिया जाता था। विद्या के द्वारा ही मनुष्यता का विकास होता है। उक्ति प्रसिद्ध है। 'विद्या-विहिन-पशुः। शिक्षा के बिना मनुष्य पशु के समान है। शिक्षा से ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास संभव है- 'किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।' शिक्षा रूपी धन की क्या बात है इसको जितना खर्च किया जाए उतना ही बढ़ता जाता है।

किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

सरस्वती के भण्डार की बड़ी अपूरब बात
ज्यों-ज्यों खरचे त्यो बढ़े बिना खरचे घटि जात।

सामवेद संहिता में पावका नः सरस्वती (हमारी विद्या पवित्र विचारों को फैलाने वाली हो) कहकर शिक्षा के महत्व का सार ही प्रस्तुत कर दिया। शिक्षा सांस्कृतिक विकास में सहायक है। श्रीयुत श्री प्रकाश के कथनानुसार - "Culture is the result of Wisdom" (संस्कृति ज्ञान का परिणाम है।)

प्रस्तुत शोध में मैंने 1200 ई. से लेकर 1526 ई. तक के शिलालेखों का अध्ययन करने का विनम्र प्रयास किया है। प्राचीनकाल से ही शिक्षादान महादान बताया गया है। इसलिए धनी व्यक्ति जनता के लिए अनेक पाठशालाएं खुलवाते थे द्वयाश्रय महाकाव्य[1] की टीका लिखते हुए अभय तिलकमणि ने लिखा है, कि ''विद्यामठ वह संस्था है, जहाँ पुण्य प्राप्त करने के लिए धनवान शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के लिए भोजन वस्त्र तथा अन्य वस्तुएं जुटाते है।''

1437ई. के देलवाड़ा के लेख से विदित होता है कि वत्सराज का पुत्र विसल जिसने क्रियारत्न सम्मुचय की 10 प्रतियाँ लिखाई थी।[2]

1526 ई. के जैसलमेर के शांतिनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति से यह ज्ञात होता है कि खेता के एक वंशज शेता ने सुनहरी अक्षरों में कल्प सिद्धान्त की पुस्तकें लिखवाई।[3] उस समय मुद्रण की कोई व्यवस्था नहीं थी, तो धर्मनिष्ठ व समृद्ध लोग पुस्तकें लिखवाते थे और पुस्तक भण्डारों में रखवाते थे और विद्वानों में बंटवाते थे। ये प्रथा विद्या के विकास

में सहायक थी। इससे धन का सही उपयोग हो जाता था।

बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि जयानक ने लिखा है कि अजमेर के हर कोने में पाठशाला थी। क्योंकि अजमेर चौहानों की राजधानी थी। अत: ऐसी पाठशालाएं चौहानों के राज्यों से सर्वत्र थी। एक बड़ा भारी विद्या का केन्द्र सरस्वती मन्दिर के रूप में विग्रहराज चतुर्थ के समय स्थापित किया गया। जिसे तुर्क इलबरियों ने मस्जिद में परिवर्तित कर दिया। परन्तु अजमेर विजय से राज के अन्य इलाके इनके हाथ में नहीं आए और शिक्षा का प्रावधान राजा से अधिक जनता के ऊपर निर्भर था। अत: एक महान केन्द्र के टूट जाने से अन्य केन्द्रों पर असर नहीं पड़ा भीनमाल ब्राह्मणी शिक्षा का उच्च केन्द्र था। आबू तांत्रिक विद्या का उच्च केन्द्र था। वह एक शक्ति पीठ था। पद्मानाभ भीनमाल को चौहानों की ब्रह्मपुरी कहता है। इस समय शिक्षा के अन्य केन्द्र नागदा, आघाट एवं चित्रकूट (चित्तौड़) थे।

1285 ई. के अचलेश्वर लेख से यह ज्ञात होता है कि 13वीं शताब्दी में चित्तौड़ विद्या के विकास का एक बड़ा केन्द्र था।[4] यहाँ वेद शर्मा नामक ब्राह्मण के पांडित्य की जानकारी मिलती है। जिन्होंने प्रसिद्ध समाधीश्वर और चक्रस्वामी के मन्दिर समूह की प्रशस्ति बनाई थी। उस समय योग और आराधना पर भी बल दिया जाता था।

इनके अतिरिक्त पण्डितों के घर अपने पुत्र-पौत्रों के लिए अध्ययन का स्थान होते थे। ग्रामों में तथा नगरों के कोनों में पाठशालाऐं होती थी। जो किसी सार्वजनिक स्थान पर लगायी जाती थी, जिनका व्यय बहुत कम होता था तथा इसके बदले में शिष्यगण अपने गुरु के जीवनयापन की सामग्री जुटा देते थे।

शिक्षा मौलिक तथा अक्षर बोध तथा अंक बोध तक सीमित थी। इसमें भी रहने से ज्यादा याद करने पर बल किया जाता था। वृहत गुर्वावली में लिखा है कि प्रारम्भिक शिक्षा में पढ़ना-लिखना तथा गणित का अभ्यास कराया जाता था।

राजाओं ने कुछ पण्डितों को कर मुक्त गांव भी दे रखे थे जो इनके पढ़ने-पढ़ाने के स्थान बन जाते थे। जैसे वि.स. 1485 (1428ई.) में चित्तौड़ के महाराणा लक्ष्मण सिंह ने विद्वान झेटिंग ब्राह्मण को राजनगर के पास पीपली गांव दे रखा था। उसी प्रकार उस महाराणा ने चित्तौड़ के पास धनेश्वर भट्ट को एक गाँव दे रखा था, जो स्वयं प्रसिद्ध शिक्षक था, जिसके अनेक शिष्य थे।

कडिया का लेख प्रशस्ति में भट्ट के लिए लिखा है कि महाराणा कुंभा इस गुरू का बड़ा सम्मान करते थे।[5] प्रशस्ति से पता चलता है कि विद्वानों को साहित्य रत्नाकर की उपाधि दी जाती थी। कवियों को भी गाँव प्रदान किए जाते थे 1488 ई. की एकलिंगजी के मन्दिर की दक्षिण प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उस समय कवियों का

सम्मान किया जाता था। रायमल ने महेश कवि को रत्नरवेट गाँव देकर सम्मानित किया[6] तथा अपने गुरु गोपाल भट्ट को प्रहाण और थूर के गाँव भेंट किए इस प्रशस्ति में अनेक विद्वानों का वर्णन भी आया है जिनमें नरहरि, झोटिंग, अत्रि, महेश्वर प्रमुख है। इस प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उस युग में शिक्षा की स्थिति बहुत अच्छी थी। स्वयं कुंभा ने संगीतराज की रचना की।

जैनियों के उपासरे (मठ) भी विद्या के केन्द्र थे। वहाँ एक जैन साधु अपने दो-तीन शिष्यों के साथ धर्म की व साधारण शिक्षा देता था। कल्पसूत्र के चित्रों से पता लगता है कि प्रौढ़ लोग भी इन उपासरों में धार्मिक शिक्षा लेने आते थे। जैन मन्दिरों के उत्सवों पर गुजरात व मुल्तान से साधु प्रवचन देने आते थे। अपने-अपने धर्म या सम्प्रदाय विशेष के मठ भी धार्मिक शिक्षा देने का कार्य करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि साधारण जनता की शिक्षा के लिए राज्य की ओर से कोई प्रावधान नहीं था। व्यक्तिगत प्रयत्न से जो कुछ, किया जाता था। तो उसकी जनता की उदारता पर निर्भर करना पड़ता था। पण्डितों के घर पर पण्डित ही हो इसके लिए स्वयं पण्डित को ही प्रयत्न करना पड़ता था, तथा शिल्पी का लड़का शिल्पी हो इसके लिए शिल्पी को अपने काम की गतिविधि स्वयं ही सिखानी होत थी। राजाओं से आश्रय प्राप्त विद्वान विरले ही थे। अत: अपने-अपने वर्ग की शिक्षा का उत्तरदायित्व अधिकतर उस वर्ग पर ही था। जो शिक्षा दी भी जाती थी वह धर्म विशेष या साहित्य तक सीमित थी।

1273 ई. के चीरवा अभिलेख में चैगगच्छ के आचार्यों का वर्णन है। यह प्रशस्ति उस समय की शिक्षा स्तर पर अच्छा प्रकाश डालती है। ऐसे आचार्यों में भदेश्वरसूरि, देवभद्रसूरि, सिद्धसेनसूरि, जिनेश्वरसूरि, विजयसिंह सूरि, और भुवनसिंह सूरि प्रमुख है।[7]

1300 ई. के चित्तौड़ के लेख में धर्मचंद तथा उनकी गुरु परम्परा का वर्णन दिया गया।[8] इस अभिलेख से उस समय के जैनाचार्यों की परम्परा तथा शिक्षा के स्तर का बोध होता है। कुंदकुंद आचार्य की परम्परा में केशवचंद्र, देव चंद्र, अभयकीर्ति, वसंतकीर्ति, विशालकीर्ति, शुभकीर्त्ति और धर्मचक्र थे। केशवचंद्र तीनों विधाओं में विशारद थे। इनके शिष्यों की संख्या 101 थी।

जैन साधु विशालकीर्त्ति तथा शुभकीर्त्ति साहित्य और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वानों में से एक थे। जावर की प्रशक्ति 1421 के द्वारा यह ज्ञात होता है कि उस समय के आचार्य अनेक विषयों के ज्ञाता थे। इन आचार्यों में सत्यशेखर गणि महोपाध्याय तथा श्री सोमदेवगणि पण्डित की उपाधि से विभूषित थे।[9]

शिक्षक को उच्चतम सम्मान दिया जाता था, उसके आसन पर बैठना पाप समझा जाता था तथा विश्वास किया जाता था कि ऐसा करने पर बदनामी होगी तथा आयु क्षीण होगी। एक ही शिक्षक अपने यहाँ स्तर के अनेक विद्यार्थियों को पढ़ाता था। फिर भी

प्रत्येक पर पृथक-पृथक व्यक्तिगत ध्यान देता था। किसी विषय का विशेष ज्ञान करने के लिये अनेक स्थानों पर भ्रमण करके उसे उस विषय के विद्वान से ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। आज के विश्वविद्यालयों की तरह एक ही स्थान पर अनेक विषयों में पृथक-पृथक विद्वान उपलब्ध नहीं थे। आज की तरह की परीक्षा प्रणाली नहीं थी। एक गुरु जितना पढ़ा सकता था पढ़ा देता था। विद्वता की परीक्षा राजदरबारों में शास्त्रार्थ द्वारा होती थी। जीतने वाले को जय पत्र मिलता था और हारने वाले को उपहास इस प्रकार की परीक्षा उर्त्तीण करना बहुत दुष्कर था। क्योंकि प्रश्न किसी भी विषय पर पूछे जा सकते थे। गोष्ठियों में विद्वता की परीक्षा हो जाती थी। मनुष्य को विद्या को मांजते तथा बढ़ाते रहना पड़ता था। क्योंकि किसी भी दिन शास्त्रार्थ के लिए बुलाया जा सकता था।

चित्तौड़ के एक अन्य लेख के अनुसार मध्यकाल में चित्तौड़ में जैन साधु विशाल कीर्त्ति तथा शुभकीर्त्ति साहित्य और दर्शन के प्रकाणु विद्वानों में से एक थे।[10]

पूर्व मध्यकालीन जैन ग्रन्थ उपमिति भव पंचकथा[11], खरतर गच्छपट्टावली[12] एवं समराइच्चकहा[13] से पता लगता है कि बालक साधारण आठवें वर्ष में शुभ मुहुर्त पर कालाचार्य, गुरू अथवा उपाध्याय के पास नाना विद्या पढ़ने के लिए जाता था। यह क्रम हमारे युग में जैन पाठशालाओं में चलता रहा।

शांड्गधर पद्धति[14] में राजकुमारों के लिए नि.लि.विषय गिनाए गए है जो हमारे युग में पढ़ाए जाते रहे होंगे राजनीति, हस्ति विद्या, अश्वशास्त्र, सैन्यविज्ञान, संगीत, जड़ी बूटी, शकुन, स्वरोदय, विषचिकित्सा, कौतुक, भूत विद्या, योग एवं कल्पस्थान।

उद्योतनसूरि ने राजकुमारों के लिए नि.लि.विषय गिनाए है- आलेख (Painting), ज्योतिष, नाट्य, गणित, रत्न परीक्षा, व्याकरण, वेद, गान्धर्व, गंघयुक्ति, सांख्य, योग, वर्षगुणहोरा, हेतुशास्त्र, छन्द, निरूक्त, स्वप्न, शास्त्र, शकुनकज्ञन, आयुध, तुरंग, हस्ति, इंद्रजाल, धातुवाद, तंत्र, रामायण, महाभारत, धातुओं का उपयोग, धनुर्वेद, क्रीड़ा, पाकशास्त्र तथा अन्य कला व विज्ञान जो कुल मिलाकर 72 थे। इससे मालूम होता है कि राजकुमारों की शिक्षा ब्राह्मणों से भिन्न तथा उनकी आध्यत्मिक तथा भौतिक आवश्यकताओं के अनुसार थी।

1208 ई. के आबू के परमार राजा धारावर्षदेव के अभिलेख से ज्ञात होता है कि युवराज के लिए शस्त्र तथा कला का ज्ञान होना अच्छा समझा जाता था।[15] 1230 ई. के नेमिनाथ मन्दिर की प्रशस्ति में ये उल्लेख मिलता है कि धारा वर्ष के पुत्र सोम सिंह ने अपने पिता तथा चाचा प्रहलादन से शस्त्र विद्या सीखी। धारा वर्ष का छोटा भाई वीर तथा विद्वान था। इस प्रशस्ति में जन समुदाय की विद्यानिष्ठता का उल्लेख मिलता है।[16]

अध्ययनकाल में सबसे अधिक पढ़े लिखे ब्राह्मण तथा जैन साधु थे। वैश्य साधारणत: अक्ष बोध तथा अंकों का ज्ञान प्राप्त करते थे ताकि वे व्यापार कर सके।

धार्मिक स्थानों के मठाधीश कम पढ़ते थे, क्योंकि उन्हें कमाने की कोई चिंता नहीं थी उन्हें खाने को तो मिल ही जाता था। कायस्थों को कार्यालय में लिखाई-पढ़ाई के लिए पढ़ना पड़ता था। चारण लोग राजाओं की प्रशंसा में पद्य लिखते थे। इसलिए उनके लिए भाषा ज्ञान जरूरी था पर व पढ़ाने का कार्य नहीं करते थे। शैव साधु भस्म रमाए फिरते थे उनमें से कोई सा ही विद्वान होता था।

साधारण जनता निरक्षर थी। स्त्रियों में केवल उच्च वर्ग या राजकुमारियां ही शिक्षा प्राप्त करती थी। जिसमें साधारण अक्षर बोध होता था। कुछ अपवाद भी है जैसे राणा कुंभा की बहिन रमा बाई संगीत तथा धर्म शास्त्रों में पारंगत थी। 1497 ई. की जावर की प्रशस्ति के दूसरे भाग के रमा वर्णन से ज्ञात होता है कि उच्च वर्ग की स्त्रियों को शिक्षा प्रदान की जाती थी।

संदर्भ

1. *द्वयाश्रय महाकाव्य*
2. *गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत पृ. 136*
3. *पूर्ण चन्द्र नाहर, जैन लेख, भा.उ.सं. 2154 पृ. 35-40*
4. *भावनगर इंस्क्रिप्सन सं. 5 पृ. 83-87*
5. *गोपीनाथ शर्मा, कड़िया का लेख-राजस्थान के इतिहास के स्रोत पृ. 139; ए.रि.रा. म्यू. अजमेर 1932 पृ. 4-6*
6. *गोपीनाथ शर्मा, भावनगर इंस्क्रिप्शन सं. 9 पृ.111-133 बिब्लियोग्राफी पृ. 9*
7. *हीराचंद गौरी चंद औझा, वियना आरिएन्टल जर्नल जिल्द-21, पृ.155-162; राज्य का इतिहास जि.1 पृ. 173-175*
8. *जैन शिलालेख संग्रह पृ. 62-64*
9. *गौरी चंद हीराचंद औझा, उदयपुर भाग 1 पृ.279*
10. *गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत चित्तौड़ का एक अन्य लेख पृ.123*
11. *उपमितिभव पंचकथा*
12. *खरतरगच्छपट्टावली*
13. *समराइच्चकहा*
14. *शांड्गधर पद्धति*
15. *गोपीनाथ शर्मा, आबू के परमार राजा धारा वर्ष का शिलालेख, राजस्थान के इतिहास के स्रोत पृ. 100*
16. *एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 8, पृ. 210-222*
17. *ए.रि.रा.म्यू, अजमेर 1924-25*

मध्यकालीन राजस्थान (1200-1600 ई.) में महिलाओं द्वारा जलस्त्रोतों का निर्माण : एक अभिलेखीय विवेचन

डॉ. यशवीरसिंह

राजस्थान के इतिहास के निर्माण में अभिलेखों का एक महत्वपूर्ण स्थान हैं। जहां अन्य कई साधन मूक अथवा अस्पष्ट है वहां इतिहास के निर्माण में हमें इनसे बड़ी सहायता मिलती है।[1] राजस्थान के विभिन्न भागों में शिलाओं, पाषाण खंडो, भवनों या गुहाओं की दीवारों, मंदिरों के भागों, स्पूतों, स्तम्भों, मढ़ों, तालाबों, बावड़ियों तथा खेतों के बीच गढ़ी शिलाओं, सिक्कों, मूर्तियों आदि पर खुद हुए हजारों की संख्या में अभिलेख प्राप्त हुए है तथा अभी सैकड़ों भूभर्ग या खंडहरों में दबे पड़े है। इनकी भाषा संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी, ब्राह्मी, नागरी, फारसी एवं उर्दू है तथा इनमें गद्य एवं पद्य दोनों का समावेश दिखाई देता है। अभिलेखों से न केवल राजपूत राजाओं के तिथीक्रम एवं राजनीतिक इतिहास की ही जानकारियां मिलती है अपितु इनसे राजपूताना के विभिन्न कालों की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक तथा आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर उपयोगी प्रकाश डालने में सहायता मिलती है। कर्नल डोम्स टॉड ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'एनल्स एण्ड एंटिक्यूटी ऑफ राजस्थान (1823-32 ई.) में सर्वप्रथम राजस्थान के प्रमुख अभिलेखों का संग्रह करके प्रकाशन किया था। तत्पश्चात जी.ई. स्नकीन व ई. डीन, वर्गीस एवं फ्लीट ने विभिन्न अभिलेखों का प्रकाशन किया।[2] तत्पश्चात विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर राजपूताना के विभिन्न भागों से प्राप्त अभिलेखों का प्रकाशन 'एपिग्राफिया इंडिका', वरदा, मरुभारती आदि पत्रिकाओं में होता रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र में 1200 ई. से 1600 ई. के अभिलेखों के आधार पर महिलाओं द्वारा जल स्त्रोतों के निर्माण का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय समाज की धूरी के रूप में अति प्राचीनकाल से ही नारी संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। मूल्यों के विकास में तथा जीवन की दिशा निर्धारण में नारी का अतुलनीय योगदान ही रहा है। उसने संकट के समय में अपनी बुद्धिमता के द्वारा न केवल अपने पति को सहारा दिया है अपितु अपनी परिवार एवं राष्ट्र की रक्षा के लिए हथियार भी उठाया है। राजपूताना में जीवन के विभिन्न पक्षों में अपना योगदान देने वाली स्त्रियां उत्पन्न की है। यद्यपि मध्यकालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं ने नारी के सम्मान को ठेस पहुंचाने वाली अनेक परंपराएं विकसित हो गई थी परन्तु फिर भी अध्ययन काल में कला एवं साहित्य के क्षेत्र में महिलाओं ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। महिलाओं ने विवेच्चकाल में लोक कल्याण एवं धार्मिक क्रियाकलापों के सम्पादन के लिए अनेक मंदिर, कुंए, बावड़ियां, तालाबों आदि का निर्माण करवाकर मानवता की महान सेवा की। राजपूताना की मरूभूमि में लम्बी काल अवधि से पानी की गंभीर समस्या महसूस की जाती रही है। अत: अमृत समान पानी की प्रत्येक बूंद को बचाकर संरक्षित करने में महिलाओं की प्रबल भूमिका रही है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए शासक वर्ग एवं सामान्य महिलाओं द्वारा पानी को संरक्षण करने के विभिन्न स्त्रोतों कुएं, तालाब, वापी, बावड़ियां, नाडी आदि का निर्माण करवाया।

भारतीय दर्शन में पानी जीवन है। जहां पानी है, वहां सुन्दर प्राकृतिक छटा है। हमारे पुराणों, वेदों और धर्मग्रन्थों में पानी की हर बूंद संरक्षण करने का मत है। वेदों व पुराणों के अनुसार जन ही सृष्टि की पहली रचना है। वेदों में जल को सर्व सुखदाता, सर्व शक्तिदाता और अमृत रूप प्राण माना है। पुराणों में जल संरक्षित करने हेतु तालाब, सरोवर, कुएं, बावड़ी आदि की रचनाओं के निर्माण की प्रतिष्ठा विधियों को बताया गया है। तालाब, कुएं और बावड़ी बनाने का महत्व भी बहुत ही सजीव रूप से वर्णन है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को युगों-युगों से जल संरक्षण की जीवन शैली है, जो हमारे विवेचन काल में जारी रही है।[3]

1099 विक्रमी संवत् के बसंतगढ़ अभिलेख से जानकारी मिलती है कि परमार शासक पूर्णपाल की वहन लाहिणी, जो विग्रहराज की विधवा थी ने वातनगर में सूर्यमंदिर के जीर्णोद्वार के साथ-साथ एक वापी का निर्माण भी करवाया था।[4] आज भी यह वापी लाहिणी वापी के नाम से जानी जाती है। रानी धारा देवी व श्रृंगार देवी ने धारानगरी की बावड़ी बनवाकर शांतिनाम के मंदिर को भेंट की थी।[5] चाहमान चच्च की पत्नी लक्ष्मी देवी से उत्पन्न रूपा देवी का विवाह महाराज तेजसिंह से हुआ था। इसी रानी रूपा देवी द्वारा सामन्त सिंह देव के शासनकाल में वापी अथवा कूप का निर्माण करवाया गया था। यह अभिलेख वि.सं. 1340 को ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को लिखा गया था।[6] वि.सं. 1444 के सत्यपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि संग्रामसिंह के पुत्र प्रतापसिंह चाहमान की पत्नी बाई कमलदेवी के द्वारा ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष अष्ठमी शुक्रवार को वामेश्वर मंदिर में वापी का निर्माण करवाया गया था।[7] कमल देवी वैरिशल्य की पौत्री एवं सुहड़शल्य की पुत्री थी। डूंगरपुर राज्य के डेसा गांव की बावड़ी अभिलेख, जो वि.सं. 1453 (1396 ई.) कार्तिक कृष्णा सप्तमी सोमवार का है से जानकारी मिलती है कि गुहिलोतवंशी राजा भचुंड के पौत्र और डूंगरसिंह के पुत्र कर्मसिंह की पत्नी माणकदे ने इस बावड़ी का निर्माण करवाया था।[8] डूंगरपुर जिले के ही बीलिया गांव की बावड़ी लेख से सूचना मिलती है कि वि.स. 1505 चैत्र शुक्ला (1449 ई.) को

रावल राजपाल की रानी लीलाई ने उस बावड़ी का निर्माण करवाया था तथा रावल राजपाल की रानी लीलाई ने उस बावड़ी का निर्माण करवाया था तथा रावल सोमदास की रानी सुस्त्राणदे ने इसका जीर्णोद्धार करवाया था।[9] उदयपुर जिले की सादड़ा तहसील के सूरखण खेड़ा स्थिति त्रिक्रिम मंदिर प्रशस्ति की 44वीं पंक्ति में बताया गया है कि कान्ह नामक राजा की माता (चौहान कुल की) देलहन देविका ने जलशायी विष्णु मंदिर एवं रम्य बावड़ी का निर्माण करवाया जिसमें ठंड़ा पानी भरा रहता था।[10] वि.सं. 1544 की जावर प्रशस्ति से जानकारी मिलती है कि महाराणा कुंभा की पुत्री रमाबाई का विवाह गिरनार के राजा मण्डलीक के साथ हुआ था। मण्डलीक को जब महमूद बंगड़ा ने पराजित कर दिया। तब मण्डलीक ने इस्लाम धर्म कबूल कर लिया। इसके कारण रमाबाई जब मण्डलीक छोड़कर मेवाड़ आ गयी तो उसे जागीर के रूप में जावर नामक गांव दिया गया जहां उसने राम स्वामी नामक मंदिर एवं कुण्ड का निर्माण करवाया।[11] कुण्ड की शोभा का भी सुंदर विवरण अभिलेख में मिलता है। प्रशस्ति में कहा गया है कि भगवान श्रीराम के शरसन्धान के समय भयाक्रान्त हुआ महासमुद्र यहां आकर कुण्ड के रूप में आकारवान हो गया है। इसकी जलराशि में गुलाबी रंग के हंस के जोड़े विहार करते है तथा यहां उनके तन को गर्मी नहीं लगती। कुण्ड के तटवर्ती क्षेत्रा में भूमितल पर उज्जवल पुष्प हंसते हुए दिखाई देते है। देवताओं की स्त्रियां यहां स्नान करती है, जिनके लिए यह स्थान आनंद की ध्वनि हो रही है। जोधपुर के राव जोधा की पुत्री एवं महाराणा रायमल्ल की महारानी श्रृंगादेवी ने महाराणा के देहान्त पर घोसुण्डी गांव में एक बावड़ी का निर्माण करवाया था।[12] 1504 ई. के घोसुण्डी की बावड़ी का लेख हमें बताता है कि महाराणा रायमल की रानी श्रृंगार देवी, जो मारवाड़ के राजा जोधा की पुत्री थी द्वारा इस बावड़ी को बनवाया गया था। वह वापी कणिबद्ध भित्तियों वाली है और समुद्र की सहचरी के समान है। इसमें पवित्र जलराशि है जिसमें लक्ष्मी सहित श्री केशव विराजते है।[13] वि.सं. 1555 के अडलिज अभिलेख के अनुसार सुल्तान महमूदशाह के राज्यकाल में दण्डाधिदेश वाघेला वीरासिंह की रानी रूड़ा देवी द्वारा एक कुएं का निर्माण करवाया गया था।[14] इसी प्रकार वि.सं. 1599 के बडलू अभिलेख से जानकारी मिलती है कि मण्डोर के पहले शासक राव चूड़ा के वंशज कान्हा के पौत्र व भारमल के पुत्र हरदास की पत्नी इन्द्रा द्वारा भी फाल्गुन शुक्ल पंचमी वार शनिवार को कूप का निर्माण करवाया गया था।[15]

डूंगरपुर की नौलखा बावड़ी पर मिले वि.सं. 1643 (1587 ई.) की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस बावड़ी का निर्माण महारावल आसकरण की रानी प्रेमल देवी, जो बड़ी धर्मनिष्ठ थी के द्वारा करवाया गया।[16] सादड़ी स्थित एक बावड़ी के दाहिने भाग की दीवार पर लगे 22 पंक्तियों के 1597 ई. के अभिलेख से सूचना मिलती है कि ओसवाल जाति के कावड़िया गोत्र के भारमल की पुत्री एवं ताराचंद की मां कपूरा ने

1654 संवत् में वैशाख कृष्ण द्वितीया बृहस्पतिवार को इस बावड़ी का निर्माण करवाया था। उल्लेखनीय है कि ताराचंद गोहवाह का हाकिम था तथा सादड़ी में रहता था।[17]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि अधिकांश महिलाओं द्वारा पानी संरक्षण हेतु कुएं पवित्र मानने की परंपरा है। इनके पानी का प्रयोग श्रद्धालु धार्मिक कार्यों हेतु, परंपरागत स्नान हेतु एवं उत्सवों पर करते थे तथा इस प्रकार ये पानी संरक्षण का महत्वपूर्ण साधन थे।[18] यह सर्वमान्य है कि 'जल ही जीवन है', पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व पानी पर आधारित है। अतः पानी का संरक्षण एवं उचित प्रयोग समय की आवश्यकता है। क्योंकि नारी केवल परिवार की अपने समाज की भी धूरी है तथा परंपराओं की महत्वपूर्ण वाहक है। अतः नारी द्वारा सदैव समाज को दिशा देने हेतु प्रयास किए गए व किये जाते रहेंगे।

संदर्भ

1. *डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत, पृ. 41*
2. *दूबे एस.एन., प्रोसिडिंग्स ऑफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, अध्यक्षीय उद्‌बोधन, 28 वां जिल्द, पृ. 9-10*
3. *सत्येन्द्रसिंह, जलमणिका, पृ.6*
4. *भट्ट, शंकर राजेन्द्र, महाराणा कूंभा, पृ. 192*
5. *वही, पृ. 193*
6. *इपिग्राफिया इंडिका xi, पृ. 73 व 83*
7. *वहीं, पृ. 65-66, प्रागेस रिपोर्ट ऑफ आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ वेर्स्टन सर्कल, 1988, पृ. 35*
8. *ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ.63*
9. *उपरोक्त, पृ. 69*
10. *श्री कृष्ण जुगनु, राजस्थान की ऐतिहासिक प्रशस्तियाँ एवं ताम्रपत्र, पृ. 84*
11. *एन्यूअल रिपोर्ट ऑफ राजपूताना म्यूजियम, अजमेर, 1924-25 पुरोहित चन्द्र शेखर, मेवाड़ संस्कृत साहित्य, पृ. 252*
12. *वीर विनोद, भाग 1, पृ. 352*
13. *जनरल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, अंक 55*
14. *एपिग्राफिका इंडिका, पृ. 27, सं. 23*
15. *प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ वेर्स्टन सर्कल, 1911-12, पृ. 53*
16. *ओझा, पूर्वोक्त, पृ. 101-102*
17. *भावनगर इन्स्क्रिकपशन्स, संख्या 12, पृ. 143-145*
18. *मित्र ए, टेम्पल ऑफ इरिगेशन एंड लेंड मैनगमैंट, डाऊन टू अर्थ, जिल्द 12, पृ. 43-44*

चित्तौड़ के सांस्कृतिक इतिहास का प्रमुख स्रोत : चित्तौड़ की ग़ज़ल

निर्मला दैय्या

जैन मुनियों में भ्रमण की एक लम्बी एवं सतत परम्परा रही है, जिसके कारण तत्कालीन परिस्थितियों से उनका गहराई से प्रभावित होना भी स्वाभाविक प्रतीत होता है। जैन मुनियों में अपने यात्रा संस्मरणों को लिपिबद्ध करने की भी एक सुदृढ़ परम्परा रही है, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने इतिहास के लिए एक ऐसी अमूल्य धरोहर छोड़ी जो आज इतिहास लेखन का आधार बन गई है। इस अमूल्य कोष में गद्यमय यात्रा संस्मरणों के अतिरिक्त प्रचुर मात्रा में पद्य साहित्य भी है, जिसमें नगरीय सामाजिक समूहों की जानकारी के लिए ग़ज़ल साहित्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सामान्यत: मध्यकाल में ऐसा साहित्य उपलब्ध नहीं है, जिसमें नगरों से सम्बन्धित सूचनाएं हो। निश्चित ही ग़ज़ल इस कमी को पूरा करने वाला साहित्य है।

राजस्थानी साहित्य की समृद्ध परम्परा में ग़ज़ल साहित्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ग़ज़ल मध्यकालीन भाषा का एक प्रमुख काव्य रूप है। ग़ज़ल की पारिभाषिक व्याख्या करते हुए डॉ. विक्रमसिंह राठौड़ ने लिखा है कि ''राजस्थानी भाषा की इन ग़ज़ल संज्ञक रचनाओं से सामान्य पाठक उर्दू की ग़ज़ल से लगाने की भूल न कर बैठे क्योंकि उर्दू की ग़ज़ल से इसका कोई साम्य नहीं है। ये ग़ज़लें उर्दू की ग़ज़लों में लिखी हुई नहीं है, इनकी निजी शैली है और अपना ही शिल्प विधान है।''

मुनि कान्तिसागर जी के अनुसार सत्रहवीं सदी में जैनों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। तदनुसार पृथक्-पृथक् नगरों की संस्कृति, इतिहास प्रमुख स्थानों पर अनुभवों के आधार पर हिन्दी, राजस्थानी या गुजराती भाषाओं में अपने विचार व्यक्त किये, हिन्दी साहित्य में यह जैनों की मौलिक देन है। जैनेत्तर विद्वानों ने इस विषय पर प्रयास किया हो ज्ञात नहीं। यद्यपि ग़ज़ल साहित्य का सृजन मूलत: जैन कवियों द्वारा किया गया है। तथापि 'आबू ग़ज़ल' जैसी जैनेत्तर रचना भी उपलब्ध है जो कि जैन ग़ज़लों से प्राप्त प्रेरणा के आधार पर ही लिखी गयी है। ग़ज़ल की साहित्यिक शैली मूलत: हिन्दी तथा राजस्थानी के सम्मिश्रण पर आधारित है व लगभग सभी ग़ज़लों में एक विशिष्ट रचना विधान का प्रयोग किया गया है। उर्दू, फारसी शब्दों का प्रयोग भी बिना किसी संकोच के उदार मन से किया गया है। प्राय: सभी ग़ज़लों में नगरों के वर्णन का

 ISSN 2321-1288

एक विशिष्ट अनुक्रम मिलता है। जिसके अन्तर्गत दुर्ग, हाट, व्यापारिक क्रियाकलाप, दैनिक जीवन चर्या में रत् जन सामान्य, नगर-गणिका व नारी सौन्दर्य का वर्णन, देवालय, शिक्षा केन्द्र, धर्मशाला, मस्जिद, खान-पान, पहनावा, आभूषण, क्षेत्र विशेष में उत्पन्न होने वाली खाद्य फसलें व खाद्य सामग्री, प्राकृतिक जलवायु आदि अनेकानेक पक्षों का वर्णन मिलता है।

ग़ज़ल साहित्य के सर्वप्रथम प्रकाशन का कार्य मुनि कान्तिसागर द्वारा किया गया था। उनके ग्रंथ 'श्री नगरवर्णनात्मक हिन्दी पद्य संग्रह' 1948 (सूरत) में लाहौर, चित्तौड़, उदयपुर, मारोठ, बीकानेर, आगरा, बंगाल, गिरनार, नागौर को प्रकाशित किया गया है। इनके अतिरिक्त जोधपुर, जयपुर, खंभात, बड़ौदा, मंगलपुर, डीसा, जम्बूसर, पाटन, सोजत, पोरबन्दर-सुदामापुरी, सोरठ, सांडेर, भावनगर, अहमदाबाद, सूरत, पाली, मेड़ता, बम्बई, पूर्व देश, इन्दौर, कापरड़ा आदि उस काल में अप्रकाशित ग़ज़लों का वर्णन किया गया है।

चित्तौड़ की ग़ज़ल की रचना संवत् 1748 के सावन महिने के कृष्ण पक्ष की द्वादशी को की गई।[1] सर्वप्रथम इस ग़ज़ल को शुरू करने से पूर्व कवि ने चतुर्भुज विष्णु की वंदना की है।[2] चित्रकूट (चित्तौड़) का दुर्ग विश्व में बहुत प्रतिष्ठित है। इसकी प्रशंसा कवि द्वारा की गई है। कवि कहते हैं कि चित्तौड़ का दुर्ग उसी प्रकार दुर्गम और सुदृढ़ है जैसे समुद्र के मध्य स्थित लंका द्वीप।[3] इस दुर्ग के नीचे बसे नगर के समीप बेड़च और गंभीरी नदियां प्रवाहित होती रहती हैं।[4] इस दुर्ग पर पहुंचने के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने बड़ी सुदृढ़ पुल बनवाई थी।[5] इस ग़ज़ल में कवि ने गैबी पीर का उल्लेख किया है जिससे बादशाह अकबर भी बहुत प्रसन्न था। अजमेर के राजा अजयपाल से निडर होकर लड़ने वाले चित्तौड़ के वीर अजमेर के दुर्ग तक पहुंच कर लड़ते थे। उन वीरों के कटे हुए सिर तारागढ़ (अजमेर) में सुशोभित हुए और उनके धड़ शस्त्र प्रहार करते हुए यहां चित्तौड़ में आकर धराशायी होते थे। इस दुर्ग के बूढ़े, जवान और बालक सभी रक्षक थे। यहां झालीबाई झरणा है[6] यहां लोग विष्णु भगवान का ध्यान एवं स्मरण करते हैं। इस दुर्ग के तिहुरे परकोटे बड़े उत्तम बने हुए हैं इनके दृढ़ शिखर बहुत ऊंचे हैं और जो दुश्मनों के लिए अवरोधक का कार्य करते हैं। इस परकोटों में दो हजार बुर्जे (तोपें रखने की जगह) बनी हुई है।[7] ये बुर्जे इतनी मजबूत है कि इन तोपों के गोलों का कोई असर नहीं होता है। इनके कंगूरे बहुत सुन्दर हैं। परकोटों के निर्माण में सीसे का भरपूर उपयोग हुआ है। चारों ओर चार कोस की परिधि में विस्तरित इस किले में शूरवीर योद्धा निवास करते हैं। इन परकोटों पर चढ़ने के लिए बनी ऊंची-नीची (दुर्गम) निसरणियों (सीढ़ियों) का वर्णन करना बहुत कठिन है। इस दुर्ग में दक्षिण दिशा की ओर दुर्ग के सभी सात प्रवेश द्वार बने हुए हैं।[8] जहां रावत (सामंत) लोग बैठकर युद्ध का

उद्घोष करते हैं। पाडल पोल में महावीर हनुमान और बावन वीरभद्र (भैरव) निवास करते हैं। यहां रोसी पोल है जहां श्रीराम का मंदिर है। इस पोल का निर्माण बहुत सुन्दर और मजबूती से पत्थरों से किया गया है। यह पोल (द्वार) भैरव झांप (केदारनाथ के पीछे चट्टान जहां लोग सिद्धि प्राप्त करने के लिए कूदकर प्राण त्याग देते हैं) के समान भूखी है।[9] देखने से यह रूखी सी लगती है। पर्वतों के बीच में कुकड़ेश्वर नामक एक विशाल कुंड है[10] वहां गंगा के समान गहरा झरणा भी है। ग़ज़ल में आहड़ महल का भी वर्णन है[11] जो कि बहुत ऊंचा बना हुआ है, यह आसमान के समान ऊंचा है। लाखोटा घाट भी प्रशंसनीय है एवं यहां लाखा नामक बहुत व्यापक वन है। नीलकण्ठ महादेव का मंदिर इतना भव्य बना है कि मन लगाकर पूजा की जा सके। यहां के निर्माण अत्यन्त सुन्दर है यहां सहस्रलिंग का मंदिर स्थित है। दुर्ग के मध्य गोल आकृति वाला गोमुख कुंड है जो किसी धर्मात्मा राजा के यश को उज्ज्वलित करता दिखाई देता है। यहां सुकोसल नामक बड़े स्वामी का बड़ा स्थान है। यहां सिद्ध महात्माओं के स्थान बहुत प्रसिद्ध हैं। दुर्ग की पूर्व दिशा में बना सूरजपोल बड़ा विकट है। इस पोल के पास ही रगतिया भैरू का थान है। भीमगोडा कुंड बहुत गहरा है[12] और उसका पानी निर्मल है। यहां पास में बने अनेक महल हैं जिसमें स्वयं राणा और उनकी रानियां निवास करती हैं। दुर्ग में महाराणा सांगा द्वारा पूजे गये नारायण का मंदिर है उसके साथ ही दूसरे देवताओं के मंदिर भी हैं।[13] महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) द्वारा बनवाये गये कुंभश्याम मंदिर में बहुत अधिक धन खर्च हुआ था। वहीं कुंभश्याम मंदिर से लगा हुआ मीरा बाई का महल भी बना हुआ है।[14] पास ही पीरों के स्थान भी बने हैं। दुर्ग में दो कीर्तिस्तम्भ बहुत ही सुन्दर बने हुए हैं। ये स्तम्भ ऐसे प्रतीत होते हैं मानो आकाश को थाम रहे हों। निर्भयनाथ ने यहीं शंकर के मंदिर के समीप तप साधना की। इस दुर्ग में जयमल और पत्ता के निवास स्थल है जिन्होंने अकबर के साथ युद्ध किया था।[15] नवगजा गाजी पीर की कब्र भी यहीं हैं जिस पर श्वेत झंडा फहराया जाता है। सूरजनाथ के शिष्य यहां तलवार की धार पर खेलते थे। खाती जाति की पेमा ने शत्रुओं के युद्ध में पुरुषों के समान शौर्य का प्रदर्शन किया।[16] महाभारत कालीन पांडवों ने यहां चौसठ योगिनियों के देवल (थान) की स्थापना की हैं।[17] महाराजा चित्रांगद मौर्य निर्मित चित्तौड़ का दुर्ग बड़ा ही प्रसिद्ध एवं दुर्गम है। इस दुर्ग में बने प्रत्येक हौद सरवर के समान हैं। दुर्ग में योगी पीर के जरगा अत्यधिक सुदृढ़ चूने और पत्थर के कारीगरी का प्रतीक है। यहां के बड़े बुजुर्ग लोगों का कहना है कि यहां राजा राम ने निवास किया था। यहां रुद्र के ग्यारह और जोगियों के बारह पंथ (सम्प्रदाय) निवास करते हैं। मन को एकाग्रित कर सिद्धि प्राप्त करने वाले चौरासी सिद्धों, ब्रह्मा एवं विष्णु के मानने वाले मठ वासी महंतों, सूफी संतों, जैन धर्मी सेवड़ों और शेखों का निवास है, तो अनेक भेषधारी साधु संत भी यहां रहते हैं। इस दुर्ग में वासुकी, शेषनाग जैसे अनेक सर्पों, पितरों (अदृष्ट देव) भूत, प्रेत और वैतालों के भाव लाकर तालबंध

खेलने के मेले रात दिन रहते हैं। द्वारिका, हरिद्वार, गंगा और गोमती तीर्थों, गिरनार, बद्रीनाथ और केदारनाथ के समान यहां शिवलिंग के मंदिर का महत्व है।[18] मथुरा और काशी जहां संन्यासी योग साधना करते रहते हैं, के समान ही यहां चित्रकूट पर्वत है। इस दुर्ग के आसपास अनेक जीव जन्तु रहते हैं। कवि कहते हैं उनका वर्णन कहां तक किया जाये। यहां चीतल (हिरण), बाघ, बड़े-बड़े चीते और भय उत्पन्न करने वाले भयंकर सिंह हैं। यहां रींछ और गैंडों की गर्जना से बड़े-बड़े पर्वत गूंजते रहते हैं। लंबी पूंछों वाले लंगूरों, सांभर, रोझ (नीलगाय), पाडों (भैंसों) और जंगली सूअरों का निवास है। यहां नौहत्थे सिंहों का आधिपत्य है जिनकी कमर में बनी मेखला प्रसिद्ध है। भयंकर जंगली भैंस और गायें यहां निर्भीक होकर विचरण करती हैं। यहां काले हिरण भी बहुत संख्या में हैं और नदी, नाले और झरने भी असंख्य है। जब घनघोर वर्षा होती है तब चातक, चकवा और चकोर बोलने लगते हैं।[19] वर्षा ऋतु में चारों ओर बहते नदी नालों की कलकल ध्वनि सुनाई देती है एवं वर्षा ऋतु में यहां अनेक प्रकार की सब्जियां बहुत अधिक मात्रा में होती हैं। यहां मक्का, ज्वार, मूंग, मोठ, तुअर और उड़द बहुतायत से उत्पन्न होते हैं। वैसे ही गेहूं, चना, जौ, साळ (चावल), अलसी, मालकांगणी भी उत्पादित होते हैं।[20] यहां एरण्डकाकड़ी (पपीता) के पौधे बहुतायत से है तथा अच्छे लाल रंग के आम के फलों से लदे हुए आम के सघन वृक्ष है।

निमजा (चिलगोजा), पिस्ता और नारियल जैसे पेड़ों का यहां आधिक्य है। पीपल और बड़ (बरगद) के बड़े-बड़े विशाल पेड़ बहुत ही ऊंचे हैं एवं मोटी-मोटी टहनियों वाले हैं। यहां थोहर के पौधे हैं तो दाख (किशमिश) की लताएं भी दिखाई देती है। चंपा, चमेली और अनेक प्रकार के फल फूलों की लताएं भी यहां हैं। यहां केतकी, केवड़ा व करणा के पौधे हैं। बांस, सीसम, सागवान, सालर आदि भांति-भांति के वृक्ष भी जंगलों में पैदा होते है[21] इनमें अनेक तरह के खतरे भी हैं। कबूतरों के झुंड के झुंड यहां परकोटे पर बैठे हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे दुर्ग की सेवा कर रहे हों। यहां कौएं और उल्लू भी आकर बैठते हैं। शिकारी बाज, सीहघोस, खंजन, चीवरी, जुररा, तीतर, फाकता, तुररा जैसे पक्षी भी अधिक हैं। कोयल और नीलटांस पक्षी यहां मीठी राग में चहकते हैं। यहां झाड़-झंकाड़ भी बहुत अधिक हैं। चित्रक बेल बहुत फैली है। नींबू, कदम और नारंगी के पेड़-पौधे भी बहुतायत से हैं। सीताफल और सदाफल साथ-साथ लगते हैं। यहां के वृक्ष एक से एक बढ़कर ऊंचे हैं।[22] केलि के दोने यहां दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रदेश में सोने के अतिरिक्त सातों प्रकार की धातुएं पाई जाती हैं। पारस और चम्पक पत्थर के साथ-साथ इस भूमि में धन सम्पत्ति का बड़ा भंडार है। यहां रस कुंपीक (सिद्ध महात्माओं द्वारा दी जाने वाली रस कुप्पिका जिसके रस के स्पर्श से लोहा सोना हो

जाने की बीत कही जाती है) की गहरी गुफाएं हैं। जिनको सिद्ध महात्माओं ने अपने हाथों से सौंपा है।

संसार में जितनी भी प्रकार की जड़ी-बूटियां हैं वे सभी यहां पाई जाती हैं।[23] रात में घुड़सवार उठ कर अपने मुख से मारो-मारो की ध्वनि करते हैं। गोरा-बादल और गहलोत रतनसिंह के साथ लाखों गहलोत (सूर्यवंशी) योद्धा यहां अलाउद्दीन खिलजी से लड़ते मारे गये थे। यहां अति सुन्दर पद्मिनी का महल है। जहां जागृत भैरव के साथ सैनिक पहरेदार के रूप में आकर त्रिपोलिया में रहते हैं। अमर बुर्ज के स्थान बावन सिद्ध विराजमान हैं।[24] यहां की लड़कियों की वे अपनी बुद्धि लगाकर कुल एवं साख के अनुरूप उचित वर का चुनाव कर रक्षा करते हैं। तोप, बंदूक के गोले, गोलियां या तीर कमान यहां पर नहीं पहुंच सकते। दुर्ग की सजी हुई बुर्जों से तोपों की ध्वनि सुनाई देती है। दुर्ग के अन्दर बहुत बड़ा मैदान है। जब बारूद का शोर सुनाई देता है तब पूरी पृथ्वी पर इसका प्रभाव पड़ता है। किले में माला बुर्ज (मालदेव का बुर्ज) को तोपें और भाले ध्वस्त नहीं कर सकते। इसका ढांचा सैकड़ों वर्ष पुराना है। इस पर न तो कोई आघात पहुंचा सकता है और न इसे कोई क्षतिग्रस्त कर सकता है। यह दुर्ग बड़ा मजबूत बना हुआ है। इनमें कोई सुरंग नहीं लग सकती है और न ही कोई लगा सकता है। अर्बुदा का देवल (मंदिर) अजमेर के तारागढ़ के समान विशाल बना हुआ है। अर्बुदा मंदिर की छत्री और छज्जे अत्यधिक सुन्दर बने हुए हैं यहां सदा नौबत नगाड़े बजते रहते हैं। काहळी करनाल (बड़ा युद्ध ढोल, जिसे चलती गाड़ी पर बजाया जाता था) देवताओं के यहां बजने वाले वाद्यों के समान बजाया जाता है। रणसिंगे युद्धों की राग में बजते हैं और सींगा (तुरही) सूफी राग में बजते हैं। नौ सौ झालरों के बजने वाले नाद से यहां के प्रासाद और पहाड़ भी गूंजते हैं। यहां ढोल, नगाड़े आदि सभी वाद्ययंत्र बजते रहते हैं इनका वर्णन करना कठिन है।

ग्वालियर का दुर्ग बड़ा विकट है। आसेर का किला भी बड़ा मजबूत है जो कि चित्तौड़ दुर्ग के सहायक हैं। जैसलमेर, जोधपुर या अजमेर दुर्ग भी इस किले की बराबरी नहीं कर सकते हैं। शिवपुरी और जालोर जबरदस्त हैं, रणथम्भौर दुर्ग भी सिंह की गुफा के समान है पर वो भी चित्तौड़ दुर्ग की बराबरी नहीं कर सकता। बीकानेर का दुर्ग बड़ा विकट है और अहिपुर (नागौर), राजगढ़, आमेर आदि। बीजापुर और शिवाजी का दुर्ग (जावली) दोनों औरंगजेब के निकट रहे हैं। चामर गढ़ बहुत मजबूत है और सगर गढ़ भी बड़ा प्रसिद्ध है। रायचूर और आइणी के दुर्ग तो इसके माने हवा में उड़ती हुई रूई की पुष्पिका के समान है। हाडा क्षत्रिय राजा का बूंदी का किला चित्तौड़ दुर्ग के सामने डंडे से कूटे पीटे कपड़े के समान है। चित्तौड़ का किला देश के सभी चौरासी किलों में सर्वोपरि है। ऐसा सारी दिशाओं के लोग कहते हैं।[25] चित्तौड़ दुर्ग की तलहटी में बसा

नगर भी दिल्ली और आगरा के समान है।[26] इस नगर में छत्तीस ही पवन (कार्मिक) जातियां निवास करती हैं और छः ही दर्शनों (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसा, वेद और योग) मानने वाले लोग यहां दिखाई देते हैं।[27] यहां महाराणा जयसिंह का राज्य है जो सभी राजाओं में शिरोमणि रूप है। खरतर सम्प्रदाय का कवि खेता आनन्द के साथ ऐसा वर्णन करता है।[28] इस ग़ज़ल की रचना संवत् 1748 के सावण के महिने के कृष्ण पक्ष की द्वादशी को की गई। अंत में कवि ने चित्तौड़ दुर्ग, चामुण्डा मंदिर, झाली बावड़ी पर झरणा, नीचे की ओर वृक्षों की घनी टहनियों के झुरमुट की छाया की प्रशंसा की है।

सन्दर्भ

1. *संवत सतर सै अडताल, सावण मास रित वरसाळ।*
   वदि पख बारमी तिथी क, कीनी गजल पढियो ठीक।
   लेखक कवि खेतल, खेतल कृत 'चित्तौड़ की गजल' एवं 'उदयपुर की गजल' ईसरदास कृत 'श्री उदयपुर का बवित छप्पय' सम्पादक अक्षयकुमार देराश्री, डॉ. ब्रजमोहन जावलिया, डॉ. मोहब्बतसिंह राठौड़, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, भूपाल नोबल्स संस्थान, उदयपुर, 2015, पृ. 50
2. *चरण चतुरभुज धार चित, ठीक करे मन ठोड़। पूर्वोक्त, पृ. 37*
3. *गढ चित्तौड़ है बंका क, मानूं समद मै लंका क। पूर्वोक्त, पृ. 37*
4. *वेड़च पूर तळि बहतीक, अरु गंभीरि भी रहतीक। पूर्वोक्त, पृ. 37*
5. *अल्लादैत अल्लादीन, बांधी पुळ बड़ी परवीन। पूर्वोक्त, पृ. 37*
6. *झालीबाय का झरणा क, हरि का ध्यान तिहां धरणा क। पूर्वोक्त, पृ. 38*
7. *है जिहां बुरज दो हजार, न लगै नाळि गोळा मार। पूर्वोक्त, पृ. 38*
8. *लंका तरफ सातौ पोल, रावत बैठ करते रोळ। पूर्वोक्त, पृ. 39*
9. *भैरव झांप ज्यूं भूखी क, लागत देखतां लूखी क। पूर्वोक्त, पृ. 39*
10. *कुकड़ेसर बड़ा है कुंड, परवत वीच है परचंड।*
    चामुंडा देहरा चंगा क, गहरे नीझरणी गंगा क।। पूर्वोक्त, पृ. 39
11. *आहड़ा महल अति ऊंचा क, जाय आसमान सूं पहुंचा क। पूर्वोक्त, पृ. 39*
12. *कुंड है भीम का गोडा क, निरमल नीर अति उंडा क। पूर्वोक्त, पृ. 40*
13. *सांगै राण का पूज्या क, देवल धरम पुनि दूजा क। पूर्वोक्त, पृ. 40*
14. *कुंभा राण का कुंभस्याम, देवळ बहुत लागै दाम।*
    मलिय महल मीरा के क, परगट थान पीरां के क।। पूर्वोक्त, पृ. 40
15. *जैमल राठवड़ पता क, अकबर साह सूं अड़ता क। पूर्वोक्त, पृ. 41*
16. *खातण लड़ी पेमा खूब, मर्दा मर्द ज्यूं महबूब। पूर्वोक्त, पृ. 41*
17. *चोसठ जोगणी चंडी क, पांडव थापना मंडी क। पूर्वोक्त, पृ. 41*
18. *जैसे द्वारिका हरिद्वार, गंगा गोमती गिरनार।*

बद्रीनाथ ज्यूं केदार, इकलिंग तोतला अवतार।। पूर्वोक्त, पृ. 43

19. *पूर्वोक्त, पृ. 43-44*
20. *मक्की ज्वार मोठरू मूंग, तुंवर उड़द निपजे तूंग।*
निपजै गोहूं चणा जव साळ, अलसी मालकां गणि आल।। पूर्वोक्त, पृ. 44
21. *पूर्वोक्त, पृ. 44-45*
22. *पूर्वोक्त, पृ. 45-46*
23. *जडियां सिष्टि में जेती क, तिहां महु पाइये तेती क। पूर्वोक्त, पृ. 46*
24. *अम्मर बुरज की जग्गा क, बावन सीघड़ा लग्गा क। पूर्वोक्त, पृ. 47*
25. *चौरासी सिरै चित्रकूट, कहते सकस च्यारूं कूंट। पूर्वोक्त, पृ. 49*
26. *कसबा तलहटी कैसा क, दिल्ली आगरा तैसा क। पूर्वोक्त, पृ. 49*
27. *छाये पवन छत्तीसे क, दरसण षट जिहां दीसे क। पूर्वोक्त, पृ. 49*
28. *जैसिंह राण का अमराज, सब ही भूप को सिरताज।*
खरतर कवि खेता क, आखै मोज सूं ऐता क।। पूर्वोक्त, पृ. 50

राजस्थान में फारसी शिलालेखों में कुरान की आयतें (नागौर क्षेत्र के विशेष संदर्भ में)

शमा बानो

शिलालेख का परिचय

भारतीय इतिहास को जानने के स्रोत के रूप में साहित्यिक स्रोत के साथ-साथ पुरातात्विक सामग्री यथा-सिक्के, मोहरें, मिट्टी के बर्तन, आभूषण, ताम्रलेख, शिलालेख आदि का भी अपना विशिष्ट स्थान है, जिसमें शिलालेख सबसे विश्वसनीय एवं साक्ष्य के रूप में अधिक ग्राह्य है, क्योंकि इसमें समय के साथ कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। अत: शिलालेख ऐतिहासिक दृष्टि से श्रेष्ठ सामग्री है।

शिलालेख का अर्थ

शिलालेख का अर्थ होता है, पत्थर पर लिखा हुआ। पत्थरों पर या गुफाओं की पथरीली दीवारों पर जब कोई लिखित रचना की जाती है तो उसे शिलालेख कहा जाता है। साधारण शब्दों में कहे तो किसी पत्थर या चट्टान पर खोदी गई लिखित रचना शिलालेख है।

भारत में फारसी शिलालेख

भारत में सबसे प्राचीन शिलालेख अशोक के काल के प्राप्त हुए हैं, जो ब्राह्मी, खरोष्ठी, यूनानी एवं अरेमाइक लिपि में उत्कीर्ण हैं। भारत में शिलालेखों की भाषा संस्कृत, अरबी, फारसी, पुर्तगाली, अंग्रेजी, हिन्दी प्रमुख है। भारत में फारसी भाषा का प्रथम शिलालेख हरियाणा से 12वीं शताब्दी का मोहम्मद गौरी व इसी काल का अजमेर के ढाई दिन के झोपड़े के गुम्बज की दीवार के पीछे लगा प्राप्त हुआ है। जो इल्तुतमिश के शासनकाल में लगाया गया था। चूंकि 12वीं शताब्दी के आस-पास भारत में मुस्लिम शासन स्थापित हो गया था और फारसी भाषा का प्रचलन बढ़ा तो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में फारसी भाषा के शिलालेख खुदवाये गये।

डॉ. अली असगर हिकमत शिराजी बहुमूल्य पुस्तक 'भारतीय पत्थरों पर फारसी शिलालेख', जो 1956 और 1958 में प्रकाशित हुई में भारत में प्राप्त असंख्य फारसी भाषा के शिलालेखों का जिक्र मिलता है। राजस्थान में फारसी शिलालेखों के बारे में जानकारी मोहनलाल गुप्ता, मांगीलाल व्यास मयंक, आर.सी. अग्रवाल, एन्यूअल रिपोर्ट

ऑन एपिग्राफी, एपोग्राफीया इण्डो मुस्लिमीका आदि से प्राप्त होती है।

राजस्थान में फारसी शिलालेख का परिचय

भारत की तरह चूंकि राजस्थान में भी मुस्लिम शासकों के प्रभाव में रहा अत: राजस्थान के भी विभिन्न क्षेत्रों यथा-सांभर, डीड़वाना, बड़ी खाटू, नागौर जालौर, सांचौर, जयपुर, अलवर, टोंक, कोटा, जैसलमेर, चित्तौड़, सीकर आदि में फारसी भाषा के शिलालेख प्राप्त हुए हैं। ये लेख मुख्यत: मस्जिदों, दरगाहों, खानगाहों, गुम्बदों, मीनारों, दीवारों कब्रों, सरायों, तालाबों के घाटों के पत्थरों आदि पर उत्कीर्ण मिले हैं।

इन शिलालेखों से तात्कालिक समाज की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन के ताने बाने का ज्ञान प्राप्त होता है, जो इतिहास लेख में उपयोगी है चूंकि यह पत्थरों पर खोद कर लिखे गए हैं इसलिए अधिक विश्वसनीय हैं।

राजस्थान में प्राप्त फारसी शिलालेखों में इस्लाम-धर्म के पवित्र ग्रन्थ कुरान की आयतें उत्कीर्ण मिलती है, जिसमें इस्लाम धर्म की शिक्षाएं व आदर्श की व्याख्या है। इस पत्र में हम उनमें से ही कुछ फारसी शिलालेखों में उल्लेखित कुरान की आयतों का जिक्र व उसका आशय समझने का प्रयास करेंगे।

काजियों की मस्जिद का शिलालेख (नागौर)

भाषा-अरबी-फारसी, सन् 1553 ई.

शिलालेख काजियों की मस्जिद में स्थापित है, जिसमें कुरान की एक आयत उत्कीर्ण है कि - ''मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ना छोड़ना एक बहुत बड़ा पाप है।''[1] कुरान की यह आयत इस्लाम-धर्म का अनुसरण करने वालों को यह हिदायत देती है कि नमाज की अदायगी मस्जिद में ही की जाए ऐसा न करने वाला व्यक्ति पाप का भागीदार होगा। यही कारण रहा कि उस काल में राजस्थान में स्थान-स्थान पर नमाज की अदायगी हेतु मस्जिदों का निर्माण करवाया गया।

अतारकिन की दरगाह का शिलालेख (नागौर)

भाषा-अरबी-फारसी, सन् 1599-1600 ई.

अतारकिन की दरगाह में स्थित यह शिलालेख धार्मिक है जिसमें कुरान की आयत उत्कीर्ण है कि - ''जिसमें जीवन की अवास्तविकता पर प्रकाश डाला गया है।''[2] यह शिलालेख मीर बुजुर्ग द्वारा उत्कीर्ण करवाया गया था।

काजियों की मस्जिद का शिलालेख (नागौर)

भाषा-अरबी-फारसी, सन् 1553 ई.

इस शिलालेख में कुरान की एक आयत अवतरित है, जिसका आशय है कि-

''लोगों को एक ही ईश्वर की आराधना करनी चाहिए, उसकी दया के अभाव में प्रत्येक व्यक्ति को हानि उठानी पड़ती है।'' इस मस्जिद का निर्माण अकजाउल कुजात काजी उमर ने करवाया।[3] उक्त कुरान की आयत इस्लाम-धर्म के एकेश्वरवादी होने पर बल देती है तथा संदेश देती है कि अल्लाह की दया के अभाव में व्यक्ति को कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है।

तोपखाना का शिलालेख (जालोर)

भाषा-अरबी-फारसी, सन् 13 वीं. शताब्दी। यह शिलालेख तोपखाना मस्जिद के दक्षिणी द्वार के बाहर स्थित शिला पर उत्कीर्ण है जिसमें मस्जिद निर्माण के उल्लेख के साथ कुरान की एक आयत भी उत्कीर्ण है। जिसका आशय है कि - ''अल्लाह एक है और मोहम्मद उसका पैगम्बर है।''[4] यह आयत इस्लाम धर्म के एक ईश्वर (अल्लाह) में आस्था रखने का संदेश देती है तो मोहम्मद साहब को इस्लाम धर्म में अल्लाह का दूत बताती है। यह आयत इस्लाम धर्म का अनुसरण करने वालों को बहुदेववाद से दूर रहने का संदेश देती है।

जामा मस्जिद का शिलालेख (डीडवाना)

भाषा-अरबी-फारसी, सन् 13 वीं शताब्दी। यह डीड़वाना जिला नागौर की जामा मस्जिद की एक शिला पर उत्कीर्ण लेख है जिसमें फारसी भाषा में कुरान की आयत में यह लिखा गया है कि - ''पैगम्बर मोहम्मद साहब का कथन है कि जो यहाँ (पृथ्वी पर) मस्जिद बनवाता है, उसे स्वर्ग में मकान मिलता है।''[5] अर्थात् जो व्यक्ति मस्जिद निर्माण कार्य करवाता है मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग में उसे मकान प्राप्त होगा। अत: इस्लाम-धर्म में नमाज हेतु मस्जिद निर्माण के कार्य को पवित्र माना गया है। शायद यह कारण रहा होगा कि राजस्थान में उस समयावधि में मस्जिदों का निर्माण शासन वर्ग और धनी व्यक्तियों ने जगह-जगह करवाया।

तारिकीन की खानकाह का शिलालेख

भाषा-अरबी-फारसी, सन् 1600 ई.। नागौर में स्थित तारिकीन की खानकाह में स्थित शिला पर कुरान की एक आयत उत्कीर्ण है, जिसका आशय है कि - ''बिना लाभ के समय गंवाना अत्यधिक दु:ख का विषय है।''[6] इसमें कुरान की आयत यह उपदेश जनसाधारण को दे रही है कि जीवन में समय अमूल्य है समय का दुरुपयोग करना ईश्वर की निशाह में बुरा है ओर व्यक्ति के लिए दु:ख का विषय है।

अकबरी मस्जिद का शिलालेख (नागौर)

भाषा-अरबी-फारसी, सन् 1564-65 ई.। नागौर में स्थित अकबरी मस्जिद के एक शिला पर कुरान-ए-शरीफ से आयत-उल-कुर्सी नामक छन्द अवतरित है, जिसमें

कहा गया है कि – ''अल्लाह सर्वोच्च एवं सर्वशक्तिमान है, उसकी महत्ता के सम्बन्ध में कोई शंका नहीं कर सकता।''[7] यह आमजन को अल्लाह के सर्वशक्तिशाली होने का संदेश देता है और अल्लाह बादशाह से भी ऊपर है।

काजियों की मस्जिद का शिलालेख

भाषा–अरबी–फारसी, सन् 1553 ई.। इस शिलालेख में कुरान एक आयत उद्धृत है, जिसमें कहा है कि – ''जब जकारिया मरियम के दर्शन करने हेतु जेरूशलम गया तो उसने उसके पीछे बिना मौसम के फल देखे।''[8] इसके अनन्तर कहा है कि इस मस्जिद का निर्माण सुल्तान इस्लामशाह के शासनकाल में शेख रूक्नुद्दीन कुरैशी हश्मी के पुत्र हाजी ऊमर ने करवाया।

उमरावशाह गााजी की दरगाह (नागौर) का शिला लेख

भाषा–अरबी–फारसी, सन् 14वीं शताब्दी। इस शिलालेख में 'अल–मुल्कु लिल्लाह' अर्थात् मात्र अल्लाह का राज्य।[9] इसमें अल्लाह की सत्ता के सर्वव्यापी होने पर बल दिया गया है।

ढाई दिन का झोंपड़ा, स्थित शिलालेख (अजमेर)

भाषा–अरबी–फारसी, सन् 12वीं शताब्दी। यह शिलालेख अजमेर स्थित ढाई दिन के झोंपड़े के केन्द्रीय मेहराब पर स्थित शिला पर उत्कीर्ण है। जिस पर कुरान की एक आयत स्थित है। जिसका आशय है कि – ''अल्लाह ही सर्वोच्च है।''[10]

अन्य

- ⋆ तिजारा (अलवर) के गुम्बज वाला बाग के पास स्थित मस्जिद में स्थित शिला पर उत्कीर्ण शिलालेख जो फारसी भाषा का 15वीं शताब्दी में कुरान की आयत खुदी है।[11]
- ⋆ शाहबाद (बारा) में 1534–35 ई. का फारसी शिलालेख रहीम खानदाता की दरगाह के दरवाजे पर उत्कीर्ण कुरान की आयतें।[12]
- ⋆ बड़ी खाटू (नागौर) 1301 ई. का फारसी भाषा का शिलालेख जिसमें कुरान के अध्याय–3 के छन्द 18 उत्कीर्ण है।[13]

उपसंहार

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मध्यकाल में भारत के मुस्लिम प्रभाव के कारण फारसी भाषा को प्रोत्साहन मिला और मुस्लिम शासकों एवं धनी–व्यक्तियों द्वारा इस्लाम धर्म के पवित्र ग्रन्थ कुरान की शिक्षाओं और उपदेशों को जनसाधारण तक पहुँचाने हेतु स्वयं द्वारा निर्मित भवनों, इमारतों, मस्जिदों, दरगाहों, कब्रों, खानगाहों, बावड़ियों, सरायों,

तालाबों के किनारे लगे पत्थरों पर कुरान की आयतें खुदवाई। ताकि भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार–प्रसार किया जा सकें और अन्य धर्मों एवं सम्प्रदायों के प्रभाव के कारण इस्लाम–धर्म में उत्पन्न विसंगतियों को दूर किया जाए और जनसाधारण के धार्मिक जीवन को श्रेष्ठ बनाया जाये।

शिलालेखों में उत्कीर्ण कुरान की आयतें न केवल भारत अपितु राजस्थान की भी मध्यकाल में धार्मिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करवाने में सहायक सिद्ध होती है क्योंकि उस समय जिस विसंगतियों से इस्लाम धर्म गुजर रहा था उसी से सम्बन्धित कुरान की आयतें शिलालेख में उत्कीर्ण मिलती है जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके है।

हालांकि यहाँ हम कुछ ही फारसी शिलालेखों विशेषकर नागौर के शिलालेखों का उल्लेख कर पाए है किन्तु यहाँ यह तथ्य प्रकट करना आवश्यक है कि भारत एवं राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में आज भी असंख्य शिलालेख दबे–पड़े हैं जिस पर अमूल्य धार्मिक ग्रन्थों के श्लोक–छन्द आयतें विद्यमान है। जिनका प्रकटीकरण होना अभी शेष है। यदि इन अप्रकट शिलालेखों की खोज की जाए तो नि:संदेह इस्लाम–धर्म के भारत में प्रचार–प्रसार के कारण एवं प्रभाव, इस्लाम के तत्कालिक स्वरूप आदि के संबंध में ज्ञान प्राप्ति में सहयोग मिलेगा जो राजस्थान के मध्यकाल के इतिहास लेखन में नये आयामों को प्रकट करने में सहायक सिद्ध होगा।

संदर्भ

1. *मोहनलाल गुप्ता, नागौर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 297*
2. *मोहनलाल गुप्ता, नागौर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 299*
3. *एपीग्राफीया इण्डो मुस्लिमीका 1949–50, पृ. 37*
4. *डॉ. मांगीलाल व्यास मयंक, मारवाड़ के अभिलेख, पृ. 187*
5. *डॉ. मांगीलाल व्यास मयंक, मारवाड़ के अभिलेख पृ. 188*
6. *एपीग्राफीया इण्डो मुस्लिमी का 1949–50, पृ. 41*
7. *मोहनलाल गुप्ता, नागौर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 305*
8. *मोहनलाल गुप्ता, नागौर का राजनीतक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 298*
9. *एन्यूअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपीग्राफी 1668–69 संख्या डी 420*
10. *एपीग्राफी इण्डो मुस्लिमीका – 1911–12, पृ. 33*
11. *एन्यूअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपीग्राफी संख्या डी 318*
12. *एन्यूअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपीग्राफी संख्या डी 332*
13. *एन्यूअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपीग्राफी संख्या 209*

जोधपुर टकसाल का मूल्यांकन (18वीं सदी) खाना रिकार्ड : खाना-टकसाल के आधार पर

मरजीना बानो

क्षेत्रीय इतिहास की जानकारी के महत्वपूर्ण स्रोत हमें अभिलेखागारीय सामग्री के रूप में प्राप्त होते है। केन्द्रीय सत्ता (मुगल) की रूपरेखा पर राजपूताना के मनसबदारों (वतन जागीदार) द्वारा बहीखानों तथा पोथीखानों की स्थापना की गई तथा प्रशासन एवं जीवन के अन्य पक्षों से संबंधित राजकीय सूचनाएं एकत्र की जाने लगी। एक प्रकार से गजट-लेखन आरंभ हुआ। बहियों, रूक्के, परवाने, सनदों, विगतों के माध्यम से एक काल एवं क्षेत्र विशेष की प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक गतिविधियों के दैनिक तथा वार्षिक वृत्तान्तों को सुरक्षित रखा जाने लगा। इनके अतिरिक्त ख्यातों तथा बातों के माध्यम से भी जानकारियाँ रिकॉर्ड की जाने लगी। चूंकि मुख्य रूप से ये अभिलेख राजकीय एवं प्रशासनिक दस्तावेज है, अत: इनमें प्राप्त अधिकांश सामग्री तथा जानकारी वस्तुनिष्ठ होती है। आज इतिहास विश्व-व्यवस्था के उत्तर-आधुनिक अवगमन के अन्तर्गत लिखा जाने लगा है तथा माइक्रो-स्टडीज् के अन्तर्गत क्षेत्रीय इतिहास महत्वपूर्ण स्थान रखता है। स्थानीय से क्षेत्रीय तथा क्षेत्रीय से राष्ट्रीय इतिहास का निर्माण होता है।

अभिलेखागारीय सामग्री में मारवाड़ राज्य के 'खाना रिकार्डस्' महत्वपूर्ण स्थान रखते है। 1886-1934 के काल के खाना रिकार्डस् की सख्या 105 हैं, जिनमें उपरोक्त काल की प्रत्येक जानकारी संरक्षित है। ये रिकार्डस् सूचनाओं के भण्डार है तथा संबंधित 'खाना' की सूचना के अतिरिक्त व्यापार-वाणिज्य, व्यापारिक केन्द्र, मार्ग, रीति-रिवाज, त्यौहार, सांस्कृतिक उत्सव, बैकिंग प्रणाली, राजस्व व्यवस्था, कारखाना पद्धति आदि की विस्तृत सूचनाएं देते हैं। 'खाना' का तात्पर्य विभागवार/विषयवार फाइल्स का विभाजन। चूंकि फाइल्स को हैड वाइज विभाजित कर वर्ष भर की सूचनाएं एकत्र की जाती थी, अत: इन रिकार्डस् को खाना रिकार्डस् पुकारा गया। ये रिकार्डस् इतिहास लेखन की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण इसलिये हो जाते है, क्योंकि ये राजतंत्र, बिटिशतंत्र तथा लोकतन्त्र के संक्रमण-काल के रिकार्डस् है। इस समय मारवाड़ राज्य प्रशासनिक-आर्थिक सामाजिक दृष्टि से परिवर्तित हो रहा था। रियासती प्रशासन तथा रीति-रिवाजों में ब्रिटिश प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देने लगा था तथा कई तकनीकि एवं आर्थिक परिवर्तन हो रहे थे। खाना रिकार्डस् जोधपुर राज्य की महकमा खास के समान ही हिन्दी रिकॉर्ड है। इसमें राजघरानें, जनाना, सरदार, रावराजा, जनानी ड्योढी, राजतिलक, दस्तूर से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त होती है। राजघराने के अलावा इनमें कमठा, जवाहरखाना, नगारखाना, टकसाल, बैंक, ऑडिट-आफिस, लवाजमा, जंगलात, बागात, वाल्टरकृत सभा, धामाई, लाठ-साहब, सुतरखाना, सफाखाना, हैसियतकोर्ट, पुलिया, चंवरी, लामा, फरासखाना, हाउस होल्ड व अन्य सीगों (विभागों) का हवाला (रिकार्ड) मिलता है। खाना रिकार्डस् महाराजा जसवन्त सिंह द्वितीय के समय से शुरु होते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह रिकार्ड विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने के कारण एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पुलिस, हैसियत कोर्ट, ऑड्ट्-आफिस आदि उस समय की प्रशासनिक व्यवस्था की जानकारी देने में सहायक हैं। राज्य के विकास कार्य जैसे बालसमन्द, लालसागर, मण्डोर व किले के बारे में भी इस रिकार्डस् से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। चंवरीलाग, त्यौहार आदि से इस समय की सामाजिक रीति-रिवाज की जानकारी प्राप्त होती है। कमठा, टकसाल, बैंक व खाना रिकार्डस् की अन्य विभागों की पत्रावलियों का अध्ययन कर इस समय की आर्थिक स्थिति का पता लगाया जा सकता है। अभिलेखागारीय सामग्री में मारवाड़ राज्य के खाना रिर्कोड्स महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं जब से मानव सभ्यता का उदय हुआ उसे विनिमय के साधनों की आवश्यकता महसूस हुई। प्राचीन काल में वस्तु विनिमय हुआ करता था। समय के साथ-साथ विभिन्न वस्तुओं का विनिमय के रूप में प्रयोग होने लगा। वैदिक काल में गाय विनिमय का एक महत्वपूर्ण माध्यम थी। तत्पश्चात् विनिमय के लिए धातुओं की उपयोगिता मनुष्य को अधिक व्यवहारिक व उत्तम लगी।

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के संचालन व विकास के लिए मुद्रा की आवश्यकता होती है। मुद्रा का सीधा संबंध व्यापार-वाणित्य व आर्थिक समृद्धि से होता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु भारतीय शासकों ने अपने-अपने शासनकाल में विभिन्न प्रकार की मुद्राओ को ढालने के लिए विभिन्न स्थानों पर टकसालों की स्थापना की। 18वीं सदी के अन्त तक सम्पूर्ण मारवाड़ में सात टकसाले विद्यमान थी—

1 जोधपुर वि.स- 1837/ई. सन् 1761
2 पाली वि.स- 1845/ई. सन् 1788
3 नागौर
4 सोजत वि.स- 1864/ई. सन् 1807
5 जालौर
6 मेड़ता
7 कुचामन[1]

जोधपुर टकसाल

जोधपुर के शासक महाराजा विजयसिंह (1752–1792) ने सर्वप्रथम अपने राज्य (जोधपुर) में सन् 1761 में टकसाल की स्थापना की तथा वि.स. 1837/1780 ई. सन् में मुगल बादशाह शाह आलम–द्वितीय से अनुमति प्राप्त कर अपने नाम का सिक्का चलाया। टकसाल का नाम 'दार–अल–मन्सूर' रखा गया।

कर्नल जेम्स टॉड ने अपने ग्रन्थ 'एनाल्स एण्ड एंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान' में मारवाड़–नरेश अजीतसिंह जी का वि.स. 1777/1720 ई. सन् में अपने नाम का सिक्का चलाना लिखा है। परंतु न तो अब तक उस समय का सिक्का मिला न अन्यत्र कहीं। अभी तक के मिले प्रमाणों से प्रकट होता है कि मारवाड़ नरेश महाराजा विजयसिंह जी ने ही पहले पहल 1780 ई. विजयशाही सिक्का चलाया था।[2] जोधपुर टकसाल में बड़ी मात्रा में सोने, चांदी व तांबे के सिक्के ढाले जाते थे।

1. जोधपुर टकसाल में निर्मित स्वर्ण सिक्के/मुहर– जोधपुर टकसाल में निर्मित स्वर्ण सिक्कों को मुहर या अशरफी के नाम से जाना जाता था। सोने की मुहर बनाने का कार्य केवल जोधपुर टकसाल में होता था। इसका उपयोग केवल राज्य स्तर के विनिमय और व्यवसाय के लिए किया जाता था।[3]

2. जोधपुर टकसाल में निर्मित चांदी के सिक्के– जोधपुर की टकसाल में निर्मित चांदी के सिक्के विजयशही के नाम से जाना जाता था जो कि क्रमशः 3:1 में चांदी व तांबे के मिश्रण से बने होते थे। इस पर फारसी लिपि में एक तरफ शाह आलम का नाम और दूसरी तरफ (जोधपुर) टकसाल का नाम लिखा रहता था। यह सिक्का महाराजा विजयसिंह द्वारा जारी किया जाने के कारण विजयशाही कहलाया। विजयशाही सिक्का बाइसंदा के नाम से भी जाना जाता था (शाहआलम द्वितीय का राज्यवर्ष 22 होने के कारण) 1806 ई. में बादशाह शाह आलम द्वितीय की मृत्यु के बाद इस सिक्के पर मुगल बादशाह अकबर द्वितीय का नाम अंकित किया गया और 1837 ई. में अकबर द्वितीय की मृत्यु के बाद मुगल बादशाह बहादुरशाह का नाम अंकित किया गया।[4] 1859 में मुगल बादशाह के नाम के स्थान पर महारानी विक्टोरिया का नाम तथा सिक्के के दूसरी तरफ जोधपुर महाराजा तखतसिंह जी का नाम लिखा जाने लगा।[5]

1869 ई. से जोधपुर राज्य की सभी टकसालों में ढलने वाले सिक्कों पर नागरी लिपि में 'श्री माताजी' शब्द को जो जोधपुर नरेशों की इष्ट देवी का सूचक था, जोड़ दिया गया। इसके बाद जोधपुर के शासकों जसवंतसिंह (1837 ई.) सरदारसिंह (1895 ई.) आदि के नाम जोड़े गए। सन् 1901 में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु के बाद क्रमशः एडवर्ड सप्तम्, जार्ज पचंम् एडवर्ड अष्टम् व जॉर्ज षष्ठ के नाम के सिक्के चलाए गए।[6]

जोधपुर दरबार की ओर से राज्य में सन् 1900 में जोधपुर टकसाल में निर्मित विजयशाही रुपये का चलन बंद करके उसके स्थान पर अंग्रेजी कलदार रुपये को चलाने का आदेश दिया। स्थानीय मुद्रा को ब्रिटिश कलदार रूप में बदलने के लिए राज्य में चार कोषागार–जोधपुर, नागौर, पाली व नावां में स्थापित किए गए।[7]

3. जोधपुर टकसाल में निर्मित तांबे का सिक्का– जोधपुर टकसाल में निर्मित तांबे का सिक्का ढब्बुशाही के नाम से जाना जाता था। महाराजा भीमसिंह के समय इस सिक्के का वजन 2 माशा ओर बढ़ा दिया जाने से इस सिक्के को भीमशाही पुकारा जाने लगा।[8]

जोधपुर टकसाल प्रमुख पदाधिकारी — 1. दारोगा 2. मुशरफ 3. पोतदार।

दारोगा – टकसाल का सबसे प्रमुख व्यक्ति दारोगा कहलाता था। जोधपुर टकसाल के दारोगा का यह पद मुगल टकसाल के अधिकारी सर्राफ की तुलना में होता था। टकसाल में सिक्के ढालने के लिए प्रयुक्त होने वाली धातु (सोना, चांदी, तांबा) आदि की शुद्धता की जांच करना दारोगा का मुख्य कार्य होता था। इस कार्य में किसी भी प्रकार की गड़बड़ी का जिम्मेदार दारोगा को समझा जाता था। टकसाल में निर्मित सिक्कों पर कुछ चिन्ह अंकित होते थे उन सिक्कों पर किसी प्रकार के चिन्ह अंकित किए जाने है यह कार्य टकसाल प्रमुख दारोगा व राज्य के निरीक्षण में होता था – जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार है–

जोधपुर नागरी लिपि का उल्टा 'ग'	कानीराम	1849–62 ई.
जोधपुर नागरी लिपि का उल्टा 'रा'	अनाड़सिंह	1866 ई.
जोधपुर नागरी लिपि का उल्टा 'अली'	मुमताज अली	1884–86 ई.

इन चिन्हों के अतिरिक्त झाड़ या तलवार मारवाड़ अथवा जोधपुर राज्य के विशेष चिन्ह है झाड़ सात या नौ टहनियों का होता था। नौ टहनियों वाला झाड़ मूल विजयशाही रू. पर और लुलुलिया सिक्कों पर मिलता है। इसका स्थानीय नाम तुर्रा है जो साफे पर पहने जाने वाला एक आभूषण है यह नाम तखतसिंह जी द्वारा चलाया गया तलवार का स्थानीय नाम खाण्डा है।

ओहदाबही में 1765 ई. से 1806 ई. तक नियुक्त दारोगा ओहदेदारों की सूची अंकित है जिन्हें पोतदार नियुक्त किया गया था। बही में उल्लेख आता है कि सर्वप्रथम मुहणोत इद्रंराज को 1765 ई. में 1801 रू. में इजारे पर टकसाल दी गई तथ 1775 ई. में मुहणोत मूलचंद को दी गई। महाराजा तखतसिंह के समय प्यास कनीराम को नियुक्त किया गया। 1849 में कनीराम की मृत्यु के बाद टकसाल का इजारा उसके पुत्र फोजीराम को सौंपा गया। 1862 में यह कार्य मगराज के भाई को सौंपा गया।

टकसाल में कार्यरत दारोगा को जब टकसाल इजारे पर दी जाती है। इसका उल्लेख बही में कुछ इस प्रकार हुआ है–

इजारेदार को मौनविर जानकारी पेश करनी होगी।

किस्त माह–वार जमा करानी होगी।

तारों (सोने के तार) की रेट जो टकसाल से मुकरीर होगी उसी मुजब ईजारेदार व्यापारियों को दाम देगा। यदि कोई कमी–पेशी हो तो टकसाल से हवाला करेगा। तारों से जो सोना निकलेगा उसकी मोहरे टकसाल में लगेगी। खाली सोना बाहर नही बेच सकेगा – अगर बेचेगा तो सजा होगी।[10]

मुशरफ – टकसाल का लेखाधिकारी मुशरफ कहलाता था – बही में इतना ही उल्लेख हुआ है कि 1793 ई. छंगाणी मुरलीधर की नियुक्ति की गई।[11]

पोतदार – टकसाल में हिसाब रखने के लिए पोतदार का पद सृजित किया गया। बही में वि.स. 1844–1902/ ई. सन् 1787–1845 तक के सात ब्राह्मणों के नाम अंकित है। पोतदार मुद्राएं ढालने के लिए मंगवाई गई विभिन्न धातुओं (सोना चांदी तांबा) और ढले हुए सिक्कों का पूरा हिसाब रखता व इसका अंकन यथासंभव बही में करता तथा मुशरफ बही का निरीक्षण कर हस्ताक्षर करता और तथा दारोगा को जानकारी प्रदान करता।[12]

SUPERINITENDENTS AND ACCOUNTANTS OF JODHPUR MINT IN 18TH CENTURY

दारोगा के नाम	**नियुक्ति वर्ष**
1. मुहणोत इंद्रराज	मार्च 1765
2. मुहणोत मूलचंद	सित. 1775
3. व्यास मोजीराम	नव. 1775
4. व्यास मूलकचंद	नव. 1786
5. पंचोली कालूराम	नव. 1786
6. व्यास दयाराम	दिस. 1787
7. सिंघवी स्वामीलाल	मई 1788
8. श्री माली बयाराम किशन	मई 1790
9. ओझा मुन्तेश्वर	अग. 1791
10. छंगाणी गिरधारीलाल	जन. 1792
11ण व्यास कृपा किशन	फर. 1777

12. सिघवीं स्वामीलाल	मार्च 1793
13. मुहणोत शिवदास	मार्च 1794
14. कोठारी स्वामीराम	अग. 1795[13]
पोतदारों के नाम	**नियुक्ति वर्ष**
1. छंगाणी गिरधारी लाल	जन. 1787
2. पुरोहित रामदत्त	फर. 1790
3. बोहरा मच्छाराम	फर. 1792
4. छंगाणी मुरलीधर	सित. 1793
5. व्यास मोजीराम	नव. 1794
6. श्री माली भवानी शंकर	नव. 1796
7. व्यास गिरधर दास	जुलाई 1798
मुशरफ का नाम	**नियुक्ति वर्ष**
1. जोशी गुलाब	अक्टु. 1788[14]

जोधपुर राज्य के सिक्कों पर मिलने वाले कुछ लेख

1 स्वर्ण मुद्रा– मुहर या अशरफी

कीन विक्टोरिया मल्लिका	सने जलूस मैमनत मानूस
मुअज्जमा इगलिस्तान व	महाराजा–धिराज श्री
हिन्दुस्तान जरब	तखतसिंह बहादुर
अग्र भाग	**पृष्ठ भाग**

2 चांदी मुद्रा–विजयशाही

सिक्के मुबारिक शाह	जरब दारूल मनसूर जोधपुर
आलम बादशाह गाजी	सन् 22 जलूस मैमनत मानस
अग्र भाग	**पृष्ठ भाग**
परिवर्तन–	
बजमान मुबारिक कीन	श्री माताजी महाराजधिराज श्री
विक्टोरिया मलिका मुअज्जम	तखतसिंह बहादुर सन् 22
इगलिस्तान् व हिदुस्तान	जरब जोधुपर

3 तांबे की मुद्रा

सने जलूस मैमनत मानस जरब	दारूल–मन्सुर जोधपुर
अग्र भाग	**पृष्ठ भाग**[15]

जोधपुर राज्य की जनससामान्य में प्रचलित छोटी मुद्राएं व उनके मूल्य-

मुद्रा	मूल्य
1. 4 कोड़ी	एक गण्डा
2. 2.5 गण्डे	एक दमड़ी
3. 2 दमड़ी	एक छदाम
4. 2 छदाम	एक अधेला
5. 2 अधेला	एक डब्बूशाही पैसा
6. 3.5 ढब्बूशाही पैसा	एक आना
7. 16 आना	एक विजयशाही रूपया
8. 2 फदिया	एक पिरोजी
9. 4 पिरोजी	एक रूपया
10. 8 फदिया	एक रूपया
11. 5 दुगुणी	एक फदिया[16]

संदर्भ

1. *खाना टकसाल फाइल संख्या-5 -पृ. 1-4*
2. *खाना टकसाल फाइल संख्या-2 -पृ. 8-11*
3. *वही फाइल संख्या-11 -पृ. 11-14*
4. *रेऊ, विश्वेश्वर नाथ, कांइस ऑफ मारवाड़ -पृं. 137*
5. *वेब, डब्ल्यू डब्ल्यू, द कंरसेस ऑफ द हिन्दु स्टेटस ऑफ राजपुताना, पृ. 40*
6. *रेऊ विश्वेश्वरनाथ, वही - पृ. 05*
7. *हकीकत बही, पृ. 38*
8. *रेऊ विश्वेश्वरनाथ, पृष्ठ सं. 47*
9. *खाना टकसाल फाइल संख्या-11*
10. *वही फाइल सं.-21*
11. *भाटी हुकुमसिंह, मारवाड़ के ओहदेदारो का इतिहास में योगदान, पृ. 140-142*
12. *भाटी हुकुमसिंह, वही पृ. 143*
13. *खाना टकसाल फाइल सं.-5*
14. *जोधपुर ओहदा बही फाइल न. 1 व 2 (1763 से 1843 ई.तक)*
15. *खाना टकसाल फाइल सं.-8*
16. *वही फाइल सं.-7*

ठिकाना रोहिट में प्रचलित कर व्यवस्था : एक सर्वेक्षण (20वीं सदी के ठिकाना रिकोर्डस् के विशेष संदर्भ में)

नयना आचार्य

साधारणत: 'ठिकाना' शब्द का अर्थ निवास करने एवं मुख्यालय से है। लेकिन पुरानी ख्यातों, बातों, पट्टे, परवानों और बहियों में ठिकाना शब्द का उल्लेख नहीं मिलता हैं। महाराणा राजसिंह की पट्टा बही, जोधपुर हुकूमत की बही, मूंदियाड़ री ख्यात, जोधपुर राज्य की ख्यात में जागीर के लिए गांव शब्द का प्रयोग किया है। महाराजा भीमसिंह कालीन जागीरदारों के गांव पट्टों की हकीकत में जागीर के मुख्य गांव के लिए कहीं-कहीं राजधान शब्द मिलता है। इसका अर्थ ठिकाने से न होकर मुख्यालय से है।

'ठिकाने' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख 17वीं सदी के अंत में लिखी गई 'रावल राणाजी की बात' में मिलता है।[1] बांकीदास की ख्यात में 'ठिकाना' शब्द का प्रयोग मिलता है। जो महाराजा मानसिंह (1803-1843 ई.) के समय लिखी गई। जैसे- ''गीजगढ़ ठिकाणो ढूढ़ाड़ में चांपा सामसिंह देवीसिंघोत रो।''[2] इसी प्रकार उन्नीसवीं सदी के अंत में लिखा गया ग्रंथ 'मारवाड़ रा ठिकाना री विगत' में ठिकाना शब्द का प्रयोग दो रूपों में मिलता है-

1. पट्टों के रूप में मिले गांव में पट्टेदार द्वारा ठिकाना कायम करना। जैसे-''सगतसिंह महाराजा जी अजीतसिंह री विखा री बंदगी कीवी तिण सूं रोयट पट्टे दीवी ने ठिकाणो बांधियो।''[3]
2. शासक द्वारा ठिकाना कायम कर किसी जागीरदार को देना। जैसे-''अचल में रिया ठिकाणो राव मालदेवजी बांदीयो ने राठौड़ सहसो तेजसी वरसिंग जोधावत ने इनायत कीयो संवत 1595 में।''[4]

उपरोक्त तथ्यों से ये स्पष्ट होता है कि ख्यातों में ठिकाने शब्द का प्रयोग सर्वत्र हुआ। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जागीर पट्टे का यह मुख्य गांव जिसमें जागीरदार सपरिवार निवास करता हो। उसकी जागीर के दूसरे गांवों का शासन प्रबंध उस मुख्य गांव से नियोजित होता है। उस गांव पर उसका वंशानुगत अधिकार हो। वह गांव ठिकाना कहलाता है।

मारवाड़ के ठिकानों में रोहिट का ठिकाना द्वितीय श्रेणी का था। रोहिट पाली

जिले में स्थित हैं। यह चांपावत राठौड़ों का ठिकाना था। इस क्षेत्र पर पहले सोनगरा-सांचौरा एवं चौहानों का अधिकार था। इसके पश्चात् चांपावत राठौड़ों का पाली और उसके आस-पास के क्षेत्रों पर स्वामित्व हुआ।

सर्वप्रथम 1622 ई. महाराजा गजसिंह प्रथम ने दलपतसिंह चांपावत को 84 गांवों सहित रोहिट की जागीर दी थी।[5] दलपतसिंह से 1658 ई. महाराजा जसवंतसिंह प्रथम के साथ औरंगजेब के विरुद्ध उत्तराधिकार युद्ध (उज्जैन के निकट धर्मत्त का युद्ध) में भाग लिया। 1665 ई. दलपतसिंह की मृत्यु के बाद उनका पुत्र कल्याणदासजी रोहिट की गद्दी पर बैठे।[6] उस समय रोहिट की रेख 22,500 रुपये थी। महाराजा जसवंतसिंह प्रथम की मृत्यु 1679 ई. हुई थी। उस समय रोहिट पर शाही सेना ने अधिकार कर लिया। उसके पश्चात् महाराजा अजीतसिंह के शासन बनने पर उन्होंने दलपतसिंह के पुत्र शक्तिसिंह को 1708 ई. रोहिट की जागीर दी थी। इसकी रेख 18,500 रुपये थी। उसमें 11 गांव सम्मिलित थे-''जोधपुर का गांव सरेचा, सिवाना का गांव थोब, जालौर का भैसवाड़ों, सोजत का गांव वीचपुड़, रोयट खास, कलाली, ढूढलो, नींबली, लालकी, हरावास, मुगलो।''7

शक्तिसिंह के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी क्रमशः भगवतसिंह, कल्याणसिंह, इंद्रसिंह, अचलसिंह, सुरताणसिंह, गिरधारीसिंह, रणजीतसिंह, दलपतसिंह, विक्रमसिंह, मानवेन्द्रसिंह, रोहिट की गद्दी पर बैठे।[8] रोहिट का ठिकाना द्वितीय श्रेणी का था। ठिकानेदारों का हाथ का कुरब और दोहरी ताजीम मिली हुई थी।[9]

ठिकाने में ठिकानेदार अपनी प्रजा से अनेक प्रकार के कर लेता था। उसकी जानकारी हमें ठिकाना रोहिट के रिकोर्डस् में मिलती है। ठिकाना रोहिट की बही सं. 972, वि.सं. 1997 (1940 ई.), बही सं. 998 वि.सं. 2006 (1949 ई.) तथा बही सं. 1018 वि.सं. 2012 (1955 ई.) जो ठाकुर विक्रमसिंह के समय की हैं।[10] जो राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी में संग्रहित हैं। इनमें हमें ठिकाने की प्रजा से लिये जाने वाले करों जैसे-झूंपी, खरखर, मालसेरिणो, घासमारी, किंवाडी, घाणी, तुलावट, दाण, शुकराणां आदि की जानकारी मिलती है। इसके साथ करों को किस आधार पर और कितना कर लिया जाता था। उसकी जानकारी भी मिलती है। ठिकाना रोहिट और पद्दे के गांवों को कर की दर में कितना अंतर था उसका उल्लेख भी मिलता है। ठिकाना विपरित परिस्थितियों में प्रजा को करों में छूट देता था। उसका उल्लेख भी मिलता है।

झूंपी कर-यह झोपड़ी, पड़वे आदि कच्चे मकानों से जो लकड़ी और घास-फूस से बनाये जाते थे। उसमें घास लाग के रूप में झूंपी कर लिया जाता था। बही संख्या 972 वि.सं. 1997 (1940 ई.) के पत्र 1-2 के अनुसार यह कर महाजनों, कंसारा, लखारा, सोनार, छीपा, रंगरेज, मोची, खटीक आदि जातियों से लिया जाता था। जो इस प्रकार है

यह कर प्रति घर ।।) आठ आना और घर के मुखिया का नाम लिखवाने के)।।। 3 पैसे की दर से लिया जाता था। कई बकाया होने पर तीन-चार वर्षों का साथ में भी लिया जाता था। उस पर कोई अतिरिक्त ब्याज नहीं लगाया जाता था। जैसे-महाजन सूरजमल कांकरिया से ।।)।।। आठ आना 3 पैसे लिए गये, महाजन बस्तीमल कांकरिया संवत् 1995-1997 1 रुपया 9 आने और 1 पैसा, कंसारा नरसिंग 2 रुपये तीन आने, सोनार साजयचंद ।।)।।।, लखारा घीसीया ।।)।।।, मोची सालूड़ो 1-)।। (वि.सं. 1996-1997) एक रुपया एक आना दो पैसे लिया, छीपा बालिया ।।)।।।..... आदि।

खरखर-यह कर मोठों की खेती करने वाले किसानों से लिया जाता था। मारवाड़ में मोठों की रोटी बनायी जाती थी। उसे खाने पर खरखर की आवाज आती थी। इसलिए उसे खाखरा कहा जाता था। बही 972 वि.सं. 1997 पत्र सं. 2 के तथा बही सं. 998 वि.सं. 2006 के पत्र सं. 2 के अनुसार ठिकाना रोहिट में पटेल, माली, जाट, राइका, तेली आदि जातियों से लिया जाने वाले कर दर में भिन्नता थी। जैसे-पटेल हिमतो से 1 रुपया, जाट धनिया से 1 रुपया, माली तुलसा से 1 रुपया, राइका नेनो 1।।) आठ आना, तेली नसीबा ।) चार आना।

कई बार पटेलों से खरखर लाग नहीं ली जाती थी बदले कुछ और अनाज की बुवाई करायी जाती थी जैसे-पटेल किसनों से खरखर लाग नहीं लिया गया उसके बदले में घोड़े के लिए बाजरी बुवाई गई थी।

घासमारी कर- घास से सम्बन्धित कर गांव के पशुपालकों से लिया जाता था। गोचर भूमि पर पशुओं की चराई पर लिया गया कर घासमारी कर कहलाता था। प्रत्येक गांव में घासमारी की राशि 2-12 रुपये तक वसूल की जाती थी। यह कर भैंस, गाय, बकरी आदि मादा पशुओं से लिया जाता था। सांड, भैसा, बकरा, नर भेड़ (लरड़ा) आदि पशु घासमारी से मुक्त थे। यह कर व्यापारी, आमजन, राइका (पशुपालक) और कसाईयों से अलग-अलग लिया जाता था।

राइका (पशुपालक)- राइका जाति से 100 जानवरों पर 4 रुपये लिया जाता है। किवाड़ी के ।) चार आना (जानवरों के बाड़े पर जो फाटक लगा होता था उसको किवाड़ी कहा जाता था)। उस पर जो कर लिया जाता था उसे किवाड़ी कर कहा जाता थाऋ जब कामदार जानवरों की गिनती करने आता था जो एक बकरा अमर किया जाता था। इसमें हर बार अलग-अलग राइका का बकरा अमर किया जाता था। बही सं. 972 पत्र सं. 3 के अनुसार राइका नेनो राम 6 ।) 6 रुपये, 150 जानवरों के चार आना किवाड़ी के।

कसाइयों से घासमारी के 100 जानवरों के चार रुपये लिए जाते थे। जैसे मोहम्मद हनीफ 22.80 पैसे-570 जानवरों के।

खाजरू- पशुपालकों के बकरों पर लिया जाने वाला कर खाजरू कहलाता था। राइका (पशुपालक) के प्रत्येक घर से 3 रुपये लिया जाता था। जैसे राइका भानो नगारों से 3 रुपये लिए।

मलबा-ये सफाई कर था। यह 100 जानवरों पर 1 रुपया लिया जाता था।

ठिकानेदार केतसाली (अकाल) के अवसर पर घासमारी कर में पशुपालकों को छूट देता था। बही सं. 998 पत्र सं. 12 के अनुसार मलबा कर जो साढ़े दस आने लिया जाता था। अकाल के समय छूट देकर 6 आने लिया जाता था।

ऊन उघोड़ी (ऊन बाब)- बही सं. 998 पत्र सं. 3 भेड़ पर लगने वाला कर जो भेड़ पालकों (रेबारियों) से लिया जाता था। ये प्रति घर 3 रुपये लिया जाता था। इसमें भेड़ों की गिनती की जाती थी। वह इस प्रकार थी-चैत्र से वैशाख तक (जब तक भेड़ों की ऊन नहीं काटी जाती थी) तब उन्हें दोवड़ी गिना जाता था। वैशाख से कार्तिक तक इकवड़ी गिना जाता था।

मालसेरिणो- मारवाड़ में खेत में स्वत: उगने वाली झाड़ियों से पाला और खेजड़ियों के वृक्ष से लूंग प्राप्त होता है। जिसका उपयोग पशुओं के चारे (आहार) में किया जाता है। उसे मालसेरिणो कहा जाता है। यह 1 से 2 रुपये लिया जाता था। बही सं. 998 पत्र सं. 4 के अनुसार ठिकाना रोहिट में यह जाति के आधार पर लिया था। जैसे जाट हिमतो 2।) दो रुपये चार आने, माली पेमा 3।।) 3 रुपये आठ आना, राइका केना से 3) तीन रूपये, पटेल हिमता से ‘ ।) एक रुपया चार आने आदि।

घीयायी बाब- यह मुख्यत: दुधारू भैंस का घासमारी कर है। जो प्रति भैंस और उसकी झोटी (पाडी) से लिया जाता था। बही सं. 997 पत्र सं. 10 के अनुसार प्रति भैंस तीन आना दो पैसे और झोटी दो आने, जाट मोठड़ो ।-)।। पांच आने 2 पैसे।

दाण- वस्तुओं के आयात-निर्यात पर व्यापारियों से जो कर लिया जाता था। वह दाण कहलाता था। बही सं. 998 पत्र सं. 5 के अनुसार शाह हीराचंद से 305 रुपये लिया गया।

तुलावट- मंडी में कृषक का बिकने आये हुए अनाज जो तौलता है उससे लिया जाने वाला कर तुलावट कहलाता है। बही सं. 998 के पत्र सं. 5 के अनुसार शाह ताराचंद धनराज से 11 रूपया शाह माणकचंद हस्तीमल से 11 रुपये यह दोनों बड़े व्यापारी थे। जो छोटे व्यापारी थे उनसे 5 रुपये लिया जाता था।

सुकराणां- ठिकानेदार द्वारा आबादी की भूमि का पट्टा बनाकर देने पर लिया

जाने वाला कर सुकराणां कहलाता है। बही 1018 पत्र सं. 95 शाह बस्तीमल ने रोहिट के बाजार में न्यात का नौरा (समाज का भवन) बनाने के लिए बुधा धोका से जमीन 302 रूपये ली। तब उसको सुकराणे के 31 रूपये लिये थे। पट्टे दस्तूरी के 6 रुपये लिये गये। सुकराणां पट्टा दस्तूरी के 21 रूपये लिए गये तथा इस प्रकार 58 रुपये लेकर उसको पट्टा दिया गया। उसके साथ ये लिखा गया था कि उस जमीन का उपभोग उसकी पीढ़िया करेगी।

घाणी कर- तैली से घाणी चलाने पर लिया जाना वाला कर। प्रति घाणी पाव तैल लिया जाता था। कई बार घाणी कर रुपयों के रूप में वार्षिक लिया जाता था। बही 998 पत्र सं. 6 तैली नारायण से 12 रुपये लिए गये। बही सं. 1018 पत्र सं. 10 के अनुसार तैली हीराराम से दो वर्ष के 25 रुपये लिए गये।

मोची-पगरखी लाग- मोची से लिया जाने वाला कर वर्ष में मोची ठिकानेदार को 1 जोड़ी जूता बनाकर देता था। बही सं. 998 पत्र सं. 9 के अनुसार मोची से पगरखी लाग के वार्षिक 2 रुपये लिये जाने का उल्लेख मिलता है।

इन करों में से खरखर और घासमारी की दर रोहिट और उसके जागीर गांव में समान नहीं थी उनमें अंतर था। जिसका उल्लेख बही सं. 972 पत्र सं. 2-10 के अनुसार रोहिट खास खरखर लाग एक रूपया ली जाती थी वही गांव भाखरीवाला में ‘ ।।) एक रुपया आठ आना, गांव लालकी में ।-) पांच आना लिया जाता था।

घासमारी कर- रोहिट खास 100 जानवरों पर 4 रुपये और किवाड़ी का ।) चार आना लिया गया। वही गांव भाखरीवाला में 100 जानवरों पर घासमारी कर 3।) तीन रुपये चार आना, मलबा कर का 1 एक रुपया और किवाड़ी का ।) चार आना लिया जाने का उल्लेख मिलता है। गांव अरणीया में 100 जानवरों पर 5 रुपये और किवाड़ी ।) चार आना, गांव कलाली 100 जानवरों पर तीन रूपये, गांव लालकी 100 जानवरों पर 4 चार रूपया और किवाड़ी के दो रुपये लिये जाने का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार ठिकाना रोहिट के ठिकानेदार अपनी प्रजा से अनेक प्रकार के कर लेता था। इन करों से ठिकाना की पूरी व्यवस्था को संचालित करता था। इसके साथ ही मारवाड़ राज्य को करों का कुछ प्रतिशत देकर राज्य के विकास में योगदान देता था।

संदर्भ

1. *मध्यकालीन राजस्थान में ठिकाना व्यवस्था, डॉ. विक्रमसिंह भाटी, पृ.12, जोधपुर, 2004*
2. *बांकीदास री ख्यात, सम्पा. नरोत्तमदास स्वामी, पृ. 140, राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर*

3. *मारवाड़ रा ठिकानां री विगत, सम्पा. डॉ. हुकमसिंह भाटी, राज. शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, 1998*
4. *वही, पृ. 127*
5. *चांपावतों का इतिहास, ठा. मोहनसिंह कानोता, भाग 3, पृ. 616, जोधपुर, 2007*
6. *वही, पृ. 617*
7. *परगना पाली गांव रोयठ की ख्यात, फाइल नं. 36, बस्ता नं.12, इमेज 36, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर*
8. *चांपावतों का इतिहास, ठा. मोहनसिंह कानोता, भाग 3, पृ. 755-763*
9. *वही, परिशिष्ट 1, पृ. 1*
10. *ठिकाना रोहिट की बही, सं. 998, बही सं. 972, बही सं. 1018 राज. शोध संस्थान, चौपासनी में संग्रहित है।*
11. *राजस्थानी हिन्दी शब्द कोश, सम्पा. डॉ. सद्दीक महोम्मद, राज. शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर 2002*
12. *मारवाड़ रा परगनां री फरसत, सम्पा. हुकमसिंह भाटी, राज. शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर 2005*

मारवाड़ के राजघरानें में सांस्कृतिक परिवर्तन एक अध्ययन-दारोगा दस्तरी बही के आधार पर

निगार खानम

19वीं सदी में जोधपुर में दस्तरी महकमा कायम किया गया था। इस महकमें के लिए दारोगा नियुक्त किया जाता था। राज परिवार की समस्त दैनिक घटनाओं को लिखने के लिए क्लर्कों की नियुक्ति की जाती थी। दारोगा दस्तरी बही में महाराजा की दिन-चर्या, त्योहार, बाहरी यात्राएं राजकीय समारोह इत्यादि की हकीकते दर्ज की जाती थी।[1] दारोगा दस्तरी लिखने का कार्य क्लर्क करता था। महाराजा से कब-कौन मिलने आया, क्या किया, कितना नजर किया एक-एक बात का उल्लेख किया जाता था। महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय के समय में दस्तरी महकमा कायम हुआ और उसकी व्यवस्था के लिए दारोगा की नियुक्ति की जाने लगी जो उस महकमें का अधिकारी होता था।[2]

दस्तरी बही में मारवाड़ के राज-परिवार के शिष्टाचार, समारोह, विमोचन या उद्घाटन का उल्लेख किया गया है। इस समारोह, शिष्टाचार में कई सांस्कृतिक परिवर्तन दिखलाई पड़ते है। इस समय तक पुरानी व्यवस्थाएं बदल रही थी। नये शिष्टाचारों की स्वागत हो रहा था।[3] मारवाड़ के राजघराने में हमे जो सांस्कृतिक परिवर्तन दिखलाई पड़ता हैं वह निम्न प्रकार हैं-

अ. सामाजिक परिवर्तन- मारवाड़ के राजघराने में जो सामाजिक परिवर्तन दिखलाई पड़ते है वह निम्न हैं।

1. विजयदशमी पर किले में रामचन्द्रजी की सवारी- मारवाड़ के राजघराने में पहले विजयदशमी के अवसर पर किले में रामचन्द्रजी की सवारी निकाली जाती थी। इस सवारी में जनाना सरदार नहीं हुआ करते थे। लेकिन दारोगा दस्तरी बही में उल्लेख मिलता हैं कि पहले की तरह इस बार भी विजयदशमी पर किले में रामचन्द्रजी की सवारी निकाली गई। इस बार सवारी में जनाना सरदार के शामिल होने का भी वर्णन मिलता हैं इस सवारी यात्रा में राणी कुंवराणीजी भी साथ में थे। राणा कुंवराणीजी की सवारी यात्रा में पधारना सामाजिक परिवर्तन को दर्शाता है।[4]

2. महाराजा उम्मेद सिंह जी की बरसगांठ- महाराजा विजयसिंह व भीमसिंह के

समय में जन्मदिन 21 दिन पूर्व से ही मनाना प्रारंभ हो जाता था। सभी दरबारी नजर-निछरावल करते थे। महाराजा की जितनी आयु होती थी उतनी तोपें किले से दागी जाती थी। मिठाई बांटी जाती थी। सामूहिक भोजन होता था। परन्तु धीरे-धीरे इस परम्परा में परिवर्तन आता गया। दारोगा दस्तरी बही में उम्मेदसिंह जी की बरसगांठ का का उल्लेख है। इसमें विवरण है कि इस बार महाराजा की बरसगांठ पर स्कूलों में लड्डू नहीं बांटे गये, और न ही किले से तोपें दागी गई। हमेशा महारानी की तरफ से महाफिल होती थी। जो इस बार नहीं हुई और न हो सामूहिक भोजन हुआ। महाराजा की बरसगांठ में सामाजिक परिवर्तन ब्रिटिश प्रभाव के कारण दरबार के समारोह की भव्यता में कमी आई। दरबारी शिष्टाचार में परिवर्तन दिखलाई पड़ता है।[5]

3. सोजत के सेठ रूगनाथमल द्वारा बैंक इमारत का उद्घाटन- पहले महाराजा द्वारा सार्वजनिक समारोह में नहीं जाते थे और न ही राजकुमार व महाराजा जनता के समक्ष अपने आसन से खड़े होते थे। लेकिन धीरे-धीरे इसमें भी परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। दारोगा दस्तरी बही में उल्लेख हैं कि महाराजा सोजत के सेठ रूगनाथमल द्वारा स्थापित बैंक का उद्घाटन करने गये थे। इसके अतिरिक्त बही में अन्य उद्घाटन समारोह जैसे- ओसवाल की स्कुल में गोल्डन जुबली समारोह, कुचामण की हवेली में स्टॉक एक्सचेंज एसोसिएशन के उद्घाटन पर जाने का वर्णन मिलता है। दरबार में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा था। अब महाराजा व राजकुमार सामाजिक समारोह, उद्घाटन समारोह में जाने लगे थे। जनता के समक्ष खड़े होकर भाषण देने लगे थे। यह सामाजिक परिवर्तन को दर्शाता है।[6]

4. महाराजा श्री मोतीसिंह का नृसिंहगढ़ में देहान्त व श्री जी का मातमपुरसी में पधारना- दारोगा दस्तरी बही में महाप्रयाण संस्कार का वर्णन मिलता है। पहले दरबार में मातमपुरसी के समय किसी के भी आने पर न तो कोई खड़ा होता था और न ही कोई छोड़ने जाता था। मातमपुरसी के समय खड़े न होना दराबर की परम्परा थी लेकिन दारोगा दस्तरी बही में महाराजा मोतीसिंह जी के स्वर्गवास का वर्णन मिलता है। इस बही में उल्लेख हें कि 12वें दिन महाराजा उम्मेद सिंह जी मटिया रंग का साफा सफेद अचकन पहन तथा कड़ा हाथ में लेकर मोतीसिंह जी के बंगले में मातमपुरसी के लिए पधारे थे। उनके आने पर कोई भी सदस्य उनके सम्मान में खड़ा नहीं हुआ उन्हें मातमपुरसी की परम्परा का पालन किया था। परन्तु महाराजा ने उसे अपने आत्मसम्मान की विरुद्ध समझा। मातमपुरसी में महाराजा के सम्मान में खड़ा न होना बेअदबी माना गया। यह राज परिवार की नयी परम्परा थी। उन्हें उसे आत्मसम्मान से जोड़ नयी परम्परा को उदित किया यह परिवर्तन भी एक सामाजिक परिवर्तन था।[7]

5. महाराजा उम्मेदसिंह जी के स्वर्गवास पर अन्तिम संस्कार का विवरण-

दारोगा दस्तरी बही में महाराजा उम्मेद सिंह जी के अन्तिम संस्कार का वर्णन है। पहले महाराजा के अन्तिम संस्कार में उत्तराधिकारी शवयात्रा में शामिल नहीं होते थे। महाराजा के समस्त संस्कार व्यास-पुरोहित द्वारा ही किये जाते थे। शव को बैकुण्ठी में रखा जाता था। लेकिन दारोगा दस्तरी बही में वर्णित वर्णन के आधार पर इस में परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। महाराजा उम्मेद सिहं जी के अन्तिम संस्कार में महाराजा हनंवतसिंह जी स्वयं शवयात्रा में गये थे तथा समस्त उत्तर क्रिया उनके द्वारा ही सम्पन्न की गई। महाराजा के शव को बैकुण्ठी में नहीं रखा गया शव को पेटी में रखना ब्रिटिश प्रभाव था। इस प्रकार उत्तराधिकारी का शवयात्रा में जाना शव का पेटी में रखना सामाजिक परिवर्तन था। दरबार में ब्रिटिश सांस्कृतिक का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ रहा था।[8]

राजनैतिक परिवर्तन - दारोगा दस्तरी बही के आधार पर मारवाड़ के राजघराने में कई परिवर्तन दिखलाई देते थे। मारवाड़ में सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ राजनैतिक परिवर्तन भी दिखलाई पड़ता है।

1. अक्षय तृतीया का विवरण- दारोगा दस्तरी बही में अक्षय तृतीया के समारोह का विवरण मिलता है। पहले दरबार में समारोह में महाराजा को अमल की मनुहार का शिष्टाचार था। समारोह में महाराजा के साथ-साथ महाराजा के भाई, उमराव/सरदार को भी अमल की मनुहार की जाती थी। लेकिन धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन हो रहा था। बही में उल्लेख है कि अक्षय तृतीया के अवसर पर अमल की मनुहार महाराजा गुमानसिंह को की गई। अक्षय तृतीया पर अमल की मनुहार महाराजा व उनके भाई को ही की गई। उमराव/सरदार के महत्व को अपेक्षाकृत कम दिखलाता है। दरबार में उमराव व सरदार का महत्व कम होना राजनैतिक परिवर्तन को दर्शाता है।[9]

2. जयपुर के महाराजा सवाई सिंह जी का जोधपुर पधारना व बूंदी के महारावजी का जोधपुर आगमन-पहले दरबार में महाराजा व महारानी के किले में पधारने पर उनके सम्मान में तोपें भी सलामी दी जाती थी। परन्तु धीरे-धीरे इस परम्परा में भी परिवर्तन हो रहा था। बही में विवरण मिलता है कि जयपुर के महाराजा सवाई सिंह के जोधपुर पधारने पर उनके स्वागत में तोपें की सलामी नहीं दी गई।[10] वहीं बही में बूंदी के महारावजी का जोधपुर आगमन का वर्णन हैं बूंदी के महारावजी का जोधपुर आगमन पर उनके सम्मान में तोपों की सलामी दी गई थी। अत: महाराजा के सम्मान में तोपों की सलामी कही दी जाती थी तो कही नहीं दी जाती थी। महाराजा का तोपों से स्वागत करना बन्द हो गया था। यह भी राजनैतिक परिवर्तन को दर्शाता हैं।[11]

3. महाराजा के दरबार में बैठने की परम्परा में परिवर्तन-मारवाड़ के राजदरबार में महाराजा के पास बैठने की भी निश्चित परम्परा था। महाराजा के दाहिनी ओर उनके भाई व राव राजा बैठते थे। बही में वर्णन मिलता हैं कि महाराजा के दाहिनी ओर राज्य

अधिकारी व बायी ओर भाई व रावराजा बैठने लगे थे। राजदरबार में महाराजा के पास बैठने की परम्परा भी टूट रही थी। दरबार में सिरायत सरदारों की बैठने की परम्परा डावी-जीवणी मिसल अव्यवस्थित हो गई थी। दरबार में परम्परा का परिवर्तन राजनैतिक परिवर्तन को दर्शाता है।[12]

4. धांगध्रा में विवाह में महाराजा व मुत्साधियों का पधारना- पहले दरबार के सभी कार्य के दारोगा नियुक्त किये जाते थे। दफ्तर का दारोगा जी महाराजा के कार्यालय का दारोगा था। दस्तरी दारोगा आदि लेकिन ब्रिटिश प्रभाव के कारण दरबार के कागजात, रिपोर्ट आदि के लिए अंग्रेजी महकमा बना दिया गया था। दारोगा दस्तरी बही में हमें इस महकमे के अफसर का समारोह में पधारने का विवरण मिलता है। विवाह के अवसर पर महाराजा के साथ-साथ महकमा खास का क्लर्क सोवनलाल, महकमा दस्तरी क्लर्क रीखबराज के पधारने का वर्णन है। यह भी राजनैतिक परिवर्तन को दर्शाता है।[13]

सांस्कृतिक परिवर्तन-दारोगा दस्तरी बही में सबसे अधिक परिवर्तन सांस्कञ्तिक परिवर्तन दिखलाई पड़ता है।

1. आवागमन के साधनों में परिवर्तन- पहले राजा महाराजा व महारानी एक साथ स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए पालकी का प्रयोग करते थे। वह पालकी में बैठकर ही जाते थे। लेकिन धीरे-धीरे इस प्रथा में भी परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। दारोगा दस्तरी बही में वर्णन मिलाता हैं कि महाराजा जसवन्त सिंह जी मोटर री सवारी (जाबता री मोटर-पर्दा वाली मोटर) में बैठकर उम्मेद भवन में राखे थे। समें महाराजा द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जानने के लिए पर्दा वाली मोटर (जाबता रही मोटर) हवाई जहाज, रेल इत्यादि यातायत के साधन का उपयोग करने लगे थे। उनके द्वारा आधुनिक यातायत के साधनों का उपयोग सांस्कञ्तिक परिवर्तन दर्शाता है।[14]

2. महाराजा कुमार श्री हरिसिंह जी का जन्मोत्सव व महाफिल- पहले महाराजा के जन्मोत्सव में राजदरबार के लोग ही सम्मिलित होते थे। लेकिन दारोगा दस्तरी बही में हरिसिंह के जन्मोत्सव पर मुतसदी खवास, पासवास, महकमा के अफसर, मीलट्री के अफसर आदि को भी बुलाया गया था। यह सांस्कृतिक समन्वय को द र्शाता है।[15]

3. राजघराने के सदस्यों का उदयपुर आगमन- पहले दरबार में केवल मारवाड़ी रसोई ही थी राजाओं का खाना इसी रसोई में बनाता था तथा महाराजा के बच्चों की देखभाल डावड़ियों द्वारा की जाती थी। लेकिन धीरे-धीरे इस में भी परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। बही में राजघराने के सदस्यों का उदयपुर जाने का वर्णन हैं। इसमें राजघराने के सदस्यों के साथ डावड़ियां मीस मेसन तथा अंग्रेजी रसोई के दो आदमी जोहन व जोकी के भी जाने का वर्णन है। यह सांस्कृतिक परिवर्तन हैं। अब महाराजा के बच्चों की

देखभाल नैनी (मीस मेसन) द्वारा की जाने लगी। महाराजा का खाना अंग्रेजी रसोई में बनने लगा। यह सांस्कृतिक परिवर्तन बतलाता है।[16]

4. महाराजकुमार हरिसिंह की बरसगांठ- महाराजा के जन्मदिवस का वर्णन बही में मिलता हैं महाराजा हरिसिंह की बरसगांठ पर महफिल का आयोजन किया गया था। इस महफिल में खान-पान का उल्लेख मिलता है। इसमें वर्णन है कि उत्सव में महाराजा हनवंतसिंह द्वारा इलायची, सुपारी, सिगरेट, इत्र-पान, नीमलेट (लेमलेड) की मनुहार का वर्णन है। खान-पान में परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन को दर्शाता है।[17]

5. श्री जी का मूंडवा रावटी में ब्याह व मूंडवा शिकार में पधारना- महाराजा के पहनावों में भी परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। बही में रावटी में ब्याह में महाराजा के जाने का वर्णन हैं। इसमें महाराजा ने फुलगर (रूई से भरा मगजी लगा सर्दी में पहनने का कोट) का वर्णन है। महाराजा द्वारा लाल रेशमी फुलगर पहना भी सांस्कृतिक परिवर्तन को दर्शाता है।[18]

6. भाटी मोहनसिंहजी के पुत्री के जन्म पर महारानी जी का उनके निवास पर जाना-पहले महारानी के शिशु भी देखभाल डावड़ियों द्वारा तथा दरबारी डावड़ियों द्वारा की जाती थी। लेकिन ब्रिटिश प्रभाव के कारण इसमें परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। बही में उल्लेख है कि मोहनसिंह जी के पुत्री के जन्म पर महारानी उनके निवास पर गयी थी। वहां डाकटरणियां (लेडी डॉक्टर) नरसां (नर्सेज) भी थी। अब महारानी व उनकी शिशु की देखभाल नर्स व डॉक्टर द्वारा की जाने लगी, यह सांस्कृतिक परिवर्तन को दर्शाता है।[19]

भाषा के आधार पर परिवर्तन- दारोगा दस्तरी बही में भाषायी परिवर्तन भी दिखलाई पड़ता है। दारोगा दस्तरी बही में उर्दू, मारवाड़ी, अंग्रेजी शब्दों का उपयोग किया गया है। भाषा के आधार पर परिवर्तन ब्रिटिश प्रभाव के कारण हैं।

1. उर्दू शब्दों का उपयोग- दारोगा दस्तरी बही में मारवाड़ी शब्दों के साथ-साथ उर्दू के शब्दों का उपयोग किया गया है। दारोगा दस्तरी बही में उर्दू के शब्दों दुसमणा री तबीयत नासाज हुई, महाराजा मोतीसिंह जी के मातमपुरसी में पधारों हजूरी में, नीजर कुदरूओं, पेसवाई किफायत, सिलका, मेहजबी, सुसबखती री बाता, सबब, इनायत इत्यादि का प्रयोग दारोगा दस्तरी बही में किया गया है।[20]

2. अंग्रेजी शब्दों का उपयोग- दारोगा दस्तरी बही में मारवाड़ी व अंग्रेजी शब्दों का उपयोग भी किया हैं जैसे- उम्मेद भवन को छितर रो बंगलों, सलून, मिलट्री रा ओफीसरा, डीराईवर, फरूट (फ्रूट) केम्पोडर, नरसा (नर्स) डाकटराणियां (डॉक्टर) मीवजम (म्युजियम) डीवटी (ड्यूटी) अेटहोम, लेंच (लंच) मीम (मेम) आदि शब्दों

का प्रयोग दारोगा दस्तरी बही में किया गया है। दारोगा दस्तरी बही में अंग्रेजी शब्दों का मारवाड़ी शब्दों की तरह लिखा गया है। यह मारवाड़ी शब्दों में अंग्रेजी शब्दों के प्रभाव को इंगित करता हैं इस प्रकार दारोगा दस्तरी बही में अंग्रेजी व मारवाड़ी शब्दों का समन्वय दिखलाई पड़ता है। यह भाषायी परिवर्तन को इंगित करता है।[21]

संदर्भ

1. *डॉ. महेन्द्रसिंह नगर, दारोगा दस्तरी बही, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, जोधपुर, पृ. 7*
2. *वही पृ. 44-45*
3. *वहीं पृ. 14*
4. *वही पृ. 50-54*
5. *वही पृ. 125-129*
6. *वही पृ. 143-144*
7. *वही पृ. 35-37*
8. *वही पृ. 269-278*
9. *वही पृ. 238-243*
10. *वही पृ. 10*
11. *वही पृ. 129*
12. *वही पृ. 35-37*
13. *वही पृ. 157-184*
14. *वही पृ. 42-44*
15. *वही पृ. 29-31*
16. *वही पृ. 57-61*
17. *वही पृ. 29-31*
18. *वही पृ. 157-159*
19. *वही पृ. 134-136*
20. *वही पृ. 51*
21. *वही पृ. 51*

पश्चिमी राजस्थान की लोक - कहावतों में निहित परम्परागत मौसम विज्ञान

डा. सुरेश कुमार

राजस्थान का अरावली श्रेणियों के पश्चिम का क्षेत्र एक शुष्क एवं अर्द्धशुष्क मरूस्थलीय प्रदेश है। जहां का विस्तृत भू-भाग बालू के स्तूपों से ढका है, तो कहीं बंजर चट्टानों तथा अपरदित शैलों की उपस्थिति है। पश्चिमी राजस्थान का क्षेत्र न केवल राज्य का अपितु भारत का विशिष्ट भौगोलिक प्रदेश है। इस थार मरुस्थल के नाम से भी जाना जाता है। पारिस्थितिकीय दृष्टि से इसकी जलवायु मरु प्रदेशीय है।[1] इस क्षेत्र में जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर के सम्पूर्ण जिले तथा जोधपुर व चुरू जिले के उतरी भाग आते है। इस थार मरुस्थल को स्थानीय भाषा में 'थली' के नाम से भी जाना जाता है।

विश्व के अन्य मरुस्थलों की तरह थार का मरुस्थल निर्जन व कष्टप्रद नहीं है। यह हमारी संस्कृति का रक्षक भी है। इस मरुस्थल ने कई आक्रमणकारियों की घुसपैठ को रोकने का कार्य किया तथा राजस्थान की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक धरोहर को संजोये रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।[2] इस क्षेत्र मे स्थान-स्थान पर रेत के टीले पाये जाते है, जो घटते-बढते रहते है। गर्मी मे धूल भरी आधियाँ चलती है तथा तापमान 45^0 से 48^0 तक पहुँच जाता है। सर्दीयों मे तापमान शुन्य तक गिर जाता है। इस क्षेत्र में बारिश का औसत 12 से.मी से 30 से.मी तक है। यह क्षेत्र अक्सर सूखे का शिकार होता रहता है।[3]

अकाल किसी भी क्षेत्र के लिए एक महान प्राकृतिक प्रकोप माना जाता है। राजपूताना का अधिकाशं भाग विशेषत: पश्चिम का थार मरुस्थलीय प्रदेश प्राचीन काल से ही अकाल का केन्द्र रहा है। पश्चिमी राजस्थान (थार का मरुस्थलीय प्रदेश) की विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण यहाँ अकाल एक सामान्य बात रही। इस सन्दर्भ में प्रचलित एक लोक-कहावत - इस प्रकार है।

पग पूंगल, सिर मेड़ता, उदरज बीकानेर
भूलो चुको जोधपुर, ठावो जैसलमेर

अकाल कहता है कि मेरे पैर पूंगल देश में, सिर मेड़ता में और उदर (पेट) बीकानेर मे स्थायी रूप से है, कभी-कभी भुला भटका जोधपुर भी पहुँच जाता हुँ परन्तु जैसेलमेर में स्थायी रूप से निवास करता हूं।[4]

पश्चिमी राजस्थान की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि अत्यंत समृद्ध है। इसका मौखिक साहित्य भी विविधता से परिपूर्ण एवं समृद्धशाली है। लोक साहित्य को दो भागों मे बांटा गया है। दृश्य साहित्य और श्रव्य साहित्य[5] विनिफ्रेड ब्राइस के अनुसार यह विभाजन पूर्ण नहीं बल्कि सांकेतिक मात्र है। श्रव्य साहित्य को दो भागों में बांटा जा सकता है - गद्य और पद्य। गद्य विद्या में कथाएं, वंशावली, वर्णन, मुहावरे और कहावतें शामिल है। मौखिक साहित्य का दूसरा हिस्सा है पद्य (काव्य) इसमे धर्मग्रन्थों और महाकाव्यों से ली गई रचनाएँ दुहराई जाती है। लोक-कहावतें जन मानस में सुरक्षित रहती है और पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती है।[6]

मौखिक साहित्य उस क्षेत्र के स्थानीय निवासियों के सुख-दुख आशा निराशा, उत्साह और हताशा का गंभीर और संवेदनशील चित्रण है। लोक-कहावतों में सदियों के अनुभव का सार-सन्निहित है। राजस्थानी कहावतों की विषय-वस्तु राजस्थान के भूगोल और लोककथाओं की तरह समृद्ध और विविधापूर्ण है। इतिहास, शासक वंश तथा ऐतिहासिक पात्रों से सम्बन्धित लोक-कहावतों की कमी नहीं है। कस्बो, शहरों, गांवों, किलो, पहाडियों नदी-नालों से सम्बन्धित कई कहावतें प्रचलन में है। ये लोक -कहावतें विभिन्न समुदायों की चारित्रिक विशेषताओं, लोगों के गुण-अवगुण तथा सामाजिक आचरण के ताने-बाने को वर्णन करती है। इस प्रकार सामाजिक जीवन का एक खाका भी प्रस्तुत करती है।[7]

अनंत काल से प्रकृति के साथ अपनी जद्दोजहद जारी रखते हुए पश्चिमी राजस्थान के लोगों ने वर्षा और मौसम विज्ञान के विषय में लोक-कहावतों (या कहें भविष्यवाणियों) का तो विश्वकोष विकसित कर लिया है। ये लोक-कहावतें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचरित होती रहती थी और आज भी मौखिक साहित्य के रूप में स्थानीय निवासियों की जुबान पर है। ये लोक-कहावतें सूरज, चांद, तारे, हवा, आकाश, बादल, इन्द्रधनुष, बिजली, तूफान, अन्य प्राकृतिक कारणों के बारिश पर प्रभावों का लेखा जोखा देती है। लोक-कहावतों का यह समृद्ध खजाना मौसम विज्ञान के विषय में अति महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है।[8]

पश्चिमी राजस्थान की लोक-कहावतों में निहित परम्परागत मौसम विज्ञान की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है, जो कि पश्चिमी राजस्थान मे होने वाली वर्षा के संदर्भ में लोक-कहावतों के माध्यम से की जाने वाली भविष्यवाणीयां है। जो वर्तमान समय मे भी सटिक एंव सार्थक है।

अकाल एवं सुकाल की संभावनाओं को लोक- कहावतों में पिरोने का प्रयास शताब्दियों से किया जाता रहा है। पश्चिमी राजस्थान के स्थानीय निवासियों के लिए अकाल-सुकाल अति महत्वपूर्ण विषय है क्योंकि यह विषय वहां के निवासियों के

सामाजिक एवं आर्थिक जीवन को प्रभावित करता था अत: अकाल एवं सुकाल की संभावनाओं से सम्बन्धित मौखिक साहित्य लोक-कहावतें के रूप में पीढी-दर-पीढी विकसित होता गया। यह लोक-कहावतें दोहों के रूप में भी आज भी स्थानीय लोगों की जुबान पर चढ़ी हुई है। प्राचीन समय ही हवा, बादल, चांद तारों की स्थिति के आधार पर वर्षा होना या न होना अर्थात अकाल-सुकाल की संभावनाओं का पता लगाया जाता था।

लोक-कहावतों में निहित अकाल से सम्बन्धित परम्परागत मौसम विज्ञान (अकाल से सम्बन्धित भविष्यवाणियाँ)

दिन में तपे तावड़ा, राते ठण्डा बाव।
भियो कहे रे भडली, ऐ कालो रा सभाव।।

भावार्थ :- दिन में तेज सुरज से भयंकर गर्मी पड़े और रात्रिकालीन ठण्डी हवा बहे, तो यह अकाल पड़ने का संकेत है।[9]

यह सूर्य की गर्मी एवं हवा की आद्रर्ता के माध्यम से की गई भविष्यवाणी है। जो कि परम्परागत मौसम विज्ञान है।

मिरगा वाव न बाजियो, रोहिण तपी न जेठ।
कै न बांधे झूपड़ो, बैठो बडलो हेठ।।

भावार्थ :- ज्येष्ठ महीने में मिरग नक्षत्र के दिन अगर हवा न चले और रोहिणी नक्षत्र के दिन तेज धूप न हो तो झोंपड़े आदि बनाने की आवश्यकता नहीं होती, पेड़ों के नीचे बैठकर समय निकाला जा सकता है, क्योंकि उस वर्ष वर्षा नहीं होगी अकाल पड़ेगा।[10]

यह हवा की गति एवं सूर्य की गर्मी के माध्यम से की गई मौसम सम्बन्धित (वर्षा) भविष्यवाणी है।

परभात गेह डबरा, साजे सीला नाव।
भिमो कहे ए जनमानुस, काल तणा सुभाव।।

भावार्थ :- यदि बादल सुबह-सुबह उड़े तथा शाम को ठण्डी हवा चले तो मौसम अकाल का सूचक है।[11]

बादलों की स्थिति एवं हवा की आर्द्रता के आधार पर की गई भविष्यवाणी है।

माघ मंगल जेठ रवि, भादरवे सनि होय।
कवि कहे है जनमानुष, बिरला जीवे कोय।।

भावार्थ:- यदि माघ मास में पाँच मंगलवार हो, जेठ मास मे पाँच रविवार एवं भादवे माह में पाँच शनिवार, तो अकाल पड़ेगा, बहुत कम लोग ही बच पायेंगे।[12]

चाँद छोड़े हिरणी, तो लोग छोडे परणी।

भावार्थ – अक्षय तृतीया का यदि चांद मृदशिरा से पूर्व अस्त हो जाय तो भीषण अकाल पड़ेगा, जिससे लोगो को अपनी पत्नियों का घर पर छोड़ कर निर्वाह के लिए अन्यत्र जाना पड़ता था।[13]

चाँद की गति के आधार पर की गई वर्षा सम्बन्धित भविष्यवाणी है।

दीपमाल रा दीवा बुझावै, होली झल उतर दिस जावै।
आसाढी पून्यू दखणी बाव तो अभ बिकेगा मुंगे भाव।।

भावार्थ :– यदि दीपावली में दीपक हवा से बुझ जाये, होली का ज्वाला उत्तर दिशा की तरफ जाये तथा आसाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को दक्षिण की हवा चले तो अन्न महंगे भाव मे बिकेगा अर्थात अकाल पड़ेगा।[14]

नीबोली सुखे नीम पर, पड़ न नीचे आय।
अन्न न नीपजे एक कण, काल पड़ेगो आय।।

भावार्थ :– यदि नीम की नींबोली वृक्ष पर ही कच्ची सूख जाये और पक कर नीचे न गिरे, उस वर्ष अन्न का एक दाना भी नहीं होगा तो अकाल पड़ेगा।[15]

गाजै बाजै करे डंकाण, वाय लंकाऊ दुध उफाण।
रंग रूप जै घणा जतावै, तै यू गवालो काल बतावै।।

भावार्थ :– आकाश में बादलों की गर्जना हो, बिजलियां चमके, बादलों के कई रंग रूप हो, दक्षिण दिशा की वायु चले तो अकाल पड़ना निश्चित है।[16]

जैठ मा चाले परवाई, तै दिन सावण धूड़ उडाई।

भावार्थ :– यदि ज्येष्ठ माह में पूर्व दिशा की हवा बहे तो सावन पूरा सूखा जायेगा बारिश नहीं होगी अर्थात अकाल पड़ेगा।[17]

सावण पहली पुनम, नी बादल नी बीज।
हल काड ईंधण करो, उभा चाबो बीज।।

भावार्थ :– सावन माह की पहली पूनम तिथि को बादल और बिजली नहीं होती है जो लोग कहते हैं कि हवा को काटकर ईंधन कर दो और बीजों को खा लो। बोने की काई आवश्यकता नहीं है क्योंकि अकाल निश्चित रूप से पड़ना तय है।[18]

लोक–कहावतों में निहित सुकाल से सम्बन्धित परम्परागत मौसम विज्ञान (सुकाल से सम्बन्धित भविष्यवाणी)

सावण बाजै सूरियो, भादरवे परवाई।
आसोजा में पिसवा चाले, भर–भर गाड़ा लाई।।

भावार्थ :– श्रावण महीने में पश्चिमी की हवा तेजी से चले, भाद्रपद माह में पूर्व की तेज हवा चले, आसोज महीने में पश्चिम की हवा चलने पर अनाज बहुत अधिक

होता है। अत: सुकाल होगा।[19]

परभो पपीहिया बोले, सिंजा बोले मोर।
इन्दर बरसण आवियो, नदिया तोड धोर।।

भावार्थ :– सुबह के समय पपीहा बोले, शाम को मोर नाचे तो इतनी वर्षा होगी की नदियों टिलों को तोड़ देगी अर्थात सुकाल की संभावना है।[20]

चिडियाँ झीले रेत मा, कांसी करै काठ।
ऐहरू ठांसे चढे, दही गले मार।।

भावार्थ :– जब चिड़िया रेत में नहाए, कांसी के बर्तन के जंग लगे, सांप पेड़ों पर चढ़े व दही पर मक्खन गलने लगे, तो बारिश अच्छी होती है।[21]

उगते रेसा रे सलो, बढते री है भोज।
भियो कहे रे भडली, इन्दर बरसे रोज।।

भावार्थ :– सूर्य के उगने समय बादल व सूर्य अस्त होते समय बादलो मे ललाई छा जाती है तो अच्छी वर्षा होने के संकेत है।[22]

तीतर पंखी छीतरी, विधवा झीणी रेख।
इन्दर बरसण आवियो, इमे मीन न मेख।।

भावार्थ :– शाम के समय छोटे–मोटे छितराये बादल हो तो इन्द्र देवता धरती पर बारिश करने आ जाते हैं।[23]

आसाढ नम आवसी उण दिन बादल भींज।
धोरे राखे बदलिया, खोले राखे बीज।।

भावार्थ :– आषाढ माह की नवम् तिथि को अगर बादल हो तो और बिजली चमके तो बारिश होगी, बैलों और बीजों को तैयार रखना चाहिये।[24]

आषाढे धुर आठमी, चंद उगतो जोय।
कालो वे तो करवरो, धोलो वे तो सुगाल।
जे चंदो निरमल होवे तो पडे उचित्यो काल।।

भावार्थ :– आषाढ़ माह के कृष्ण पक्ष के आठवें दिन यदि उदय हो तो चांद दिखे और काले बादलों में हो तो वर्षा सामान्य रहेगी और यदि श्वेत बादलों मे हो तो वर्षा काफी अच्छी होगी। आसमान बादल विहीन हो तो भयंकर अकाल होगा।[25]

पश्चिमी राजस्थान के लोक–कहावतों का स्वरूप काफी प्राचीन है जिस समय मौसम को जानने के लिए किसी उपकरण का आविष्कार नहीं हुआ था, उस समय भी लोग सूर्य, चांद, तारे, हवा, आकाश, बादल, इन्द्रधनुष, बिजली, तूफान एवं अन्य प्राकृतिक कारकों से वर्षा पर प्रभावों की सटिक भविष्यवाणी कर लेते थे। पश्चिमी

राजस्थान के लोगों ने प्रकृति एवं जलवायु का सूक्ष्म अध्ययन कर वर्षा की सम्भावनाएं व्यक्त करते थे। इन भविष्यवाणी को मध्यकालीन पश्चिमी राजस्थान के निवासियों ने परम्परागत मौसम विज्ञान के रूप में लोक-कहावतों के स्वरूप में विकसित किया। जो पश्चिमी राजस्थान के मौखिक साहित्य के रूप में पीढी दर पीढी यहाँ के निवासियों ने अपनी जुबान पर संजोये रखा है जो कि आज भी मौसम की सटीक जानकारी देता है।

इन लोक-कहावतों की लिपिबद्ध करना अतिआवश्यक है। क्योंकि शोधार्थियों के लिए इसमें ऐतिहासिक, मौसम विज्ञान, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक जीवन की जानकारी, ऊंट व घोड़ों की नस्लों, विभिन्न स्थानों की जानकारी, टोने-टोटको, दान भाग्य से सम्बन्धित जानकारी भरी पड़ी है। जिसका उपयोग शोधार्थी अपने शोध विषय पर कर नये तथ्यों को उजागर कर सकता है। अत: पश्चिमी राजस्थान की लोक-कहावतों में निहित विभिन्न विषयों का अनुसंधान एवं लिपिबद्धता ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तथ्यात्मक सामग्री सिद्ध हो सकती है, जो शोधार्थीयों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

सन्दर्भ

1. *डा. एच.एम. सक्सेना - राजस्थान का भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 10*
2. *डा.गोपीनाथ शर्मा - राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर पृ. 09*
3. *बी.एल.पनगडिया - राजस्थान का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, पृ. 04*
4. *यह लोक -कहावत इस प्रकार है -*
   पग पूंगल, धड कोटडे, उदरज बीकानेर।
   भूलो-चुको जोधपुर, ढावो जैसलमेर।।
5. *डी.आर आहुआ - राजस्थान : लोक संस्कृति और साहित्य, पृ. 93*
6. *ब्राइस विनिफ्रेड - वीमेंस फोक सोग्स आफ राजपुताना, दिल्ली, पृ. 13*
7. *डी.आर. आहुजा - राजस्थान : लोक संस्कृति और साहित्य, पृ. 95*
8. *कन्हैयालाल सहल - राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली 1958, पृ. 16*
9. *मौखिक वात - श्री भोपा भीयाराम गुर्जर, गांव-बायतू, जिला-बाड़मेर*
10. *मौखिक वात - वही, नरोतमदास स्वामी - राजस्थानी : भाषा, साहित्य इतिहास कला की शोध सम्बन्धी निबन्ध माला, भाग - 2 राजस्थानी साहित्य परिषद कलकता, पृ. 14 से पुष्टि*
11. *मौखिक वात - श्री भीमाराम देवासी, गाँव - खट्टू, जिला - बाड़मेर*

12. *मोखिक वात - वही; नरोतमदास स्वामी : राजस्थानी भाषा, साहित्य, इतिहास, कला की शोध सम्बन्धी निबन्धमाला, भाग - 2, राज. साहित्य परिषद कलकता से पुष्टि*
13. *मौखिक वात - वही राजस्थानी भाषा, साहित्य, इतिहास, कला की शोध सम्बन्धी निबन्धमाला, भाग - 2, राज. साहित्य परिषद कलकता, पृ. 29 से पुष्टि*
14. *मौखिक वात :- श्री भोपा भीयाराम गुर्जर, गाँव - बायतु, जिला - बाड़मेर, राजस्थानी भाषा, साहित्य, इतिहास, कला की शोध सम्बन्धी निबन्धमाला, भाग-2, राज. साहित्य परिषद कलकता, से पृष्टि*
15. *मौखिक वात - श्री अमराराम ढाढी, गाँव - बायतु, जिला बाड़मेर*
16. *मौखिक वात - वही*
17. *मौखिक वात - श्री भोपाराम ढाढी, गाँव दुधवा, जिला बाड़मेर, राजस्थानी भाषा, साहित्य, इतिहास, कला की शोध सम्बन्धि निबन्धमाला, भाग - 2, राज. साहित्य परिषद कलकता से पुष्टि*
18. *मौखिक वात-वही, राजस्थानी भाषा, साहित्य, इतिहास, कला की शोध सम्बन्धी निबन्धमाला, भाग - 2, राज. साहित्य परिषद कलकत्ता, से पुष्टि*
19. *मौखिक वात - श्री कुंभाराम वगताणी मेघवंशी, गाँव बायतू भीमजी जिला बाड़मेर, राजस्थानी भाषा, साहित्य, इतिहास, कला की शोध संबंधी निबन्धमाला, भाग - 2, राज. साहित्य परिषद कलकता, से पुष्टि*
20. *मौखिक वात - श्री भोपाराम ढाढी, गाँव खट्टू, जिला बाड़मेर*
21. *मौखिक वात - श्री भीमाराम देवासी, गाँव खट्टू, जिला बाड़मेर*
22. *मौखिक वात - श्री दल्लाराम रेबारी, गाँव खट्टू, जिला बाड़मेर*
23. *मौखिक वात - श्री भोपाराम ढाढी, गाँव खट्टू, जिला बाड़मेर, लोक - कहावतों के माध्यमों से मौसम विज्ञान के जानकार ढाढी समुदाय के*
24. *मौखिक वात - वही*
25. *मौखिक वात - वही*
    प्रस्तुत लोक - कहावतों, ढाढी, रबारी, मेघवाल, जाट समुदायों के विभिन्न व्यक्तियों से संवाद करके मौखिक वार्ता को लिपिबद्ध किया गया है।

मेड़ता की शाही जामा मस्जिद का स्थापत्य : शिलालेखो के विशेष संदर्भ में

संजय सैन

प्रस्तुत शोध पत्र मेडता की शाही जामा मस्जिद के मेरे द्वारा किए गए भौतिक सर्वेक्षण पर आधारित है। राजस्थान के मध्य में स्थित मेड़ता शहर मध्यकाल में मेड़तिया राठौड़ों के अधीन रहा जिसे अकबर ने जयमल्ल से विजित कर जोधपुर के महाराजा सूरसिंह को प्रदान कर दिया था। यह शहर अरावली पर्वत के पश्चिम में स्थित है। यहां पर राव दूदा द्वारा बनवाया गया दुर्ग जिसे राव दूदागढ के नाम से जाना जाता है। यहां स्थित मालकोट दुर्ग का निर्माण राव मालदेव ने 1537 में करवाया था। राव मालदेव ने जब मेड़ता पर अधिकार किया तो यहां स्थित मेड़तिया राठौड़ों व उनसे पूर्व के सभी राज प्रसादों, मंदिरों व अन्य स्थापत्य को ध्वस्त कर दिया और उनकी सामग्री पर शहर के दक्षिणी दिशा में एक नया नगर बसाया उसे नया नगर नाम दिया और ध्वसाशेषों से ही मालकोट दुर्ग का निर्माण करवाया था। इसलिये आज मेड़ता में जो भी स्थापत्य दिखाई देते है वे 500 वर्ष तथा मालदेव के पश्चात के ही है। मेड़ता नगर जोधपुर से 120 किलोमीटर व अजमेर से 90 किलोमीटर राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 89 पर स्थित है। यहां पर स्थापत्य की कई शैलियों में बने अलग अलग उदाहरण देखने को मिलते है। उन्हीं में से एक यहां पर स्थित मध्यकाल में जहांगीर द्वारा प्रारम्भ की गई तथा औरंगजेब के द्वारा निर्मित शाही जामा मस्जिद है। जो लाल बलुआ पत्थर से निर्मित है। मस्जिद का स्थापत्य शुद्ध इस्लामिक शैली का है। मेड़ता नगर एक ऊंची भूमि पर बसा हुआ है। इसलिये देखने में वह रमणीक मालूम होता है। औरंगजेब बादशाह ने यह मजिस्द बनवाई थी। वह मस्जिद यहां के अन्य सभी मंदिरों से ऊंची है। बादशाह औरगजेब ने यहां पर मस्जिद बनवाई थी, जिसमें फारसी और हिन्दुस्तानी में लिखवा कर पत्थर लगवाये है और उनके द्वारा हिदायत दी गयी है कि कोई भी मस्जिद में किसी प्रकार का अत्याचार न करें।

राजस्थान के इतिहास को जानने के लिये शिलालेखों का विशेष महत्व है इन शिलालेखों से तत्कालीन समय की जानकारी, राजा की तिथि, सांस्कृतिक इतिहास आदि की जानकारी प्राप्त होती है। ये शिलालेख संस्कृत राजस्थानी व हिन्दी भाषाओं के अतिरिक्त फारसी भाषा में भी मिलते हैं। जो कि तालाबों के घाटों, दरगाह, मस्जिद, कब्रो, महलो, धर्मशालाओं, बावड़ियों में पत्थर में उत्कीर्ण किया गया है। इन्हीं में से मेड़ता के शाही जामा मस्जिद के लगे दो लेख हैं जो कि फारसी व स्थानीय भाषा में उत्कीर्ण है। इन लेखो का ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्व है। मेड़ता की शाही जामा मस्जिद में भी दो शिलालेख लिखे हुए हैं जो कि फारसी भाषा में उत्कीर्ण है। इन लेखों में अन्दर के शिलालेख से मेड़ता की मस्जिद के निर्माण की जानकारी व बाहरी लेख से मस्जिद के जीर्णोद्धार की जानकारी प्राप्त होती है उसी के साथ तात्कालीन समय की स्थिति व राजनीति का भी पता चलता है। प्रथम लेख मस्जिद के घुसते ही बरामदे के बाहर मुख्य दीवार पर उत्कीर्ण है तथा दूसरा लेख मस्जिद के अंदर उत्कीर्ण किया गया है।

प्रथम लेख (1665 ईस्वी)

इस मस्जिद को हाजी मुहम्मद सुल्तान, पुत्र पायन्दा मुहम्मद बुखारी ने बनवाई। बुखारी जोधपुर सरकार का मुतावल्ली तथा मुहत्सिब था। इसमें खोजा शाह अली और उस्ताद नूर मुहम्मद शिल्पी का नाम दर्ज है। इस लेख को मुहम्मद दीया ने लिखा था। यह फारसी भाषा में लिखित है।

द्वितीय लेख (1807-08 ईस्वी)

उक्त मस्जिद के दालान में घुसते हुए यह लेख मिलता है। जिसमें दर्ज है कि यह मस्जिद औरंगजेब द्वारा बनवाई गयी थी। बंद पड़ी रहने से इसकी हालत खराब हो रही थी, अतएव मारवाड़ के राजा धौकलसिंह ने इसकी मरम्मत करवाई और यह आदेश दिया कि भविष्य में कोई राजा इसमें हस्तक्षेप न करे और इसकी दुकानों के भाड़े का जो मस्जिद के लिये हैं। दुरुपयोग न करें। यहां धौकलसिंह के रहने का भी संकेत इस लेख में मिलता है। यह भी फारसी भाषा में लिखित है। औरंगजेब बादशाह ने यह मस्जिद बनवाई थी। यह मस्जिद यहां के अन्य सभी मंदिरों से ऊंची है। बादशाह औरंगजेब ने यहां पर मस्जिद बनवाई थी, जिसमें फारसी और हिन्दुस्तानी में लिखवा कर पत्थर लगवाये है और उनके द्वारा हिदायत दी गयी है कि कोई भी मस्जिद में किसी प्रकार का अत्याचार न करें। मारवाड़ राज्य के लोभी धौकलसिंह ने पठानों की सहायता की थी और अमीर खां को प्रसन्न करने के लिये ही उसने इस प्रकार के पत्थर मस्जिद में लगवाये थे। धौकलसिंह को अपनी इस खुशामद का कोई फल न मिला था।

मस्जिद का वास्तु

मस्जिद मुख्य रूप से 10 फुट ऊंचे चबूतरे पर निर्मित है मस्जिद में तीन मुख्य द्वार बने हुए हैं जो पूर्व, उत्तर व दक्षिण दिशा की ओर खुलते हैं। मस्जिद का मुख्य द्वार पूर्व दिशा की और खुलता है जो कि खास लोगों के लिये, दक्षिणी भाग आम दरवाजा तथा उत्तरी द्वार काजी साहब व अन्य महत्वपूर्ण लोगों के लिये था। उत्तरी द्वार से काजी

की कचहरी जाने का भी रास्ता था। जहां गर्ल्स स्कूल चल रही है। इन चारों दरवाजों की ऊंचाई 6 फुट की थी। लेकिन फिलहाल इस मस्जिद के पूर्वी द्वार को बड़ा करने का कार्य चल रहा है। प्रवेश करने पर पहले लम्बा दालान आता है। जिसका फर्श लाल बलुआ पत्थर से निर्मित है। मस्जिद के चारों कोनों पर चार मीनार स्थित है जिनमें से पूर्वी दिशा वाली दो मीनारें चबूतरे से लगभग 100 फीट है। पश्चिमी दिशा वाली दो मीनारों की चबूतरे से ऊंचाई करीब 20 फीट है। मस्जिद की पश्चिमी दीवार के दोनों किनारों पर एक-एक छतरी बनी हुई है। मस्जिद के शिखर भाग में चारों ओर कंगूरों का निर्माण किया है। मस्जिद की छत में मुख्यतया चूने की बनी हुई है जो कि चूने, पत्थर मैथी, गुंघल, ईंटें, गोंद आदि को मिलाकर घरट में पीस-पीस कर चुके का मजबूत गोंद युक्त समिश्रण बनाया जाता था, जो लाल सुरकी चुना कहलाता था। इस छत की मोटाई सात फुट के करीब है जिसमें पत्थरों को तांबे की प्याउ से बांधा गया है। मस्जिद के स्तंभ चौकोर हैं जिन पर छोटे-छोटे मेहराबों के द्वार का बरामदा बना है। जुम्मे की नमाज अदा होने के कारण इसको जामा मस्जिद भी कहा जाता है। औरंगजेब द्वारा निर्मित दिल्ली की शाही जामा मस्जिद की यह मस्जिद प्रतिलिपि है।

जामा मस्जिद की नींव का पत्थर रखने के लिये दिल्ली से शेख ताज आये थे और फिर यही बस गये। काजी मुहम्मद जियाउदीन शाह जुम्मे की नमाज पढाकर इस मस्जिद का उद्घाटन किया। जियाउदीन के देहान्त के बाद नजर मोहम्मद साहब ने अपने पुत्र काजी गुलामन नब्बी को मेड़ता का काजी बनाया।

पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग द्वारा संरक्षित इस सुन्दर मस्जिद का निर्माण लाल पाषाण से किया गया हैं इसमें विशाल गुम्बज, मीनारें व फारसी भाषा में शिलालेख मौजूद है। जिसमें बादशाह व औरंगजब का नाम दर्ज है। यह मस्जिद दीर्घाकार व विशाल है तथा मुगल कालीन स्थापत्य कला का सुन्दर उदाहरण है।

सन्दर्भ

1. *मून्दीयाड़ री ख्यात, संपा. विक्रमसिंह भाटी, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर*
2. *द एनल्स एण्ड एक्टिविटीज ऑफ राजस्थान, कर्नल जेम्स टॉड*
3. *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, शर्मा, गोपीनाथ 2014*
4. *एन्यु. रिपोर्ट इण्डिका एन्टि. 1962-63*
5. *मारवाड़ के अभिलेख, मंगीलाल व्यास 'मयंक'*
6. *नागौर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक वैभव, मोहन लाल गुप्ता*
7. *अजमेर वृत के संरक्षित स्मार एवं प्रमुख कला पुरासामग्री, जफर उल्लाह खां*
8. *प्रोडिंग्स ऑफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस*
9. *व्यक्तिगत सर्वेक्षण द्वारा*

नागौर से प्राप्त फारसी अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन

फिरदोश बानो

राजस्थान की अभिलेखय सामग्री का उपयोग अभी तक प्रमुखतया राजनीतिक इतिहास लेखन में हुआ है। लेकिन सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से भी अभिलेखीय सामग्री का बड़ा महत्व है।

1. धार्मिक महत्व - अभिलेखों से प्राप्त जनजीवन विषयक सूचनाओं में बहुत सी धर्म संबंधी हैं। अभिलेखों के द्वारा स्थानीय जनता के धर्म एवं धार्मिक विश्वासों, मान्यताओं का अनुमान लगाया जा सकता हैं। इनमें देवालयों के निर्माण एवं जीर्णोद्धार विषयक सूचनाऐं मिलती है।

2. सामाजिक महत्व - अभिलेखों का महत्व सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करने में विशेषत: होता है। इनमें किसी प्रदेश विशेष में निवास करने वाली विभिन्न जातियों उसकी शाखाओं, प्रवरों, गोत्रों आदि की सूचना प्राप्त होती हैं। सती स्तम्भ अभिलेखों द्वारा स्थानीय सती प्रथा का उल्लेख मिलता है।

3. राजनैतिक इतिहास - अभिलेख में राजनैतिक जानकारी भी मिलती हैं। भारतीय अर्थशास्त्रीय परम्परा में राज्य के सप्तांगों का विवरण उपलब्ध है-(1) स्वामी (शासक), (2) अमात्य, (3) जनपद या राष्ट्र, (4) दुर्ग, (5) कोष, (6) दण्ड (सेना) एवं (7) मित्र। इसमें शासक को ही सर्वोच्च माना गया है। कौटिल्य ने राजा को ही संक्षिप्त राजय कहा हैं।

4. आर्थिक महत्व - अभिलेख आर्थिक व्यवस्था पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकाश देते हैं, जिससे हमें ग्राम्य जीवन की रूपरेखा, नगर नियोजन और नागरिक जीवन तथा वैभव का ज्ञान हो जाता है। इनमें उद्योग, वाणिज्य और व्यापार विषयक अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं मिलती है।

फारसी शिलालेख

फारसी भाषा के लेख राजस्थान में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं जिन्हें मस्जिदों, दरगाहों, कब्रों, राजप्रसादों, सरायों, बावलियों, तालाबों के घाटों एवं चबूतरों पर पत्थर में उत्कीर्ण कर लगवाया गया था। इनमें कुछ लेख ऐसे भी हैं जो फारसी एवं स्थानीय भाषा

में भी उपलब्ध हैं। इन लेखों का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व हैं। सर्वप्रथम इनके द्वारा हम तुर्की एवं मुगल विजयों एवं राजनीतिक प्रभाव क्षेत्रों का समुचित अध्ययन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें दी गई सूचनाएं राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर प्रभूत प्रकाश डालती हैं। ये लेख सांभर, नागौर, जालौर, सांचोर, जयपुर, अलवर, तिजारा, अजमेर, मेड़ता, टोंक, कोटा आदि क्षेत्रों में अधिक मिलते हैं क्योंकि इन स्थानों पर मुस्लिम सत्ता का प्रभाव या शासन रहा। यहां के हाकिमों ने समय-समय पर मस्जिदें, दरगाहें आदि यहां बनवाये और कभी-कभी इनके निर्माण में प्राचीन मन्दिरों की सामग्री का भी उपयोग किया। प्रसंगवश इन लेखों में शासन की इकाइयों-इक्ता, परगना, शिक, कस्बे आदि की सूचना प्राप्त होती है। इसी प्रकार मुक्ति, आमिल हवालदार, हाकिम, नाजिम, नायब हाकिम, रसालदार आदि पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं। जो शासन व्यवस्था की जानकारी के लिए उपयोगी है। कई लेखों में शिल्पियों, लेखकों, विद्वानों, सन्तों आदि के नाम का बोध होता है।

नागौर से प्राप्त फारसी शिलालेखों का विवरण

1. बड़ी खाटू का लेख (जिला नागौर 1203 ई.)
2. शाहजहां का शिलालेख (1641 ई.)
3. नागौर का ग्यारहवां शिलालेख
4. जामी मास्जिद, किला, नागौर का शिलालेख
5. नागौर के खानजादों की मस्जिद का लेख (1203 ई.)

1. बड़ी खाटू का लेख (जिला नागौर 1203 ई.)

इसके द्वारा यहां एक इमारत बनाने का बोध होता है। यह लेख ठाकुर धोकल सिंह की हवेली में एक मस्जिद के खण्डहर के केन्द्रीय मिहराब पर हैं। इससे 13वीं सदी के प्रारंभ में इस भाग पर तुर्की प्रभाव जान पड़ता हैं। यहां मगरिबशाह की दरगाह (1232 ई.), (1268 ई.) कसाई मोहल्ला की मस्जिद, कनाती मस्जिद (1301 ई.) तथा सैद्धीनी मस्जिद (1302-03 ई.) आदि से भी तुर्की प्रभाव का स्पष्टीकरण होता है।

धार्मिक महत्व - इस लेख से हमें धार्मिक जानकारी मिलती हैं। जिसमें दरगाह मस्जिद का जिक्र किया गया है। इस लेख से हमें हिन्दू व मुस्लिम समन्वय की जानकारी प्राप्त होती है। ये लेख ठाकुर धोकल सिंह की हवेली में एक मस्जिद के खण्डहर के केन्द्रीय मेहराब पर है।

2. शाहजहां का शिलालेख (1641 ई.)

मध्ययुगीन भारतीय शिलालेखों से सभी अवधियों के बारे में (A.H. 599,

(1203 A.D.) से A.H. 1211 (1796 A.D.) तक जानकारी प्राप्त होती हैं।

यह राजस्थान के तीन स्थानों में से एक हैं। अन्य दो अजमेर और कामन भरतपुर जिले में हैं। जो भारत की सबसे प्रारंभिक चार मस्जिदों में से एक हैं।

नोटिस के तहत शिलालेख में 6 पंक्ति लिखी गई हैं जिसमें एक स्लैब की कटाई पर लगभग 65 बाइ 26 से.मी. की हैं। जिसके परिणामस्वरूप कुछ अक्षर क्षतिग्रस्त है। इसमें कुछ अक्षर आकार से दूर हो गए हैं या खो गए हैं और जिस शहर का लेखक था उसका नाम संतोषजनक ढंग से नहीं बनाया गया। पहले दो और पाठ की तीसरी पंक्ति के हिस्से में बिस्मिल्लाह हैं तथा इस्लाम का दूसरा पंथ-पंथ कलमा है।

शेष भाग में जुमेशाह के पुत्र एडम, एडम का पुत्र जनशाह को मस्जिद के निर्माण का कार्य चौहान समुदाय के 15 वर्ष में सौंपता है। यह अब्दुल कादिर रहीम द्वारा रमजान की 15वीं तारीख को A.H. 1051 28 दिसम्बर, 1641 A.D. को अंकित किया गया है। कादिर इमाद का पुत्र कादिर अब्दुल रहीम पालनपुर का रहने वाला है।

अनुवाद

1. बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम-शुरू अल्लाह के नाम से जो निहायत ही रहम वाला हैं। जो मेहरबान हैं। दुनिया अगले विश्व के लिए एक बोया हुआ क्षेत्र हैं।

2. अश्हदु लाइलाह इल्लाहु वादहु लाशरीक लहू व अश्हदु अना-मैं गवाही देता हूं अल्लाह के सिवा कोई ईश्वर/माबूद नहीं है अल्लाह एक हैं उसका कोई सानी/दूसरा नहीं है। हजरत मोहम्मद अल्लाह के पैगम्बर और रसूल ले।

3. उनका प्राणी एवं प्रस्तावक इसमें शिहाबुद्दीन मुहम्मद के दीन धार्मिक जीवन के बारे में तथा साहिब किरान के शासनकाल के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

4. (थानी शाह) चौहान समुदाय के कौम तथा जहां बादशाह गाजी ने मस्जिद की छत पर लेख उत्कीर्ण करवाया। जुमेशाह एडम का पुत्र हैं जहानशाह पुत्र एडम।

5. इस लेख का निर्माण तथा यह लेख रमजान के पवित्र महिने की 15वीं तारीख तथा वर्ष (A.D. 1051) 26 दिस. 1641 ई. को लिखा गया।

6. कादी अब्दुर-रहीम के पुत्र कादि इमाद का लेख जो पालनपुर शहर के निवासी थे।

इस लेख के निर्माता के नाम को उत्कीर्ण किया गया है इसके निर्माता जनशाह का नाम उत्कीर्ण हैं जो चनशाह भी हो सकता हैं यह नाम वर्तमान में अधिक प्रचलित है।

3. नागौर का नौवां शिलालेखः-

कान्हेरी जुलाहों की मस्जिद में अल्लौद-अली बापजी की दरगाह के पास नागौर

शहर के दिल्ली गेट के उत्तर की ओर शहर की दीवार से पुर्नप्राप्त कम से कम एक शिलालेख तालिका संरक्षित हैं जो पुरातनपंथी अवशेषों की चिन्ता के माध्यम से शहर की दीवार से कम से कम चार इंस्क्रिप्ट टेबल (शिलालेख तालिका) संरक्षित हैं। और परिजादा रहम्मतुल्लाह रौनक सुलेमानी द्वारा विकसित की गई। ऐतिहासिक वस्तुएं जिनमें अरबी ओर फारसी शिलालेख नागौर और इसके निवासियों का ज्ञान देश के इस हिस्से में बेजोड़ था। इनमें से एक अध्ययन के तहत शिलालेख है। प्रकृति के प्रतिकूल तत्वों की उपेक्षा, बर्बरता और जोखिम के कारण, तालिका काफी प्रभावित हुई हैं जिसके परिमणामस्वरूप इसके चार कोनो विशेष रूप से बाएं वाले, टूट गए हैं और उसके लेखन के पत्र जो नास्तिक हैं काफी उच्च क्रम, रूपरेखा की तीव्रता में कमी आई है।

शिलालेख पर लिखी गयी तालिका मामूली आकार की होती हैं जिसका माप 25 से 22 सेमी. है और इसमें फारस में छः पंक्तियों का रिकॉर्ड होता है, जो 1055 ए. एच. (1645-46 ए.डी.) में दिल्ली गेट के सामने एक मस्जिद के निर्माण को संदर्भित करता है। जिसका निर्माण एक मुहब्बत दखेश द्वारा सुल्तान शिहाबुद्दीन साहिब किरान थानी शाहजहां के शासनकाल में हुआ था। यह शिलालेख मुल्ला अब्दुल हाफीज द्वारा लिखा गया था, जिन्होंने नागौर के किले के अन्दर जामी मस्जिद में मुअद्दीन के रूप में काम किया था।

4. जामी मस्जिद, किला, नागौर का शिलालेख

नागौर के फारसी अभिलेख 'जामी मस्जिद किला' 5 पंक्ति में यह विवरण मिलता है।

अनुवाद

1. इस मस्जिद का निर्माण, अल्लाह के नक्शे कदम पर, सबसे बड़े बादशाह के शासनकाल में हुआ था।

2. अत्यधिक प्रभावशाली और आकर्षक, सम्मानित, खाकान, सुल्तान शिहाबुद्दीन साहिब किरान थे।

3. थानी शाहजहां बादशाह गाजी, अल्लाह अपने राज्य को और हमेशा के लिए अपनी सरकार को समाप्त कर सकता है।

4. दिल्ली गेट के सामने मुहब्बत दरवेश एक वर्ष एक हजार।

5. पांच और पचास (ए.एच 1055-1645-46 ए.डी.) यह मुल्ला अब्दुल हाफिज द म्यू 'मस्जिद-ए-अहदिन' द्वारा लिखा गया था।

6. नागौर का किला (यानि गढ़) के अन्दर जामी मस्जिद हैं।

5. नागौर के खानजादों की मस्जिद का लेख (1483 ई.)

हमारे इतिहासकारों द्वारा नागौर के खानजादों के छोटे लेकिन शक्तिशाली राजवंश के इतिहास पर बहुत कम ध्यान दिया गया हैं, जो एक सदी और आधी से थोड़ा कम अवधि के लिए नागौर से मध्य राजस्थान के हिस्से पर शासन करता था। यह अपनी महानता का एक मापक है कि इसने भारी बाधाओं के खिलाफ अपनी संप्रभुता को बनाए रखा। राज्य को शक्तिशाली पड़ोसियों द्वारा सभी तरफ से घेर लिया गया था जो हमला करने के लिए तैयार थे और यदि संभव हो तो इसे अपने स्वयं के क्षेत्रों में संलग्न कर सकते थे। गुजरात के सुल्तान भी थे, जो शुरू में कम से कम जैसा प्रतीत होता था, जरूरत से ज्यादा सुरक्षा कवच की तरह काम करता था। अन्यथा, जो कि नागौर की रियासत और गुजरात राज्य की स्थापना के बाद से मुझे आश्चर्य नहीं हुआ एक ही परिवार के लोग है।

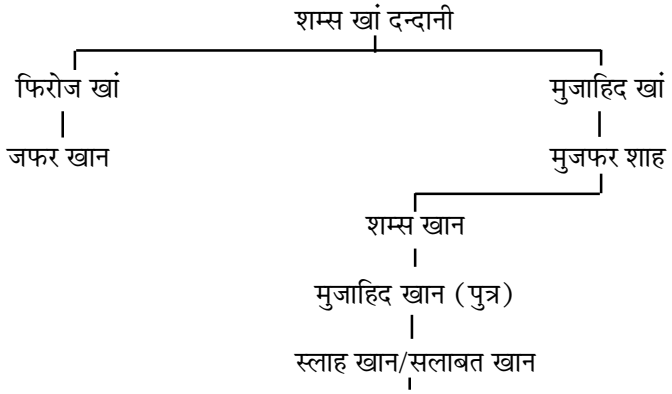
फिरोज खां-प्रथम का शिलालेख

फिरोज खां प्रथम का शिलालेख नागौर के गांधी चौक से प्राप्त हुआ है। जिसमें खानजादों का वंशक्रम दिया गया है।

फिरोज खां प्रथम शम्स खां का बेटा था जो इसका संस्थापक था। सभी को शम्स खान के जीवन के बारे में तथा कारनामों के बारे में पता है कि वह जफर खान के भाई थे। ऐसा लगता है कि वह अपने भाई की मृत्यु के बाद स्वतंत्र हो गया है। फिरोज खान के सिंहासन पर बैठने की तारीख का उल्लेख किसी ऐतिहासिक कार्य में नहीं है।

डॉ. चंगताई की वंशावली के अनुसार उन्होंने (फिरोज खान-प्रथम) ने अपने पिता की मृत्यु हिजरी सन् 829 में अपनी पिता की मृत्यु के बाद सफलता प्राप्त की और हिजरी सन् 857 तक शासन किया।

खानजादों का वंशक्रम



फिरोज खान–द्वितीय
|
मोहम्मद खान
|
फीरोज खान–तृतीय

फिरोज खान–प्रथम – अभिलेख

फिरोज खान प्रथम शम्स खान का बेटा था जो इसका संस्थापक था।

5 रमजान, 821 हि. 6 अक्टूम्बर ई. सन् 1418 को शम्सखां दन्दानी की मृत्यु के उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र फिरोज खां नागौर का शासक बना।

फिरोज खां के शासनकाल की राजनैतिक तथा प्रशासनिक जानकारी मिलती है। फिरोज खां एक कुशल प्रशासक एवं साहसी वीर योद्धा था।

नागौर से प्राप्त अन्य फारसी अभिलेख

बड़ी खाटू का लेख (जिला नागौर 1203 ई.)

लेख जालियाबास की मस्जिद का (जिला नागौर 1302 ई.)

महमूद कत्ताल शहीद की दरगाह का लेख (नागौर 1333 ई.)

नागौर किला का लेख तुगलककालीन

कुतुबुद्दीन नाजिम की कब्र का लेख (नागौर 1389 ई.)

फिरोज खां के शिलालेख का महत्व निम्नांकित है–

1. राजनैतिक महत्व – इस फारसी शिलालेख में शम्स खां दन्दानी की राजनैतिक व्यवस्था के बारे में पता चलता था कि शम्स खां दन्दानी अपने समय का एक कुशल राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ एवं प्रशासक था। इन्हीं गुणों के कारण उसने अपने शक्तिशाली पड़ौसी राज्यों विशेषकर गुजरात से बिना युद्ध किये हुए भी अपनी रक्षा की। 5 रमजान 821 ई. हि. 6 अक्टुबर ई. सन् 1418 को शम्स खां दन्दानी की मृत्यु के उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र फिरोज खां नागौर का शासक बना। उसने अपने भाई मुजाहिद खां को डीडवाना का कस्बा जागीर में दिया। इस फारसी अभिलेख में फिरोज खां के शासनकाल की राजनैतिक तथा प्रशासनिक जानकारी मिलती है। फिरोज खां एक कुशल प्रशासक एवं साहसी वीर योद्धा था। उसने मेवाड़ के राणा मोकल से अनेक युद्ध करके ख्याति प्राप्त की। इनमें से एक युद्ध में तो उसकी वीर सेना ने राणा मोकल के लगभग 10,000 राजपूतों 177 को मौत के घाट उतार दिया।

2. धार्मिक महत्व – नागौर राज्य के खानजादा वंश के शासक फिरोज खां के समय में नागौर में लिखी धर्म 'श्रावका चार' नामक ग्रंथ की प्रशस्ति तथा समसामयिक

नागौर में अन्य जैन कृतियों में भी वहां धार्मिक स्वाधीनता होने का स्पष्ट उल्लेख मिलता हैं।

3. ससमाजिक महत्व – दिल्ली साम्राज्य की शक्ति के ह्रास होने के उपरान्त जब नागौर राज्य खानजादा वंश के शासकों के हाथों में आ गया था तो उनके शासनकाल में नागौर की सामाजिक गतिविधि के विषय में हमें किसी भी स्रोत से निश्चित रूप में कुछ ज्ञात नहीं होता।

सन्दर्भ

1. *राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ श्यामप्रसाद व्यास, पृ. 7*
2. *राजस्थान के इतिहास के स्रोत, डॉ. गोपीनाथ शर्मा– पृ. 217*
3. *Epigraphia Indica (Arabic & Persian Supplement) 1970 and 1971 i`-23&26]*
4. *वही, पृ. 20–22*
5. *मध्यकालीन नागौर का इतिहास, मोहम्मद हलीम सिद्दीकी, पृ. 32–33*
6. *रिसर्चर, आर. सी. अग्रवाल*
7. *चगताई*
8. *Buletin of Rajasthan & Archeology and Museums.*

ऐतिहासिक स्त्रोत के रूप में मालाणी का लोक साहित्य : एक अध्ययन

सन्तोष कुमार गढ़वीर

लोक साहित्य के रूप में हमें विभिन्न दोहे, जन आख्यान एवं लोकगीत तथा लोक कथाएं मिलती हैं। जिनका उस क्षेत्र के इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं। यद्यपि यह पूर्ण रूप से प्रमाणिक नहीं माना जाता हैं, किन्तु किसी घटना विशेष की जानकारी में इसका महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं। बाड़मेर का पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र मालाणी कहलाता हैं। जिसके इतिहास की जानकारी में लोक साहित्य का अपना महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं।

खेड़ में राठौड़ सत्ता की स्थापना राव आस्थान के पौत्र एवं राव धुहड़ के पुत्र रायमल के समय हुई। इस सम्बन्ध में निम्न दोहा प्रसिद्ध है–

यह कोट उथाप धरा थर सले। रिम रेसा रेसै रिमरा।।
राया पाळ वसे रढ़ रामण। वागां जयों विचे वाराह।। [1]

अर्थात रायमल दो शक्तियों के बीच में बाघ की तरह शासन कर रहा है।

रायमल के वंशज राव सलखा के घर रावल मल्लीनाथ ने जन्म लिया था, जिसके सम्बन्ध में निम्न दोहा दृष्टव्य है –

संवत चवदो चिलातरो, सुद सावण मास।
सलखावत जनमीयो सिरे, परकट माल परकास।। [2]

इस दोहे से रावल मल्लीनाथ का जन्म सलखा के घर वि.सं. 1404 माना जाता है।[3] रावल सलखा के चार पुत्र थे। इस सम्बन्ध में उक्त दोहा प्रसिद्ध हैं :

चारि तनय मारू तिलक जाय सलखा राइ।
राउ माला अरू जेतमाल, वीरम सोभत नांई।। [4]

इस दोहे से राव सलखा के चार पुत्रों की जानकारी मिलती है, जिनके नाम राव माला, जेतमाल, वीरम और सोभत मिलते हैं।

मल्लीनाथ के नाम पर ही इस क्षेत्र का नाम मालाणी पड़ा। रावल मल्लीनाथ ने अपने पराक्रम से राजस्थान, मालवा तथा गुजरात तक अपनी शक्ति एवं शौर्य का प्रदर्शन किया, जिसके सम्बन्ध में निम्न दोहा जन साधारण में प्रसिद्ध है :

रावल माल को तेज निहार के, मेछन के मुष होते है पीरे।
होत जहां अति आछे तुरंगम, हीरे की खान में होत जयों हीरे।। [5]

मल्लीनाथ ने जैसलमेर के रावल घड़सी को राज सिंहासन प्राप्ति के लिए सहायता की थी, जिसकी पुष्टि इस पद्यांश से होती है :

घड़सी वाई गरज के बागेषां ऊपर।
गुरज घमोड़ी बागेडे घड़सी के धू पर।।
छोड़ा सहतो गुड़ गयो लुटयो धरती पर।
जाण कबूतर छूट गयो होतां बाजीगर।। [6]

मल्लीनाथ के शासन काल में मुस्लिम सत्ता के साथ उसका संघर्ष हुआ, जिसमें मल्लीनाथ की विजय हुई। इस सम्बन्ध में निम्न आख्यान प्रसिद्ध है :

तेरह तुंगा भांजिया, माले सलखांणी। [7]

उक्त दोहे से रावल मल्लीनाथ की तेरह तुर्क दलों के संगठन से संघर्ष की जानकारी मिलती हैं, जिसमें मल्लीनाथ की विजय बताई गई।

महेवा नगर के समीप स्थित सिणली तालाब पर तीज मेला भरता था। गुजरात के शासक जफरखां ने जोधपुर आक्रमण से लौटते वक्त इन तीजणियों का अपहरण कर उन्हें गुजरात ले गया। जिससे मलीनाथ अत्यन्त क्रुद्ध हुआ एवं उसने अपने पुत्र जगमाल को तीजणियों को छुड़वाने के लिए गुजरात भेजा। जगमाल ने अभियान कर तीजणियों को छुड़ा लिया एवं जफरखां की पुत्री गिंदोली को भी अपहृत कर साथ में ले आया, जिसके कारण जगमाल एवं जफरखां की सेना के मध्य भीषण युद्ध हुआ।[8] इस सम्बन्ध में उक्त दोहा दृष्टव्य है –

पग–पग नेजा पाळिया, पग–पग पाळी ढाळ।
बीबी पूछे खां ने, जुग किता जगमाल।। [9]

मल्लीनाथ दयालु प्रवृत्ति का शासक था जिसके सम्बन्ध में निम्न दोहा प्रसिद्ध हैं–

माल धणी महवेच मांडी दीधौ मथाणो।
आपे गूंगा उदक जग ही सारै जांणो।।
अढ़रा खड़िज धर आपी, के मरूकी बीस।
माले दीधा मोज से सरठा सेतालीस।। [10]

इस दोहे से यह स्पष्ट होता है कि रावल मल्लीनाथ द्वारा बाला चारण को वि.सं. 1437 कार्तिक सुदी नवमी गुरुवार को गूंगा ग्राम दान में दिया गया।[11] रावल मल्लीनाथ अपने शासनकाल के उत्तरार्द्ध में नाथ पंथ में दीक्षित हो गया था। इस सम्बन्ध में उक्त दोहा दृष्टव्य है –

संवत चबदे सो श्रीकार।
गुणचालिस वरस विचार।।

उजल बीज सनीसर वार।
चेत भयो परचो परचारा।। [12]

इस दोहे में रावल मल्लीनाथ के वि.सं. 1440 सुदी द्वितीया शनिवार को नाथ पंथ में शामिल होने की जानकारी मिलती है। इसी तरह एक अन्य दोहे में रावल मल्लीनाथ के धारू मेघ को अपना गुरु धारण करने का प्रमाण मिलता हैं :

मेघ धारू थांरी निर्झर वाणी।
धारी रावल माल रूपांदे मालाणी।। [13]

रावल मल्लीनाथ के पश्चात उसका पुत्र जगमाल शासक बना इस सम्बन्ध में निम्न पद्यांश प्रसिद्ध है –

खण्डा जी खित खाटण हारौ, भड आरेणा भांजण हारौ।
आ चाही जगमाल अकारो, बकी मे बीध बिलस में वारौ।।
जीण दिस जाये जीण दिस जाणो, मारको थको रहे मालाणौ।
घासण खागा सिध तणी धर, पाधर काछ लगे पाराकर।।
कोपे ओ किण उपर कुंवर, मोडे ढाळ महगळ देवर।
सिवियाणों जालोर सकाडे, पोढी पूगळ खाग पछाडै।।
बाहड गिर खावड गळ बैठो, सारी धरा धूपटे सैठों।
तीही बैठे तोडे तुरकाणो, सह रावा सिर सेर सप्राणो।। [14]

इस दोहे से रावल जगमाल के पराक्रमी शासक होने की जानकारी मिलती है, जिसने गुजरात, सिंध, कच्छ, पारकर, पोकरण, पूंगल, बीकमपुर तक अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर, अपना लोहा मनवाया था। उसने बाड़मेर व खावड पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। रावल जगमाल ने अपने पुत्र भारमल की हत्या की थी, जिसकी जानकारी उक्त दोहे में मिलती है[15] –

पूत पियारो मात, लोक भी पूत पियारो।
पूतां कारण तोडिये, अम्बर सू तारो।। [16]

रावल जगमाल ने ब्राह्मणों एवं चारणों को ग्राम दान में दिये थे। इस सम्बन्ध में यह दोहा जग प्रसिद्ध है –

संवत चवदे री साल वरस पेतालो, वखाणु सरे मास वैसाख।
जबर वार शनी जाणु एकदसी अधक जोवे, मोरत कब जाजो।।
दियो गाम दातार नत सत रीमु नवाजे, कव अचला ने अवरी।
कियो जगमाल कवर कायम, समझ दत सासण आकडळी दियो।। [17]

इस दोहे में जगमाल द्वारा चारण अचला को आकडळी गांव सासण में देने की जानकारी मिलती हैं, साथ ही साथ इससे यह भी स्पष्ट होता है कि इस समय रावल

मल्लीनाथ जीवित था तथा जगमाल ने कुंवर पद में यह दान दिया था। रावल जगमाल के छः पुत्र थें। जिसके बारे में उक्त दोहा दृष्टव्य है –

महेवचा माडलिक, लूंका, भारहमल।
रिड़मल, डुगरसि छठो पूत वेरमल।। [18]

इस दोहे में रावल जगमाल के छः पुत्रों माडलिक, लुंका, भारमल, रिड़मल, डुंगरसी एवं वेरमल की जानकारी मिलती हैं। रावल जगमाल के पश्चात उसके वंशज लुंका ने बाड़मेर एवं चौहटन पर अधिकार कर लिया। लुंका के ही वंशज पदमसिंह ने बीकमपुर के ठाकुर हरनाथसिंह का वध कर अपने प्रपितामह साहिबसिंह की मृत्यु का प्रतिशोध लिया था।[19] इस सम्बन्ध में उक्त आख्यान प्रसिद्ध हैं –

बीकमपुर रे बांक, कीलपूरे बळ काढियो।
छत्रों मनावो सोक, पदम महल पधारियो।। [20]

लुंका के वंशज सामसिंह ने अंग्रेजो का प्रतिरोध किया था। जिसमें उसका साथी सादीखां शहीद हुआ।[21] इस सम्बन्ध में बांकीदास आसिया का निम्न दोहा जगप्रसिद्ध है–

हठवादी नाहर होफरिया, सादी जिसडा साथ सिपाह।
मेर जहीं मंड बाहडमेरे, गोरां सूं रचियो गजगाह।। [22]

भारमल के वंशजो का कोटड़ा पर अधिकार रहा, जिसका वंशज बाघा जोधपुर के शासक मालदेव का समकालीन था एवं उसकी दासी भारमली बाघा के दरबार में आ गई थी।[23] बाघा एवं भारमली का प्रेम जगप्रसिद्ध हैं। जिस पर बाघा के दरबारी कवि एवं मित्र आसानन्द ने दोहो की रचना की –

जंह तरवर तंह मोरिया, जंह सरवर तंह हंस।
जंह बाघो तंह भारमली, जंह दारू तंह मंस।। [24]

बाघा की दानवीरता के बारे में निम्न दोहा दृष्टव्य हैं –

परभाती धानी गाईजे, लीजे बाघ को नाम।
भूखों ने भोजन मिले, अर गढपतियों ने गांव।। [25]

बाघा की मृत्यु पर आसानन्द ने उक्त मरसिये[26] की रचना की –

बाघा जी बिन कोटड़े, लागे यो अहडोह।
जीनी धरे सिघावियों, जावे माडव डोह।। [27]

इस प्रकार लोकसाहित्य के रूप में रचित डिंगल दोहों एवं जन आख्यानों से मालाणी के प्रारम्भिक शासक मल्लीनाथ एवं उसके वंशजों के जीवनवृत्त एवं शासन काल तथा युद्ध अभियानों के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती हैं, जिनका इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ

1. *ख्यात जसोल ग्रन्थाक 67/5*
2. *जसोल नाहरसिंह, मल्लीनाथ वंश प्रकाश, पृ. 5, राणी भटियाणी ट्रस्ट, जसोल, 2004*
3. *वही, पृ. 5*
4. *भाटी हुकमसिंह, महेचा राठौड़ो का मूल इतिहास, पृ. 12, रतन प्रकाशन, जोधपुर, 2001*
5. *भादानी बी.एल., मालाणी का इतिहास, पृ. 35, राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, श्रीडूंगरगढ (चूरू), 1999*
6. *मयंक मांगीलाल, जैसलमेर का इतिहास, पृ. 75, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2001*
7. *लोक प्रचलित आख्यान*
8. *दृष्टव्य शोध पत्रिका, वर्ष 38, अंक 3, पृ. 76*
9. *वही, पृ. 76*
10. *शेखावत सौभाग्य सिंह, मालाणी के गौरव गीत, पृ. 186, राणी भटियाणी ट्रस्ट, जसोल, 1993*
11. *वही, पृ. 186*
12. *क्षीरसागर डी.बी., राजस्थान संत शिरोमणी राणी रूपादे और मल्लीनाथ, पृ. 35, राणी भटियाणी ट्रस्ट, जसोल, 1997*
13. *लोक प्रचलित आख्यान*
14. *शेखावत सौभाग्य सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 201*
15. *वही, पृ. 205*
16. *लोक प्रचलित आख्यान*
17. *जसोल नाहरसिंह, पूर्वोक्त पृ. 65*
18. *वही, पृ. 66*
19. *दृष्टव्य शोध पत्रिका, वर्ष 41, अंक 4, पृ. 56*
20. *वही, पृ.56*
21. *भाटी हुकमसिंह, पूर्वोक्त, पृ. 76*
22. *लोक प्रचलित आख्यान*
23. *रेऊ विश्वेश्वरनाथ, मारवाड़ का इतिहास भाग-प्रथम, पृ. 112, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1996*
24. *भादानी बी.एल. पूर्वोक्त पृ. 89*
25. *वही, पृ. 89*
26. *किसी व्यक्ति की मृत्यु के वियोग में रचित छंद*
27. *भादानी बी.एल. पूर्वोक्त पृ. 90*

मारवाड़ की सेना में सैन्य-बल की आपूर्ति के स्रोत-एक अध्ययन

डॉ. राजेन्द्र कुमार

18वीं सदी मारवाड़ राज्य के लिए संघर्ष का दौर थी, इस दौरान उसे एक ओर आंतरिक कलहों से जूझना पड़ा वही दूसरी ओर मुगल एवं मराठा जैसी बाह्य शक्तियों का सामना भी करना पड़ा। 18 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में विजयसिंह एवं रामसिंह के मध्य उत्तराधिकार के संघर्ष ने मराठों को मारवाड़ की भूमि में हस्तक्षेप करने का निमंत्रण दिया। इसी समय से मारवाड़ के इतिहास में एक नए अध्याय की शुरूआत होती है, जो मारवाड़-मराठा संघर्ष के रूप में देखा जा सकता है। इस संघर्ष ने मारवाड़ की राजनीतिक गतिशीलता को तीव्रता प्रदान कर दी।

महाराजा विजयसिंह को स्थायी सेना के निर्माण के लिए अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनमें मुख्य रूप से सैनिकों की पूर्ति हेतु सामंतों पर निर्भरता, सेना का जातीय समीकरण, पेशेवर सैनिकों की कमी तथा राज्य की दुर्बल आर्थिक स्थिति आदि। इन समस्याओं के निराकरण हेतु महाराजा विजयसिंह ने अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किये जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास था पेशेवर सैनिकों की राजकीय सेना में भर्ती करना। महाराजा विजयसिंह के लिए यह कार्य इतना सरल नहीं था परन्तु तत्कालीन हिन्दुस्तान की परिस्थितियों ने इसे सरल बना दिया।

18वीं शताब्दी के दौरान हिन्दुस्तान सिपाहियों का बड़ा बाजार बन गया था। जहाँ से आवश्यकतानुसार सैनिकों की खरीद की जा सकती थी। ऐसे सैनिक व्यवसायिक सैनिक होते थे जिनकी स्वामीभक्ति अपने राष्ट्र अथवा लोगों के प्रति न होकर अपने मालिक के प्रति होती थी जो उन्हें अपनी सेवा में रखता था। ऐसे सैनिकों में मुस्लिम तथा पुरबिया मुख्य थे। महाराजा विजयसिंह ने अपनी राजकीय सेना के गठन हेतु इस वर्ग के लोगों की बड़ी संख्या में सेना में सम्मिलित किया। जिससे राज्य की अपने सामंतों पर निर्भरता कुछ सीमा तक कम हुई। इसके अतिरिक्त इस कालखंड के दौरान राजपूताना के समाज में भी एक ऐसा वर्ग उत्पन हो चुका था जो पैसे के लिए सेना का हिस्सा बनने को तैयार था। इसी वर्ग में मारवाड़ राजय की विभिन्न जातियों के लोग सम्मिलित थे जिनमें जाट, बनिये, आहेडी, थोरी, बावरी तथा रामानंदी साधुओं की जमात महत्वपूर्ण थी।

इस प्रकार महाराजा विजयसिंह के समय मारवाड़ में स्थायी सेना का गठन हो चुका था। इनके शासनकाल में मराठों के आक्रमण भी मारवाड़ पर निरन्तर होने प्रारम्भ हो चुके थे। अत: सेना को बनाए रखना विजयसिंह की प्राथमिकता रही। इस दौरान सेना का राज्य की कुल आय का 50 से 60 प्रतिशत प्रतिवर्ष खर्च होता था। राज्य की सेना में अधिकांश सेना पट्टायतों एवं रोजीनदारों की थी और अधिकांश खर्च भी इनकी सेना पर ही किया जाता था। वि.सं. 1831-32/1774-75 ई. में जब मारवाड़ सेना बीकानेर अभियान पर गई थी तब रोजीनदारों की सेना पर 18361 रुपए सवा आना खर्च हुआ था। इस अभियान के दौरान कुल जमा 18563 रुपए सवा आना थी। इससे स्पष्ट है कि राज्य की आय का लगभग पूरा हिस्सा केवल सेना पर ही खर्च हो जाता था। रोजीनदारों पर खांपवार होने वाले खर्च का निम्न सारणी द्वारा समझा जा सकता है-

सारणी 2 : रोजीनदारों की फोज पर खर्च[1]

क्र.सं.	खांप रोजीनदार	घोड़े	पैदल	व्यय (रुपए-आना-पैसा)
1.	रा. चांपावत	86	27	1447-9-0
2.	कूंपावत	72	11	1409-2-0
3.	जेतावत	25	02	524-5-0
4.	भदावत	20	-	453-2-2
5.	कलावत	9	2	137-15-2
6.	मेड़तिया	25	11	541-10-0
7.	जोधा	38	4	708-9-0
8.	ऊदावत	72	-	1096-4-3
9.	करमसोत	15	-	70-6-1
10.	भीवोत	1	-	23-12-2
11.	मंडला	4	-	95-2-2
12.	जैसिंघोत	1	-	04-6-1
13.	ऊहड़	4	-	28-0-0
14.	डूंगरोत	6	-	131-10-0
15.	बाला	25	-	540-15-3
16.	धवेचा	4	-	24-0-0
17.	महेचा	197	95	3379-2-0
18.	गनायत भाटी	26	-	538-10-0
19.	चौहान	26	-	558-5-0

20.	सोनगरा	6	1	122-3-2
21.	अन्य मुहता रामचंद	5	-	84-2-0
22.	पुरोहित सुजाण	1	-	21-3-0
23.	मुसलमान सिपाई	197	259	5383-9-0
24.	रिड़मलोत	2	-	49-9-0
25.	चूंडावत	8	-	188-5-3

सारणी 2 में मारवाड़ की सेना के रोजीनदारों का खांपवार हिसाब-किताब उल्लेखित है जिसमें 5 माह 27 दिन के दौरान उनकी सेना पर राज्य द्वारा किए गए खर्च का विवरण है। राज्य द्वारा युद्ध के समय किराये पर सैनिकों की नियुक्तियां की जाती थीं। इसमें राजपूत, भील, थोरी, बावरी[2], कयामखानी तथा परदेसी भी सम्मिलित होते थे।[3] राज्य द्वारा सिरबंधी की मद में भी अच्छी राशि खर्च की जाती थी। जिसका विस्तृत विवरण अग्रसारणी में उल्लेखित है-

सारणी 3 : सिरबंधी[4] तालके खर्च[5]

वि.सं. 1810	राशि रूपए-आना-पैसा	वि.सं. 1823
आषाढ़	15257-7-3	-
श्रावण	12010-0-0	-
भाद्रपद	-	-
अश्विन	27670-0-0	-
कार्तिक	50324-0-0	8000 अलग से बीकानेर भेजे
माघ	30233-0-0	4833-8-2

उपर्युक्त सारणी में वि.सं. 1810 व वि.सं. 1823 के आषाढ़ माह से माघ माह तक के सिरबंधी तालके मारवाड़ राज्य के खर्च का विवरण प्रदर्शित है। वि.सं. 1823 की बही कटी-फटी होने के कारण प्रत्येक माह के सिरबंधी खर्च से सम्बद्ध आंकड़े जुटा पाना मुश्किल था। अत: केवल कार्तिक व माघ महा में हुए खर्च को ही उल्लेखित किया गया है। परन्तु जब उन्हें वेतन सही समय पर नहीं मिलता था तो वे अपने वेतन प्राप्ति के अन्य तरीके अपनाते थे। युद्ध के बाद कस्बों, नगरों को लूटना आम बात थी। इसलिए शासक को अपनी सेना को समय पर वेतन देने के लिए या सेना को किसी सैन्य अभियान पर भेजने से पूर्व अग्रिम भुगमान भी करना पड़ता था।[6] इससे शासक की आर्थिक स्थिति बहुत निर्बल हो जाती थी। महाराजा विजयसिंह को अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए राज्यों के महाजनों-सेठों से रुपए उधार लेने पड़ते थे।[7] इसके अतिरिक्त गुड़ला एवं नंदवाना के बोहरों से धन उधार लिया जाता था[8] और कई बार

महाराजा विजयसिंह अपने सैनिकों को वेतन चुकाने में समर्थ नहीं होता था तो वह उन्हें वेतन स्वरूप भूमि आवंटित करता था।[9]

रोजीनदारों की अश्वारोही सेना

रोजीनदारों युद्ध जैसी संकट की स्थिति में ही अपनी अश्वारोही सेना का निर्माण करते थे। ये राजकीय सेना के मुख्य सहायक के रूप में होते थे। रोजीनदारों द्वारा सैनिक व गैर सैनिक दोनों प्रकार की सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती थी।[10] रोजीनदारों की तनख्वाह इस पर निर्भर करती थी कि वे सेना से असवार के रूप में जुड़े हैं अथवा एक पाला सैनिक के रूप में। इन्हें घोड़े की चाकरी के वेतन के रूप में चार आना प्रतिदिन से लेकर 12 आना प्रतिदिन तक दिया जाता था। उदाहरणार्थ जयपुर में मारवाड़ के वकील आसोपा फतेराम की सेवा में रहने वाले घोड़े प्रतिदिन चार आना दिया जाता था।[11] मेड़ता में एक घोड़े के साथ चाकरी करने वाले देवड़ा सवाईसिंह को प्रतिदिन आठ आने वेतन दिया जाता था।[12] जबकि हाड़ा सरदारसिंह शुभरामोत को 1 घोड़े के लिए प्रतिदिन 13 आने 1 पैसा के हिसाब से वेतन दिया जाता था।[13] परन्तु इस तरह के मामले अपवादस्वरूप ही थे। सामान्यत: 4 आना से 8 आना के बीच ही वेतन निर्धारित किया जाता था।[14] खजाने री जमा खर्च री बही, नं. 1, वि.सं. 1831 से जानकारी मिलती है कि रोजीनदारों द्वारा बड़ी संख्या में अपने असवार राजकीय सेवा में भेजे गए थे और राज्य को इनकी सेना पर सर्वाधिक व्यय करना पड़ा था। इनके द्वारा 875 असवार (अश्वारोही) तथा 480 पाला सैनिक उपलब्ध कराए गए थे। इनमें 24 विभिन्न खांपों के रोजीनदार शामिल थे। मुतफर्रिक (मुसलमान) रोजीनदारों ने कुल अश्वारोही व पैदल सैनिकों में से 197 अश्वारोही व 259 पाला सैनिक दिए तथा उनको सर्वाधिक 5383 रुपए एवं 9 आना भुगतान किए गए इसके बाद द्वितीय स्थान पर महेचा खांप के राजीनदारों को सर्वाधिक भुगतान किया गया था।[15] महेचा खांप के कई ठिकानों के रोजीनदारों इसमें सम्मिलित थे जो इस प्रकार उल्लेखित है-

सारणी 1 : महेचा खांप के रोजीनदारों की सूची[16]

क्र.सं.	रोजीनदार (खांप महेचा)	घोड़ा	पाला	भुगतान की चिट्ठी रूपए-आना-पैसा	ठिकाना
1.	रावल बख्तसिंह	21	11	392-5-0	जसोल
2.	रावल बुधसिंह	37	36	830-9-0	जसोल
3.	रावल सवाईसिंह	38	10	601-14-0	जसोल
4.	रा. ओपा	10	08	178-5-0	नगर
5.	रा. दलकरण	12	02	189-15-0	तिलवाड़ा
6.	रा. महासिंह	11	03	165-12-2	तिलवाड़ा

7.	रा. अमरसिंह	35	14	523-15-0	सिणधरी
8.	रा. सूरतसिंह	31	11	475-3-0	सिणधरी
9.	रा. नाथूसिंह	02	-	21-0-0	टापरा
	कुल योग	197	95	3397-2-0	-

उपर्युक्त सारणीसे विदित होता है कि माहेचा खांप के 5 ठिकानों में 9 रोजीनदारों ने 197 अश्वारोही व 95 पाला सैनिक उपलब्ध कराए तथा इसके एवज में पारिश्रमिक रूप में राज्य द्वारा इनको 3397 रुपए 2 आना का भुगतान किया गया। इनके बाद चांपावत (1447-9-0) तथा कूंपावत (1409-2-0) क्रमश: 86 घोड़े व 27 पाला सैनिक एवं 72 घोड़े व 11 पाला के साथ नीचे के क्रम पर रहे। रोजीनदार भी अपनी सैनिक टुकड़ियों में पाला सैनिक रखते थे। मेड़ता की सेना में 100 से अधिक आहेड़ी जाति के पाला सैनिक थे।[17] वहीं भीनमाल के रोजीनदारों की सेना के पाला सैनिकों में राजपूत के अतिरिक्त भील भी थे जो संख्या में राजपूतों के बराबर थे।[18]

पाला सैनिकों को वर्षभर में 8 से 10 माह का रोजगार मुहैया करवाया जाता था।[19] पाला सैनिकों के दरोगा को 5 से 6 रुपए प्रतिमाह वेतन दिया जाता था। कई बार दरोगा को वेतन के बदले गाँव भी पट्टे में दे दिया जाता था। उदाहरणार्थ नागौर में पाला की विरादरी दोलू नाजूखों के अधीन की गई थी इसके लिए उसे वेतन व पेटिया के साथ-साथ गांव पीथावास भी पट्टे पर दिया गया था।[20] पाला सैनिकों को युद्ध में अच्छे प्रदर्शन हेतु राज्य द्वारा ईनाम भी दिया जाता था। वि.सं. 1831/1774 ई. में बीकानेर अभियान के दौरान विभिन्न विदारियों के 148 पाला सैनिकों को 2 आना प्रति पाला के हिसाब से ईनाम के रूप में दिए गए थे।[21]

रोजीनदारों के अतिरिक्त महीनदार श्रेणी के अन्तर्गत भी लोगों की नियुक्ति प्रशासन के प्रत्येक विभाग में की जाती थी। इसी अनुक्रम में, मारवाड़ की सेना में भी बड़ी संख्या में महीनदारों की नियुक्ति की जाती थी। इसका अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि वि.सं. 1810/1753 ई. में मारवाड़ की सेना के बीकानेर अभियान के दौरान केवल श्रावण माह में राज्य की सेना के समस्त विभागों में कार्यरत महीनदारों पर कुल 61319-11-2 रुपए खर्च हुए थे अर्थात् महीनदारों पर हुए कुल खर्च का 36.35 प्रतिशत केवल तोपखाना व बारूदखाना पर व्यय किया गया था। इसके अतिरिक्त 61319-11-2 रुपए की कुल व्यय राशि में तोपखाने के महीनदारों के अतिरिक्त तबेला, फीलखाना, सुतुरखाना, पाला तथा सिल्हेपोस व ढ़लेतों पर किया जाने वाला व्यय भी सम्मिलित था। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि राज्य के कुल व्यय का लगभग 80 प्रतिशत केवल सेना हेतु व्यय किया जाता था। इसी प्रकार कार्तिक, मार्गशीर्ष तथा पौष माह में क्रमश 10514-5-2, 739-2-0 तथा 10858-0-3

रुपए खर्च किए गए थे।[23] इस खर्च को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सैन्य अभियान के दौरान सेना पर होने वाले व्यय की राशि में बढ़ोतरी हो जाती थी, जिसका एक मुख्य कारण महीनदारों की सेना में आपातकालिक नियुक्ति होती थी। स्पष्टत: कहा जा सकता है कि मारवाड़ की सेना में स्थाई सेना पर किए जाने वाले खर्च से कई गुना अधिक खर्च रोजीनदारों एवं महीनदारों की सेना पर किया जाता था।

तोपखाने के उपयोग के लिए जोधपुर राज्य के शासक भी अन्य राजपूत शासकों की भांति मुसलमानों पर निर्भर रहते थे। मुसलमानों में भी विशेषकर वे लोग जो मुगलों की सेना में कार्य कर चुके थे। इनमें मुगल, पठान या मेवाती मुसलमान मुख्य थे। मुसलमान तोपची के कार्य में अच्छे पांरगत माने जाते थे। उदाहरणार्थ वि.सं. 1832/1775 ई. में मेड़ता परगना मुख्यालय में पड़िहार जगरूप के तोपखाने हेतु 13 गोलंदाजों को भर्ती किया गया था जिनमें से 10 मुस्लिम, 1 सिक्ख, एवं 2 हिन्दू राजपूत थे, जो निम्नानुसार थे[24]–

6) पठान ईसफ खां	6) पठान फहीम खां
6) मीर अबु खां	6) पठान सादत खां
6) पठान जहूर खां	6) पठान रोशन खां
6) पठान नथे खां	6) पठान गुलाब खां
6) पठान पीर खां	6) पठान रहमत खां
6) राजपूत सीतलसिंह	6) बैंस जालिम सिंह
6) राजपूत धोकलसिंह	

उक्त गोलंदाजों को 6 रुपये प्रतिमाह के हिसाब से वेतन दिया गया था। इसी तरह चौहान अलैदाद खां के तोपखाने हेतु 4 गोलंदाजों को रखा गया था जो पठान हिम्मतखां, शेख फतेह मोहम्मद, पठान समशेर खां एव पठान बुढण खां थे। इन्हें भी 6 रुपये प्रतिमाह के अनुसार वेतन प्रदान किया गया।[25] उक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि मारवाड़ की सेना में सैनिकों की आपूर्ति बड़े स्तर पर मुस्लिम, पुरबिया व अन्य पेशेवर सैनिकों के रूप में की जाती थी।

सन्दर्भ

1. *दफ्तर हजूरी बही नं. 15, वि.सं. 1831-32/1774-75 ई., जोधपुर रिकॉर्ड्स*
2. *वर्ष 1772 ई. में सेना में नियुक्त थोरी-बावरियों को राज्य ने 655 रुपए रोजगार स्वरूप दिए- दफ्तर हजूरी बही नं. 13, वि.सं. 1829/1772 ई., इमेज नं. 36, ऑनलाईन सर्वर, रा.रा.अ.बी.*
3. *सनद परवाना बही नं. 10, वि.सं. 1827/1770 ई.*

4. *किराए पर रखे जाने वाले सैनिक*
5. *दफ्तर हजूरी बही नं. 1, वि.सं. 1810/1753 ई.*
6. *सनद परवाना बही नं. 11, वि.सं. 1828/1771 ई, जोधपुर रिकॉर्ड्स*
7. *सनद परवाना बही नं. 6, वि.सं. 1824/1767 ई.*
8. *विजयसिंह का नंदवाना बोहरों को खरीता, मिति मार्गशीर्ष सुदि 14, वि.सं. 1811 (28 नवम्बर, 1754) गुड़ला के बोहरों को खरीता, मिति माघ सुदि 8, वि.सं. 1811 (5 जनवरी, 1755 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स*
9. *सनद परवाना बही नं. 15, वि.सं. 1832/1775 ई., भाटी सगता (सांचोर) को कमालपुरा गांव पट्टे दिया गया था।*
10. *दफ्तर हजूरी बही नं. 1, वि.सं. 1810/1753 ई.*
11. *सनद परवाना बही नं. 3, वि.सं. 1822/1775 ई., बही नं. 9, वि.सं. 1826*
12. *सनद परवाना बही नं. 9, वि.सं. 1826/1769 ई., पृ. 87 एफ-2, सनद परवाना बही नं. 3, वि.सं. 1822/1775 ई., जोधपुर रिकॉर्ड्स*
13. *सनद परवाना बही नं. 3, वि.सं. 1822/1765 ई.*
14. *वही*
15. *फोज रे एकता री बही नं. 15, वि.सं. 1831/1774 ई., जोधपुर रिकॉर्ड्स, रा.रा. अ.बी.*
16. *दफ्तर हजूरी बही नं. 15, वि.सं. 1831/1774 ई., जोधपुर रिकॉर्ड्स।*
17. *दफ्तर हजूरी बही नं. 1, वि.सं. 1810/1753 ई., जोधपुर रिकॉर्ड्स*
18. *सनद परवाना बही नं. 10, वि.सं. 1827/1753 ई.*
19. *सनद परवाना बही नं. 5, वि.सं. 1823/1766 ई.*
20. *सनद परवाना बही नं. 12, वि.सं. 1829/1772 ई., जोधपुर रिकॉर्ड्स*
21. *बीकानेर री तरफ फोजमेली तिण तालके री बही, नं. 1, वि.सं. 1831/1774 ई.*
22. *बही खजाने रे जमा खर्च री (द.ह.), नं. 1, वि.सं. 1810/1753 ई.*
23. *श्रावण मास के पश्चात् कार्तिक माह में चार माह का खरड़ा (वेतन बिल) तैयार किया गया था। इसके बाद मार्गशीर्ष व पौष माह का पृथक-पृथक वेतन विवरण किया गया था- बही खजाने रे जमा खर्च री (द.ह.), नं. 1, वि.सं. 1810/1753 ई.*
24. *सनद परवाना बही नं. 15, वि.सं. 1832/1775 ई., जोधपुर रिकॉर्ड्स*
25. *सनद परवाना बही नं. 21, वि.सं. 1835/1778 ई., बही नं. 17, वि.सं. 1833/1776 ई. जोधपुर रिकॉर्ड्स*

मेवाड़ में मानवीय व्यवस्थापन : घोइन्दा से गोगुन्दा

अजय मोची

सभ्यता और संस्कृति की शुरूआत जो सिंधु घाटी सभ्यता से भारत के उत्तर-पश्चिम दिशा से शुरू हुई वह दूसरे चरण (वैदिक युग) में भारत के उत्तर और मध्य भाग में फैल गयी। महाकाव्यों व महाजनपदों के युग में यह मानव प्रवास सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैलता चला गया और नवीन राज्यों और क्षेत्रों की स्थापना होती गई। प्रवास और स्थापन्न मानव के प्रमुख क्रियाकलाप है जो वह वर्तमान समय तक करता रहा है चाहे वह प्राचीनकाल में आये, द्रविड व अन्य बाह्य जातियों के आक्रमण, व्यापार व अधिकार से हो या वर्तमान में रोजगार हेतु विदेश में प्रवास या विस्थापन हो यह चलता ही रहा है।

प्रवास और विस्थापन का सबसे महत्वपूर्ण कारक व्यापारिक गतिविधियों और मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ही है। इसमें प्राचीन व मध्यकाल में कई नवीन स्थानों का आबाद किया जो व्यापारिक व सामरिक आवश्यकताओं की पूर्ति, सुरक्षा व अन्य मूलभूत संसाधनों की पूर्ति भी करता हो। इसी तरह एक व्यापारिक, सामरिक व मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक गांव का निर्माण हुआ जो दो काल खण्डों में स्थापित हुआ। ऐसा गांव जो अपनी पुरात्तन जगह से हटकर वर्तमान में उससे कुछ दूर व दक्षिण दिशा में स्थापित हो गया वह है घोइन्दा जिसका वर्तमान नाम है गोगुन्दा।

घोइन्दा- मुहणौत नैणसी ने सर्वप्रथम गोगुन्दा के लिए घोइन्दा शब्द का प्रयोग किया है।[1] घोइन्दा गांव जो अब अतीत के पन्नों पर सिमटा हुआ है वह वर्तमान समय में उदयपुर से 40 किमी दूर उत्तर-पश्चिम दिशा में राष्ट्रीय राजमार्ग 27 पर स्थित है। इसे आमजन धिंडोली भी कहते है। यह एक प्राचीन स्थान है जिसका पता राष्ट्रीय राजमार्ग के निर्माण के समय खुदाई होने पर पता चला। 2007 में खुदाई के समय शीतला माता मंदिर के पास ईंटे, मृदभाण्ड के टुकड़ों व अन्य सामग्री के आधार पर पुरातन प्राचीन गांव का पता चला जो अतीत के पन्नों में सिमटा था।

यह सम्पूर्ण गांव या क्षेत्र एक टीले के रूप में 2 हैक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है। जिसका उत्तर से दक्षिण दिशा में विस्तार 250 मीटर तक है और इसका पूर्व से पश्चिम भाग भी लगभग इतना ही होगा जो राजमार्ग निर्माण के समय तहस-नहस हो चुका है।[2]

खुदाई के बाद वहां दो स्तरों में सभ्यता का पता चला है- प्रथम उत्तर प्राचीन/ऐतिहासिक युग और दूसरा मध्यकालीन युग। ये दोनों स्तर 4.50 मीटर की गहराई में स्थित थे और मध्यकालीन सभ्यता, उत्तर प्राचीन सभ्यता से मात्र 1.50 मीटर की ऊंचाई पर मिले है।[3] जिससे यह पता चलता है कि काफी लम्बे समय तक यहाँ जनसंख्या का वास रहा है।

सबसे निचले उत्खनन क्षेत्र पर पत्थरों से निर्मित एक ढांचा जो 1.70 मी व 2.10 मीटर गहराइ में मिला है। जिसके 8 पत्थरों की दीवार का ढांचा मिला है जो कि एक सुरक्षात्मक दीवार के रूप में प्रतीत होती है, जो सुरक्षात्मक घर या कक्ष के रूप में दिखाई देता है। इससे थोड़ा नीचे एक ओर पत्थरों के समतल धरातल वाला एक कमरा मिला जहां पत्थरों के साथ-साथ बड़ी आकार की ईटें (37x22x7 सेमी) वाली थी मिली है। इसी तरह की बनावट दक्षिण-पूर्वी भाग में खुदाई पर भी मिली है जो प्राचीन काल की सभ्यता को दर्शाती है। घोइन्दा या गोगुन्दा प्राचीन काल से एक महत्वपूर्ण व्यापारिक सामारिक व सुरक्षा केन्द्र के रूप में स्थापित रहा है।

ऊपरी सतह पर जो अवशेष मिले है वे मध्यकालीन सभ्यता को दर्शाते है। उत्खनन में यहां से मृदभाण्डों और ईटों का ढेर मिला है जो प्राय: मध्यकालीन युग को दर्शाता है। ऊपरी सतह से प्राप्त ईटों का आकार 21x13x4 प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त उत्खनन से प्राप्त मृद-भाण्ड जो काल और भूरे रंगों के प्राप्त हुए है जो प्राय: घेरदार, धनुषाकारी गर्दन वाले, ढलान युक्त और काले व लाल रगों से बने हुए मृदभाण्ड मिले जो मध्यकालीन मृदभाण्ड (भूरे व लाल) निर्माणकला के महत्वपूर्ण साक्ष्य है।[5] इस तरह घोइन्दा गांव जो उत्खनित अवशेषों के साथ ही प्राचीन युग से ही एक महत्वपूर्ण व्यापारिक, सामरिक व सुरक्षात्मक केन्द्र के रूप में स्थापित था। यह प्राचीन व्यापारिक मार्ग पर स्थित था, जो दक्षिण व दक्षिण पश्चिम भारत को पश्चिम को उत्तर व उत्तर पश्चिम दिशा से जोड़ता था। गुजरात खम्भात की खाड़ी से यह मार्ग अहमदाबाद, पालनपुर, ईडर, पानरवा, ओगणा, होते हुए गोगुन्दा और वहां से उत्तर में कुम्भलगढ़ और आगे एक मार्ग मोही, भीलवाड़ा, अजमेर, जयपुर, दिल्ली तक दूसरा मार्ग कुम्भलगढ़ से उत्तर-पश्चिम दिशा में मारवाड़, पाली-जोधपुर होते हुए सिन्ध की तरफ जाता था।[6]

गोगुन्दा एक महत्वपूर्ण व्यापारिक व सामरिक क्षेत्र है जो एक भोमट (मेवाड़ का दक्षिण-पश्चिम भाग) जिसकी औसत ऊंचाई समुद्रतल से 500 मी. है को मेवाड़ के सबसे ऊंचे पर्वतीय क्षेत्र भोराट (मेवाड़ का पश्चिम पहाड़ी क्षेत्र) जिसकी औसत ऊंचाई 1000 मी. से अधिक है उनको जोड़ने का कार्य करता है।[7] गोगुन्दा/घोइन्दा का प्रयोग दक्षिण से आने वाले व्यापारिक काफिलों द्वारा सुरक्षा, ठहराव व आवश्यक जरूरतों की पूर्ति हेतु करते थे। गुजरात की तरफ से आने वाले व्यापारिक वर्ग व कबीले चन्द्रावती (परमारों की राजधानी, उत्तर प्राचीन युग) जो वर्तमान सिरोही रोड़ आबू रोड़ के मध्य स्थित है एक महत्वपूर्ण व वैभवशाली सभ्यता का एक भाग था।[8] गुजरात के लोग घोइन्दा

तक की यात्रा या तो चन्द्रावती, कोटड़ा (450 मी)[9] से घोइन्दा आते थे या ईडर, पानरवा, ओगणा होकर आते थे।

शीलादित्य के सामोली (कोटड़ा) अभिलेख (वि.सं. 703/ई 646 ई.) से ज्ञात होता है कि वडनगर (बसन्तगढ़) के व्यापारियों का समूह सामोली जाकर बसे व जिनका मुखिया जेतक था।[10] सामोली से गोगुन्दा होकर उत्तर में कुम्भलगढ़ व उसके आगे प्रमुख व्यापारिक मार्ग था और गोगुन्दा से पूर्व दिशा में बेचड़ नदी मार्ग द्वारा आहाड़, चित्तौड़ व मांडलगढ़ तक जाने का मार्ग था।

इस तरह प्राचीन व्यापारिक मार्गों पर स्थापित होने के साथ-साथ भौगोलिक रूप से भी यह एक अति महत्वपूर्ण क्षेत्र था। भौगोलिक रूप से गोगुन्दा/घोइन्दा अरावली पर्वत माला के उस महत्वपूर्ण क्षेत्र में आता है जो भारत की नदियों के प्रवाह को खम्भात की खाड़ी में जाने और बंगाल की खाड़ी में जाने की तरफ मोड़ता है।[11]

गोगुन्दा से उत्तर व दक्षिण में दो-दो समान्नतर पर्वत श्रेणियां निकलती है जो उत्तर में एक तो कुम्भलगढ़ की तरफ और दूसरी रणकपुर व सिरोही, माउंट आबू क्षेत्र में निकलती है जहां स्थित दर्रो के माध्यम से तात्कालिक आवागमन होता था। दक्षिण की कम ऊंचाई वाली पर्वतश्रेणी भोमट का क्षेत्र जो ओगणा, पानरवा, झाड़ोल तक के मार्गों का निर्माण करता है। इस प्रकार घोइन्दा दक्षिण, उत्तर, पश्चिम व पूर्व में पहाड़ी दर्रों व मार्गों से जुड़ी हुई है, वह एक महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक व व्यापारिक केन्द्र बिन्दु के रूप में स्थापित था।

इसके अतिरिक्त नदियाँ जो हर काल में मार्गों और मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का महत्वपूर्ण स्त्रोत था। उस परिदृश्य में भी घोइन्दा एक केन्द्रीय स्थल के रूप में स्थित था। घोइन्दा से ही पूर्व दिशा की तरफ मेवाड़ की महत्वपूर्ण नदी का उद्गम होता है वह बेड़च नदी।

बेड़च नदी- बेड़च जिसे उदयपुर में आयड़ नदी के नाम से जाना जाता है, वह घोइन्दा के पूर्व दिशा में स्थित पुराने प्रवेश द्वार अम्बा माता के मंदिर की तलहटी से निकलती है और ईसवाल, मदार, थूर, चिकलवास होते हुए फतहसागर, उदयसागर के बाद चित्तौड़ के पास बहती हुई मांडलगढ़ के पास बनास में मिलती है। यह 208 कि.मी. बहती है।[12]

वाकल नदी- गोगुन्दा के पश्चिम पहाड़ों से निकलती हुई महत्वपूर्ण नदी वाकल जो 80 किमी दक्षिण में ओगणा व मानपुर तक प्रवाह के बाद पुनः उत्तर-पश्चिम में मुड़कर कोटड़ा छावनी से 8 किमी बहकर ईडर राज्य में साबरमती नदी से मिलती है।[13]

बनास- बनास नदी मेवाड़ की सबसे महत्वपूर्ण नदी है। वन की आस (बनास)

नदी गोगुन्दा से 22 किमी दूर उत्तर दिशा में जरगा की पहाड़ियों में वैरों के मठ से निकल कर बरवाड़ा कुम्भलगढ़ के निकट से नाथद्वारा, मांडलगढ़ होते हुए दक्षिण बेडच व उत्तर की तरफ आने वाली नदी कोठारी (कोटसरी) से मिलकर रामेश्वर तीर्थ (ग्वालियर) में चम्बल नदी से मिल जाती है।[14]

साबरमती- गुजरात की यह महत्वपूर्ण नदी भोराट के सरवन पहाड़ों से निकल कर सिरोही-कोटडा होते हुए ईडर, जहाँ वाकल नदी इसमें मिलती है, जो खम्भात की खाड़ी में गिरती है। साबरमती नदी का 10 प्रतिशत भाग राजस्थान में है बाकी इसमें शेष सारा हिस्सा गुजरात में है और इसका सारा पानी गुजरात के काम आता है।[15]

इस तरह नदियाँ से भी घोइन्दा जुड़ा हुआ है जो दक्षिण में ओगणा-पानरवा-ईडर, पूर्व में बेड़च नदी से आहाड़, चित्तौड़, मांडलगढ़ पश्चिम में कोटड़ा-सिरोही आबू, पालनपुर व उत्तर में कुम्भलगढ़, खमनौर, नाथद्वारा, अजमेर-जयपुर सीमा तक का हिस्सा जुड़ा हुआ और केन्द्रीय स्थिति रखता है।

भौगोलिक अवस्थिति के कारण घोइन्दा राजनैतिक स्थिति में भी एक महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दु था। घोइन्दा एक व्यापारिक केन्द्र था अतः ईडर के राठौड़ द्वारा उसको उत्तर दिशा की अंतिम चौकी के रूप में स्थापित कर रखा था। अप्रकाशित ख्यातों जैसे सूर्यवंश व राजावली बही में रावल गोयंद या रावल गोविंद का नाम आता है, जो. वि.सं. 342 (ई.285) में गोगुन्दा राज्य पर गद्दी पर बैठा, जिसकी माता का नाम पेमाबाई व उसकी अठारह रानियाँ थी।[16] लेकिन विभिन्न स्त्रोतों के अध्ययन से इस नाम के राजाओं का उल्लेख नहीं मिलता है लेकिन गोगुन्दा का उल्लेख तात्कालिक स्रोतों में मिलना इसकी प्राचीनता को स्पष्ट दर्शाता है।

घोइन्दा उत्खनित क्षेत्र अलावा घोइन्दा के पश्चिम में महादेव जी का मंदिर और बावड़ी भी स्थित है, जिसकी स्थापना महाराणा क्षेत्रसिंह (खेता) के समय की मानी जाती है।[17] वर्तमान में मंदिर में दो शिवलिंग है, एक चतुर्मुख शिवलिंग जिसके साथ गणेश, कार्तिकेय व पार्वती (शिव परिवार) की मूर्तियाँ भी है, जो वर्तमान मंदिर के सामने एक छतरीनुमा ढांचे में स्थित है और वर्तमान वाला शिवलिंग एक मुखी है जो मंदिर के गर्भगृह में है। मंदिर की बनावट और मंदिर से प्राप्त शिलालेखों जिसमें पार्वती की मूर्ति पर शिलालेख जो वि.सं.1479 (ई 1422) व दूसरा शिलालेख जो मंदिर के बाहर एक शिला पर है वह वि.स. 1610 (ई. 1553) का मिला है, जिससे इस मंदिर की प्राचीनता का पता चलता है।[18] प्राचीन घोइन्दा गांव की अवस्थिति का पता इस बावड़ी के मुख से भी लगता है। यह बावड़ी पूर्वोन्मुखी है जबकि वर्तमान गांव मंदिर के दक्षिण पश्चिम में स्थित है। इस बावड़ी मंदिर की बनावट भी मध्यकालीन है।

घोइन्दा के आस पास के शिलालेखों से भी इसकी उपयोगिता व केन्द्रीयता का

पता चलता है। सांवतसिंह कालीन घटेश्वरी माता मंदिर शिलालेख वि.सं. 1279 (ई. 1222)[19] महाराज मंथन सिंह का नरसिंहपुरा के वल्कलेश्वर मंदिर वि.सं. 1251 (ई. 1194)[20] जैत्रसिंह का नान्देशमा सूर्य मंदिर अभिलेख वि.सं. 1279 (ई. 1222) वह इल्तुतमिश की सेना से भूताला युद्ध[21] महाराणा क्षेत्रसिंह का घोइन्दा में ही शीतलामाता मंदिर लेख वि.सं. 1423 (ई. 1366)[22] व महाराणा कुम्भा का पदराडा अभिलेख वि.सं. 1490 (ई. 1433)[23] आदि अभिलेखों से घोइन्दा की उपयोगिता स्थापित होती है।

महाराणा क्षेत्रसिंह ने घोइन्दा महल जो वर्तमान में गोगुन्दा के दक्षिण दिशा में है जिन्हें ईडरिया राठौड़ों ने बनाया था उस पर अधिकार कर लिया और उसके आगे एक तालाब का निर्माण भी करवाया जिसे खेतला तालाब कहा जाता है।[24] महाराणा क्षेत्रसिंह ने ईडर के राज्य को भी विजित किया और ईडर शासक रणमल्ल को कैद कर उसके पुत्र पूंज/पूंजा को राज्य दिया।[25]

महाराणा खेता की मृत्यु भी गोगुन्दा या आस-पास के क्षेत्र में हुई होगी व खेतला तालाब पर ही उनकी छतरी व मंदिर बना हुआ है जो वर्तमान में बहुत जीर्ण-क्षीर्ण अवस्था में है। महाराणा क्षेत्रसिंह का एक मात्र लेख जो घोइन्दा में मिला है, जो घोइन्दा और क्षेत्रसिंह के मध्य पूरकता का परिचय देती है।[25]

महाराणा खेता की मृत्यु भी गोगुन्दा या आस-पास के क्षेत्र में हुई होगी व खेतला तालाब पर ही उनकी छतरी व मंदिर बना हुआ है जो वर्तमान में बहुत जीर्ण-क्षीर्ण अवस्था में है। महाराणा क्षेत्रसिंह का एक मात्र लेख जो घोइन्दा में मिला है, जो घोइन्दा और क्षेत्रसिंह के मध्य पूरकता का परिचय देती है।[26]

महाराणा कुम्भा ने भी मेवाड़ के कई दुर्गों का निर्माण और जीर्णोद्धार करवाया था। दक्षिण दिशा के इस महत्वपूर्ण गिरि वन क्षेत्र घोइन्दा में भी कुम्भा द्वारा जीर्णोद्धार करवाया गया था, वह महल का पूर्वी भाग बताया जाता है। इसके अतिरिक्त गुहिलों की कुल देवी बायण (बाण) माताजी का भी मंदिर घोइन्दा में आज भी स्थित है।[27]

महाराणा प्रताप व महाराणा अमरसिंह ने गोगुन्दा को महत्वपूर्ण कुटनीतिक व राजनैतिक केन्द्र बनाकर प्रयोग किया था। महाराणा प्रताप ने घोइन्दा की एक नवीन शुरूआत हुई जो महाराणा अमरसिंह के बाद गोगुन्दा बना।

गोगुन्दा- महाराणा क्षेत्रसिंह में लेकर कुम्भा व महाराणा उदयसिंह ने गोगुन्दा को एक महत्वपूर्ण रक्षात्मक और अभेयद किले के रूप में प्रयोग किया। चारों तरफ घना जंगल व पहाड़ी क्षेत्र के कारण गोगुन्दा एकाएक न दिखाई देने वाला क्षेत्र था। चारों तरफ से पहाड़ी चढ़कर गोगुन्दा आया जा सकता था और इसी विकट परिस्थितियों को महाराणा प्रताप व अन्य महाराणाओं ने अपने पक्ष में उपयोग किया। महाराणा प्रताप का राजतिलक भी गोगुन्दा में हुआ था। महाराणा ने दर्रो पर चौकियाँ बनाकर सम्पूर्ण क्षेत्र को

सुरक्षित बनाए रखा था। इसके अलावा पहाड़ी युद्ध शैली में महाराणा प्रताप ने मुगल सम्राट अकबर से अपनी स्वतंत्रता और स्वाधीनता को बनाए रखने के लिए सम्पूर्ण मेवाड़ में आदेश दे दिया कि ''कोई भी मुगलों के लिए कृषि उपज कुछ नहीं करेगा और सम्पूर्ण मेवाड़ी जनता और सेना पहाड़ों में जाकर इस स्वतंत्रता और संघर्ष को जारी रखेगी।'' और इसकी अवहेलना पर मौत की सजा तक दी जाएगी।[28]

इस आदेश के फलस्वरूप घोइन्दा गांववासी भी गांव खाली कर गोगुन्दा के दक्षिणी पहाड़ों में बस गये। सम्पूर्ण मेवाड़ी जनता अब पर्वतों और जंगलों में रहने लगी और मुगलों से संघर्ष अनवरत् चलता रहा। मेवाड़-मुगल संघर्ष में सबसे महत्वपूर्ण युद्ध 'हल्दीघाटी का युद्ध' जिसे कर्नल टॉड ने 'मेवाड़ का थर्मोपल्ली' की संज्ञा दी वह भी गोगुन्दा से मात्र 16 कि.मी दूर उत्तर-पूर्व दिशा में है।[29] इस युद्ध को बंदापूनी जो स्वयं युद्ध क्षेत्र में था, उसने 'गोगुन्दा युद्ध' की संज्ञा दी है।[30] प्रताप युद्ध हेतु गोगुन्दा से ही रवाना हुए और युद्ध समाप्ति बाद मुगल सेनापति मानसिंह भी गोगुन्दा में आया था।[31] मानसिंह दूसरी बार गोगुन्दा में आया था उससे अकबर द्वारा भेजे गये चार शिष्ट मण्डल जो प्रताप को कुटनीतिक वार्ता द्वारा मुगल आधिपत्य स्वीकार करवाने आये वे भी गोगुन्दा में प्रताप से मिले थे। अकबर ने क्रमशः जलाल खाँ कोर्ची, मानसिंह, भगवन्तदास व राजा टोडरमल को प्रताप से वार्ता हेतु गोगुन्दा भेजा।[32] इसके बाद अकबर स्वयं भी गोगुन्दा आया व 2 माह तक रहा लेकिन वह प्रताप को बंदी न बना सका।[33]

प्रतापसिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र अमरसिंह महाराणा बने और उन्होंने भी इस युद्ध व संघर्ष को जारी रखा। चावण्ड से लेकर सम्पूर्ण भोराट व विशेषकर गोगुन्दा व सायरा को अपनी सामरिक व प्रधान कार्य क्षेत्र बनाकर मुगलों से संघर्ष जारी रखा। लेकिन आर्थिक दुर्दशा और जन-माल की अत्यधिक क्षति के कारण न चाहते हुए भी अमरसिंह को मुगल शासक जहाँगीर से संधि हेतु बाध्य होना पड़ा। सौ वर्षों से भी अधिक का यह मेवाड़-मुगल संघर्ष का अन्त गोगुन्दा में हुआ। ऐतिहासिक मेवाड़-मुगल संधि जो अमरसिंह व कर्णसिंह के साथ जहांगीर व शाहजहाँ के मध्य 5 फरवरी 1615 को गोगुन्दा सम्पन्न हुई।[34]

महाराणा अमरसिंह व अन्य सांमतगण तब महल के दक्षिण की पहाड़ियाँ जहाँ वर्तमान में ''राणा'' गांव बसा हुआ है। उसके ऊपर घोलिया पहाड़ से नीचे आकर गोगुन्दा महल में शाहजहाँ से मिले और संधि हुई।[35]

इस संधि के बाद वर्तमान गोगुन्दा की नींव पड़ी। घोइन्दा जिसे मुगलों ने तहस-नहस कर दिया था व संधि के बाद जब लोग पहाड़ों से नीचे उतरे तब महल के पास ही बसावट करने लगे। कहा जाता है गोगुनराम मेहता (ब्राह्मण) ने नये गांव की नींव रखी गई थी अतः उनके नाम पर गांव का नाम गोगुन्दा पड़ा।[36]

वर्तमान गोगुन्दा घोइन्दा से दक्षिण दिशा में स्थित है। वर्तमान गोगुन्दा समुद्रतल से 840 मी. की ऊंचाई पर हैं और जबकि घोइन्दा 918 मी. ऊंचाई पर स्थित है। गोगुन्दा का विस्तार 24°45 उत्तरी अंक्षाश और 73°32 पश्चिमी देशान्तर के मध्य फैला हुआ है।[37] वर्तमान में गोगुन्दा गांव 763.4650 हैक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ। यह गांव वर्तमान में उत्तर में टोल नाका (गोगुन्दा) से लेकर दक्षिण में खेतला तालाब व गोगुन्दा महल (रावला) तक और पूर्व में नाईयों के गुडा से आगे (हरीसिह झाला के मकान) से पश्चिम में छापरा व पीता तलाई तक का क्षेत्र आता है।[38]

2011 तक जनगणना में गोगुन्दा की जनसंख्या 8751 थी[39] जो वर्तमान समय 9600 के लगभग है।[40] 2011 की जनगणना में गोगुन्दा में 4483 पुरूष व 4268 महिलाँए थी। वही 0-6 वर्ष आयु के बच्चों की संख्या 1144 थी, जो कुल जनसंख्या का 13.07 प्रतिशत है। यह राजस्थान राज्य के शिशु दर 888 से कम 866 है, लेकिन महिला लिंगानुपात में गोगुन्दा राज्य के औसत (928) से ऊपर 952 है।[41]

गोगुन्दा में वर्तमान में 1850-1900 मकान है।[42] जिनमें सर्वाधिक जनसंख्या क्रमशः तेली, जैन, भील, गमेती, कुम्हार, मेघवाल, क्षत्रिय ब्राह्मण की है। यहाँ जातियों में तेली, जैन, भील, गमेती, मेघवाल, कुम्हार, चौधरी, ब्राह्मण, राजपूत, खटीक, मुस्लिम, भोई, लौहार, सुथार, डाकोत (कंसारा), मोची, सोनी, राव, टेलर, सिंधी, भरावा, गवारिया वाले कुल मिलाकर 21 जातियाँ वर्तमान में गोगुन्दा में निवास कर रही है। कुल जनसंख्या में 87.49 प्रतिशत जनसंख्या हिन्दू मुस्लिम 5.34 प्रतिशत व 7.97 प्रतिशत जैन धर्मावलम्बी की है।[43]

यहां साक्षरता का प्रतिशत 76.09 है जिसमें पुरूष साक्षरता 87.49 प्रतिशत व महिला साक्षरता 64.28 प्रतिशत है।[44] यहाँ कामकाजी जनसंख्या का भाग 3527 है जिसमें 2471 (74.44 प्रतिशत) लोग प्रमुख कार्य जैसे कृषि व व्यवसाय करते है, जबकि 1056 (25.66) प्रतिशत जनसंख्या अन्य कार्य करती है।[45]

गांव में उपखण्ड व तहसील मुख्यालय, सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, पुलिस थाना, उपखण्ड मजिस्ट्रेड (SDM) कोर्ट, 4 सरकारी स्कूल व 2 मदरसे भी है। सरकारी स्कूल के अलावा गैर सरकारी स्कूलों की संख्या 8 है।[46]

1900 से अधिक पक्के मकान जहाँ पानी व निकासी की अच्छी व्यवस्था है, यहां 6 आगनवाड़ी केन्द्र भी है, उसके अलावा सहकारी समिति केन्द्र, किसान केन्द्र, राशन केन्द्र व शिक्षा व जन अधिकारी आदि सभी विभाग स्थित है।[47]

आजादी से पूर्व गोगुन्दा झाला राजवंश के तृतीय ठिकाने के रूप में स्थापित था। यह सादड़ी, देलवाड़ा के बाद झालाओं का प्रमुख ठिकाना था, जो मेवाड़ की सामंती व्यवस्था में प्रथम श्रेणी के सामंत जिन्हें उमराव कहा जाता है उसमें सम्मिलित था।[48]

वर्तमान गोगुन्दा में जल संसाधना की उपब्धता सुगम व व्यवस्थित है। गांव में 2 तालाब खेतला तालाब व राणेराव (राणा) तालाब है, जो जल के अच्छे स्त्रोत है। इसके अलावा जल व्यवस्था हेतु सुखेर तालाब (5 किमी दक्षिण-पूर्व) से पाइप लाइन द्वारा जलापूर्ति की जाती है। इसके साथ ही गोगुन्दा का भू जल स्तर भी अच्छा है। औसतन यहाँ 100 से 130 फीट पर भूजल मिल जाता है। नलकूपों व हैंडपम्पों द्वारा जल की आपूर्ति होती है व जल भी साफ व स्वच्छ आता है।[49] यहाँ की मिट्टी काली दोमट या दोमट है, जो कृषि कार्य के लिए बहुत उपयोगी है। जल संसाधनों व वर्षा की अधिकता से यहाँ वन्य संसाधन व कृषि उपज औसत से अच्छी होती है। यहां का तापमान अन्य क्षेत्रों से कम व जलवायु भी हितकारी व स्वास्थ्यकारी है।[50]

इस तरह सभी संसाधनों, प्राकृतिक व कृत्रिम पर्यावरण से भरा-भूरा गोगुन्दा गांव प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक मेवाड़ में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। व्यापारिक केन्द्र से लेकर वर्तमान तक मेवाड़ में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। व्यापारिक केन्द्र से लेकर सामरिक व सुरक्षात्मक गढ़ी के साथ-साथ अन्य परिदृश्यों में भी गोगुन्दा एक महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता आया है। ऊंची-ऊची पहाड़ियाँ व घने जंगल और वन्य जीवों की उपस्थिति ने गोगुन्दा की सुन्दरता को बढ़ा दिया है।

घोइन्दा से लेकर गोगुन्दा का यह सफर उस स्वर्णिम अतीत को आज तक संजोयों हुए है जो वर्तमान में भी महाराणा प्रताप की कर्मस्थली और मेवाड़ की वीरधरा परम्परा को आने वाले हजारों वर्षों तक बनाए रखेगा गोगुन्दा की वीर भूमि को नमन है।

संदर्भ

1. *सम्पादक बद्रीप्रसाद साकरिया ''मुहंता नैणसी री ख्यात'' मुंहता नैणसीकृत, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1962, प्रथम खण्ड-पृ.सं. 31*
2- *"A late historical and medieval sattlement at gogunda" by J.S. Kharakwal, Dev Kothari and k.p. singh, Shodh patrika, Vol. 65, 2015, pg. 64*
3. *वही, पृ. सं. 67*
4. *वही, पृ. सं. 65*
5. *वही, पृ.सं. 66*
6- *Ram Vallabh Somani "History of Mewar", C.L. Ranka and co., Kitab Mahal, Jaipur, 1976, Page No. 7*
7- *A.N. Bhattacharya "Human Gergraphy of Mewar Himanshu Publication, Udaipur, 2000. Page No. 9-10*
8. *व्यक्तिगत साक्षात्कार डॉ. जीवनसिंह खरकवाल*
9. *श्यामलदास ''वीर विनोद'' प्राक्कथन-प्रो. थियोडोर रिकार्डी (जूनियर) कोलम्बिया विवि न्यूयार्क, मोतीलाल बनारसीदास राजयन्त्रालय, उदयपुर 1886 पुनमुर्द्रण*

दिल्ली, 1986, प्रथम खण्ड, पृ.सं. 103
10. गोपीनाथ शर्मा, ''राजस्थान के इतिहास के स्रोत'' पुरातत्व भाग प्रथम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1983, पृ. सं. 43-49।
11. वीर विनोद, पूर्वोक्त, पृ. सं. 101
12. व्यक्तिगत साक्षात्कार डॉ. देव कोठारी (बेडच नदी, गोगुन्दा स्थित अम्बामाता जी के मंदिर की तलहटी से निकलती थी वर्तमान में नदी सुक्ष्म हो गई है।
13. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, ''उदयपुर राज्य का इतिहास'' भाग प्रथम, राजस्थान ग्रन्थागार, जोधपुर, चतुर्थ संस्करण 2015, पृ. सं. 18
14. Somani, ''उपरोक्त'' Page No. 6
15. बड़वा देवीदान कृत ''मेवाड़ के राजाओं की राणियों, कुंवरो और कुंवरीयो का हाल'' सम्पादक देवीलाल पालीवाल, गिरिशन नाथ माथुर, ''साहित्य संस्थान'', उदयपुर 1985, पृ.सं. 46 व 53
17. व्यक्तिगत साक्षात्कार : डॉ. देव कोठारी।
18. A.N. Pinhey " History of Mewar" Book Treasure Jodhpur, Reprint, 1996, Appendix Page No. 34-35
19. गोपीनाथ शर्मा ''पूर्वोक्त'' पृ. सं. 98
20. श्री कृष्ण ''जुगनू'', राजस्थान के प्राचीन अभिलेख, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2013 पृ. 99
21. गोपीनाथ शर्मा, ''पूर्वोक्त'', पृ. 101
22. गोपीनाथ शर्मा, ''पूर्वोक्त'', पृ. 134
24. वीर विनोद ''पूर्वोक्त'' प्रथम भाग 301
25. ओझा, उपरोक्त पृ.सं. 232
26. करणसिंह झाला व्यक्तिगत साक्षात्कार
27. वीर विनोद 'उपरोक्त' द्वितीय खण्ड, पृ.सं. 145-146
28. सम्पादक सज्जनसिंह राणावत, के.एस. गुप्ता व स्वरूपसिंह चूण्डावत महाराणा प्रताप से सम्बन्धित स्रोत एवं स्थान चिराग प्रकाशन, 2002, पृ. 2006
29. कर्नल टॉड कृत, राजस्थान का इतिहास अनुवादक केशव ठाकुर, सम्पादन लोकेश शर्मा, साहित्यागार, जोधपुर, 2008 पृ.सं. 17-61
30- Balaoni " Muntakhab-U1 Tawarikh" Trolwe, Vol II. Page No. 161-162
31- Badaoni, Page 267
32- Translated Alexander Rogers & Ed. Henry Beveridge "TUZZK-i-Jahangiri" Low Price Publications, Delhi, Repeat 2006, I Part, 273, 277.
35- Jahangiri, Page No. 277
36. व्यक्तिगत साक्षात्कार डॉ. देव कोठारी

37. Rajputhana Gazelters ''उपरोक्त'' पृष्ठ 11110
38. व्यक्तिगत साक्षात्कार-सी.पी. मेघवाल वर्तमान पटवारी गांव गोगुन्दा व गोगुन्दा बंदोबस्त रिपोर्ट
39- Indian Census 2011: गोगुन्दा रिपोर्ट (www.census2011gogunda)
40. व्यक्तिगत साक्षात्कार श्री गागूलाल मेघवाल-वर्तमान सरपंच गोगुन्दा (2001 में 7000 जनसंख्या व 2011 में 8751 तो 10 वर्षों में 1751 जनसंख्या बढ़ी तो 5 वर्षों में 870 के लगभग बढ़ोतरी)
41. Indian Census 2011: ''पूर्वोक्त''
42. Census 2011: ''पूर्वोक्त''
43. Census ''पूर्वोक्त''
44. Census ''पूर्वोक्त'
45. Census ''पूर्वोक्त''
46. व्यक्तिगत साक्षात्कार-खुर्शीदहुसैन शेख, वरिष्ठ लिपिक, ब्लॉक शिक्षा अधिकारी गोगुन्दा
47. Census ''पूर्वोक्त''
48. वीर विनोद ''पूर्वोक्त'' प्रथम, पृ.सं. 139
49. मोहनजी तेली-जल संसाधन विभाग गोगुन्दा
50. Gazetteers ''पूर्वोक्त'' पृ. 110

मारवाड़ में रामानन्दी सम्प्रदाय की कूवा शाखा का उद्‌भव एवं विकास

प्रो. सोहन कृष्ण पुरोहित

मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन एक अत्यन्त व्यापक आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ। इस आन्दोलन के प्रेरक संतों ने युग युग से पीड़ित समाज के निम्न वर्गों को आत्म सम्मान प्रदान किया। उन्होंने उपक्षितों में आशा और विश्वास पैदा करते हुए जीवन की एक नई दिशा का संकेत दिया।[1] उस समय भारतीय समाज का निम्न वर्ग वैदिक कर्म काण्ड से त्रस्त था। भक्ति आन्दोलन के संतों ने ऊंच-नीच के भेदभाव का खण्डन करते हुए कर्म-काण्ड विमुख सरल धर्म का प्रचार किया।

मध्यकाल में भारत पर मुस्लिम आक्रमण हो रहे थे। इन आक्रमणों से मन्दिर और मूर्तियां ध्वस्त हो रही थी। तब इस विनाश से त्रस्त जनता में संतों ने धर्म के प्रति आस्था पैदा की और उनमें ईश्वर भक्ति का मंत्र फूंककर सान्त्वना प्रदान की।[2]

इतिहासकार ताराचन्द का मत है कि भारत में भक्ति आन्दोलन की उत्पत्ति हिन्दू धर्म का इस्लाम के साथ सम्पर्क होने पर उसके ऊपर इस्लाम का जो प्रभाव पड़ा उसके परिणाम स्वरूप हुई।[3] अधिकांश इस मत से सहमत नहीं है। भारत में भक्ति का प्रचार तो इस्लाम के उदय से बहुत पहले हो चुका था। वैदिक काल में श्रवेताश्वतर उपनिषद में भक्ति का उल्लेख मिलता है। गीता में भक्ति को भगवद् प्राप्ति का सुगम साधना बताया गया है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा था-हे अर्जुन। मन को मुझ में लगाओ, मेरे भक्त बनो, मुझे ही प्रणाम करो, तो तुम मेरे पास पहुंच जाओगे। यह मेरा सत्य वचन है। सब कर्मों को छोड़कर केवल मात्र मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हारी सब पापों की रक्षा करूंगा। शोक मत करो। गीता में भगवान के वचन भक्तियोग का आधार है।[4]

दक्षिणी भारत में 800 ई. से 1700 ई. के मध्य आलवारों और नायनारों वैष्णव एवं शैव भक्ति का प्रचार किया। इसके पश्चात् भक्ति का प्रचार-प्रसार सम्पूर्ण उत्तरी भारत में भी हो गया। कहा जाता है कि हिन्दू धर्म के क्रान्तिकारी अभियान के महान दार्शनिक शंकराचार्य ने आगे बढ़ाया। फिर चैतन्य महाप्रभु, नामदेव, तुकाराम, रामानुज, रामानन्द, रविदास, नामदेव, पीपा, वल्लभाचार्य और कबीरदास ने भक्ति आन्दोलन को गति प्रदान की। विशिष्टाद्वैतवाद के समर्थक रामानुज ने दक्षिण भारत में सर्वगुण सम्पन्न,

सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान और सर्वत्रव्याप्त ईश्वर की सगुण भक्ति का प्रचार किया। रामानुज की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले श्री सम्प्रदाय के राघवानन्द की शिष्य परम्परा में रामानन्द प्रसिद्ध संत हुए जो जातिवाद और ऊंच-नीच को नहीं मानते थे। वे पहले संत थे जिन्होंने राम और कृष्ण भक्ति का प्रचार किया।[5]

रामानन्द सम्प्रदाय का मारवाड़ में प्रसार

रामानन्दी सम्प्रदाय की कूबा शाखा की जानकारी झींथड़ा की ख्यात से ज्ञात होती है। झीथड़ा गांव जोधपुर से कोस 14 अग्नि कोण में और सोजत से 10 कोस की दूरी पर पश्चिम दिशा में स्थित है। झीथड़ा की ख्यात को नरसिंह दास ने आसकरण बोड़ा के सहयोग से लिखा था। यह ख्यात किसी ठिकाने की ख्यात न होकर रामानन्द सम्प्रदाय की कूबा शाखा की ख्यात है जो महाराजा जसवन्तसिंह (1638-1678) प्रथम के समय लिखी गई। यह ख्यात राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के जोधपुर केन्द्र पर ग्रन्थांक 15463 पर संरक्षित है।[6]

स्वामी रामानन्द की श्रद्धा रामानुज स्वामी के प्रति थी। रामानन्द की शिष्य परम्परा में श्रियानन्द स्वामी के शिष्य हरियानन्द हुए। उनके शिष्य राघवानन्द से रामानन्द ने दीक्षा ली थी। झीथड़ा की ख्यात से रामानन्द स्वामी के जीवन से सम्बन्धित जानकारी मिलती है उन्होंने अपने गुरू राघवानन्द की आज्ञा से नये सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ।

झीथड़ा की ख्यात से रामानन्द के शिष्य अनन्तानन्द सुरसुरानन्द, सुखानन्द, नरहरिदास, पीपाजी, कबीरदास जी, भावानंदजी, सेनजी, योगानन्दजी, धनाजी, गालवानन्दजी और रामदासजी के नाम मिलते हैं। रामानन्द ने जीवन भर 'राम' तारक मंत्र का प्रचार करते हुए लोगों को सीताराम का भक्त बनाया।

रामानन्द का मत था कि भक्ति का आचरण करने वालों के लिये वर्णाश्रम का बन्धन उचित नहीं है। चार वर्ण का कोई भी व्यक्ति भगवत शरण होकर भगवत् भक्ति का आचरण करता है तो उनके साथ खानपान में भेदभाव नही करना चाहिए। वैष्णवों में जाति भेद समझना अपराध है। सभी भगवत् भक्त एक जात के हैं। रामानन्द ने स्वयं एवं उनके शिष्यों ने विभिन्न स्थानों की यात्रा करके अपने सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार किया। झीथड़ा की ख्यात में रामानन्द एवं उनके शिष्यों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

स्वामी रामानन्द के शिष्य सुरसरानन्द थे। वे यात्रा करते हुए पुष्कर तीर्थ आये। वहां उन्होंने गरीबानन्द को मंत्रोपदेश देकर शिष्य बनाया और आज्ञा दी कि तुम इस क्षेत्र में भगवत धर्म का प्रचार करो। गरीबानन्द मारवाड़ की तरफ आये तब गोपालदासजी को मंत्रोपदेश दिया। उनके शिष्य नरहरिदास जी ने स्वामी कूबाजी को मंत्रोपदेश देकर अपना

शिष्य बनाया। स्वामी रामानन्द से केवल कूबाजी तक का कुर्सीनामा झीथड़ा की ख्यात में दिया गया है जो इस प्रकार है

स्वामी रामानन्द, स्वामी सुरसुरामन्द, स्वामी माधवानन्द, स्वामी गरीबानन्द, स्वामी लक्ष्मीदास, स्वामी गोपालदास, स्वामी नरहरिदास, स्वामी कूबाजी[7]।

स्वामी कूबाजी का प्रारम्भिक जीवन

झीथड़ा की ख्यात के अनुसार स्वामी कूबा का जन्म से नाम केवलदास था और वे कुम्हार जाति के गोपालदास के पुत्र थे। केवलदास का कूबा नाम बाद में पड़ा। डॉ. भवानीसिंह पातावत के अनुसार केवलदास कूबा मथुरा के निकट स्थित गांव बोरजी के निवासी पं. रामजी मिश्र के पुत्र थे और उनकी माता का नाम सुखदेवी थी। केवलदास पं. रामजी मिश्र के तृतीय पुत्र थे और उनका जन्म संवत् 1500, वैशाख सुद ग्यारस को हुआ था। पं. रामजी मिश्र के प्रथम पुत्र का नाम भगवत और द्वितीय का नाम प्रेमजी था। एक बार पं. रामजी मिश्र अपनी पत्नी और पुत्र केवलराम के साथ द्वारिका यात्रा पर जाने का निश्चय किया। उन्होंने अपने दो पुत्रों को अपने गांव में छोड़ दिया था। जब वे द्वारिका की यात्रा करके वापिस लौट रहे थे तो मारवाड़ की सीमा में पहुंचकर विश्राम किया। पं. मिश्र जब सो रहे थे तो रात को सांप ने काट लिया जिससे उनकी मृत्यु हो गई। वहां गांव के ही एक परिवार ने पं. मिश्र जी की पत्नी को धैर्य दिलाया और पण्डित जी का अन्तिम संस्कार करने की स्वीकृति मांगी। तब पण्डिताइन ने पूछा कि आप कौन है तब उस परिवार के पुरूष ने कहा मेरा नाम गोपाल है और मै जाति का कुमावत हूं। मैं मारवाड़ के जैतारण परगने के गांव खीनावड़ी का निवासी हूं और खेतीबाड़ी का धन्धा करता हूं। मैं भी द्वारिका की यात्रा करके आ रहा हूं। तब पण्डिताईन ने अपने पुत्र को गोपालजी को दे दिया और कहा कि बड़ा होने पर उसे अच्छी शिक्षा दिलवाये। तत्पश्चात पंण्डिताइन पति के शव की परिक्रमा करने के लिये उठी और उन्हें प्रणाम करते ही गिर पड़ी और उसका भी देहान्त हो गया तब गोपाल जी और उनकी पत्नी ने पं. रामजी मिश्र तथा उनकी पत्नी का दाहसंस्कार किया और बालक केवलराम को घर पर ले आए और उसका पालन पोषण करने लगे। गांव खीनावड़ी के पण्डितों ने गोपाल जी को कहा यह बालक अत्यन्त भाग्यशाली है यह बात सुनकर गांव के लोग भी प्रसन्न हो गये।[8]

स्वामी कूबाजी का गृहस्थ जीवन

कूबाजी जब युवा हुए तो उनके पिता गोपालदासजी ने उनका विवाह पुरी नामक कन्या से करवा दिया। जिससे उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो मिट्टी खोदते हुए मर गया। इस घटना से कूबाजी बहुत दु:खी हुए। इस दौरान उनकी भेंट नरहरिदास से हुई जो गांव बालोसाई में रहते थे। केवलराम कूबा ने प्रार्थना करके कहा कि मुझे अपना शिष्य बनावें। तब प्रत्युत्तर में नरहरिदास ने कहा कि तुम गृहस्थ हो और तुम्हारे स्त्री भी है वह

कहां जाएगी। तब केवल जी ने उनसे कहा कि महाराज न तो मैं स्त्री चाहता हूं न कुटम्ब परिवार को मैं तो केवल राम के प्यारा की सेवा करना चाहता हूं। उन्होंने आगे कहा कि स्त्री के कुसंग से भक्ति का नाश होता है इसलिये अब स्त्री का अंग संग नहीं करूंगा। केवलदास की भक्ति देखकर गुरु नरहरिदास ने उनके सिर पर हाथ रख दिया और समझा कर घर पर लाये। केवलराम की स्त्री प्रसन्न हुई तथा नरहरिदास को कई दिनों तक घर पर रखकर मत्रांपदेश लिया। फिर केवलराम को द्वादतिलक और तुलसी की कंठी प्रदान की। नरहरिदास ने केवलजी को कहा कि अब भगवान की भक्ति करो और हरिभक्तों की सेवा करो। संतों का अनादर मत करो। जहां संत रहते है वहां भगवान बसते है।

नरहरिदास ने केवलराम को उपदेश देकर नरसिंहजी भगवान की सेवा सौंप कर कहा कि इनकी पूजा करो, इनके सिवाय दूसरा कोई देव नहीं है। इसलिये पुष्प-फल से इनकी सेवा करो तथा श्री नृसिंह भगवान के भोग लगाकर पीछे भोजन ग्रहण करो। झीथड़ा की ख्यात में लिखा है-

केवलदास जपै हरिनाम
करे सेवा श्री सालगराम
नरसिंह रूप वर्ण है भूरो
केवलभाव भक्ति में पूरो।।

गुरू के उपदेश प्राप्त करने के बाद केवलराम अपनी पत्नी सहित साधु सेवा और नृसिंह भक्ति में समय व्यतीत करने लगे।[9]

केवलदास का कूबा नामकरण

केवलराम का कूबा नाम कैसे पड़ा इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख कई ग्रन्थों तथा झीथड़ा की ख्यात में मिलता है।

केवलजी एवं उनकी पत्नी दिन रात संतों की सेवा करते थे और साधुओं के भोजन हेतु मिट्टी के तसले बनाने लगे। एक बार गांव में 30 साधु आये तो लोगों ने भिक्षा के लिए केवल का घर बतला दिया। वे सब केवलजी के घर पर आए तो उन्होंने उनके लिये भोजन की व्यवस्था की। केवलजी के घर पर सब लोगों के भोजन जितनी सामग्री नहीं थी। इसलिये वे एक बनिये के यहां गये तथा उससे भोजन सामग्री उधार देने के लिये कहा। बनिये ने कहा कि तुम्हे भोजन सामग्री तो दे देता हूं इसके बदले तुम्हे मेरा कुआं खोदना पड़ेगा, इस शर्त को केवलजी ने स्वीकार कर लिया। वे सामग्री लेकर घर पर आए तथा साधुओं हेतु भोजन तैयार किया। फिर भगवान के भोग लगाकर सभी साधुओं को भोजन करवाया। साधुओं ने प्रेम से प्रसाद पाया और वहां से चले गये। कुछ दिनों बाद केवलजी ने बनिये की जमीन पर कुआं खोदना प्रारम्भ कर दिया। जब कुआं करीब आधा खुद गया तब उसकी मिट्टी ढह गई और केवलजी उसमें दब गये। लोगों

ने कहा कि वे मिट्टी में दबकर मर गये होंगे। तब उनकी पत्नी रो कर घर आ गई।

इस घटना के कई दिनों बाद एक साधुमण्डली गांव में आई और केवलजी के बारे में पूछताछ की। गांव वालों ने केवलजी के मिट्टी में दब जाने की घटना का वर्णन कर दिया। साधुओं ने रात को उस स्थान पर डेरा डाला जहां पर केवल जी कुआ खोदते हुए दब गये थे। साधु लोग जब रात को सो रहे थे तब उन्हें उस स्थल पर सीताराम सीताराम की ध्वनी सुनाई दी। उन्होंने भूमि के कान लगाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि सीताराम की ध्वनी अन्दर से आ रही है। साधुओं ने इस घटना की सूचना गांव वालों को दी तब उस स्थान पर फिर खुदाई की गई जहां केवलजी मिट्टी में दब गये थे। जब उस कुएं की मिट्टी खोदी गई तो ज्ञात हुआ कि कुएं में निर्मल जल की धारा बह रही है। भगवान की मूर्ति आसन पर विराजमान है और सामने केवलजी सीताराम का जप करने में लीन है।

यह दृश्य देखकर सब लोगों ने केवलजी को प्रणाम किया और उनकी भक्ति की प्रशंसा की। केवलजी को कुए में कई दिनों तक झुककर तपस्या करनी पड़ी थी इसके उनके शरीर में कूबड़ पड़ गई। इसलिए इस घटना के बाद भक्त केवलराम कूबाजी के नाम से प्रसिद्ध हो गए। कूबाजी की प्रसिद्धि इतनी बढ़ गई कि लोग दूर दूर से उनके दर्शन करने के लिये आने लगे। इस प्रकार संत कूबाजी से कूबा सम्प्रदाय का प्रारम्भ हुआ।[10]

कूबाजी की भक्ति का वैभव और कुछ चमत्कार[11]

कूबाजी के जीवनवृत में कई चमत्कार दृष्टिगोचर होते है जिनका विवरण झीथड़ा की ख्यात में मिलता है। केवलदास नरसिंह चतुर्दशी को साधुओं का निमंत्रण देकर बुलाने तथा प्रसादी का आयोजन लापसी का भोग लगाते थे। एक बार उनके शत्रुओं ने चिट्या लिख कर सैकड़ों साधु बुला लिये थे लेकिन केवलदास द्वारा तैयार की गई लापसी प्रभु कृपा से समाप्त नहीं हुई। इस प्रकार लापसी अखूट होने का चमत्कार दिखलाई दिया।

कूबा केवलदास ने वैराग्य व्रत लिया इसके बाद स्त्री की ओर नहीं देखते थे। एक रात जब वे सोये हुए थे उनकी स्त्री पास आकर सो गई और जब जागे तो उनका हाथ उसके सीने पर रखा था। ग्लानिवश कूबाजी ने अपना हाथ काट डाला परन्तु गुरुजी की कृपा से उनका हाथ पुनः जुड़ गया।

साधुमन कम वचन से सेवे केवलदास।
हाथ कट्यो फिर नवो दियो श्री हरि पूरी आस।।

एक बार उनकी स्त्री ने बर्तन पकाने के लिए रखे तथा उनके आसपास आग लगा दी लेकिन उनमें बैठे बिल्ली के बच्चे जीवित निकले। इसी प्रकार एक बार मिट्टी के 20

तसले 30 सोने के तसलों में बदल गये। एक बार साधुओं हेतु जवार का खीच बनाया जो सामग्री कम होने पर चालों में बदल गया।

कूबाजी की पत्नी साधु सेवा करते हुए तंग आ गई तो उसने साधुओं हेतु भोजन बनाने से मना कर दिया। तब कूबाजी ने उसे घर से निकाल दिया। उसने भी किसी दूसरे व्यक्ति को पति बना लिया। तब स्वयं भगवान कृष्ण ने आकर उनके यहां पर सेवा कार्य किया।

स्वामी कूबाजी द्वारा झीथड़ा आकर पूजा स्थल बनाया

झीथड़ा में आने से पूर्व कूबाजी के चमत्कारों का प्रचार तेजी से होने लगा। एक बार कूबाजी सोये हुए थे तब भगवान् नरसिंह ने स्वप्न में आकर झीथड़ा गांव में जाकर मन्दिर बनाने की आज्ञा दी। कूबाजी अगले दिन झीथड़ा आ गये और और नृसिंह प्रतिमा को स्थापित कर लकड़ियों से मन्दिर बनाया। जब इस घटना की सूचना गांव के ठाकुर साहब के यहां पहुंची तो उनकी माताजी कूबाजी के दर्शन करने आई। फिर बहुत सी भोजन सामग्री साधुओं के लिये भिजवाई। धीरे धीरे गांव के लोग कूबाजी के दर्शन करने आने लगे। यद्यपि गांव ठाकुर ने कूबाजी को अपना आश्रम उठाने को कहा लेकिन नृसिंह भगवान के दृष्टान्त से ठाकुर ने विरोध करना छोड़ दिया, बाद में ठाकुर ने नृसिंह भगवान का पक्का मन्दिर बनवा दिया।

कूबाजी के आश्रम में कृष्ण कैसे आये इस सम्बन्ध में भी एक रोचक घटना है। हैदराबाद का साधु गोविन्द देव वृन्दावन आया। यहां पर उसने स्वप्न में श्री कृष्ण के दर्शन हुए। उन्होंने उसे कहा कि यमुना जी के चीर धारा के भीतर मेरी मूर्तियां है तुम उन्हें निकालकर पूजा करो। साधु को जल के भीतर तीन मूर्तियां मिली। इन मूर्तियों को लेकर वह झीथड़ा कूबाजी के दर्शन करने आया। कई दिनो बाद अपने शहर के लिये रवाना हुआ। जब वह इन मूर्तियों को उठाने लगा तो वे भारी हो गई। तब उसने बाध्य होकर कहा कि भगवान की यहीं पर रहने की इच्छा है। यह कहकर उन्हें हाथ जोड़ा और प्रस्थान किया। तब कूबाजी ने भगवान के सम्मुख हाथ जोड़ कर कहा

थांरी सेवा थे करो, मारी थारे हाथ,
केवल कूबो यूं कहे मिंदर पधारो नाथ।

साधु से प्राप्त मूर्ति को कूबाजी ने मन्दिर में श्रीजानराय के नाम से स्थापित किया तथा हर वर्ष जानराय को रेवाड़ी में बैठाकर चैत्र वदि प्रतिपदा को जुलूस रूप में तालाब पर ले जाकर उन्हें स्नान करवाये तथा मेला भरने की परम्परा बन गई है।

नाभाजी द्वारा रचित भक्तमाल (सम्पादक गणेशदास रामेश्वरदासी खण्ड चतुर्थ पृ॰ 311) में लिखा है एक महात्मा जयपुर से रामचन्द्रजी की मूर्ति लेकर रवाना हुआ और

मार्ग में कूबाजी के यहां झीथड़ा में रूका जब वह जाने लगा तो भगवान की मूर्ति उठाने पर नहीं उठी। तब बाध्य होकर उस साधु ने वह मूर्ति कूबाजी को सौंप दी। कूबाजी ने इनकी प्रतिठा करके उनका नाम जानराय रामचन्द्र जी रखा। झीथड़ा में जानराय रामचन्द्र अब तक विराजमान है।

वास्तव में कुबाजी के गुरू द्वारा मूर्ति कृष्ण की है लेकिन वहां कृष्ण के साथ राम की भी सामान रूप से पूजा की जाती है।[12]

कुछ अन्य चमत्कारिक घटनाएँ – एक बार कुबाजी ने द्वारिका जाकर रणछोड़ जी के दर्शन करने का निश्चय किया। वे झीथड़ा से प्रस्थान कर वाडाई तालाब पहुंचे वहां रात्रि में उन्हें रणछोड़दास के दर्शन हुए। उन्होंने कूबाजी को कहा तुम्हें द्वारिका जाने की आवश्यकता नहीं है। अचानक कूबाजी के शरीर पर तत्प मुद्रा तथा शंखचक्र अंकित हो गये।

कुबाजी ने गोमती में स्नान की इच्छा प्रकट की। तब उन्हें रणछोड़ जी ने वहां जाने से मना किया था और कहा द्वारिका से पण्डे आकर तुम्हारी माला ले जाकर गोमती व समुद्र के बीच रखेगे तब दोनों का संगम होगा। यह माला तुम्हें होली के दूसरे दिन चैत्र वदि प्रतिपदा को तुम्हारे तालाब में दिखलाई देगी तुम उस दिन स्नान कर लेना जो गोमती स्नान के बराबर हो जायेगा। वर्षा होने पर हमारी मूर्ति को सिंहासन के साथ तालाब पर लाना उस दिन मैं भी वहां पर आ जाऊंगा। वहां पर सभी लोगों को द्वारिका का फल मिलेगा। कूबाजी ने झीथड़ा लोगों को अकाल से भी मुक्त करवाया।

कांकाणी ठिकाने का झीथड़ा को गुरू द्वारा घोषित करना

कूबाजी की चमत्कारों के कारण ख्याति फैलने लगी तब कांकाणी ठिकाने का ठाकुर आईदान जी चांपावत कूबाजी के दर्शन हेतु झीथड़ा आये और उन्होंने फिर झीथड़ा को अपना गुरू द्वारा घोषित किया और अपने वंशजों को यहां की मर्यादाओं का पालन करने का आदेश दिया। वे भी थड़ा से मुकुन्द जी की मूर्ति कांकाणी ले गये और वहां स्थापित की। आदानोत चांपावत राठौड़ आज भी विवाह के आगामी के अवसर पर भी थड़ा के गुरू द्वारा में भेंट वगैरह भेजते है।[14]

कूबाजी के गुरूद्वारा की परम्पराएं

झीथड़ा गुरू द्वारा के गादी पर विराजमान व्यक्ति निहड़ा (स्त्री रहित) रहता है। यहां रसोई पंच संस्कार युक्त वैष्णव से करवाकर जानराय जी के भोग लगाया जाता है। यहां का साधु गुरू द्वारा की मर्यादा तोड़ देता है तो उसे झीथड़ा ठिकाना (गुरू द्वारा) से निकाल दिया जाता है। यहां निवास करने वाले वैष्णवों का निम्न नियमों की पालन करना पड़ा है।

1. भद्र रूप रहना, 2 गोपी चन्दन तिलक धारण करना, 3. यज्ञोपवीत रखना, 4. गुरू के वाक्य का पालन करना, 5. तप्त मुद्रा धारण करना, 6. राम मंत्र का जप करना, 7. कमण्डल का जल पात्र रखना, 8. तुलसी की माला पहनना, 9. चोटी रखना, 10. धुले हुए सफेद वस्त्र धारण करना।[15]

कूबाजी देह त्याग[16]

कूबाजी ने अपनी वृद्धावस्था देखते हुए देह त्यागने का निश्चय किया। उन्होंने सच्चे साधु के गुणों वाले चेले दामोदर दास को संत सेवा करने का आदेश दिया और अपनी गद्दी पर नियुक्त किया। फिर समाधि लगा कर ध्यान करते हुए सांसारिक देह का त्याग कर दिया। झीथड़ा गुरू द्वारे का कुर्सीनामा इस प्रकार है—1. श्री स्वामी कूबाजी, 2. श्री स्वामी दामोदर दासजी, 3. श्री स्वामी उदेराज जी, 4. श्री स्वामी हरभक्तजी, 5. श्री स्वामी प्रहलाद दास जी, 6. श्री स्वामी कनीराम जी, 7. श्री स्वामी पीताम्बरदास जी 8. श्री स्वामी भागवतदासजी

जोधपुर के राठौड़ राजाओं द्वारा झीथड़ा गुरू द्वारे को पट्टा प्रदान करना

रोहिट ठाकुर भगवतसिंह की प्रार्थना पर महाराजा विजयसिंह जी ने संवत् 1816 में चैत्र वदि द्वितीया को गांव झीथड़ा सांसण ठाकुर तानराय जी को चढना जिसकी रेख 2000 रु. थी। संवत 1817 में खांडा के निशान सहित मन्दिर को ताम्रपत्र प्रदान किया। विजयसिंहजी ने हरभक्त दास जी के देवलोक हो जाने पर प्रहलाद दास जी जोधपुर आये तब संवत् 1845 में मातम पोसी कराई। महाराजा ने उन्हें दुसाला ओढ़ाकर 51 रु. भेंट किये। स्वामी कनीराम जी को महाराजा भीमसिंहजी ने 1856 में जोधपुर में मोतीबाई मन्दिर पधार पर मातम पोसी कराई।

महाराजा मानसिंह ने महन्त कनीराम जी को जोधपुर के किले में बुलवा कर उन्हें एक दुसावा तथा 51 रु. भेंट किये। कन्नीराम जी इच्छानुसार महाराजा मानसिंह ने पीताम्बर दास जी को झीथड़ा गादी का महन्त मानकर संवत् 1891 में खजाने से 100 रु. दुसावा भिजवाया था तथा सनद प्रदान की। इसी प्रकार महाराजा तखतसिंह ने मोतीबाई मन्दिर में जाकर महन्त कनीराम जी तथा महन्त पीताम्बर दास जी को दुपट्टा प्रदान किया। फिर महन्त कनीराम जी तथा पीताम्बर दास जी किले पधारे तब फूल महल में उनका सत्कार किया और 51 रु. भेट किये। कनीराम जी के बाद भागवतदास जानराय मन्दिर की गादी के महन्त बने। झीथड़ा में पीताम्बरदास जी झींथड़ा ठिकाने की खूब सेवा की उन्होंने ठाकुर जी को सैकड़ो रूपया भेंट करवाया तथा मन्दिर की आय में वृद्धि की। वे कुष्ठ रोग का अच्छा करते थे।भागवत दास जी को भी महाराजा तखतसिंहजी ने जोधपुर किले के कांच महल में बुलाकर उनका अभिनन्दन कर एक दुसाला तथा 51 रु. भेट तथा उनके लिए जीनस कोठार से भेजने का आदेश दिया।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि झीथड़ा के जानराय जी का मन्दिर ठिकाना मानकर उसकी अलग से ख्यात लिखी गई जिसे जोधपुर दरबार ने स्वीकृति प्रदान की। इस ख्यात से हमें रामानन्दी सम्प्रदाय की कूबा शाखा के उद्भव, विकास, महन्तों की परम्परा का इतिहास कूबाजी के चमत्कार और मारवाड़ के राजाओं द्वारा झीथड़ा के संतों का सत्कार करने और राठौड़ों की चाम्पावत शाखा द्वारा जानराय मन्दिर को अपना गुरू द्वारा मानने की जानकारी मिलती है।[17] ख्यात ठिकाना झीथड़ा से ज्ञात होता है कि केवलदास कूबाजी द्वारा स्थापित गुरू द्वारे में राम और कृष्ण दोनों की समान रूप से भक्ति की जाती है। यहां दोनों शक्तियों में परेहज न करके उन्हें समान रूप में सम्मान प्रदान किया जाता है। राम नाम जप, मोहमाया का त्याग और साधु सेवा करना कूबा सम्प्रदाय का मूल मंत्र है। इस गुरू द्वारा में जाति का भेदभाव नहीं किया जाता है।

संदर्भ

1. *वर्मा हरिशचन्द्र, मध्यकालीन भारत (750-1540 ई.) पृ. 475, 480, हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1983।*
2. *गुप्ता बी.एल., पेमाराम, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ. 238, जयपुर 2000*
3. *वही*
4. *गुप्त शिवकुमार (सं), भारतीय चिन्तन का इतिहास, पृ. 44 जयपुर 1999*
5. *वही, पृ. 257-260*
6. *भाटी हुकमसिंह (सं), वीरवर चांपाजी के वंशज एवं उनके गुरूद्वारे झीथड़ा की ख्यात, पृ. 65, जोधपुर 2014*
7. *वही, पृ. 73-76*
8. *वही, पृ., पातावत, भवानीसिंह, आस्था रौ उजास, पृ. 68-71, जोधपुर 2004*
9. *भाटी, पूर्वो. पृ. 82-86*
10. *वही, पृ. 94-98, पौद्दार, हनुमान प्रसाद, भक्त सप्तरत्न, पृ. 17-22, गीता प्रेस गोरखपुर संवत् 2056 श्री प्रियादास श्री भकमाल (स.श्री सीताशरण भगवान प्रसाद रूपकला), पृ. 29-835 लखनऊ, 1993, भाटी हुकमसिंह, राजस्थान के ऐतिहासिक दुर्लभ ग्रन्थों का अनुशीलन, पृ. 463-467 जोधपुर 2016।*
11. *झीथड़ा की ख्यात, पृ. 93-94, 89-90, 91-92, 99-100, 100-102*
12. *वही, पृ. 107-117*
13. *वही, 112-114*
14. *वही, 115-116*
15. *वही, पृ. 172-173*
16. *पूर्वो, पृ. 117, श्री भक्तमाल, पृ. 833, भाटी हुकमसिंह, राजस्थान के ऐतिहासिक दुर्लभ ग्रन्थों का अनुशीलन, पृ. 466।*
17. *झीथड़ा की ख्यात, पृ. 117-122 भाटी, वही, पृ. 467*

Dr. Gajanand Choudhary Prize Paper

राजस्थान के धार्मिक सहिष्णुता के संवर्धन में जैन मन्दिर स्थापत्य कला का योगदान

डॉ. रविन्द्र टेलर

प्राचीन काल से ही स्थापत्य कला ने इतिहास के निर्माण में महत्ती भूमिका निभाई है। स्थापत्य के बोधक विभिन्न शब्द प्रचलन में रहे जिनमें वास्तुशास्त्र अधिक व्यावहारिक और तर्कसंगत प्रतीत होता है। शिल्पशास्त्र का अर्थ भी प्रायः वही है। लेकिन इसका प्रयोग मूर्तिकला के लिये किया जाता है। परम्परागत घरानों के अतिरिक्त, स्थापत्य के कुछ प्रतिष्ठापक वर्ग और भी है। वैश्य, मेवाड़, गुर्जर, पंचोली और समूचे पश्चिम भारत में काष्ठ-शिल्प, पारम्परिक भवनों के निर्माण आदि में विशेष दक्ष माने जाते है। जयपुर और अलवर के गौड़ ब्राह्मणों की संगमरमर की शिल्पकला प्रसिद्ध है। कुछ वर्ग धातु-शिल्प और चित्रांकन में भी दक्ष है। मध्यदेश, उत्तर प्रदेश और दिल्ली के जांगड़ काष्ठ-शिल्प और पांरपरिक भवनों के निर्माण में प्रसिद्ध है।[1]

स्थापत्य की प्राचीन परम्परा इन घरानों की वंश परम्परा के साथ तो चलती ही रही, उसे अनेक ग्रंन्थों में लेखबद्ध भी किया गया।[2] इन ग्रन्थों में आदि से अंत तक प्रायः एक ही सिद्धान्त का अनुसरण है, किन्तु परस्पर अन्तर भी बहुत है। उनके उद्देश्यमूलक अंतर से उपर्युक्त घराने बने और विषय मूलक अन्तर से स्थापत्य में नागर, बेसर, द्रविड़ आदि शैलियां प्रचलित हुई। जिनका विस्तार से वर्णन शोध ग्रन्थ के छठे अध्याय में किया गया है।

विभिन्न ग्रन्थों में से विश्वकर्मा के दीपार्णव[3], मण्डन के रूप मण्डन[4] और प्रासादमण्डन[5] , नाथजी की वास्तुमंजरी[6] आदि में यथास्थान जैन स्थापत्य का भी विवेचन हुआ है। किन्तु वस्थुसार-पयरण[7] में जैन स्थापत्य का विस्तार से वर्णन मिलता है। प्राकृत भाषा में लिखे इस ग्रन्थ के तीन अध्याय है। गृह प्रकरण, बिंबपरीक्षा-प्रकरण और प्रासाद प्रकरण। दो सौ तिहत्तर गाथाओं का यह ग्रन्थ धंध कलश कुल के जैन श्रीचन्द्र के पुत्र फेरू ने अलाऊदीन खिलजी के शासनकाल में विक्रम संवत् 1372 (1315 ईस्वी) की विजयादशमी के दिन कल्याणपुर में समाप्त किया।[8]

जैन वास्तुकारों व मूर्तिकारों ने इन ग्रन्थों के सिद्धान्तों का पालन करते हुऐ अन्य धर्मों व सम्प्रदायों के स्थापत्य नियमों का भी पालन किया। समय व स्थान की

आवश्यकतानुसार स्थापत्य के सिद्धान्तों का प्रयोग किया। जिससे समन्वित स्थापत्य कला का विकास हुआ जिसने जातीय संकीर्णता को कम करने में महत्ती भूमिका निभाई तथा धार्मिक सहिष्णुता को प्रोत्साहित किया। इसी धार्मिक सहिष्णुता के कारण जैन मन्दिर शैने:-शैने: अन्य धर्मावलम्बियों की आस्था के भी केन्द्र बने। वस्तुत: जैन मन्दिरों में हिन्दू, बौद्ध, इस्लामी, फारसी स्थापत्य शैलियों की विशिष्टताओं का समावेश किया गया। जिससे जैन मन्दिरों ने धार्मिक सहि णुता के विकास में योग दिया। इस अध्याय में जैन मन्दिरों की उन विशिष्टताओं को उजागर किया गया है जिन्होंने सहिष्णुता को प्रोत्साहित किया, वे निम्न है:-

ओसियां का महावीर मन्दिर

जोधपुर के निकट स्थित ओसियां के महावीर मन्दिर को राजस्थान का प्राचीनतम जैन मदिर माना जाता है[9] लेख, स्थापत्य व शिल्पकला के आधार पर इस मन्दिर का निर्माण काल आठवीं-नवीं शताब्दी ईस्वीं मानते हैं। इस मन्दिर की देवकुलिकायें प्रतिहार शैली का प्रतिनिधित्व करती है। इसके अतिरिक्त इस मन्दिर में विद्यादेवियों, द्विभुज दिकपालों, सरस्वती, महालक्ष्मी का अंकन है। महावीर मन्दिर की द्विभुज एवं चतुर्भुज महाविद्याओं को उनके वाहनों व अलंकरणों से युक्त दिखाया गया है। इनके अंकन से ऐसा प्रतीत होता है कि इनके निरूपण में बप्पभट्टि की 'चतुर्विशतिका' के निर्देशों का पूरा पालन किया गया है। सरस्वती की मूर्ति के हाथों में पद्म व पुस्तक तथा दूसरी मूर्ति के हाथों में वीणा दिखाई गई हैं अम्बिका की मूर्ति सिंह पर आरूढ़ है और आम्रलुम्बि व बालक से युक्त बतायी गई है। मन्दिर के गूढ़ मण्डप की तरह त्रिक मण्डप का शिखर दो पंक्तियों वाला है। इन पर गौरी, वरोट्या, चक्रेश्वरी, महाकाली व वाग्देवी की आकृतियाँ बनी हुई है। इस प्रकार यह मन्दिर देवकुलिकाओं व मूर्तियों का समृद्ध भण्डार है। एम. ए. ढाकी ने देवकुलिकाओं की मूर्तियों की प्रशंसा करते हुऐ कहा है कि ये महामारू स्थापत्य कला का सर्वोत्कृष्ट लघु कृतियाँ है।[10]

घाणेराव का महावीर मन्दिर

पाली जिले में स्थित घाणेराव का महावीर मन्दिर दसवीं शताब्दी ईस्वी का है। मन्दिर में 14 महाविद्याओं, चक्रेश्वरी, अम्बिका आदि की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित है। मन्दिर के अर्थमण्डप की सीढ़ियों के पास भी दो देवकुलिकाओं की मूर्तियों देखी जा सकती है जिनमें से एक के हाथों में पद्म, अकुंश, पाश एवं फल है व दूसरी देवी के हाथों में फल, पद्म, दण्ड व जलपात्र आदि बताये गये हैं। ढाकी ने इस मन्दिर का विस्तृत अध्ययन किया है। उन्होंने इस मन्दिर की वास्तुकला को मारू गुर्जर शैली की मेदपाट (मेवाड़) शाखा की उत्कृष्ट कृति कहा है।[11]

नाड्लाई के जैन मन्दिर

पाली जिले में स्थित नाड्लाई नामक कस्बे में 10-11वीं शताब्दी ईस्वी के आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरों के श्वेताम्बर जैन मन्दिर अवस्थित है। इन मन्दिरों में अलंकरण के लिये भारतीय देवी-देवताओं का प्रयोग किया गया है जिनमें अम्बिका, शान्तिदेवी, सरस्वती, रोहिणी, वज्राकुंशी व अप्रतिचक्रा प्रमुख है। देवियों की मूर्तियों के हाथों में अंकुश, जलपात्र, धनुष, पारा, वरदमुद्रा बताये गये हैं। जो हिन्दू देवमण्डल प्रभावित प्रतीत होता है।

सेवाड़ी का महावीर मन्दिर

पाली जिले के सेवाड़ी गाँव में 10वीं शताब्दी ईस्वी में बना महावीर स्वामी का जैन मन्दिर है।[12] इस मदिर में भी यक्षिणियों व महाविद्याओं की मूर्तियाँ विद्यमान है। चक्रेश्वरी व काली की मूर्तियाँ भी जिन आकृतियों के पार्श्व में बनी हुई है। इसके अतिरिक्त अन्य देवियों को नरवाहना, नागवाहना व अजवाहना के रूप में दिखाया गया है तथा उनके हाथों में पुस्तक, पात्र, दण्ड, खड्ग एवं फलक आदि दिखाये गये है।[13] जो ब्राह्मण देवियों के समान है। इस प्रकार अकंन सामाजिक समरसता का परिचायक है।

आबू पर्वत स्थित विमलवसही व लूणवसही का मन्दिर

विमलवसही मन्दिर

राजस्थान के सिरोही जिले में आबू पर्वत पर स्थित विमलवसही नामक आदिनाथ के जैन मन्दिर का निर्माण 1032 ईस्वी में करवाया गया। बाद में इस मन्दिर का विस्तार किया गया जिसमें रंगमण्डप, भमिका व 54 देवकुलिकाओं का निर्माण कुमारपाल के मंत्री पृथ्वीपाल व उसके पुत्र धनपाल ने करवाया था।

इस मन्दिर में यक्षिणियों, महाविद्याओं का सुन्दर चित्रण देखने को मिलता है यहाँ देवकुलिकाऐं व गूढ़मण्डप के दहलीजों पर सर्वानुभूति व अम्बिका की मूर्तियाँ मिलती है, केवल दक्षिणी प्रवेश द्वार पर चक्रेश्वरी का उत्कीर्णन मिलता हे। इस मन्दिर में यक्षिणियों को सामान्यत: यक्षों के साथ संयुक्त रूप से दिखाया गया है। गर्भगृह एवं देवकुलिका नं. 21 की दो ऋषभ मूर्तियों में यक्ष गोमुख व यक्षिणी चक्रेश्वरी को तथा देवकुलिका नं. 19 में सुपार्श्व मूर्ति में यक्ष सर्वानुभूति व यक्षिणी अम्बिका को, देवकुलिका नं. 40 की पार्श्वमूर्ति में यक्ष धरणेन्द्र, यक्षिणी पद्मावती को, देवकुलिका नं. 17 में सर्वानुभूति व अम्बिका, गोमुख चक्रेश्वरी को दिखाया गया है।

विमलवसही मन्दिर में महाविद्याओं का चित्रण सर्वाधिक लोकप्रिय माना जाता है। यहाँ 16 महाविद्याओं का दो स्थानों पर यथा रंगमण्डप व देवकुलिका नं. 41 में जो अकंन प्रस्तुत किया है वह वास्तव में बड़ा आकर्षक लगता है। रंगमण्डप के अंकन में

महाविद्याओं को उनके वाहनों व आयुधों से युक्त बताया गया है। जिससे लगता है कि यहाँ के अंकन में 'निर्वाणकलिका' के निर्देशों का पूरी तरह पालन किया गया था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रंगमण्डप में महाविद्याओं को चतुर्भुजाकार रूप में प्रदर्षित किया गया है। जब कि देवकुलिका नं. 41 में महाविद्याओं को षडभुजाकार रूप में बताया गया है रंगमण्डप में अंकित कुछ विद्यादेवियों के वाहन व आयुद्धों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जैन शिल्पकारों ने हिन्दू देवकुल के तत्वों को सम्मिलित करने का प्रयास किया है।[14] महाविद्याओं के अतिरिक्त शान्तिदेवी, सरस्वती, अम्बिका की भी अनेक मूर्तियाँ मिलती है। मन्दिर की छत पर अम्बिका की बीस भुजाकार रूप में निरूपित किया गया है। इसमें अम्बिका को सिंह पर ललितासन में आरूढ़ बताया गया है। देवी के हाथों को खड्ग, शक्ति, सर्प, ढाल, त्रिशूल, वरद व अभयमुद्रा से युक्त बताया गया है। महालक्ष्मी को ध्यानमुद्रा में दिखाया गया है। इसके शीर्ष भाग में दो गजों की आकृतियाँ भी उत्कीर्ण बताई गई है। इन मूर्तियों में महालक्ष्मी के नीचे के दोनों हाथों को सामने की और गोद में व ऊपरी भुजाओं में पद्म प्रदर्शित किये गये है। इनके अतिरिक्त षडभुज अष्ट दिग्पालों की आकृतियाँ बनी हुई है। इस मन्दिर की भ्रमति के छतों पर सप्तमातृकाओं की आकृतियाँ भी मिलती है जिससे लगता है कि बाह्मण धर्म की भांति जैन धर्म में भी इनकी उपासना प्रचलित थी। यहाँ के रंगमण्डप में 16 महाविद्याओं के वाहनों व आयुधों व सप्तमातृकाओं के अंकन से ऐसा लगता है कि जैन मन्दिर स्थापत्य पर हिन्दू मन्दिर स्थापय का व्यापक प्रभाव पड़ा था।

लूणवसही मन्दिर

यह मन्दिर नेमिनाथ को समर्पित है। विमलवसही के समान लूणवसही में भी महाविद्याओं, अम्बिका यक्षी एवं शान्तिदेवी की मूर्तियाँ देखने को मिलती है। इनके अतिरिक्त अम्बिका की सात, महालक्ष्मी की पाँच एवं हंसवाहिनी सरस्वती की मूर्तियाँ मिलती है। मन्दिर की छतों पर फलफूल, बेल-बूटें, नर्तक-नर्तकियाँ, वादक दल, शस्त्राभास, नृसिंह अवतार, कालिया दमन, कृ ण जन्म के प्राचीनतम उत्कीर्णन मिलते है जो तक्षण कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। उपरोक्त दोनों मन्दिर भुवनेश्वर ञ्जौली है, जिसमें शिखरों की ऊँचाई कम होती है। श्री एच. के. सेन के अनुसार[15] ''संगमरमर का पतला और पारदर्शी छिलके की भांति, पत्थर की तक्षण कला अन्य जगहों की कला से कहीं आगे बढ़ जाती है, और उसमें उत्कीर्ण अंश सुन्दरता के स्वप्न दिखाई देते है।''

ओसियां का सचियामाता मन्दिर

सचियामाता का सर्वप्रसिद्ध मन्दिर जोधपुर से लगभग 65 किलोमीटर दूर उत्तर में ओसियां नामक नगर में एक ऊंची पहाड़ी पर स्थित है।[16] जैन धर्म के ओसवाल सम्प्रदाय के लोग इस देवी को अपनी कुलदेवी मानकर उपासना करते है। सिद्धसेनसूरि कृत

'सकल तीर्थ स्त्रोत' में इसका वर्णन उपलब्ध है।

मन्दिर के गर्भगृह में सचियामाता की मूर्ति कसौटी पत्थर की बनी हुई है। इसके दाएं हाथ में खड्ग स्पष्ट दिखाई देती है। ञ्जो ा अंग व आयुद्ध वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होने के कारण स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देते है। उपकेशपट्टावली[17] व नाभिनन्दन-जिनोद्वारप्रबन्ध में इस देवी की सचिया माता के रूप में परिणति का वृतान्त मिलता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने चामुण्डा को सात्विक रूप में परिवर्तित करके इसे सचियामाता का रूप प्रदान किया था। यहाँ से प्राप्त विक्रम संवत् 1236 के लेख से इसे सचिका (सच्चिका) कहा गया है। खरतरगच्छ बृहद गुहावली नामक ग्रन्थ में आचार्य जिन वल्लभ सूरि द्वारा भी इसी प्रकार का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। मन्दिर के गर्भगृह की पिछली दीवार पर उत्तरपूर्वी कर्णरथ पर विक्रम सं. 1234 का एक अभिलेख उत्कीर्ण है जिसमें घो ाडांक्षु गोत्रीय साधु गयपाल द्वारा चण्डिका, ञ्जीतला, श्री सच्चिकादेवी मन्दिर के जंघाधर को बनाने की बात कही गई है। अभिलेख में वर्णित चण्डिका, शीतला, सच्चिका, क्षेमंकारी इसी क्रम में सचियामाता के मन्दिर की दीवारों पर विद्यमान है। सच्चिकादेवी की मूर्ति मन्दिर की पिछली दीवार की भद्र-रथिका (मुख्य ताक) में प्रदर्शित महिषासुरमर्दिनी है। मन्दिरों के पीछे की दीवारों के मुख्य ताकों की प्रतिमाऐं उन्हीं देवी-देवताओं की होती है जो उनके गर्भगृह में अधिष्ठित होते हैं। अत: स्पष्ट है कि जब विक्रम सं. 1234 में जंघाधर पर ये मूर्तियाँ सजाई गई होगी तो मूल मन्दिर में भी महिषासुरमर्दिनी की ही मूर्ति रही होगी। इस मन्दिर के शिखर की पिछली रथिका तथा शुकनास में भी महिषासुरमर्दिनी की मूर्तियों की उपस्थिति इसी मान्यता की पुष्टि करती हे। डॉ. मधुसुदन ढाकी ने इस मन्दिर का विस्तृत अध्ययन किया है। उनकी मान्यता है कि मन्दिर के सभामण्डप में रखी क्षेमंकरी देवी की प्रतिमा मूलत: सचिया माता मन्दिर में अधिष्ठित रही होगी।[18] जे. एन. बर्नजी का मत है कि वस्तुत: चण्डिका, चामुण्डा, क्षेमंकरी व महिषासुरमर्दिनी ये सभी दुर्गा की अभिव्यक्तियाँ मानी जानी चाहिये।[19]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि सच्चियामाता को जैन व हिन्दू धर्म में समान रूप से स्वीकार किया जाता है। इस मन्दिर पर भी नागर शैली का प्रभाव दृष्टिगत होता है जैसे:- मन्दिर का ऊंचाई पर स्थित होना, सीढ़ियों का होना, आयताकार गर्भगृह का होना आदि। यह मन्दिर हिन्दू व जैन स्थापत्य कला का संगम सा प्रतीत होता है। जिसमें सभी धर्मावलम्बी आकर पूजा अर्चना कर सकते हैं। इस प्रकार इस मन्दिर ने सामाजिक समरसता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मोरखाना की सुसाणी देवी

बीकानेर नगर से लगभग 22 मील दक्षिण पूर्व में मोरखाना नामक कस्बे में सुसाणी देवी का 11वीं शताब्दी ईस्वीं का मन्दिर विद्यमान है। इस मन्दिर से प्राप्त वि.सं.

1229 के लेख में भी इस देवी के नाम का उल्लेख मिलता है। मोरखाना के इस मन्दिर में प्रवेश पूर्व की ओर से होता है। अधखुले सभामण्डप के स्तम्भ घटपल्लव शैली के है। मण्डप में संवत् 1573 के शिलालेख में सुसाणी देवी की स्तुति की गई है। मन्दिर के जघां भाग पर नानाविध सुरसुन्दरी, दिग्पाल व देव प्रतिमायें जुड़ी हुई है, जिनकी संख्या 15 है। पीछे की ओर की ताकों में सुरसुन्दरी, देवी सुसाणी है। यहाँ सिंहवाहिनी अम्बिका का सुन्दर अंकन मिलता है। यह मन्दिर मूलत: शैव मन्दिर माना जाता है क्योंकि इसके पीछे की प्रधान ताक में आठ हाथों वाली अम्बिका देवी की प्रतिमा जुड़ी है। देवी को सिंह पर बैठे दिखाया गया है। यह मन्दिर धार्मिक समन्वय की अनूठी मिसाल प्रस्तुत करता है।

लोद्रवा का पार्श्वनाथ मन्दिर

जैसलमेर नगर से 10 मील दूर स्थित, जैसलमेर पंचतीर्थी का प्राचीनतम व प्रसिद्ध तीर्थ, लोद्रवा, जैसलमेर की प्राचीन राजधानी व लोद्र शाखा के राजपूतों का गढ़ था। जिनेश्वर सूरि की प्रेरणा से राजा सागर के पुत्रों श्रीधर एवं राजघर ने 11वीं शताब्दी में पार्श्वनाथ मन्दिर निर्मित करवाया जो समन्वित स्थापत्य की दृष्टि से अनुपम है। स्थापत्य की दृष्टि से इसकी शैली, नीचे हिस्से में दक्षिण भारतीय हिन्दू व ऊपरी हिस्से में उत्तर-पश्चिम भारतीय प्रकार की दृष्टिगत होती है। यहां के स्तम्भ अजन्ता व ऐलोरा की तरह कम उंचाई वाले व तराशे हुए हैं। अलंकरण के लिये कल्पवृक्ष, फलफूलों का प्रयोग किया गया है जो हिन्दू अलंकरण शैली है।

बघेरा का शान्तिनाथ व आदिनाथ मन्दिर

बघेरा केकड़ी से 17 किलोमीटर पूर्व में स्थित है। बघेरा शब्द 'व्याघ्र' (बाघ) से व्युत्पन्न है। 1161 ईस्वीं के बिजौलिया अभिलेख में भी व्याघ्रेरक (बघेरा) का उल्लेख है। यह 'वराह नगर' के नाम से भी प्रसिद्ध था। यहाँ वैष्णव धर्म के साथ-साथ जैन मत भी लोकप्रिय था। यहां से उपलब्ध अम्बिका, पद्मावती, ब्रह्माणी और सरस्वती की मूर्तियाँ स्थापत्य के समन्वय की सूचक है। शान्तिनाथ मन्दिर अतिशय क्षेत्र कहलाता है जो मनोकामना पूर्ति की दृष्टि से जैन-अजैन दोनों में ही लोकप्रिय है। विभिन्न लोगों की आस्था का यह क्षेत्र धार्मिक सहिष्णुता के माहौल को तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

वरमाण का महावीर मन्दिर

वामनवाड़, सिरोही रेल्वे स्टेशन से 7 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। अभिलेखों एवं साहित्य के आधार पर इसके प्राचीन नाम 'ब्राह्मणवाड़ा', 'ब्रह्माण', 'ब्राह्मवाटक' आदि मिलते है। महावीर मन्दिर की कलात्मकता व शिल्प दर्शनीय है ही, पर इसकी

श्रृंगार चौकी, खेल मण्डप एवं प्रदक्षिणा में उत्कीर्ण मानसी की खुदाई बहुत प्रभावशाली है। राज सभा, महल, साधुविहार एवं वनस्पतिक वैभव, सुन्दर ढंग से उकेरे हुए हैं। इस कुराई एवं रंगकारी को काँच से ढँक लिया गया है। इस मन्दिर के परकोटे में ही 1192 ईस्वीं का, परमार धारावर्ष द्वारा निर्मित, धारेश्वर महादेव का मन्दिर है, जिसकी पूजा, जैन मन्दिर की तरफ से होती है। धर्म समन्वय का यह सुन्दर उदाहरण है।

जैसलमेर का चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर

जैसलमेर के जैन मन्दिर, गुजरात के सोलंकी व बघेला मन्दिरों के स्थापत्य से प्रभावित है। जगती, गर्भगृह, मुखमण्डप, गूढ़ मण्डप, रंग मण्डप, स्तम्भों व शिखर आदि में यहाँ सोलंकी व बघेला मन्दिरों का स्पष्ट अनुकरण दृष्टिगत होता है। पार्श्वनाथ मन्दिर अपने स्थापत्य व मूर्तिकला के लिये प्रसिद्ध है। मन्दिर के मुख्य द्वार के तोरण पर सुन्दर मूर्तियाँ, वादक, वादिनयों की नृत्य मुद्रायें, हाथी, सिंह व घोड़े की मुखाकृतियाँ, बेलबूटों का अंकन व दोनों पार्श्वों में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ है, जिनमें भैरव मुख्य है।

सोलंकी व बघेला शैली के अनुरूप इस मन्दिर में सभा मण्डप, गर्भगृह, गूढ़मण्डप, छ: चौकी व भमति की कुल 51 देवकुलिकाओं का संयोजन है। सभामण्डप की छत में विभिन्न मुद्राओं में वादिनियों को इस प्रकार सजाया गया है कि रास लीला नृत्य का आभास होता है। इस प्रकार इस मन्दिर का स्थापत्य हिन्दू मन्दिर स्थापत्य के समान प्रतीत होता है।

जैसलमेर के शान्तिनाथ और अष्टापद मन्दिर से भी समन्वित स्थापत्य कला के दर्शन होते हैं। इसी मन्दिर में दशावतारों सहित श्री लक्ष्मीनाथ की मूर्ति भी स्थापित है जो धार्मिक सौहार्द्रता को प्रदर्शित करती है। इसके अतिरिक्त शिखर की शैली, 12 अप्सराओं का अंकन, दीवारों पर शिवपार्वती की आकृतियाँ, गन्धर्वों का चित्रण खजुराहो, कोणार्क के मन्दिरों से प्रभावित माना जाता है। चन्द्रप्रभु स्वामी मन्दिर में गणेश की विभिन्न मुद्राओं को प्रदर्शित किया गया है। ऋषभदेव मन्दिर के मुख्य सभा मण्डप के स्तम्भों पर हिन्दू-देवी-देवताओं का भी रूपांकन है। कहीं राधा व कृष्ण, कहीं अकेले कृष्ण वंशीवादन करते हुऐ प्रदर्षित है। गणेश, शिव, पार्वती, सरस्वती, इन्द्र व विष्णु की प्रतिमाऐं भी उत्कीर्ण है।

बरसलपुर के जैन मन्दिर

जैसलमेर से 140 मील तथा बीकानेर से 92 मील दूर, यह एक प्राचीन नगर है। यहाँ लक्ष्मीनाथ मन्दिर के साथ ही पार्श्वनाथ मन्दिर है और दोनों को भोग एक ही साथ लगाया जाता है। लक्ष्मीचन्द्र सेवक ने जैसलमेर तवारीख के पृष्ठ 186 पर लिखा है, ''मन्दिर एक में श्री लक्ष्मीनाथ जी व श्री पारसनाथ जी सामल विराजे व आरोगे है, जुदा

करे तो विघ्न हुवै।'' वैष्णव व जैन धर्म समन्वय का यह अनूठा उदाहरण है।[20]

नाडोल के जैन मन्दिर

पाली जिले के नाडोल, जिसे नड्डुल भी कहते है, ये ग्यारहवीं शताब्दी के बने नेमिनाथ, शान्तिनाथ व पद्मप्रभु के श्वेताम्बर जैन मन्दिर अवस्थित हे। इन मन्दिरों से चक्रेश्वरी व शान्तिदेवी की चतुर्भुज मूर्तियाँ प्राप्त होती है। मूर्तियाँ पद्म तथा वरद् मुद्रा में दिखायी गई है। सरस्वती की वीणा व पुस्तक धारण की हुई चार मूर्तियाँ प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त ऐसी देवी आकृतियाँ है जिन्हें त्रिशूल, गदा, चक्र, सर्प, धनुष, परशु धारण किये दर्शाया गया है। इस प्रकार का अंकन प्राय: ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित मन्दिरों में प्राप्त होता है।

ऋषभदेव का केसरिया जी मन्दिर

उदयपुर जिला मुख्यालय से 70 किलोमीटर की दूरी पर ऋषभदेव में भगवान श्री केसरियाजी का मन्दिर भारत के पुरातन शिल्प का अद्भुत उदाहरण है। विशाल परिसर संगमरमर पत्थर से निर्मित है। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि यह 1100 खंभों पर निर्मित जिसमें कहीं भी चूने का जोड़ नहीं है। मन्दिर में डेढ़ लाख आकृतियाँ है। ये आकृतियाँ एक दूसरे से एकदम निराली है।

श्रीमद् भागवत के अनुसार भगवान श्री ऋषभदेव विष्णु के आठवें अवतार है और जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भी। संसार में सर्वाधिक केशर चढ़ाने से केसरिया जी, काले रंग की मूर्ति होने से कालिया बावजी, धूला भील द्वारा मूर्ति लाने पर धुलेव देव तथा भागवत के अनुसार ऋषभदेव नाम से भगवान को जाना जाता है। भील लोग श्र)ा से कालिया बावजी तथा धुलेवा धणी के नाम से श्रद्धा पूर्वक केशर चढ़ाने के लिये यहाँ आते है। प्रतिमा पाषाण निर्मित, पद्मासन मुद्रा में साढ़े तीन फीट की है। यह समचतुम्र-संस्थान युक्त और अत्यन्त चिताकर्षक है। मूलनायक के ऊपर विशाल और भव्य शिखर है। इसके अतिरिक्त चारों दिशाओं में चार शिखर है, जो काफी विशाल है। मन्दिर में छोटे-बड़े 49 शिखर है।

जैसे ही हम केसरिया जी के मन्दिर में प्रवेश करते है, दो बड़े-बड़े पाषाण गज दिखाई देते है। ये एक चबूतरे पर बने हुऐ हैं, उसके ऊपर छत में 'वर्षा यंत्र' है। थोड़ा सा आगे जाने पर 'जल घड़ी' दिखाई देती है। इसी जल घड़ी के अनुसार मन्दिर की दिनचर्या चलती है। मन्दिर की पूजा अर्चना का क्रम आठ प्रहरों में विभाजित है। मन्दिर के ऊपर चढ़ने से पूर्व दायीं और भगवान चारभुजा जी का मन्दिर है तथा थोड़ा आगे जाने पर सहस्रफणा पार्श्वनाथ की मूर्ति के दर्शन होते हैं। तीस कदम की दूरी पर भगवान शिव का मन्दिर है जो संगमरमर से निर्मित है। चातुर्मास में हजारो भक्त शिव की उपासना करते

है और मन्दिर में कथा श्रवण एवं अर्चना करते हैं।

शिव मन्दिर के पास होलिका दहन स्थल है जहां होली दहन होता है। अब हम मन्दिर के ऊपर चढ़ते हैं, चढ़ते ही दस कदम की दूरी पर एक विशाल सभा मण्डप है, जिसमें एक तरफ श्रीमद् भागवत मण्डप बना हुआ है। निज मन्दिर के समक्ष भरत-बाहुबलि संघर्ष, बाहुबलि सन्यास आदि प्रकरणों का उत्कीर्णन है। अंलकरण के लिये यक्षी चक्रेश्वरी, हाथी, सिंह का अंकन मिलता है। स्तम्भों में नव चौकियों का प्रयोग किया गया है। सभा मण्डप के ऊपर की छत पर काले पाषाण से निर्मित धूला भील और उसके परिवार की मूर्तियाँ है।

प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा अष्टमी को भगवान के जन्मोत्सव पर विशाल मेले का आयोजन होता है जिसमें आस-पास से हजारों आदिवासी, हिन्दू, जैन एवं देश-विदेश से हजारों भक्त लोग आकर दर्शन का पुण्य अर्जित करते हैं। इस प्रकार हिन्दू, जैन एवं आदिवासियों की श्रद्धा का केन्द्र केसरिया जी मन्दिर साम्प्रदायिक सद्भाव की अनूठी मिसाल है।

अन्य मन्दिर

पाली जिले के सादड़ी कस्बे में स्थित पार्श्वनाथ मन्दिर से चतुर्भुज महाविद्याओं, सरस्वती, अप्सराओं की मूर्तियाँ मिलती है। अलवर जिले के सनोली नामक कस्बे से प्राप्त मन्दिर में विद्यादेवियों व यक्षिणियों का अंकन मिलता है।

सिरोही जिले में स्थित मूँगथला, बांसवाड़ा से 13 किलोमीटर दूर स्थित तलवाड़ा, लूणी नदी के किनारे अवस्थित साँचौर एवं उदयपुर के निकट आहड़ जैन धर्म के प्रमुख केन्द्र थे किन्तु जैन धर्म के साथ-साथ यहाँ वैष्णव व शैव धर्म का भी विकास हुआ, मन्दिरों का निर्माण हुआ जो धार्मिक सहि णुता का परिचायक है।

इस प्रकार मन्दिर स्थापत्य ने धार्मिक सहिष्णुता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मन्दिरों में हिन्दू स्थापत्य की शैलियों के साथ-साथ इस्लामी स्थापत्य कला का भी अंकन किया गया। बीकानेर से प्राप्त 16वीं शताब्दी का पार्श्वनाथ मन्दिर जिसका निर्माण भाण्ड नामक व्यापारी के द्वारा करवाया गया था, इस पर स्पष्टत: इस्लामिक स्थापत्य शैली का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस मदिर में मुगल व हिन्दू स्थापत्य कला का समन्वय दिखाई देता है। शिखर हिन्दू शैली का तथा मण्डप मुगल शैली का है। यह मन्दिर अकबर के काल में स्थापत्य के क्षेत्र में विकसित गंगा-जमुनी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। बीकानेर स्थित नेमिनाथ मन्दिर पर अरबी स्थापत्यकला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

जैसलमेर के निकट अमरसर से प्राप्त आदिनाथ मन्दिर पर मुगल स्थापत्य कला

का प्रभाव दृष्टिगत होता है। जैसे - गवाक्ष, तिबारियाँ, बरामदे आदि। इस मन्दिर में रंग मण्डप के स्थान पर अंलकरण युक्त बरामदे है। 14वीं-15वीं शताब्दी में विकसित गुर्जर शैली पर मुगल स्थापत्य कला का प्रभाव पड़ा जैसे - दाँतेदार तोरणों, अरब शैली के अलंकरणों, शाहजहांनी स्तम्भों आदि के रूप में देखा जा सकता है। स्तम्भों का आधार चौकीदार है, मध्य भाग ञाक्वाकार तथा उसके ञाी र्ा पर छोटा सा गोलाकार कलश की भांति गुम्बद होता है। राजस्थान में जयपुर के पटौदी जैन मन्दिर से सर्पिल स्तम्भ भी प्राप्त होते है।[21]

जैन मन्दिरों को भव्यता प्रदान करने के लिये ब्राह्मण से सम्बन्धित मान्यताओं को अलंकरणों का रूप दिया गया है जैसे:- नवग्रहों का अंकन, कल्पवृक्ष, यक्ष, यक्षिणियाँ, इन्द्र, इन्द्राणी, पशु-पक्षी (सिंह, गज, अश्व, गाय, बैल, मयूर, हंस, वृषभ) चक्र, शंख आदि। यह सभी हिन्दू धर्म से सम्बन्धित रहे हैं। ये अंलकरण हिन्दू एवं जैन धर्मों के बीच धार्मिक सोहार्द्रता को प्रदर्षित करते हैं।

इस प्रकार राजस्थान के जैन मन्दिर प्रभावना की दृष्टि से ही नहीं अपितु जैन मन्दिर निर्माण कला, मूर्तिकला, स्थापत्य, शिलालेखों व मूर्तिलेखों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। साथ ही ये मन्दिर साहित्यिक केन्द्रों, शिक्षाकेन्द्रों एवं शस्त्र भण्डारों के रूप में विकसित हुऐ। जिन्होंने विभिन्न धर्मो के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक, साहित्यिक दूरियों को कम करने का कार्य किया। जिससे जैन मन्दिर जैनों के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों की आस्था के भी केन्द्र बने और इस जैन मन्दिर स्थापत्य कला ने राजस्थान में धार्मिक सहिष्णुता व संस्कृति के विकास में महत्ती भूमिका निभाई।

संदर्भ

1. *प्रभाशंकर ओघड़भाई सोमपुरा, वीर पाल का प्रासाद तिलक, 1972, अहमदाबाद, पृ. 8*
2. *प्रसन्नकुमार आचार्य, डिक्शनरी ऑफ हिन्दू आर्किटेक्चर, 1927, इलाहाबाद, परिशिष्ट 2, पृ. 805-14*
3. *प्रभाशंकर ओघड़भाई सोमपुरा, विश्वकर्मा का दीपार्णव, पालीताना*
4. *बलराम श्रीवास्तव, मण्डन का रूपमण्डन, 1964, वाराणसी*
5. *भगवानदास जैन, मण्डन का प्रासादमण्डन, 1961, अहमदाबाद*
6. *नाथजी, वास्तुमंजरी सम्पादक, प्रभाशंकर ओघड़भाई सोमपुरा, प्रासाश्मंजरी नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत, 1965, अहमदाबाद*
7. *भगवानदास जैन, वत्थुसार पयरण, 1936, जयपुर*
8. *अमलानद घोष, जैन कला व स्थापत्य, भारतीय ज्ञानपीठ, 1975, नई दिल्ली, तृतीय खण्ड, पृ. 510*

9. *एम. ए. ढाकी, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', महावीर जैन विद्यालय गोल्डन जुबली वाल्यूम, 1969, पृ. 312*
10. *एम. ए. ढाकी, वही, पृ. 327*
11. *अमलानन्द घोष, वही, खण्ड-1, पृ. 151*
12. *डॉ. के. सी. जैन, जैनिज्म इन राजस्थान, 1963, शोलापुर, पृ. 113*
13. *एम. ए. ढाकी, वही, पृ. 337-40*
14. *डॉ. के. सी. जैन, वही, पृ. 139*
15. *प्रोगेस रिर्पोट ऑफ आर्कियोलोजिकल सर्वे वेस्टर्न सर्किल, 1910, पृ. 3*
16. *द्रष्टव्य, डी. आर. भण्डारकर, टेम्पल्स ऑफ ओसियां, एनुअल रिपोर्ट आर्कियॉलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1908-09, पृ. 100 व आगे*
17. *द्रष्टव्य, मुनि दर्शन विजय, पट्टावली समुच्च, प्रथम भाग, 1993, बीरमगाम, पृ. 176-194*
18. *द्रष्टव्य, एम. ए. ढाकी, दि आइकोनोग्राफी ऑफ देवी, बाबू छोटे लाल जैन कोमोरेक्न वाल्यूम, पृ. 63-69*
19. *द्रष्टव्य, जे. एन. बनर्जी, डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ. 500*
20. *डॉ. (श्रीमती) राजेश जैन, मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म, 1991-92, वाराणसी, पृ. 268*
21. *जेम्स फग्यूर्सन, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्कीचेक्चर, 2, 1972, दिल्ली (पुर्नमुद्रित) पृ. 67*

राजस्थान के संतों की भक्ति परम्परा में योग संबंधी

डॉ. अंशुल शर्मा

योग परम्परा प्राचीन भारतीय संस्कृति की अमूल्य देन है। जो कि प्राचीन काल से ही हमें किसी न किसी प्रतिरूप में दिखाई देती है। वैदिक कालीन साहित्य के परम्परा के प्रतिरूप में प्राप्त हुआ ये हमेशा से ही हमारे जीवन का प्रमुख सार रही है। भक्ति परम्परा के अन्तर्गत भी इसकी झलक स्पष्ट रूप में देखी जा सकती है। सगुण व निर्गुण परम्परा में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। विशेष रूप से राजस्थान के संतों की भक्ति परम्परा में योग संबंधी भावनाएँ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। राजस्थान के क्षेत्र में नाथ पंथी योग भावना के विकास क्रम में योग भावना दृष्टिगोचर हुई।

कबीर की साधना में नाथ-पंथी योग-भावना के विभिन्न तत्व दृष्टिगोचर होते है। उनके अनुवर्ती दादू (दयाल) सम्प्रदाय में भी निरंजन-निराकार की उपासना परिलक्षित होती है। दादू, कबीर सदृश्य ही नहीं थे वरन् उनसे परे कुछ और भी थे। वे आत्म-ज्ञान के अभ्यासी एवं दृढ़ विश्वासयुक्त भगवान्निष्ठ होने के अतिरिक्त योग-शास्त्र के भी ज्ञाता थे। कबीर की ज्ञान-योग संबंधी साधना दादू की 'लय-योग' साधना से भिन्न थी।

दादू का विश्वास था कि ईश्वर के प्रति विकास मुक्त होकर निर्मल चित्त से पूर्ण समर्पण करने से साधक का ब्रह्म से योग (साक्षात्कार) संभव हो पाता है। उन्होंने योगियों के समान 'कथनी' और 'करनी' का सविवेक विवेचन किया। यह अनुमान अनुचित नहीं कि अपने भ्रमणशील जीवन में उन्हें नाथ-योगियों के सम्पर्क से योग-साधना के तत्वों का परिचय प्राप्त हुआ होगा। इनकी रचनाओं के अन्तर्गत विभिन्न स्थलों से संबंधित योग-शैली स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

आचार्य क्षितिमोहन सेन के अनुसार दादू ने 'कुम्मारी पाव' उपनाम से अजपा-गायत्री-ग्रंथ, योग शास्त्र, विराट् पुराण और अजपाश्वास आदि पुस्तकों की रचना की थी। दादू ने योगियों के समान 'निरंजन' की साधना का निर्देश करते हुए मृत्यु-भय से मुक्ति का उपाय भी स्पष्ट किया है-

अमर ठौर अविनासी, आसन, तहां निरंजन लागि रहे।
जोगी जुग-जुग जीवै, काल-व्याल सब सहजि गए।।

सम्भवत: योग-शास्त्र से प्रेरित होकर ही दादू ने वाणी के 'सुमिरन को अंग' में साधकों की सूची प्रस्तुत की है, जिसके आदि में नारद एवं अन्त में गोरखनाथ तथा

गोपीचंद भरथरी के नाम निर्दिष्ट हैं। इसमें नाथ पंथ के प्रति दादू का आदर-भाव प्रकट होता है।

दादू ने 'ओंकार' अथवा शब्द-ब्रह्म की महिमा के अन्तर्गत चित्तवृत्ति निरोध (अर्थात् योग) एवं वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाने का संकेत करते हुए निर्देश किया कि साधक मन को एकाग्र करके प्राणायाम द्वारा उसे 'सुरति' अथवा ध्यान से नियोजित करे। उन्होंने योगियों के सदृश्य ही 'ब्रह्म-ज्योति', 'ब्रह्मानन्द' अथवा 'महारस तथा जीव-ब्रह्ैक्य' की अवधारणाओं का समर्थन किया।

दादू वाणी में योग-साधना से सम्बद्ध विभिन्न विशेष तत्वों को निर्दिष्ट किया गया है। यथा-सुषुम्ना, निरंजन, शून्य-मंडल, त्रिकुटी, सुरति, निरति, उन्मनावस्था, अनहदनाद, अजपाजाप और समाधि इत्यादि। इनके अतिरिक्त दादू ने योग मत के सार-तत्व पिंड-ब्रह्माडैक्य का निर्देश भी किया है। उनके अनुसार साधन-सिद्धि का मूल मंत्र हरि के कारण मन का जोगी होना है।

यद्यपि दादू नाथ-योगियों से कतिपय सैद्धान्तिक और साधनात्मक साम्य रखते हैं, तथापि उनके बाह्यचारों एवं भ्रमयुक्त क्रिया-पद्धतियों के प्रति क्षोभ व्यक्त करते हुए एक श्रेष्ठ शब्द-मार्गी तथा ज्ञान-वृद्ध योगी की भांति आदर्श योग-साधक की विशिष्ट प्रतीकात्मक परिकल्पना प्रस्तुत करते हैं। इसके अन्तर्गत आत्मा रूपी योगी धैर्य रूपी कंथा धारण करके निश्छल आसन, अगम-पंथ, सहज-मुद्रा, अलख की अधारी और अनहद के श्रृंगी नाद से युक्त काया रूपी वन-खण्ड में निवास करता है। उसे पंच तत्व रूपी चेलों के संग निंरजन की नगरी में भैक्ष्य चर्या करनी होती है। दादू ने ऐसे गुरुमुखी योगी की प्रशंसा की है।

दादू ने समाधि को साधना का अन्तिम लक्ष्य मानते हुए इसकी साधना हेतु साधक को आत्मानुभूति द्वारा नि:शेष संशय वाली अवस्था में भाव-भक्ति एवं विश्वासयुक्त पद्धति अपनाने के निर्देश दिए है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने रामस्नेही सम्प्रदाय में निर्देशित शब्द योग साधना का सार प्रस्तुत किया है। तद्नुसार रामस्नेही सम्प्रदाय की नाम-स्मरण (शब्द-योग) साधना के अन्तर्गत शब्द की झंकार के नाभि-कमल में गुंजरित होने का निर्देश प्राप्त होता है जिससे साधक का रोम-रोम प्रतिध्वनित हो उठता है। ररंकार सुषुम्ना के पथ से सहस्त्रार अथवा सहस्त्रदल कमल में समाहित हो जाता है, फलत: शब्द-योगी त्रिकुटी संगम में स्नान करके चतुर्थ पद प्राप्त कर लेता है। वहां साधक को शून्य में ब्रह्म अथवा निंरजन की अद्भुत ज्योति का दिव्य दर्शन होता है, वह अनहद नाद का वह श्रवण करता हुआ सुषुम्नावर्ती अमृत का भी पान करता है। उपर्युक्त साधना-पद्धति निस्सन्देह योग साधना

की सीमाओं के अन्तर्गत एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करने योग्य परिलक्षित होती है।

चरणदास की मान्यतानुसार चरणदास को शुकदेव से दीक्षोपरान्त श्रीमद् भागवत का रहस्य तथा ज्ञान योग प्राप्त हुआ था। वे प्रारम्भ से ही योगाभ्यास करते हुए लगभग चौदह वर्ष तक इसमें पूर्णतया निरत रहकर स्वरोदय ज्ञान में निष्णात हुए थे।

चरणदास की कतिपय रचनाओं यथा-अष्टांग योग वर्णन, ज्ञान स्वरोदय, योग सन्देह सागर आदि के अन्तर्गत पिंड, नाडी, श्वास-सिद्धांत तथा योग-प्रक्रिया के विवरण प्राप्त होते है। इसके अतिरिक्त 'पंचोपनिषत्' नामक कृति में चरणदास ने तत्व-योग, योग शिखा, तेजविन्दु इत्यादि योगोपनिषदों का पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। साथ ही 'शब्द' शीर्षक ग्रंथ के अन्तर्गत चरणदास ने योग, भक्ति और ब्रह्म ज्ञान सदृश विषयों का विवेचन किया है। इस प्रकार चरणदास की विचारधारा स्वयं उन्हीं के अनुसार योग, भक्ति तथा ब्रह्म ज्ञान आदि तत्वों के समन्वय से परिपूर्ण प्रतीत होती है।

योग-युक्ति हरि भक्ति करि, ब्रह्मज्ञान दृढ़ करि गह्यो।
आत्म-तत्व विचारिकै, अजपा में सनि मन रह्यो।।

किन्तु उपरोक्त समीक्षा के सोद्देश्य उपेक्षा कर एक आलोचक ने सर्वथा भिन्न निष्कर्ष निकाला है। उनके अनुसार नाथ-सम्प्रदाय जैसे शैव समझा जाता है, वैसे ही चरणदासी सम्प्रदाय वैष्णव समझा जाता है, किन्तु इसका मुख्य साधन हठयोग सवलित राजयोग है। उपासना में ये राधा-कृष्ण की भक्ति करते हैं, परन्तु योग की मुख्यता होने से हम इसे योग-मत का ही एक पंथ मानते हैं।

चरणदास ने समाधि के संबंध में मौलिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया कि भक्ति-समाधि और ज्ञान-समाधि के रूप में समाधि की भी तीन कोटियां है। सारांशत: समन्वयपरक योग, भक्ति तथा ब्रह्म ज्ञान रूपी विलक्षण त्रिवेणी प्रवाहित करते हुए चरणदास ने अपनी 'भक्ति सागर' नामक कृति के अन्तर्गत योग के अंगो, हठयोग के षट्कर्मो, नाडियों, षट्चक्रों, ब्रह्म, वाणी के भेदों, पिंड विवेचन प्रस्तुत किया है। उनकी उत्कट भक्ति-भावना और योग मर्मज्ञता के प्रामाणिक समन्वय का मूल वस्तुत: उनकी जीवन-साधना में ही सन्निहित है। इसके अन्तर्गत उन्होंने दृढ़ हरि-भक्ति के साथ यौगिक क्रियाओं के सतत् अभ्यास पर बल दिया था। सम्भवत: इसी कारण वे समाधि अवस्था का अनुभव पुष्ट तथा बोध गम्य स्वरूप प्रस्तुत करने में सर्वथा समर्थ रहे थे।

मीरां यद्यपि रहस्यवादिनी प्रेम-साधिका थीं तथापि उनकी पदावली के अन्तर्गत योग-विषयक विभिन्न संकेत प्राप्त होते हैं। सम्भवत: यह योग की दीर्घकालीन परम्परा का परिणाम है अथवा मीरां के साधनात्मक दृष्टिकोण की व्यापकता का स्वाभाविक फल है।

यद्यपि सामान्यत: मीरां पर योग का प्रभाव उल्लेख नहीं माना जाता, तथापि इस संबंध में यह तथ्य विचारणीय है कि मीरां की साधना के अन्तर्गत योग-परक रूपक एवं संकेतों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त मीरां का योग के प्रति विकर्षण भी प्रतीत नहीं होता।

हरिदास निरंजनी के समान जांभोजी तथा जसनाथजी के संबंध में लोक मान्यता है कि इन्होंने गोरखनाथ से दीक्षा प्राप्त की थी। यद्यपि ऐतिहासिक संगति के अभाव से उक्त तथ्य यथार्थ घोषित नहीं किए जा सकते, तथापि इनसे इन तीनों संतो के नाथ-योग परम्परा से सम्बद्ध अथवा सम्पृक्त प्रभावित होने की धारणा अवश्य पुष्ट होती है। जसनाथी सम्प्रदाय के अन्तर्गत रात्रि जागरण में आयोजित अग्नि-नृत्य कार्यक्रम के योगाभ्यास संबंधी पक्ष को इस संदर्भ में इंगित किया जा सकता है।

इनके पूर्ववर्ती मल्लीनाथजी, रामदेवजी तथा हरबूजी के विषय में भी योग संबंधी दीक्षा ग्रहण करने एवं योग की सिद्धियों से युक्त होने विषयक वृतांत किंवदंतियों के रूप में लोक-परम्परा के अन्तर्गत उपलब्ध होते हैं।

इस प्रकार राजस्थान की संत-भक्त परम्परान्तर्गत उपरिनिर्दिष्ट संतो के अतिरिक्त रज्जब, सुन्दरदास छोटे, दयाबाई, सहजोबाई, मोतीबाई तथा दरियावजी आदि का उल्लेख अपनी साधना में योग विषयक तत्वों के समावेश कर्ताओं के रूप में किया जा सकता है।

समग्र संतो ने अपनी 'बानियों' में ब्रह्म, योग, योगी अनहदनाद, अजपाजाप, गगन-गुफा, शब्द-ब्रह्म, शून्य, पिंड-ब्रह्माडैक्य, चित्त-निरोध, अंतस्साधना, सुरति-निरति, भ्रमर-गुफा, त्रिकुटी, ब्रह्मरंध्र, षट्-चक्र, अष्टकमल, बंकनाल, सप्तद्वीप-नवखंड, अमर लोक, गगन-मंडल, सहज-समाधि, नाद-विंदु, नाडी चक्र, अभीवृष्टि, निंरजन, योग-विभूतियां, सहस्त्रार एवं उन्मनी अवस्था इत्यादि विशिष्ट शब्द संकेत प्रस्तुत किए हैं, जिनसे यौगिक भावना तथा साधना प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में आभासित होती है।

संदर्भ

1 *दृष्टव्य - उद्धृत कबीर ग्रन्थावली*
2 *सेन, के.मोहन- मेडिवल मिस्टिसिज्म ऑफ इंडिया, पृ. 110*
3 *दादूवाणी, भाग 1, पृ. 144, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद*
4 *चतुर्वेदी, परशुराम-उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ. 415*
5 *सेन, क्षितिमोहन-दादू उपक्रमणिका, पृ. 38*
6 *वही, पृ. 225*
7 *वही, पृ. 27*
8 *वही, पृ. 199*
9 *वियोगी हरि - संत सुधासार, पृ. 454/10*

10 दादूवाणी पृ. 430, 437, 442, 446, 451, 461, 463
11 वही, भाग ख, पृ. 30, 31, 67, 98, 166, 186, तथा भाग 1, पृ. 46-47
12 स्वामी मंगलदास-दादूवाणी, पृ. 1/2 और 108/130
13 वही, पृ. 94/53, 56
14 वही, राग सोरठ पद 301, राग नट नारायण पद 238, लै का अंग, साखी, पृ. 2325
15 वही, सुमिरन का अंग, साखी 78, लै का अंग, साखी 25
16 स्वामी सुरजनदास-दादूवाणी की भूमिका, उद्धृत संत कवि रज्जब, पृ. 295
17 उद्धृत, वर्मा ब्रजलाल-संत कवि रज्जब (सम्प्रदाय और साहित्य), पृ. 283
18 दादूवाणी, भाग ख, पृ. 60, 152-55
19 वही, भाग खख, पृ. 58
20 दादूवाणी, भाग खख, पृ. 98, 239-41
21 हिंदी संत काव्य संग्रह, पृ. 151
22 वही, पृ. 161/377
23 शर्मा, शिवशंकर-भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में योग-भावना, पृ. 166
24 उत्तरी भारत की संत-परम्परा, पृ. 616-17
25 वही
26 थानवी, मुंशी मकदूम-मुरक्का अलवर, पृ. 81
27 भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में योग-भावना, पृ. 165
28 भक्ति सागर-ज्ञान स्वरोदय, पृ. 156
29 मंगलदास स्वामी-हरिदास वाणी, भूमिका, पृ. 60-62
30 स्वामी ब्रह्मानंद-श्री जम्भदेव चरित्र-भानु, पृ. 33
31 भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में योग-भावना, पृ. 269-70

मारवाड़ राज्यों की स्थापना में कृषक समुदायों की भूमिका

डॉ. सूरज भान भारद्वाज

मारवाड़ राज्यों की स्थापना में कृषक समुदायों की विशेष भूमिका रही है। इस तथ्य को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से राजस्थानी स्रोतों में वर्णित किया गया है। किस प्रकार कृषक समुदायों ने जांगल देश की मरू भूमि में कृषि उत्पादन बढ़ाकर नव-निर्मित राज्यों के लिए एक मजबूत आर्थिक आधार तैयार किया। साथ-साथ नवनिर्मित मारवाड़ राज्यों ने तत्कालीन समस्याओं व चुनौतियों से निपटने के लिए नये-नये कृषक समुदायों से समझौता किया।

जोधपुर राज्य की स्थापना से पहले जब मेवाड़ के राणा चुन्डावत ने मण्डोर को राव जोधा से छीन लिया। उस समय राव जोधा मन्डोर की प्राप्ति के लिए जंगलों में भटक रहे थे। एक दिन भूख से व्याकुल होकर राव जोधा एक जाट के घर ठहरे। जाट की स्त्री ने बाजरे की खिचड़ी से भरी हुई थाली राव जोधा के सामने परोसी। राव जोधा भूख से व्याकुल था इसलिए गर्म खिचड़ी को थाली के बीच से खाने लगा। यह देखकर जाट की स्त्री ने कहा 'तूं तो जोधा की भांति निर्बुद्धि दिखाई देता है।' इस पर राव जोधा ने पूछा कि 'जोधा निर्बुद्धि कैसे है?' जाट की स्त्री ने उत्तर दिया कि जोधा अपने निकट की (आसपास) भूमि पर तो अधिकार जमाता नहीं है, सीधे मन्डोर पर अधिकार जमाना चाहता है, जिसके कारण उसे अपने घोड़े व राजपूतों को मरवाकर खाली हाथ लौटना पड़ता है। इसलिए मैं उन्हें निर्बुद्धि कहती हूं। तू भी वैसा ही है। यदि तू खिचड़ी थाली के किनारे से खाता तब तुम्हारी उंगली भी नहीं जलती और खिचड़ी भी खा लेते। इस घटना से राव जोधा की आंखें खुली और जाट की स्त्री से सबक सीखा। उसके बाद राव जोधा ने अपने आसपास की भूमि पर अधिकार जमाया और बाद में मन्डोर पर भी अधिकार कर लिया। उपर्युक्त कथन जोधपुर राज्य के निर्माण में जाट किसानों के योगदान को दर्शाता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह बात सत्य नजर आती है।

मुहणोत नैणसी लिखते हैं कि राव जोधा ने संवत 1515 (1458 ई.) में जोधपुर बसाया और अपने राज्य की नींव रखी। उस समय उन्होंने जमीन को अपने भाई बेटों में बांट दिया। राव कान्हड़देव को परगना मेड़ता दिया गया। उस समय परगने में थोड़ी सी धरती पर खेतीबाड़ी होती थी। जयादातर जमीन खाली पड़ी थी जिसमें झाड़-झंखाड़ भरा

हुआ था। राव कान्हड़देव को पता चला कि परगना नागौर में डीगा जाटों का प्रमुख चौधरी रहता है, जिसकी जायल के जाटों से दुश्मनी चली आ रही है। इसलिए कान्हड़देव ने अपने भाई राव बरसिंह को डीगाजाट चौधरी के पास भेजा और उसे मेड़ता परगने में बसने के लिए आमन्त्रित किया। इसके बाद डीगा चौधरी अपनी पूरी बिरादरी के साथ नागौर परगने में बस गया। डीगा जाटों ने परगने की धरती में फैले झाड़-झंखाड़ को साफ किया और जमीन को खेती में तब्दील कर दिया। इस नई जमीन पर जाटों ने अनेक नये गांव बसाये जो निम्नलिखित हैं। डागावास, लोहड़ोयाह, राममसलवास, इतवे, थीरोदा, नागोररा सातलवास, फालो, बड़गांव, चान्दलिया चुओ, महेवड़ो दुगसता, दुसलाऊरा भोवाली, विडेलर, रावणा, बुगरड़ा रालाथीया, कमड़िया भादु, कलरोरयां का, सणीया, रतुग्वालरा, तगो, नागीर रा राहीण, तेहखाल, तेतारो, नागोरी रीझड़ाऊ, गादारो, पान्डरो, बीकानेर रोझीथीया, बड़ीली, सोमडवाल सोमड़ी, नागोररी रोहियो, बोहड़िया कुठोती, मोकाले, अणी यालो, सेहसड़ो, गोरा, पादबड़ी, ताबड़ोली, लटीयाल, थीरोदा, नागौर, लोपोलाई, काकड़वी, चोहिलासणो, नागौर रो मोडरो। इस तरह से डीगा जाटों ने परगना मेड़ता में लगभग 50 गांव नये बसाये। बाद तक नये गांव बसाने का क्रम चलता रहा। इस प्रकार एक उजाड़ परगने को जाटों ने कृषि उत्पादन में तब्दील कर दिया। इस तरह से नवनिर्मित जोधपुर राज्य के निर्माण में जाटों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जब नये नये गांव आबाद हुये और कृषि उत्पादन होने लगा तब उन गांवों को राठौड़ राजपूतों को जागीर में नये पट्टे दिये गये। परगना मेड़ता में संवत 1630/1573 ई. में कृषि लायक भूमि का विस्तार 2396425 बीघा (तेइस लाख छियानवे हजार चार सौ पच्चीस बीघा) हो गई थी। इसके बाद जोधपुर राज्य के दूसरे परगनों में भी जाट किसानों की बसावट बड़ी संख्या में बढ़ने लगी। जैसे सन् 1664 ई. में परगना जोधपुर में 735 गांव बसे हुये थे जिनमें 314 गांवों में जाट किसान रहते थे। इनमें 215 गांव प्रमुख रूप से जाट किसानों द्वारा ही बसाये गये थे। इसी तरह का जाट किसानों का योगदान बीकानेर राज्य के निर्माण में भी महत्वपूर्ण माना जाता है।

जब राव बीका ने बीकानेर राज्य की स्थापना की। इसकी स्थापना करने में गोदारा जाटों का बड़ा सहयोग व योगदान माना जाता है। पांडूपण के गोदारा जाट राव बीका से विनती करके कहने लगे कि गोदारा जाट पांडूपण में रहते हैं वहां उनका सारण जाटों से बैर था। गोदारा जाट पांडू में सारण पुला की लुगाई जिसका नाम मलकी, जो बैणीवाल जाति (गोत्र) की थी उसे अपने गांव गोदारा ले आये। इस बात पर सारण जाट सिवाणी के नरसिंह जाट को लेकर गोदारो पर चढ़ाई कर दी, जिसमें 200 गोदारा जाट मारे गये। नरसिंह जाट सिवाणी वाला लड़ाई में गोदारों को मारकर वापिस चला गया। उसके बाद गोदारा जाट राव बीका जी के पास आये और कहा कि नरसिंह जाट गोदारा

जाटों को मारने के लिए चढ़ आता है, उसका इलाज करो। इस बात पर राव बीका जी 800 सवारों को लेकर नरसिंह जाट पर चढ़ाई कर दी जिस लड़ाई में नरसिंह जाट मारा गया। नरसिंह जाट की फौज हार कर भाग गई। इसके बाद राव बीका ने वहां (प्रदेश) के जाटों के साथ समझौता किया और सात थोक (गौत्र) के जाटों के साथ समझौता हुआ। जाटों ने राव बीका को अपना राजा मान लिया। राव बीका ने उन्हें गांवों का भोमिया बनाकर उन्हें सम्मानित किया। सात गोत्र के जाट भोमिया जो इस प्रकार हैं:-

1. गांव 360 के भोमियां गोदारा जाट बनाये गये जिनका प्रधान देशमुख सेखसर गांव का गोदारा पांडू जाट को बनाया गया।

2. गांव 360 के सारण जाटों को भोमियां बनाया गया जिनका देशमुख सारण फूला जाट को बनाया गया।

3. गांव 360 जाट कसाबां का भोमियां बनाया जिनका देशमुख कसवो (कैस्सा गोत्र) जाट कंवरपाल को बनाया गया।

4. बैणीवाल जाटों को भोमिया बनाया गया जिनका देशमुख (मालिक) बैणीवाल रायसलो को बनाया गया।

5. सिहाग गोत्र के जाटों को भोमिया बनाया गया गांव 140 के भोमियां बनाये जिनका देशमुख ..... बनाया गया।

6. गांव 360 के पुनिया जाटों को भोमिया बनाया गया जिनका देशमुख (मालिक) कान्हो पुनिया जाट हुआ।

7. गांव 84 के भोमियां साहु गोत्र के जाट (साहवा) बनाये गये जिनका देशमुख सोहु गांव धाणसीया को अमरो (अमरसिंह) हुआ।

8. भोमिया और भी बचे हुये सभी गांव के बनाये गये।

9. सभी भोमियों को गावों में खेती बाड़ी करने को कहा।

10. गांव 125 के सांखलाओं को भोमिया बनाया गया।

11. जोइया व सीहीयाण वगैरह को भोमिया बनाया गया।

12. ददरेवे के इलाके में भोमियां सभी गांवों में बनाये गये।

13. भटनेर इलाके में चायल का इलाके के गांव में भोमिया बनाये गये। इस प्रकार राव बीका के सैनिक अभियान के डर के कारण 3000 गांवों में भोमिया बनाये गये अर्थात यह बात यह दर्शाती है कि बीकानेर राज्य में उस वक्त 3000 गांव थे जिनको राव बीका ने अपने अधीनस्थ किया था और इन गांवों के भोमियों ने राव बीका के राज्य को स्वीकार किया और कृषि उत्पादन करके नवनिर्मित बीकानेर राज्य की आर्थिक

स्थिति को मजबूत किया। औरंगजेब जब मुगल बादशाह बना उसके बाद सन् 1658 में महाराजा जसवन्तसिंह का मनसब बढ़ाकर 7000/7000 सवार और जात कर दिया था, जिसमें 5000 हजार सवार दो अस्पा थे। जोधपुर हकुमत री बही के अनुसार हरियाणा के अनेक परगने महाराजा को तनखाह जागीर में दिये गये। जो मुख्य रूप से निम्नलिखित थे–

टोहाणा, सरसा, शाहबाद, जींद, बेणीवाल, अठखेड़ा, खांडा, जमालपुर, स्योरायण, महम, धातरत, अगरोहा और रोहतक आदि थे। इन परगनों में जाट किसानों की बाहुलता थी। कृषि उत्पादन के दृष्टिकोण से भी ये परगने काफी महत्वपूर्ण थे। जैसे संवत 1718/ई. 1661 के फसल रबी (उन्यालु) के एक आंकलन के अनुसार इन परगनों की आमदनी 1297436 रुपया (बारह लाख सतानवे हजार चार सौ छत्तीस) थी। अलग–अलग परगनों की आमदनी इस प्रकार थी --

1. टोहाना – 151559/–रू. (एक लाख इकावन हजार पांच सो उनसठ)
2. सरसा – 203238/–रू. (दो लाख बत्तीस हजार अठतीस)
3. शाहबाद – 80000/–रू. (अस्सी हजार)
4. जींद – 156860/–रू. (एक लाख छप्पन हजार आठ सौ साठ)
5. बेणीवाल – 60000/–रू. (साठ हजार)
6. अठखेड़ा – 50000/–रू. (पचास हजार)
7. खांडा – 28000/– रू. (अठाईस हजार)
8. जमालपुर – 125496/–रू. (एक लाख पच्चीस हजार चार सौ छियानवे)
9. स्योरायण –39125/–रू. (उनतालीस हजार एक सौ पच्चीस)
10. महम – 200390/–रू. (दो लाख तीन सौ नब्बे)
11. धातरत – 27050/–रू. (सताइस हजार पचास)
12. अगरोहा – 31250/–रू. (इकतीस हजार दो सो पचास)
13. रोहतक – 144437/– रू. (एक लाख चवालीस हजार चार सौ सैंतीस)

इस समय में जोधपुर राजय का विस्तार अधिकतम था, जिसमें बड़ी संख्या में राठोड़ राजपूतों को हरियाणा में जागीर के पट्टे दिये गये। जोधपुर हकुमत री बही के अनुसार संवत 1715 से 1729 तक (1658–1672 ई.) तक अनेक राजपूत खापों को हरियाणा में गांवों के जागीर के पट्टे दिये गये थे जो निम्न हैं :–

1.	पूरबीया राठौड़	–	उत्तर प्रदेश के पश्चिम क्षेत्र से आये हुये
2.	महेवचों के पट्टे	–	रावल मलीनाथ महेवे के उतराधिकारी के वंशज

3.	चांपावतों के पट्टे	–	राव रिणमल के पुत्र चापा के वंशज
4.	मेड़तियों के पट्टे	–	राव दुदा के वंशज मेड़तिया कहलाते हैं।
5.	कुपावतों के पट्टे	–	राव निरणमल के जेष्ठ पुत्र कुपा के वंशज
6.	जेताउतों के पट्टे	–	राव रिणमल के पौत्र जैता के वंशज
7.	उदावतों के पट्टे	–	राव जोधा के पौत्र उदा के वंशज
8.	करमसोतों के पट्टे	–	राव जोधा का छोटा पुत्र करमसी के वंशज
9.	नराउतों के पट्टे	–	राव सूजा के पुत्र नरा के वंशज
10.	करनोत के पट्टे	–	राव रिणमल के पुत्र करन के वंशज
11.	छोटा भोजराज के पट्टे	–	राव रिणमल के पौत्र भोज राज के वंशज
12.	भारमलोत के पट्टे	–	राव जोधा के छोटे बेटे भारम लोत के वंशज
13.	अखेराजोतों के पट्टे	–	राव रिणमल के ज्येष्ठ पुत्र अखेराज के वंशज।

उपर्युक्त राठौड़ राजपुतों को लगभग 15 वर्षों तक हरियाणा के गांवों के पट्टे दिये गये। इससे यह जाहिर होता है कि महाराजा जसवन्तसिंह ने बड़ी संख्या में राठौड़ राजपुतों को हरियाणा में रोजगार दिया। जिसके कारण मारवाड़ राज्य आर्थिक, सामाजिक और सैनिक दृष्टिकोण से पहले से अधिक मजबूत हुआ। राठौड़ राजपुतों ने हरियाणा के गांवों में भू–लगान का बन्दोबस्त करने के लिए बड़ी संख्या में अधिकारियों की नियुक्ति की। इन अधिकारियों को अनेकों बार गांवों में जाट किसानों के विरोध का सामना भी करना पड़ता था। जैसे रोहतक परगने का आमील हरिदास राघवदासोत ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि इस परगने के जाट किसान बहुत ही मुटमरद हैं अर्थात घमण्डी व झगड़ालु स्वभाव के हैं। हरियाणा के जो परगने राठोड़ राजपूतों को पट्टों पर दिये गये थे वहां पर सामाजिक दृष्टिकोण से बदलाव देखे जा सकते हैं। चूंकि हरियाणा का यह इलाका मारवाड़ की तुलना में ज्यादा उपजाऊ था इसलिए हिसार, सिरसा के इलाकों में बड़ी संख्या में जाट और बिश्नोई किसानों का आगमन हुआ। यह तथ्य British Setelement Reports से पता चलता है कि बागड़ी जाट किसानों और बिश्नोईयों ने हिसार और सिरसा के इलाकों में अपनी नई–नई बस्तियां बसा ली थी। इससे हरियाणा के इन इलाकों में बड़ी तेजी से जाट किसानों की आबादी में बढ़ावा मिला। दूसरे, आइने अकबरी से पता चलता है कि हरियाणा में राजपूतों की जमींदारियां बहुत कम थी। मगर ब्रिटिश सैटलमेंट रिपोर्टस से पता चलता है कि हरियाणा के अनेक इलाकों में राजपूतों की बस्तियां मिलती हैं। विशेष रूप से राठोड़ व चौहान राजपूतों की मौजूदगी यह दर्शाती है कि महाराजा जसवन्त सिंह के शासनकाल में इन राजपूतों का आगमन हुआ होगा। इस प्रकार का सामाजिक बदलाव तभी हुआ होगा जब राठौड़ राजपूतों को बड़ी संख्या में

हरियाणा के गांव पट्टे पर दिये गये थे। यह तभी संभव हुआ जब मुगल बादशाह औरंगजेब के शासनकाल में महाराजा जसवंत सिंह का राजनैतिक रूतबा बहुत बढ़ा हुआ था। इसलिए महाराजा को हरियाणा के वे परगने जो उत्पादन के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण थे वे तनखाह जागीर में प्राप्त किये। सामाजिक दृष्टिकोण से इन सभी परगनों में जाट किसानों की बाहुलता थी, जिन्होंने भू लगान अदायगी के जरिये मारवाड़ राज्य के आर्थिक विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था। जिस प्रकार मारवाड़ राज्य के शुरूआती निर्माण में मेड़ता, नागौर व जोधपुर परगनों के जाट किसानों ने कृषि उत्पादन से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, उसी प्रकार महाराजा जसवन्तसिंह के शासनकाल मारवाड़ राज्य के विस्तार के निर्माण में हरियाणा के जाट किसानों का योगदान भी महत्वपूर्ण समझा जाये।

संदर्भ

1. *नारायसिंह भाटी, (सम्पादक) मुंहता नैणसी मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग I, II, & III राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर (राजस्थान), 1969*
2. *सतीश चन्द्रा, रघुबीर सिंह, जी.डी. शर्मा, (सम्पादक) जोधपुर हकुमत री बही जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय 1976, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ*
3. *गौरीशंकर, हीराचन्द ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 1-2, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 1936, द्वितीय संशोधित संस्करण, 2010*
4. *गोरीशंकर हीराचन्द ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग 1-2, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 1940, द्वितीय संशोधित संस्करण, सन् 2007*
5. *गैजटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, पी.डब्ल्यू, पाऊलेट, बूक्स टरैजर, 2015*
6. *पेमाराम, राजस्थान के जाटों का इतिहास, ग्रन्थागार, जोधपुर, 2012*
7. *Reprint of Hisar District Gazetteer, 1883-84, Gazetteers organization, Revenue Deptt., Haryana Chandigarh, 1999*
8. *Final Report of the Revision of Settlement of the Sirsa District in the Punjab, J.Wilson Settlement Officer - 1879-83, Calcutta General Press Company Ltd. 1884.*

नाथ पंथ के मूल आधार और उदावत राठौड़ इतिहास

कुसुम

भगवान शिव योग भक्ति हेतु समाधि लगाकर आदि देवी की भक्ति करते हैं, इसलिए नाथ पंथ शिव को आदिनाथ मानते हैं तथा नाथ पंथ के शिव को आदिनाथ को नाथ गुरु माना जाता है, क्योंकि नाथ पंथ के प्रथम नाथ मत्सयेन्द्रनाथ से लगाकर 9 नाथों को भगवान दत्तात्रेय ने दिक्षा दी। ये 9 नाथ हैं-

1. मत्स्येन्द्रनाथ
2. गोरखनाथ
3. जलन्धर नाथ
4. कानीफानाथ
5. चर्पटीनाथ
6. नागनाथ
7. भर्तुहरिनाथ
8. रेवणनाथ
9. गहिनीनाथ है

नाथ पंथ में 9 नाथ नौ नारायणों के योगी रूप है, भविष्य पुराण के एक श्लोक के अनुसार कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस तथा करभाजन-ये नव नारायण के स्वरूप है।

9 नाथों व 84 सिद्धों ने भक्ति योग का प्रचार किया जिने 9 मुख्य नाथ अमर कहे जाते है।

नाथ पंथो की सिद्धियाँ

नाथ पंथ के प्रवर्त्तक तथा प्रचारक इन सिद्ध योगियों को अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त थी। ये अपनी इच्छानुसार पृथ्वी, आकाश पाताल, स्वर्ग, नर्क आदि सभी स्थानों में प्रवेश कर सकते थे। किसी भी देवी-देवता से प्रत्यक्ष भेंट कर सकते थे।

स्तम्भन मारण, मोहन, उच्चाटन आदि की क्रियाओं पर इन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त था। संजीवनी विद्या के ये लोग जानकार थे। इन योगियों ने वेद मंत्रो से भिन्न, 'साबरी'

मन्त्रों की रचना की थी। ये अपने साबरी मन्त्रों द्वारा भस्म को अभिमन्त्रित करके, क्षण भर में ही सब कुछ कर दिखाने की सामर्थ्य रखते थे और भस्म तथा मन्त्रों के योग से विभिन्न प्रकार के अस्त्रों को प्रकट कर देते थे। इन साबरी मंत्रों में वातास्त्र मंत्र, वाताकर्षण मंत्र वज्र मंत्र, जल मंत्र, अग्नि मंत्र, स्पशस्ति मंत्र तथा संजीवनी विद्या मंत्र प्रमुख है। वातास्त्र मंत्र वस्तु को आकाश में ही अधर रोक देता है। वाताकर्षण मंत्र देवताओं को बीच आकाश में स्तम्भित कर देता है। जल मंत्र स्तम्भित देव को पृथ्वी पर ला सकता है। वज्र मंत्र शरीर को वज्र सा कठोर बना देता है। स्पर्शास्त्र मंत्र व्यक्ति या देवता को पृथ्वी से चिपका देता है। विभक्तास्त्र मंत्र पृथ्वी से चिपके व्यक्ति को मुक्त कर देता है। संजीवनी विद्या मंत्र द्वारा मृत शरीर में अपने प्राणों को सिद्ध योगी प्रवेश कराता है।

भक्ति योग का प्रचार

इन सिद्ध योगियों ने देश देशान्तर में भ्रमण करते हुए भक्ति योग का प्रचार किया था। इनके चमत्कारों तथा उपदेशों को सुनकर हजारों, लाखों व्यक्ति इनके शिष्य और भक्त बने। इनके भक्तों में सभी वर्ग के लोग साधारण से लेकर राजा-महाराजा तक थे।

मत्स्येन्द्र नाथ के शिष्यों में चौरंगीनाथ तथा अडबंगनाथ जलन्धरनाथ के शिष्य गोपीचन्दनाथ, चर्पटीनाथ के शिष्य मीननाथ, रेवण के शिष्य धुरन्धरनाथ, मीननाथ के शिष्य करनारनाथ, धुरन्धरनाथ के शिष्य निरंजननाथ एवं निरंजननाथ के शिष्य दूरग्डतनाथ ने अपने समय में अत्यधिक ख्याति प्राप्त की थी। इन प्रमुख नाथों के सक्रिय के समय महर्षि वाल्मीकि तुलसीदास के रूप में उद्धव नामदेव के रूप में, जाम्बवनत नरहरि स्वामी के रूप में, बलराम पुण्डरीक के रूप में तथा आदिनाया मुक्ताबा के रूप में पृथ्वीजल पर प्रकट हुए थे, इन सभी ने अपने अपने तरीके से भक्ति योग का प्रचार किया था।

जहां प्रमुख नाथों द्वारा समाधि ली गई वह स्थान भी प्रमुख और प्रसिद्ध हो गया।

भारत, नेपाल आदि देशों में नाथ पंथ के विभिन्न मठ, सौराष्ट्र में 'गोरखमढ़ी' गुरु गोरखनाथ के स्थान के रूप में प्रसिद्ध है।

योगियों की समाधि

जलन्धर तथा मत्स्येन्द्रनाथ जी ने जीवित समाधि ले ली थी इसी परम्परा को बढाते हुये अन्य नाथों ने भी समाधि लेने की विधि को ही अपनाया।

नाथ योगियों को यवन राज्य के आने का पूर्वाभास हो गया था। इसलिये उन्होंने अपनी समाधि का आकार 'कब्र' जैसा रखा था। जिससे कि मुसलमान लोग उन समाधियों को कब्र समझकर नष्ट न करें।

कहा जाता है कि जब औरंगजेब ने नाथ योगियों की समाधियों के विषय में जानकारी प्राप्त करनी चाही तो उस समय लोगों ने उनसे बोला कि यह आपके पूर्वजों की कब्रें है, तब औरंगजेब ने नाथ योगियों की अनेक समाधियों के ऊपर मस्जिदें बनवा कर उन्हें 'दरगाह' का स्वरूप दे दिया।

इस प्रकार की दरगाहों में-

जलन्धरनाथ की समाधि 'जानपीर'

गहनीनाथ की समाधि 'गैबीपीर'

मत्स्येन्द्रनाथ की समाधि 'मायबाबलोन'

कानीफानाथ की समाधि 'कान्होबा' की दरगाह के रूप में प्रसिद्ध बताई जाती है।

चर्पटीनाथ, चौरंगीनाथ तथा अडबंगनाथ अभी तक गुप्त रूप से तीर्थ यात्रा कर रहे है- ऐसी नाथ पंथियों की मान्यता है।

नाथ पंथ के चिह्न

नाथ पंथ योगियों के वेश को योगीवेश कहा जाता है। इस पंथ की दीक्षा बसन्त पंचमी के दिन ली जाती है। दीक्षित होने वाले योगी के सर्वप्रथम कान फाड़े जाते हैं। मत्स्येन्द्र नाथ तथा गोरखनाथ के अनुयाइयों के कान मध्य से फाड़े जाते हैं। तथा जलन्धरनाथ एवं कानीफानाथ के अनुयायी कान की लौरी फड़वाते है। इन छिद्रों में गोल मोटा छल्ला जैसी मुद्रा पहनी जाती थी। पहले मिट्टी की मुद्रा, पहनी जाती थी, परन्तु वे शीघ्र टूट जाती थी, इसलिये बाद में उन्हें किसी धातु हाथी दांत अथवा हिरण के सींग आदि से बनाया जाने लगा। इनको आम बोलचाल में 'कनफड़ा' या 'कनफटा' भी कहा जाता है।

मुद्रा पहनाने के बाद गुरु द्वारा शिष्य के कान में गुरुमन्त्र फूंका जाता है, यह क्रिया भी बसन्त पंचमी को की जाती है। धंधारी, सुमिरनी, आधारी, सोटा, मेखला, सिहंनाद जनेऊ, कंथा, गूदरी, खंजर आदि नाथ पंथियों के प्रमुख चिन्ह है।

राव ऊदा जी की जैतारण विजय तथा बाबा गूदड़ का वचन

ग्राम लोटोती के निकट गांव निम्बोल में एक वचन सिद्ध योगीराज रिधरावल जी, जिनको उस समय लोग गूदड़ बाबा भी कहा कहते थे, उग्र तपस्या में लीन थे। उनकी प्रसिद्धि चारों और फैल रही थी कि यथार्थ में वचन सिद्ध है।

महात्माओं में असीम भक्ति रखने वाले ऊदाजी ऐसे उत्तम समय को अपने हाथ से नहीं जाने देने वाले थे। अत: योगीराज की सेवा में उपस्थित हुए और उनका आशीर्वाद

का सौभाग्य प्राप्त किया। कई दिनों तक ऊदा जी ने उनकी सेवा भी की जिससे ऊदा जी बाबाजी के अनन्य भक्त और कृपा पात्र बन गये। ऊदा जी का नियम था कि प्रात: काल योगीराज का दर्शन कर भोजन किया करते थे। एक दिन जब नियमानुसार आप लाटोती से निम्बोल रवाना हुए उस समय एक स्त्री सिर पर पानी से भरा बेहड़ा (दो घड़ा) लिए नाक में नथ पहने हुए सम्मुख मिली, तब उनके साथी एक सरदार ने निवेदन किया, आज शकुन ऐसे हुये कि नया राज्य आपको मिलेगा। आश्रम पहुंच बाबाजी को प्रणाम किया तो योगीराज रिधरावल ऊदाजी की भक्ति से प्रसन्न होकर ऊदाजी को कहा कि जा बच्चा ऊदा हमने तुमको जैतारण का राज्य दिया, अभी यहीं से चढ़ जा, तुम्हारी विजय होगी।

ऊदा जी ने सिद्ध योगीराज से करबद्ध निवेदन किया कि महाराज जैतारण के अधिपति मेरे मासा है, और उन्होंने मुझे लोटोती ग्राम देकर मेरे साथ उपकार किया। उनका राज्य युद्ध करके लूं यह कृतघनता का कार्य मेरे और वंश के प्रतिकूल है। ऐसा निन्दनीय कार्य कैसे करूं। परन्तु योगीराज के वचन वैसे ही निकलते हैं, जैसे भविष्य में होने वाला है। योगीराज ने ऊदाजी से कहा कि वह जो कह रहे हैं, वह सांसारिक स्वभाव की हद के अन्दर की बात है। मैं स्पष्ट समझा सकता हूँ कि जैतारण में सीधंलों के राज्य काल का समय स्वयं ही समाप्त हो चुका है, और वह तेरे अधिकार में आने वाला है, इस अमिट ईश्वरीय नियम को तू कैसे मिटा सकता है तू तो केवल निमित्त मात्र है। फिर शंका व असमंजस में पड़कर राव ऊदाजी ने योगीराज से प्रश्न किया कि महाराज जैतारण जीतने योग्य सेना मेरे पास कहा है- इस पर हंसते हुए योगीराज ने कहा कि बच्चा यह तो भ्रम है, समय पर ठीकरी भी घड़ा फोड़ सकती है, इसलिये बिना विचार किये सीधा सवार हो और यहां से जैतारण ही चला जा।

योगीराज की आज्ञानुसार ऊदाजी ने सवारों सहित जैतारण की तरफ प्रस्थान किया, उस समय सींधलों के कुटुम्ब में किसी कुंवर का विवाह था, इसलिये अधिकांश सींधल बारात में गये हुये थे, दूसरी तरफ जनता में चोरी तथा लूटपाट पर रोकथाम नहीं होने से जनता का समर्थन ऊदाजी को मिला। कुछ सींधल मिले जिनको तलवार के घाट उतार दिया, जैतारण के अधिपति सींधल खींवा ने बड़ी वीरता से ऊदाजी का मुकाबला किया तथा वीरगति को प्राप्त हुये। ऊदाजी ने किले पर अधिकार कर लिया। राव ऊदाजी वि.स. 1539 वैशाख सूद तीज को जैतारण की गद्दी पर बैठे।

मेड़तीया सरदारों का कमर पर कटार न बांधने का प्रसंग

वि.स. 1541 राव ऊदाजी बीमारी से ग्रसित हो गये थे। तब अवसर पाकर मेड़ता के अधिपति राव वीरम जी जैतारण से राव ऊदाजी की घोड़ियां जो बाहर चर रही थी, ले गये। इस घटना से वीर राव ऊदाजी को अत्यन्त कष्ट हुआ, उन्होंने अपने सेवकों से कहा कि मेरा पलंग बाबाजी महाराज के आश्रम में ले चलो। उन्होंने आश्रम पहुंचकर

बाबाजी कोई नमस्कार कर निवेदन किया कि आप ऐसी कृपा करें जिससे मेरा शरीर निरोग हो जाये। तब तपस्वी योगीराज ने अपने भक्त की प्रार्थना सुनकर-'किंचित काल ध्यानास्थ हो समाधिस्त हो गये। फिर चेतन्य दशा में आकर थोड़ा मंत्रित जल राव ऊदाजी के शरीर पर छिड़का और धूणी की भस्म उनके शरीर पर लगा दी, देखते ही देखते राव जी का शरीर पूर्ववत् स्वस्थ और बलिष्ठ हो गया। राव ऊदा जी अपने सरदारों को साथ लेकर मेड़ता की ओर रवाना हुये।

मेड़ता से ठीक 14 मील की दूरी पर गांव लिलिया के तालाब के पास घोड़ियों को लाने की खुशी में राव वीरमजी गोठ की तैयारी कर रहे थे, उसी समय दोनों दलो में युद्ध हुआ और वीरमजी की पराजय हुई तब वीरम जी ने ऊदाजी से कहा कि आप लड़ाई बंद करावें तथा समस्त घोड़ियां ले पधारे। तब राव ऊदाजी ने राव वीरमजी से कहा कि आप अपने कमर कि कटार उतार दो और आगे के लिये यह प्रतिज्ञा करो कि आप और आपके वंशज कटारी, कभी नहीं बांधेंगे। राव वीरमजी ने इस बात को स्वीकार किया तब से मेड़तिया सरदार ने कमर में कटारी कभी नहीं बांधी व ना ही बांधते हैं।

गूदड़ बाबा द्वारा उदावत वंश को श्राप

देववश जिस योगीराज ने पितामह राव ऊदाजी को वर देकर जैतारण का राज्य दिया था उसी सिद्धराज के श्राप के कारण जैतारण हमेशा के लिये उदावतों के हाथ से निकलने का समय आ गया।

महात्मा रिधरावाल जी राव ऊदाजी की प्रार्थना पर जैतारण में ही रहा करते थे। बाबाजी ने नगर के किनारे एक छोटा सा तालाब बनवाया था। एक दिन राव रतन सिंह के पुत्र राव ऊदाजी के प्रपौत्र कुँवर कल्याणसिंह नें बाबाजी के साथ तालाब का निरीक्षण किया और बाबाजी से तालाब का नाम पूछने पर बाबाजी ने बोला कि इसका नाम पीरनाडी रखा है, तब कल्याणसिंह ने कहा कि इसका नाम रत्नसर रखना अच्छा रहेगा। परन्तु बाबाजी ने अस्वीकार कर दिया। कुंवर कल्याणसिंह ने राजमद में बाबाजी से विवाद शुरू कर दिया, इस पर बाबाजी क्रुद्ध हो गये और कल्याणसिंह से बोला कि- रतनसर रतनसर बार बार क्या कहता है, जाओ रतन सिंह के सर लगेगा और जैतारण में सदा के लिये उदा की गढ़ी नहीं तथा गूदड़ की मढी नहीं रहेगी। बाबाजी झोली लेकर उसी समय प्रस्थान कर जाते है।

इसी श्राप के कारण जैतारण शहर में आज भी किसी उदावत का स्थायी निवास नहीं है। तथा कोई भी संत महात्मा का आश्रम नहीं है। कुछ दिनों बाद बादशाह अकबर की सेना ने जैतारण पर आक्रमण कर दिया और उस युद्ध में राव रतनसिंह जी वीरगति को प्राप्त हुये। इस प्रकार योगीराज रिधरावल जी के वचन सिद्ध हुये।

सन्दर्भ

1. *राव उदावत को वरदान – 1. मारवाड़ परगनां री विगत भाग 1 ग्रंथाक 101 प्रकाशक राजस्थान प्राच्य प्रतिष्ठान जोधपुर*
2. *राव उदावत की जैतारण विजय – 1. निम्बाज इतिहास पृ. 16 .मारवाड़ रा परगरना री विगत भाग 1, पृ. 543; 2. ठिकाणा रायपुर की ख्यात पृ. 11 पेरा 2 क.*
3. *लिलिया में ऊदा ने कटारी खुलवाई – 1. निम्बाज का इतिहास पृ. 21, मारवाड परगना री विगत तृतीय भाग ग्रंथाक 121, पृ. 11*
4. *गुदड़ बाबा का श्राप–1. निमाज इतिहास पृ. 47–48, जैतारण गुटका 2.कुलगुरु की बही, 3. राव की बहियां राणी मंगा की बहियां*
5. *राव रतन सिंह के अकबर सेना से हार व वीरगति – 1. अकबरनामा (अंग्रेजी अनुवाद) 2, पृ. 102, 103, 2. मारवाड़ का इतिहास आसोपा कृत, पृ. 139, 3. गौरी शंकर ओझा जी कृत भाग 1, 4. जोधपुर राज्य की ख्यात भाग 1 पृ. 121, 5.परम्परा भाग 14, पृ. 13 राठौड़ रतनसिंह वेली*

मारवाड़ के वीर व पीर – मेहाजी मांगळिया

डॉ. सन्दीप प्रजापत

मारवाड़ के पंच पीरों में मेहाजी का प्रमुख स्थान आता है। वे अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे। नाम सभ्यता के कारण इतिहासकारों ने मेहराज सांखला और मेहाजी मांगळिया को एक मान कर जबरदस्त भूल की है। इन दोनों का संबंध तो मामा–भानजा का था। ''मेहराज सांखला प्रसिद्ध पीर एवं लोक देवता हडबूजी के पिता है।'' तो कीळू जी मांगळिया प्रसिद्ध पीर एवं लोक देवता मेहाजी के पिता है। गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने इन्हें मांगळिया जाति का राजपूत लिखा है, जो 'गुहिलों' की ही एक शाखा है।[1] नैणसी ने मेहराज सांखला की वंश परम्परा का परिचय देते हुए लिखा है कि –

मेहराज रो बेटो हरभू पीर तिणरा पोतरा बैंगहटी[2]।

विगत मांगळिया री[3] और मांगळिया री तवारीख में भी मेहाजी को किळू जी का पुत्र बताया गया हैं। डॉ. आईदान सिंह भाटी[4], गिरधर दान रतनू दासोड़ी[5], डॉ. महीपाल सिंह राठौड़[6] और बाबूसिंह बापिणी[7] ने भी मेहाजी को कीळूजी का पुत्र बताया है। मेहाजी और मेहराज सांखला दोनों ही ऐतिहासिक व्यक्तित्व है और दोनों ही समकालीन है मेहराज सांखला, मेहाजी मांगळिया की सगी बहन का बेटा थे। मेहराज सांखला कीळू जी के नाती थे। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि दोनों युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए जिनके मध्य पाँच वर्ष का अन्तराल है। मेहाजी विक्रम संवत् 1352 तो मेहराज सांखला विक्रम संवत् 1357। अत: यह सोचना, धारणा बनाना और लिखना भ्रामक है कि मेहराज सांखला और मेहाजी एक ही व्यक्तित्व है बल्कि यह दो अलग वीर एवं ऐतिहासिक पुरूष थे। मेहाजी का जन्म विक्रम संवत् 1331 की श्रावण सुद तेरस (शुक्रवार) को हुआ था। इनके पिता का नाम कीळूजी मांगळिया और माता मायड़दे था। बचपन में ही पिता की छाया सिर से उठ जाने के कारण वे संघर्षशील बने और संपूर्ण मांगलियावाटी पर अधिकार किया। बापिनी (ओसियां) में इनका प्रसिद्ध मन्दिर है जहां हर वर्ष भाद्रपद में कृष्ण जन्माष्टमी में मेला लगता है। इन्होंने अपनी सिद्धि और परचों द्वारा जन–मानस को प्रभावित किया और लोकदेवता के रूप में पूजे गये थे। ये शकुन–शस्त्र और दूरदर्शी भी थे। इन्होंने तालाब भी खुदवाए। चारण समाज के लोग इनकी प्रशंसा में गीत गाते हैं। मेहाजी एक वीर, गौ–रक्षक और जीवन मूल्यों के रक्षक थे। पश्चिमी राजस्थान में इनकी बहुत मान्यता है। मेहाजी का विवाह मेवानगर (जो जसोल के समीप है) के मल्लीनाथजी

की पुत्री हीरादे (हीराकंवर) के साथ सम्पन्न हुआ था। मेहाजी के कोई संतान नहीं थी। अत: मेहाजी के उत्तराधिकारी उनके भाई दूलगजी के बेटे वैरसी हुए

जोधपुर के मण्डोर उद्यान में स्थित देवताओं की साल एवं वीरों की दालान में स्थानीय वीरों अर्थात् मारवाड़ के पंच पीरों में मेहाजी की मूर्ति घोड़े पर सवार पुरूष के रूप में है। यह एक चट्टान को काटकर बनायी गयी जो करीब 10 फीट ऊँची विशाल पाषाण मूर्ति है यहाँ एक तथ्य बहुत महत्वपूर्ण यह है कि मारवाड़ के पंच पीर मेहाजी की एक मात्र वेशभूषा से सुशोभित और उनके प्राकृतिक स्वरूप के सम्बन्ध में यह पहला और प्राचीनतम उपलब्ध प्रमाण है। इस स्थान को पुरातात्विक विभाग द्वारा संरक्षित स्मारक की श्रेणी में शामिल किया जा चुका है। अपने वचन पालनता के लिए मेहाजी समर्पित थे और इसी कारण गौ-रक्षा हेतु अपने प्राण न्यौछावर किए। डॉ. आईदान सिंह भाटी लिखते हैं कि ''एक बार मेहाजी अपनी माताजी के साथ पुष्कर तीर्थयात्रा पर गए तब वहां एक गूजरी उनकी मुंहबोली बहन बन गई थी। मेहाजी ने उसे कहा कि किसी भी संकट के समय अपने इस भाई को याद करना। गूजरी के पास गायों का बड़ा समूह था और गौधन-लूटेरे उन पर नजरें गड़ाये रहते थे। अकाल पड़ने पर मुंहबोली बहन गूजरी मेहाजी के पास 'बापिणी' उनके गांव गायें लेकर आई। जहां उसने गोळ (डेरा) किया था वह स्थान आज भी 'गूजर-टंकी' के नाम से मशहूर है। गूजरों के पास काफी गौधन था। पड़ोसी राज्य जैसलमेर के भाटियों की नजरें इस गौधन पर थी। उन्होंने उन गायों का हरण कर लिया। वचनबद्ध मेहाजी ने उनका पीछा किया। अपने साथियों के साथ वाहर चढ़े मेहाजी का लुटेरों से भीकमकोर के पास झिंगोर-नाड़ी के पास सामना हुआ। गूजरी की गायें वापिस ले आए किन्तु एक सांड पीछे छूट गया था उसे लाते समय घात लगाए लुटेरों ने मेहाजी का वध कर दिया।''[8]

वीर मेहाजी पर डिंगल कवि जसुदान बीठू ने अपने काव्य वीर मेहा प्रकास में मेहाजी को साहस, शौर्य और पराक्रम तथा उनके क्षत्रियत्व का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।

काथ कूं जिकण सूं बात इधकी करूं,
वैण विख्यात इतियास वणसी।
नैण तूं निहारै बैन नेड़ी करसी धणी,
केलनंद किता रो धाण करसी।।[9]

पश्चिमी राजस्थान में होने वाले मांगलिक कार्यक्रमों पर दिये जाने वाले रंग में जिसमें कीर्ति या वीर पुरुषों के कार्यो को स्मरण या याद किया जाता है वीर मेहाजी को इस तरह स्मरण करते हैं-

केळू-सूत-चढ़ती कळा, भळहळ ऊगो भाण।

अमलां वेळा आपने, रंग मेहाजळ रांण।।
बणियो गायां वाहरू, जुड़ियों जायर जंग।
निरमळ कीरत केळनंद, रंग मेहाजल रंग।।[10]

ओरण वह क्षेत्र या भूखण्ड है जो लोकदेव के प्रति श्रद्धा के रूप में लोक-कल्याण हेतु होता है।

बांकीदास ने अपनी ख्यात में मेहाजी को मांगलियावाटी का लोक देवता मानकर पूजती है-

मांगलिया मेहा नूं पूजै।[11]

डिंगल कवि देवकरण ईदाकली ने अपनी रचना 'वीर क्षत्रिया रा कवत्त' में इस वीर का स्मरण इस प्रकार किया है-

पाबू हडबू वीर गोग चहुंवाण गिणीजै।
मांगलियो मेहोज देव मिलियां चित दीजै।[12]

मांगलिया जाति के राजपूत मेहाजी को अपना इष्ट मानते हैं और पूजते है वर्तमान में 12 गांवों का यह क्षेत्र मांगलियावाटी के नाम से प्रसिद्ध हैं। मांगलिया राजपूत घोड़ा नहीं रखते हैं, क्योंकि इसके पीछे यह मान्यता है कि मेहाजी की सवारी 'किरड़ काबरा' उनका प्रिय घोड़ा था जो उनके जीवन के अन्तिम समय तक उनके साथ रहा। इसलिए मांगलिया विवाह के अवसर पर भी घोड़े की सवारी नहीं करते हैं। यह अधिकार तो सिर्फ मेहाजी के लिए ही था। विवाह के शुभ अवसर पर मेहाजी के प्रसिद्ध गीत गाये जाते हैं। एक गीत इस प्रकार है-

सोनां रै रूपा री राणाजी ईंट पड़ादयौ सा
इण रा चिणादयौ सा म्हेल रै माळिया सा
इण रै म्हेलां में राणा काचड़ला बिड़ादयो सा
इण आंगणिये राणा जी हीरां दे फिरैला सा
जाणै इन्दर गढ रा राजवी सा
कूं कूं ने केसर की राणा गार घलादयौ सा
जा रा निपादयौ म्हेल ने माळिया सा
इण तो आंगणिये राणा सवागदे जी फिरै ला सा
जाणै पुंगळगढ रा पदमणी सा

मारवाड़ में प्रसिद्ध है-

पाबू, हरभू, रामदे, मांगलिया मेहा।
पाँचों पीर पधारज्यो, गोगाजी जेहा।।

संदर्भ

1. *गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, पृ. 16, संदर्भ से उदधृत, द्वितीय संशोधित संस्करण, जोधपुर, 2010*
2. *नैणसी : नैणसी री ख्यात, भाग-1, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर*
3. *विगत मांगलिया री, ग्रंथांक-1234, राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर*
4. *डॉ. आईदानसिंह भाटी : राजस्थान की सांस्कृतिक कथाएँ, पृ. 117, जोधपुर, 2016*
5. *डॉ. विक्रम सिंह भाटी : राजस्थान के लोक देवता में गिरधरदान रतनू दासोड़ी का लेख 'वीर मेहा मांगलिया संबंधी भ्रामक धारणाएं एवं निराकरण', पृ. 58, जोधपुर, 2017*
6. *डॉ. महीपाल सिंह राठौड़ : लोकदेवता पाबूजी, पृ. 17, जोधपुर, 2012*
7. *राजस्थान पत्रिका : बाबूसिंह बापिणी का आलेख, तिथि - 30 अक्टूबर, 2016*
8. *डॉ. आईदान सिंह भाटी : राजस्थान की सांस्कृतिक कथाएँ, पृ. 118, जोधपुर 2016*
9. *डॉ. विक्रम सिंह भाटी, राजस्थान के लोक देवता में गिरधरदान रतनू दासोड़ी का लेख वीर मेहा मांगलिया संबंधी भ्रामक धारणाएं एवं निराकरण, पृ. 58, जोधपुर, 2017*
10. *राजस्थान पत्रिका : बाबूसिंह बापिणी का आलेख, तिथि - 30 अक्टूबर, 2016, डॉ. आईदान सिंह भाटी : राजस्थान की सांस्कृतिक कथाएँ, पृ. 119, जोधपुर, 2016 व डॉ. विक्रम सिंह भाटी : राजस्थान के लोक देवता में गिरधरदान रतनू दासोड़ी का लेख 'वीर मेहा मांगलिया संबंधी भ्रामक धारणाएं एवं निराकरण', पृ. 57, जोधपुर, 2017*
11. *बांकीदास : बांकीदास री ख्यात, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर*
12. *डॉ. विक्रम सिंह भाटी : राजस्थान के लोक देवता में गिरधरदान रतनू दासोड़ी का लेख 'वीर मेहा मांगलिया संबंधी भ्रामक धारणाएं एवं निराकरण', पृ. 57, जोधपुर, 2017*

शेखावाटी के संस्थापक महाराव शेखा - व्यक्तित्व व कृतित्व

भगवान सिंह शेखावत

संवत चौदह सौ नब्बे, विजयदशमी रविवार।
मोकल के घर जनमियो, शेखों राजकुमार।।
पनरासो पैतांलीस वे, अक्षय तीज त्यौहार।
सेखे पाई समर मझ, वीर गति गुरूवार।।

राजस्थान शक्ति व भक्ति की भूमि है जहाँ एक ओर संतों ने अध्यात्म की धारा मरुधरा में बहाई है वहीं दूसरी ओर रणबांकुरो ने अपने स्वाभिमान व संस्कृति की रक्षार्थ सर्वस्व न्यौछावर किया है, इनमें से एक थे - शेखावाटी संघ व शेखावाटी वंश के प्रवर्त्तक 'महाराव शेखा' जिनका जीवन नारी-रक्षा, साम्प्रदायिक सद्भाव व सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा हेतु समर्पित रहा।

बरवाड़ा व नाण के 24 ग्रामों के स्वामी राव मोकल जी की निर्वाण रानी के गर्भ से जो पुत्र हुआ जिसका नामकरण सूफी संत शेख बुरहान चिश्ती के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए 'शेखा' रखा गया।[1] मुहणोत नैणसी के अनुसार ''बाला के पुत्र मोकल पर शेख बुरहान चिश्ती ने कृपा की, उनकी दुआ से मोकल के पुत्र हुआ, नाम शेखा दिया, शेखा की संतान शेखावत कहलाते है, अमरसर शेखा ने बसाया, शिखरगढ़ भी शेखा ने बनाया।''[2] मआसिरूलउमरा में लिखा है - ''शेखावतों के किसी पूर्वज के पुत्र नहीं था। एक फकीर उधर आया और पुत्र न होने का हाल जान कर उसने पुत्र होने की दुआ दी जिससे पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम शेखा रखा उसकी औलाद वाले शेखावत कहलाये।[3] विभिन्न मतों के मध्य यह मत अधिक सत्य के समीप है कि शेखाजी का जन्म 'मानगढ़ में हुआ' जो वर्तमान में अमरसर के उत्तर में स्थित है।[4]

पिता की मृत्यु होने पर 12 वर्ष की अल्पायु में शेखा बरवाड़ा व नाण के स्वामी बने। विस्तृत साम्राज्य की आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए शेखा ने राज्य विस्तार की योजना में सर्वप्रथम नागरचाल के सांखलों को परास्त किया। इस समय त्रिवेणी शाहपुरा (वर्तमान सुप्रसिद्ध त्रिवेणी धाम के आस-पास का क्षेत्र) का नजदीकी क्षेत्र सांखलो के अधिकार में था, जिस पर राव शेखा ने उनके नेता साईवाड़ के नापा को निर्णायक युद्ध में हराया। तत्पश्चात् मेड़, बैराठ के यादवों और टांको के ठिकानों पर आक्रमण किया और

उनसे नजराना वसूल किया।[5]

प्रशासनिक दृष्टिकोण तथा सुरक्षा व छापामार लड़ाई की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्र में अपनी राजधानी बनाई जिसका नामकरण अपनी धाय माँ के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने व धायभाई अमरा गुर्जर के सम्मान में राजधानी का नाम 'अमरसर' रखा।[6] काशी निवासी सुरदत्त ने अमरसर में रहकर ही ''रसिक हुलास'' नामक ग्रंथ लिखा जिसमें उसने वर्णन किया –

राम मनोहर नृपति तहं, रच्यो एक करतार
सैखावत कछवाह मनि, पारस को अवतार

सामान्य परिवार से उठकर अपनी सूझबूझ, साहस, कूटनीति व वीरता से जिस तरह शेखा की शक्ति बढ़ रही थी, उससे तत्कालीन आमेर के शासक चन्द्रसेन का चितिंत होना स्वाभाविक था। शेखा ने नाण के युद्ध में आमेर के शासक चन्द्रसेन को परास्त कर अपनी श्रेष्ठता स्थापित की तथा कुछ समय बाद कूकस की संधि हुई जिसमें चन्द्रसेन को राव शेखा को अमरसर का स्वतंत्र शासक स्वीकार करना पड़ा। कर्नल जैम्स टॉड ने Tod's Rajasthan में वर्णन किया है –

"Shekhaji, when he attained man's estate, greatly augmented the territory left by his father and consolidated three hundred and sixty villages under his sway by conquest from his neighbours: when his reputation and power attracked the jeolous notice of the Lord paramount of Amber."[7]

इसी समय शेख बुरहान की प्रेरणा व मध्यस्तता से आजीविका की तलाश में घूम रहे पठानों को शरण देकर अपनी उदारता का परिचय दिया और न केवल उनके प्राणों की रक्षा की अपितु 12 ग्राम जागीर में देकर धार्मिक सद्भाव की नींव रखी जो आज भी भारतीय संस्कृति व राजव्यवस्था का मेरूदण्ड है व प्रासंगिक है जो महाराव शेखा की दूरदर्शिता को दर्शाता है। राव शेखा का पठानों को शरण देना, उन्हें जागीर देना व दोनों के बीच अहदनामा होना महत्वपूर्ण घटना है।[8] इस अहदनामे की शर्तें थी –

(1) शेखाजी व उनके पुत्र पठानों को अपने भाई मानेंगे।

(2) पठान हिन्दुओं के धार्मिक पशु गाय, बैल, पक्षी, मोर को ना मारेंगे न खायेगें।

(3) शेखाजी के परिवार वाले सुअर का मांस नहीं खायेंगे व अपने रसोवडे में झटके का मांस कभी नहीं आने देंगे।

(4) पठानों का झंडा नीले रंग का था, अब चूंकि वे शेखाजी के अधीनस्थ जागीरदार व सैनिक बन चुके थे, इसलिए उनके अलग झण्डे का अब कोई औचित्य नहीं था, अत: तय हुआ कि वे शेखाजी के पीले ध्वज को अपना ध्वज मानकर निष्ठा से

लड़ाई लड़ेगें, लेकिन उदारवादी शेखा जी ने पठानों की भावनाओं का आदर करते हुए अपने पीले ध्वज के चारों तरफ नीली पट्टी का फेंटा रखकर समझौते के बावजूद पठानों की नीले ध्वज को स्मृति को बनाया रखा।

पठानों से मित्रता से राव शेखा की शक्ति कई गुना बढ़ गई जिससे उत्साहित राव शेखा ने बागड़ के कायमखानियों से लोहा लिया और शेखा सेना वर्तमान हरियाणा के चरखी, दादरी, नारनौल, बुहाणा, भिवानी तक जा पहुंची जहां अपना परचम लहराया व उदण्ड जाटु (तंवरों की शाखा) राजपूतों को सबक सिखाया तथा जाटुओं से जीते हुये 40 ग्राम अपने पुत्र रतनाजी को सौंप दिये जो रतनावत ग्रामों का समूह 'रतनावतों का चालीसा' कहलाता है।[9] एक सामान्य परिवार के व्यक्ति का दिल्ली की सीमा तक पहुंच अपनी विजय वैजयन्ती फहराना इतिहास की रोमांचकारी घटना है।

राव शेखा की उक्त राजनैतिक उपलब्धियों के साथ-साथ सांस्कृतिक कार्य भी समानान्तर चलते रहे जिस क्रम में राजधानी अमरसर में सुदृढ़ प्राचीरों वाला दुर्ग बनाया जिसका नामकरण 'शिखरगढ़' रखा। इसके अतिरिक्त रानियों ने अनेक मंदिर भी बनवाये, जिसमें उनकी पहली रानी टांकणजी का बनवाया हुआ श्री कल्याणजी का मन्दिर प्रमुख है।

उधर राजपूताने में राव शेखा की धाक इतनी बढ़ चुकी थी कि संघर्ष के दिनों में मारवाड़ के राव जोधा के पुत्र दूदा (मेड़तिया) भी अमरसर आये।

राव जोधा का नारी सुरक्षा व सशक्तिकरण के प्रति उनका दृष्टिकोण तब सामने आया जब उन्होंने इसके लिए गौड़ों को सबक सिखाया जो राजनीति से नही मानवता व नैतिकता से प्रेरित था। गोड़ो का गौड़ाही प्रदेश 16वीं सदी तक के प्रथम चरण तक छोटे-बड़े अनेक ठिकानों (उपराज्यों) में विभाजित हो चुका था। मारोठ और मीठड़ी उनके दो पाटवी राज्य थे। कुचामण, सरगोठ, लूगवा-घाटवा और झूंथर उनके भाईयों के ठिकाने थे। पूर्वी गौड़ाटी के गौडो के मुखिया (पाटवी) मारोठ के राव रिड़मल थे।[10] वही उल्लेखनीय है कि गौड़ शेखाजी के संबंधी थे। गौड़ाटी का झूंथर ठिकाना (सीकर) का शासक राव कोलराज धमंडी व उद्दण्ड था ने ग्राम दांता के पास एक सार्वजनिक तालाब की खुदवाई प्रारम्भ करवाई जिसमें राहगीरों से भी स्वैच्छिक सहयोग लेने का निश्चय किया गया था। गौड़ सैनिकों ने एक राहगीर दम्पति को भी खुदाई करने को कहा जिस पर पति ने पत्नी के हिस्से का भी काम कर देने की बात कही जिस पर गौड़ सैनिको ने उस महिला को पर्दा उठाकर मिट्टी उठाने हेतु मजबूर किया गया, महिला के इस अपमान से क्रुद्ध उसके पति ने जब प्रतिकार किया तो गौड़ों ने उसे मार डाला।[11] अबला महिला से पति का दाहसंस्कार कर वहां से मिट्टी उठाकर सीधी अमरसर पहुंची तथा न्याय की गुहार लगाई। राव शेखा ने रिश्तेदारी व राजनीतिक परिणामों पर विचार न

करते हुए स्त्री की मानमर्यादा व गौड़ों को उनकी उच्छंखलता-उदण्डता का दंड देने हेतु अपनी सेना को तैयार किया। राव शेखा ने झूंथर पर आक्रमण कर गौड़ कोलराज का मस्तक काट, अमरसर के गढ़ पर टांक दिया तथा महिला को दिये वचन को पूरा किया। गौड़ों के जातीय अपमान से क्षुब्ध गौड़ गोड़ावटी के 'घाटवा' स्थान पर इकटाठे हुये व राव रिडमल के नैतृत्व में संयुक्त होकर शेखा से यह कहते हुए बदला लेने युद्ध में आमंत्रित किया-

गौड़ बुलावे घाट्वै, चढ़ आवो सेखा
लस्कर थारा मारणां, देखण का अभिलेखा

राव शेखा ने इस युद्ध में अपने अद्‌भुत सैन्य कौशल व साहस का परिचय दिया परन्तु वे अपने दो पुत्रों-दुर्गाजी और पूरण जी के साथ वीर गति को प्राप्त हुये।[12] राव शेखाजी के देवलोक होने के समाचार अमरसर पहुँचने पर उनकी 2 रानियाँ सती हुई, आज भी रतनाजी के कुऐ पर सतियों की देवलियाँ बनी हुई है। मृत्यु से पूर्व राव शेखा ने रलावता में (मृत्युस्थल) अपने छोटे पुत्र रायमल को राजपूत व पठान उमरावों के सामने उत्तराधिकारी घोषित किया। रलावता में उनकी स्मृति में बनी पाषाण छतरी मर्यादा की रक्षार्थ और आततायियों के विनाशार्थ शत्रुओं से जीवनपर्यन्त लोहा लेने वाले उस महान वीर के जीवन की प्रेरणादायी कहानी आज भी कहती है।

शेखाजी की 5 रानियों से 12 पुत्र हुये, उन्ही 12 पुत्रों के वंशज शेखावत कहलाते है। शेखाजी के पुत्रों के नाम (1) दुर्गाजी (2) रतनाजी (3) भरतजी (4) तिलोक जी (5) अभाजी (6) अचलाजी (7) पूरणजी (8) प्रतापजी (9) कुंभाजी (10) रिडमलजी (11) भारमलजी (12) रायमलजी। शेखाजी के पांचवें व अन्तिम विवाह जो 'चोबारा' (शाहंजापुर चौबारा के नाम से प्रसिद्ध जो राज. हरियाणा बार्डर पर है) के चौहानो के यहां हुआ। इससे संबंधित दंतकथा भी प्रचलित है कि शेखाजी के ज्येष्ठ पुत्र दुर्गाजी ने चौहान स्योब्रह्माजी को वचन दिया कि उनकी पुत्री से उत्पन्न पुत्र ही शेखाजी का उत्तराधिकारी होगा तथा वो उनका हक त्याग देंगे, इन्ही चौहान रानी से रायमल जी का जन्म हुआ जो शेखाजी के उत्तराधिकारी बने। मुगल शासक हुमांयू को हटाकर सूर समाज्य की स्थापना करने वाले शेरशाह सूरी का पिता हसनखां अपनी युवावस्था के प्रारम्भ में कुछ समय तक शेखाजी के पुत्र व उत्तराधिकारी रायमलजी के यहाँ नौकर रहा था[13], जो शेखावंश की बन रही राष्ट्रीय पहचान का घोतक है। मुगल सम्राट अकबर के दरबार में शेखाजी के वंशज राव लूणकरण जी और राजा रायसलजी मुगल मनसबदार थे जिसका वर्णन आईने अकबरी के अंग्रेजी अनुवादक ब्लॉकमेन ने किया है।

कर्नल टॉड ने 'राजस्थान का इतिहास' में शेखावत संघ का वर्णन करते हुए शेख बुरहान के उन कथित चमत्कारों का वर्णन भी किया है। ऐसी ही स्थानीय दंतकथा प्रसिद्ध

है कि शेख बुरहान ने राव मोकलजी को पुत्र होने का वरदान दिया और उन्हें यह आदेश दिया की बालक के जन्म लेते ही काले बछड़े की बली देकर उसके रक्त से नवजात शिशु को स्नान करवाना है, परन्तु हिन्दु धर्म के अनुयायी राव मौकल ने बछड़े के स्थान पर काले बकरे को काटकर उसके खून से शिशु को स्नान करवाया, परन्तु शेख बुरहान के करामात से बली किया हुआ बकरा पुर्नजीवित हो उठा। सूफी संत शेखबुरहान के प्रति शेखाजी की आस्था उनके वंशजों में भी विधमान रही, आश्चर्यजनक तथ्य है कि आज भी यह परम्परा चली आ रही कि उनके वंशज अपने घर में बने आलियो (पूजा स्थान) में उनकी स्मृति में दीपक जलाते है व विवाह पर नवदम्पति जयपुर-दिल्ली राष्ट्रीय राजमार्ग ताला (धोला) स्थित दरगाह पर मत्था टेकते हैं, जो भारत की मिश्रित संस्कृति का अनुपम उदाहरण है। यहाँ सालाना उर्स का आयोजन होता है, जहाँ भारी संख्या में हिन्दु तथा मुस्लिम दर्शनार्थ आते है। यहाँ पर शेखबुरहान की दरगाह है। वहाँ पर उनके खादिम (सेवक) सैकड़ों की संख्या में बसते हैं और वे अपने को शेख बुरहान के वंशज बताते है।[14]

मुकुन्ददान बारहठ ने लिखा है -

सेखो भुजबल सबल, निबल पालक बड़नामी
कीरत रथ दे कंध, वीर जूतो धूर बामी
आंधी लग अपणाय, खिमा खांगा बल खाटी
भड़ साकुर दल भंज, गंज लीधी गौड़ाटी

अर्थात् राव शेखा जितना बलवान ओर पराक्रमी था उतना ही दीन दुखियों और निर्बलों का रक्षक था, कीर्ति रूपी रथ को बाये कंधे पर धारण कर रखा था, तलवार के जोर से भूमि जीतकर, आंधी-थोलाई तक उसने राज्य सीमा कायम की, बड़े-बड़े योद्धाओं का रण में गर्व गंजन किया, गौड़ाटी के बदमाश गौड़ों का बल तोड़कर उनकी भूमि पर अधिकार कर लिया। आगे कवि लिखते हैं :-

सात्रव समाज भिड़-भिड़ समर,
सक्यो न काई सेर सूं
जग बीच वीर जीयो जितै,
अड़यो रियो आमेर सूं [15]

अर्थात् राव शेखा के शत्रुओं ने अनेक युद्धों में लोहा लेकर उससे शक्ति परीक्षण किया किन्तु उस नर-नाहर के सामने कोई भी नहीं टिक सका। जब तक वह वीर जीवित रहा, आमेर से प्रतिस्पर्द्धा करता रहा।

राव शेखा के व्यक्तित्व का समग्र मूल्यांकन करें तो मध्यकालीन राजस्थान का कूटनीतिज्ञ, प्रजावत्सल, प्रणतपाल, दूरदर्शी व साहसी शासक के रूप में उनकी गिनती

होती है जिसने साधारण पृष्ठभूमि से ऊपर उठकर शेखावाटी राज्य की स्थापना की एवं साम्प्रदायिक सद्भाव, नारी सुरक्षा का जो अमर संदेश दिया वह हर युग में प्रासंगिक रहेगा।

संदर्भ

1. *शेखावाटी प्रकाश, अ.5, पृष्ठ 3*
2. *मुहता नैणसी की ख्यात, भाग-2 पृष्ठ 32*
3. *महासिरूलउमरा, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ 351*
4. *राव शेखा, ठा. सुरजन सिंह झाझड़, पृष्ठ 37*
5. *वही, पृष्ठ 41*
6. *वही, पृष्ठ 43*
7. *टॉड का राजस्थान (अंग्रेजी), पृष्ठ 315*
8. *शिखर वंशोत्पति, पृष्ठ 6*
9. *रावशेखा, पृष्ठ 82*
10. *वही, पृष्ठ 90*
11. *शिखर वंशोत्पति, पृष्ठ 9*
12. *केसरी सिह समर, सम्पादक झाबरमल शर्मा, पृष्ठ 27*
13. *टॉड का राजस्थान (अंग्रेजी संस्करण), पृ. 315*
14. *नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग-3, अंक-2*
15. *राव शेखा, ठाकुर सुरजनसिंह, पृ. 124*

पश्चिमी राजस्थान में दास प्रथा - बीकानेर राज्य के विशेष संदर्भ में (1700-1900 ई.)

डॉ. कनिका भनोत

दास प्रथा की उत्पत्ति एवं उद्भव की जानकारी प्राचीन भारत के सामाजिक संगठन के सम्बन्ध में उपलब्ध स्रोत-सामग्री से मिलती है। लेकिन मध्यकाल के आते-आते हम यह देखते हैं कि राजपूताना में राजपूत लोग युद्ध के लिए अथवा अन्य कार्यों के लिए घर से बाहर जाते रहते थे और उनकी स्त्रियां पर्दे में तथा विविध मर्यादाओं में रहती थीं। इसलिए उन्हें ऐसे सेवकों को रखने की आवश्यकता पड़ती थी जो सेवक के रूप में उनका हर प्रकार का कार्य कर सकें और उनके परिवार के साथ एक सेवक या चाकर के रूप में रह सकें। इसने चाकरों और सेवकों की एक ऐसी श्रेणी या वर्ग की रचना की जिससे सम्बन्धित व्यक्ति वंशानुक्रम में अधीनता में रह कर घर का काम-काज करते रहे। शनैः शनैः दास वर्ग ने एक सामाजिक संस्था का स्वरूप ग्रहण कर लिया और अधिक से अधिक दास रखना सम्पन्न और अभिजात्य वर्ग की शान और प्रतिष्ठा का सूचक बन गया।

गोला, दरोगा, चाकर, वजीर, धिकड़िया, खासे, दास, खानजादा, चेला, रावणा आदि विभिन्न नामों से जाने गये इस सेवावर्गीय सामाजिक वर्ग से जुड़े विविध आयामों पर राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, बीकानेर में विपुल मात्रा में मूल स्रोत-सामग्री समुपलब्ध है। पश्चिमी राजस्थान और बीकानेर के विशेष संदर्भ में ऐतद्विषयक स्रोत-सामग्री का अध्ययन, विवेचना और विश्लेषण इस क्षेत्र विशेष में रही इस वर्ग विशेष की स्थिति को समझने में बड़ा ही सहायक और उपयोगी सिद्ध होता है। इस वर्ग से जुड़ी स्त्रियों को भी कई नामों से जाना जाता था जैसे-गोली, चाकर, पातर, डावड़ी, मानस, खानजद, बडारण, बाई, खालसा-ए-डावड़ी, दरोगन, बांदी, खवासन, पासवान आदि-आदि। इन सबका अपना एक पृथक् संसार था, विविध दायित्व, बंधन और परिसीमाएं थीं। इनमें से कोई-कोई अपने रूप लावण्य, बुद्धि कौशल या वैशिष्ट्यों के चलते हरम की राजनीति में एक अहम् मुकाम भी हासिल कर लिया करती थीं। ऐतद्विषयक विविध पक्षों का समसामयिक मूल स्रोत-सामग्री आधारित अध्ययन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करना इस शोध-पत्र का मुख्य ध्येय है।

उल्लेखनीय है कि, दास प्रथा की उत्पत्ति एवं उद्‌भव की जानकारी प्राचीन इतिहास के सामाजिक संगठन के सम्बन्ध में उपलब्ध अध्ययन सामग्री से मिलती है, जिसके अनुसार समाज में कार्य विभाजन के आधार पर वर्ग और जातियों का निर्माण किया गया था।[1] लेकिन मध्यकाल आते-आते हम देखते हैं कि राजपूताना में राजपूत लोग युद्ध के लिए अथवा अन्य कार्यों के लिए घर से बाहर रहते थे और उनकी स्त्रियां पर्दे में रहती थीं। इसलिए उनको ऐसे सेवकों को रखने की आवश्यकता पड़ती थी, जो हर तरह का काम कर सकें और हमेशा उनके परिवार के साथ ही रह सकें। अत: चाकरों और सेवकों की एक ऐसी नई श्रेणी या वर्ग की रचना और उत्पत्ति हुई जिसके व्यक्ति वंशानुक्रम में अधीनता में रहकर घर का काम-काज करते थे। इस वर्ग में उन लोगों को शामिल किया गया जो 'गोलक' या 'गोला' कहलाते थे। इनके साथ जातिच्युत लोगों के समान बर्ताव होता था। फिर भी इन लोगों ने अपनी कठिन परिस्थितियों में सुधरे हुए रूप में गुलामी स्वीकार की और बदले में उनको जीवन-निर्वाह की सामान्य सामग्री स्थायी रूप से मिलना निश्चित हुआ।[2]

इस प्रकार मध्ययुग में दासों का एक अलग वर्ग बन चुका था। अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी कालीन पश्चिमी राजस्थान और बीकानेर राज्य के विशेष संदर्भ में देखने पर हम यह पाते हैं कि आलोच्यकाल में इस क्षेत्र विशेष में यह दास वंशानुक्रम से उच्च घराने में काम करते थे और शासक व सम्पन्न वर्ग का स्तर इन्हीं दासों की बहुलता के आधार पर ही आंका जाता था। इन दासों को गोला[3], दरोगा, चाकर, वजीर, धिकड़िया, खासे, दास, खानजादा, चेला, रावणा आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता था।[4] और इनकी स्त्रियों को गोली, चाकर, पातर, डावड़ी, मानस, खानजद, बडारण, बाई, खालसा-ए-डावड़ी, दारोगन, बांदी, खवासन, पासवान आदि नामों से पुकारा जाता था।[5] इन दासों की पुत्र-पुत्रियों को भी इसी दास वर्ग में ही रहना पड़ता था। यह गोला लोग अपने स्वामी की आज्ञा के बिना विवाह नहीं कर सकते थे। इनकी लड़की जब विवाह योग्य हो जाती थी तब उसे राजा के सामने पेश किया जाता था। यदि शासक की इच्छा किसी लड़की को अपने रनिवास में रखने की होती तो किसी दूसरे गोले के साथ उस लड़की के विवाह की रस्म अदा कर वह उसे तत्काल अपने रनिवास में दाखिल कर लेता था।[6] और उसके पति को कुछ नगद रुपया तथा दहेज का सामान देकर विदा कर दिया जाता था और फिर जब तक वह राजमहलों में रहती थी तब तक उसके साथ उसके पति का किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं रहता था। दूसरी तरफ लड़कियां बाहर से खरीद कर उनको दासियां बनाया जाता था। शासक परिवार और सम्पन्न वर्ग के द्वारा अपनी लड़कियों के दहेज में सुंदर गोलियों को भेंट स्वरूप दिया जाता था।[7] इन दासियों

का मुख्य कार्य रानियों की सेवा सुश्रूषा करना व शासक की उपस्थिति में उसकी आवभगत करना था। इन दासियों में से सहेली का स्तर अधिक उच्च था जो राजा तथा रानियों के निकट रहती थी तथा कई बार इस अवसर का लाभ उठा कर वे राजा की प्रिय बन जाती थीं तथा अपना स्तर पासवान, पड़दायतन का भी बना लेती थीं। इनकी जीविका भी राजकोठार से निर्धारित होती थी।[8] 'पड़दायतन' वह गोली कहलाती थी जिसे राज परिवार में उप-पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया जाता था अर्थात् उसे रनिवास के पर्दे में रहना पड़ता था।[9] यदि शासक प्रसन्न होकर उसे हाथ-पैरों में सोने के आभूषण पहनने की स्वीकृति प्रदान कर देता था तो उसका पद और सम्मान बढ़ जाता था और वह 'पासवान' अथवा 'खवासन' कहलाती थी और समारोह आदि में उसकी बैठक रानियों के नीचे रहती थी।[10] साथ ही जन्म, विवाह, तथा अन्य समारोह पर पड़दायतनों तथा पासवानों को काफी उपहार मिलते थे।[11] उनके पुत्रों की शादी धूमधाम से की जाती थी और उन्हें जागीरें तथा उच्च पद प्रदान किए जाते थे।[12] जिन लड़कियों को रनिवास में दाखिला नहीं मिलता था वे या तो 'डावरी' के रूप में जनाना महलों में सेविका के रूप में कार्य करती थी अथवा उन्हें शासकों की पुत्रियों के दहेज में दिया जाता था।

राजमहलों तथा सामंतों के निवासों में इन गोला-गोलियों का चाहे कितना ही अधिक प्रभाव क्यों न रहा हो, उनकी सामाजिक स्थिति बहुत ही निम्न रही। कोई भी प्रतिष्ठित राजपूत इनको अपनी पुत्री देने को तैयार नहीं होता था।[13] पड़दायतन व पासवान का व्यय साधारणतया रानी या कुंवरी के सालाना व्यय के साथ ही आता था।[14] सामाजिक उत्सवों तथा त्यौहारों पर इन्हें भी इनाम और बख्शीश दी जाती थी।

बीकानेर राज्य में इन दासों के लिए अलग से एक विभाग बनाया गया था जिसे राज लोक विभाग कहा जाता था। यह विभाग दासों सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्य देखता था और इनकी संतान आदि के विवाह व मृत्यु का खर्च वहन करता था।[15] तथापि, वंशानुगत गुलामी करने के कारण इस वर्ग की स्थिति खराब थी। 19वीं सदी में होने वाले सामाजिक सुधारों से इस जाति के लोगों में भी चेतना की लहर उठी और उन्होंने अपने आपको 'रावणा राजपूत' कहना शुरू किया।[16] लेकिन क्योंकि यह वर्ग पूरी तरह से दास था, इसलिए 20वीं सदी के तीन चार दशक तक विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई थी, जिसका प्रमाण जोधपुर राज्य का 1916 ई. का वह इश्तिहार है जिसमें निम्न बातों का उल्लेख है।[17]

(1) इस प्रकार के घरेलू दासों को उनका मालिक खाना, कपड़ा और विवाह, मृत्यु-जन्म इत्यादि का व्यय प्रदान करता है। अत: बदले में उसे उनसे सेवा कार्य करवाने का अधिकार है।

(2) यदि किसी दरोगा का परिवार इतना अधिक बढ़ जाए कि उसका मालिक सम्पूर्ण परिवार का व्यय न उठा सके अथवा उसे सभी सदस्यों की सेवाओं की आवश्यकता न रहे तो ऐसी सूरत में मालिक अपने लिए आवश्यक सदस्यों की सेवा का उपयोग करते हुए अन्य सदस्यों को आजीविका के अन्य साधन ढूंढने का आदेश दे सकता है, परन्तु इन सदस्यों को भी आवश्यकता पड़ने पर उनका स्वामी वापिस बुला सकता है।

(3) राजपूत मालिक अपनी पुत्रियों के विवाह के समय घरेलू दासों की पुत्रियों को दहेज में दे सकता है। प्रमुख सामंत को अपने किसी भी घरेलू दास के सम्पूर्ण परिवार को भी दहेज में देने का अधिकार है।

(4) अन्य साधनों से जीविकार्जन करने वाले घरेलू दासों की पुत्रियों को भी दहेज में देने का अधिकार कायम रहेगा।

बीकानेर रियासत में भी विवेच्य अवधि में दास प्रथा का व्यापक रूप से प्रचलन था। यद्यपि, समसामयिक बीकानेर राज्य में शासन के द्वारा ऐसा कुछ भी नहीं किया गया तथापि यहाँ दासों की स्थिति व्यवहार में इसी प्रकार की और शोचनीय ही थी। दास प्रथा को पनपाने में शासकों तथा सामंत वर्ग की विशेष भूमिका रही। वास्तविक अर्थों में यह लोग शोषित, पीड़ित और प्रताड़ित थे और शासक तथा सामंत अपने सुख-आराम तथा विलासिता के लिए इन्हें साधन के रूप में इस्तेमाल करते थे। चिंताजनक बात तो यह थी कि विवेच्यकाल के दौरान इस प्रथा को राज्य के द्वारा जिस तरह से प्रश्रय और प्रोत्साहन दिया जा रहा था, उससे इस प्रथा ने एक सामाजिक कुरीति का रूप धारण कर लिया था।

संदर्भ

1. *देवराज चानना : स्लेवरी इन एन्शियन्ट इण्डिया एज डिपिक्टेड इन पाली एण्ड संस्कृत टैक्स्ट, पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1968*
2. *मंजु कच्छल : 19वीं शताब्दी में सामाजिक परिवर्तन, जयपुर, 1998*
3. *पुरुष दास सेवक*
4. *मेहता संग्राम सिंह कलेक्शन, दास प्रथा से सम्बन्धित फाइल नं. 133*
5. *बही समसत गांवां री, वि.सं. 1725/1685 ई., पृ. 81-83, बीकानेर रिकॉर्ड, रा.रा.अ.बी.*
6. *दस्तूर कौमवार, खण्ड-14, पृ. 229, 231 और 761, रा.रा.अ.बी.*
7. *बायां रे ब्याव री बही, बीकानेर, वि.सं. 1706/1649 ई., नं. 143, बही बाईजी श्री सिरदार कुंवर रे ब्याव री, बीकानेर, वि.सं. 1827/1770 ई., नं. 22, रजिस्टर नं. 40, रा.रा.अ.बी.*
8. *बही समसता रे गांवां री जमा खर्च री बीकानेर, वि.सं. 1725/1668 ई., पृ. 82,*

रा.रा.अ.बी.
9. *दस्तूर कौमवार, खण्ड-14, पृ. 229, 231, 773, 885, 912, रा.रा.अ.बी.*
10. *दस्तूर कौमवार, खण्ड-14, पृ. 229, 231 और 761, रा.रा.अ.बी.*
11. *दस्तूर कौमवार, खण्ड-14, पृ. 229, 231 और 761, रा.रा.अ.बी.*
12. *दस्तूर कौमवार, खण्ड-14, पृ. 792, 793, 802, 815, 816, रा.रा.अ.बी.*
13. *रावणा-राजपूत दर्शन, पृ. 14*
14. *बही समसता रे गांवा री जमा खर्च री बीकानेर, वि.सं. 1725/1668 ई., पृ. 64-74, रा.रा.अ.बी.*
15. *राजलोक रिकॉर्ड्स, बीकानेर 1779-1857/1722-1800 ई.(दस्तूर कौमवार, भाग-6, पृ. 779-815, रा.रा.अ.बी.*
16. *मर्दुमशुमारी रिपोर्ट, राज मारवाड़, 1891, पृ. 182, रा.रा.अ.बी.*
17. *मारवाड़ गजट, खण्ड-5, नं. 1, पृ. 70, दिनांक 16.12.1926*

 ISSN 2321-1288

Rao Ganpat Singh Chitalwana Prize Paper

18वीं शताब्दी में मारवाड़ में वस्त्र कारीगरों की जाति पंचायतें/न्यात पंचायतें

डॉ. सुमित

मारवाड़ में विभिन्न जातियों एवं वर्गों के लोग निवास करते हैं। इन सभी जातियों के सामाजिक रीति-रिवाज, सम्पत्ति विवरण, स्त्रियों की दशा, मृत्युभोज, क्रय-विक्रय, नाता प्रथा आदि से सम्बन्धि प्रत्येक जाति के भिन्न-भिन्न नियम व कानून थे, जिन्हें पूर्ण रूप से सामाजिक एवं न्यायिक मान्यता प्राप्त थी जिनका उल्लंघन करने की स्थिति में उस समाज की जाति पंचायत द्वारा गुनैगारी लगाई जाती थी। यदि हम मारवाड़ की पंचायत व्यवस्था को समझने का प्रयास करें तो हम इसे अध्ययन की सुविधा हेतु तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम जाति पंचायत, द्वितीय ग्राम पंचायत एवं तृतीय व्यवसाय पंचायत। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य वस्त्र निर्माण से जुड़े कारीगर जिनमें छीपा, रंगरेज, जुलाहा, पटवा, चढ़वा, दर्जी आदि सम्मिलित है। उनकी जाति पंचायतों के विषय में जानकारी प्राप्त करना एवं पंचायतों में आने वाले मुकदमों, उन पर किए जाने वाले फैसलों एवं इन सब में राज्य की भूमिका, जाति पंचायतों के पंचों के चुनाव की प्रक्रिया एवं राज्य निर्माण में यह पंचायत किस प्रकार आवश्य थी? क्या इनका चुनाव राज्य की सहमति से किया जाता था? इन पंचायतों में महिलाओं की क्या भागीदारी थी? आदि प्रश्नों पर विस्तारपूर्वक चर्चा करना है।

इस शोध पत्र को तैयार करने हेतु जोधपुर राज्य की सनद परवाना बहियों एवं इस विषय से सम्बन्धित प्रकाशित पुस्तकों एवं शोध पत्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

जाति पंचायत

जाति पंचायत सामाजिक स्तर पर एक न्यायिक संस्था रही है। हमें सनद परवाना बहियों में विविध जातियों की भिन्न-भिन्न जाति पंचायतों की उपस्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त होती है जिसमें छीपों की पंचायत, जुलावा री पंचायत, रंगरेज री पंचायत, दर्जियां री पंचायत जैसे शब्द हमें बहियों से प्राप्त होते हैं।[1]

पंचों की नियुक्ति

इन जाति पंचायतों में पंचों की नियुक्ति सम्बन्धी मुख्यत: तीन दृष्टिकोण सामने आते हैं जिनमें प्रथम यह कि क्या यह पंच वंशानुगत या पैतृक आधार पर नियुक्त किये जाते थे? या इनकी नियुक्ति चुनाव प्रक्रिया के द्वारा होती थी? या इनकी नियुक्ति राज्य के द्वारा की जाती थी? लेकिन इसके बारे में हमे पुरालेखनीय सामग्री से स्पष्ट जानकारी प्राप्त नहीं होती है। राज्य के द्वारा इन जाति पंचायतों को मान्यता प्राप्त थी। यह साक्ष्यों से पूर्ण रूप स्पष्ट होता है लेकिन राज्य द्वारा इनकी नियुक्ति के संबंध में साक्ष्य मौन है जबकि प्रो. शिव कुमार भनोत के अनुसार इन जाति पंचायतों के पंचों की नियुक्ति राज्य के द्वारा की जाती थी।[2] किन्तु वस्त्र कारीगरों की जाति पंचायतों से हमें इस प्रकार के साक्ष्य प्राप्त नहीं होते हैं।

विवाद एवं निर्णय

इन जाति पंचायतों द्वारा निपटाये जाने वाले विवाद में मुख्य रूप से सगाई, विवाह, विवाहिता जीवन, पति की मृत्यु पश्चात महिला जीवन पुनर्विवाह, पगे लगाना, खोला, नारी के क्रय-विक्रय एवं पैतृक सम्पत्ति के बंटवारे से सम्बन्धित आदि थे।

सगाई

विवाह से पूर्व सगाई एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रस्म मानी जाती थी लेकिन कई बार दोनों परिवारों में से एक परिवार सगाई के लिए मना कर देता था या विवाह की तिथि को टालता रहता था। बार-बार कहने पर भी विवाह नहीं कर देता था ''म्हारी बेटी घणी मोटी हुई इब खटावै'' नही आदि शब्द हमें बहियों से प्राप्त होते हैं जिनके अनुसार बेटी का पिता यह निवेदन कर रहा है कि उसकी पुत्री अब बहुत बड़ी हो गई है अब उसे घर में रखना संभव नहीं है। सगाई तोड़ने के विभिन्न कारण होते थे जैसे लड़के या लड़की का विकलांग हो जाना, लड़के का परदेश जाकर वहीं विवाह कर लेना या वापस न आना, किसी अपराध में लिप्त होना या फिर लड़की का चरित्र ठीक न होना आदि। किन्तु कई बार इनमें से कोई भी कारण न होने की स्थिति में भी लालच स्वरूप सगाई तोड़ दी जाती थी। ये समस्त विवाद जाति पंचायत के समक्ष निर्णय हेतु लाये जाते थे। उदाहरणस्वरूप ''गांव हरसाड़ा के छीपे चदै ने शिकायत दर्ज करवाई कि उसने अपने छोटे भाई केसव की सगाई जोधुपर के छीपे रहीम की बेटी से संवत् 1840 में की थी। तीन वर्ष बीत जाने पर रहीन ने अपनी बेटी की सगाई दूसरी जगह कर दी है। इस पर मामले की छानबीन का हुकम हुआ है।[3] इसमें सगाई दूसरी जगह क्यों की गई इसके बारे में स्पष्ट जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

इसी प्रकार नागौर के जुलावै बधै ने शिकायत दर्ज करवाई की कि उसके बेटे की सगाई नुरा की बेटी से की थी लेकिन मेरा बेटा फौत (मृत्यु) हो गया। इसलिए उसने मेरे छोटे बेटे से अपनी बेटी परणाने हेतु मुझ से रीत करवा ली लेकिन अब विवाह नहीं कर

रहा है। इस पर जुलावा री पंचायत ने निर्णय दिया कि यदि रीत के पैसे लिए है तो अब बधै के छोटे बेटी से अपनी बेटी का विवाह कर दो।[4]

पति की मृत्यु के पश्चात् कारीगर वर्ग की स्त्रियाँ कर सकती थी किन्तु इसके लिए पति के परिवार एवं स्वयं की न्यात पंचायत से सहमति लेना अनिवार्य होता था। उदाहरणस्वरूप मेड़ता के गांव बुढ़सर के दर्जी नारायण ने अपनी बहन माहोरठ के गांव कसारी के दरजी से परणाई (विवाह) थी। कसारी रे दरजी की मृत्यु हो गई एवं उसकी कोई संतान भी नहीं थी इसलिए दरजी नारायण ने अपनी न्यात पंचायत से अपनी बहन का नाता करने की स्वीकृति मांगी। नाते की स्वीकृति हेतु न्यात पंचायत ने ''जाति भोज'' हेतु 16 रुपये लिये।[5]

सगाई का नारियल स्वीकार करने के पश्चात् सगाई तोड़ना अपराध माना जाता था। ऐसा होने की स्थिति जाति पंचायत ऐसा करने वाले पर गुनैगारी लगाती थी। उदाहरणस्वरूप-संवत 1827 में नागौर के दरजी ने अपनी न्यात पंचायत में शिकायत दर्ज करवाई की उसके भाई गुमान की सगाई गांव बड़ी खाटू के दरजी माना की बेटी ने की थी। दरजियों की रीत के अनुसार गुल खोपरो (नारियल) एवं एक रूपीया अपने साले खीवा के हाथ भिजवा दिया था लेकिन उसने अपनी डावड़ी (बेटी) की सगाई मेड़ता के गांव धनेरिया के दरजी से कर दी है। इस पर न्यात पंचायत ने इस विषय पर जानकारी एकत्रित करने का आदेश दिया, ताकि सत्य का पता लगाया जा सके।[6]

पहली पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरी पत्नी को घर में रखने की स्थिति में पहली पत्नी के समस्त खर्च वहन पति के द्वारा किये किये जाते थे। इसके बावजूद प्रथम पत्नी के जीवित रहते दूसरी स्त्री को घर में रखना मान्य नहीं था। ऐसी स्थिति के लिए पुरूष पक्ष के समक्ष उचित कारण होना आवश्यक था। ऐसी स्थिति में अनेक विवाह उत्पन्न होते थे जिनका निपटारा जाति पंचायतों के द्वारा किया जाता था किन्तु यदि इन विवादों के कारण झगड़े में किसी की मृत्यु हो जाती थी तो उक्त व्यक्ति को दण्ड स्वरूप राज्य के द्वारा दिया जाता था। जाति पंचायत भी दण्ड स्वरूप गुनैगारी लगा सकती थी। इसके लिए स्वायत थी। उदाहरण स्वरूप-जोधपुर राज्य के गांव बीलू और बांधण सींध री में दरजी जाति के लोगों में मूल पत्नी के जीवित रहते हुए भाई की पत्नी को घर में डाल लेने के प्रश्न पर उत्पन्न विवाद में मूल पत्नी के भाई द्वारा अपने जीजाजी की हत्या कर देने पर राज्य ने उस पर 8 रुपये गुनैहगारी लगाई वही जाति पंचायत ने भी यह निर्णय लिया कि हत्यारा तीर्थ जाकर आये एवं लौटने पर समस्त जाति के सदस्यों को भोज दे। इसके पश्चात ही उसे जाति के द्वारा पुनः स्वीकार किया जायेगा।[7]

उपर्युक्त निर्णयों एवं संबंधित स्त्रोतों के अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि जाति-पंचायतें सामान्यतः न्यात की रीत के विरूद्ध कार्य करने या जाति के दोषी व्यक्ति

या गुनैगारी 'आर्थिक दण्ड' ही लगाती दिखाई देती है। दोषी व्यक्ति को 'जाति भोज' जाति बहिष्कृत करने या तीर्थ कर लगाने आदि दण्डों से भी दण्डित राशि राज्य को जमा कर देने पर दोषी व्यक्ति के विरूद्ध किसी को दावा करने का कोई अधिकार नहीं रह जाता था। यदि कोई ऐसा करता था तो उसे राज्य के द्वारा सजा भुगत चुके व्यक्ति को संरक्षण प्रदान किया जाता था।

यदि कोई व्यक्ति बिना संतान के मर जाता था तो उसकी विधवा को पुत्र गोद लेने का अधिकार था लेकिन गोद लेने संबंधी कुछ सामाजिक परम्पराएँ थी जिससे कानूनी मान्यता प्राप्त थी। गोद लेने में यदि कोई विवाद होता था तो उसका निपटारा इन जाति पंचायतों द्वारा किया जाता था। उदाहरणस्वरूप-सोजत के छीपै नथु ने न्यात पंचायत में आकर शिकायत दर्ज करवाई की, छीपा गुमानौ ना औलाद (बिना संतान) के मर गया, इसलिए उसकी पत्नी गुलाबों अपने भतीजे को खोले (गोद) ले आई,जबकि हमारी रीत है कि खोला, परबतसर, डीडवाना, मेड़ता, नागौर से ही ला सकते हैं। जहां पर गुमानो के भाई बंध रहते है, पीहर से खोले नाने का रिवाज हमारी न्यात में नहीं है, फिर उसने ऐसा क्यों किया। इस पर जाति पंचायत ने निर्णय दिया कि गुलाबों को पीहर से लाये हुए भतीजे को वापस भेजने एवं अपने सुसराल पक्ष की तरफ से खोले लेने का आदेश दिया।[8]

पंचायत के निर्णय के विरूद्ध 'दरबार' में अपील करने का सभी जातियों को अधिकार था। ऐसा होने की स्थिति में उसे मामले की पुनः खोजबीन हेतु पंचों की नियुक्ति की जाती थी।[9] हमें सनद परवाना बहियों से ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते है, जब जाति पंचायतों के निर्णयों से उस जाति के लोग संतुष्ट नहीं होते एवं वह कोतवाली एवं दरबार में पुनः मामले की शिकायत दर्ज करवाते हैं। उदाहरणस्वरूप-मेड़ता के रंगरेज बुरे ने अपनी बेटी का नाता जोधपुर के रंगरेज साद से किया है, रंगरेजों के यहां नाते के पंचों को बुलाने की रीत (परम्परा) है किन्तु वह आए नहीं, एवं साद ने 30 रुपये ज्यादा लिये हैं। नाते के लिए इस पर हुकुम हुआ कि मामले की जांच पड़ताल कि जाए एवं यदि रुपये ज्यादा लिए हैं तो उसे वापस लेकर कबूतरों के लिए दान ले लिया जाए।[10]

18 वीं शताब्दी से संबंधित सनद परवाना बहियों की गहनता से अध्ययन करने के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि इन जातियों पंचायतों को राज्य के द्वारा स्वीकृति प्राप्त थी, जिसके चलते राज्य भी इनके निर्णयों का सम्मान करता था। गुनैगारी में प्राप्त रुपयों को ये पंचायतें राजकोष में जमा करवाती थी। ये पंचायतें अक्सर आर्थिक दण्ड, बहिष्कार, जीमण संबंधित दण्ड ही देती थी। अंग-भंग या फिर अन्य किसी प्रकार के शारीरिक दण्ड के बारे में हमें जानकारी प्राप्त नहीं होती है। ये जाति पंचायतें विविध सामाजिक विवादों व समस्याओं को स्थानीय स्तर पर ही सुलझा कर राज्य को अप्रत्यक्ष

रूप से बहुत सहायता प्रदान करती थी। वैसे तो एक ही व्यक्ति जाति पंचायत, ग्राम पंचायत एवं व्यवसायिक पंचायत का सदस्य हो सकता था किन्तु चूंकि कारीगर वर्ग निम्न जातियों में सम्मिलित था, इसलिए हमें इनके विषय में ऐसा दिखाई नहीं देता है।

संदर्भ

1. *सनद परवाना बही सं. 3, पृ. 20, 23*
2. *भनोत शिव कुमार, राजस्थान की पंचायत व्यवस्था, पृ. 113*
3. *सनद परवान बही नं. 34, इमेज 80*
4. *IBID, Image, 193*
5. *IBID, Image, 453*
6. *IBID, Bahi No.10, Image, 126*
7. *IBID, Bahi No.5, Image, 453*
8. *IBID, Bahi No.34, Image, 275-276*
9. *सनद परवाना बही सं. 5, इमेज नं. 6*
10. *IBID, Image, 264*

किशनगढ़ राज्य में सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन

डॉ. अविनाश पारीक

किशनगढ़ राज्य राजस्थान का हृदय स्थल हैं, जिसके संस्थापक महाराजा किशनसिंह, जोधपुर महाराजा उदयसिंह के 8वें पुत्र थे। यह मारवाड़ के प्रसिद्ध राजा सूरसिंह के सगे भाई थे, अत: उन्होंने अपने बड़े भाई के आधिपत्य में रहना उचित नहीं समझा। कविराजा श्यामलदास के अनुसार, कृष्णगढ़ राज्य की स्थापना किशनसिंह के द्वारा वि.सं.1666 (1609 ई.) की बसंत पंचमी के दिन गुन्दोलाव झील के सुरम्य तट पर पहाड़ियों के मध्य मनमोहक वातावरण में की गई थी।[1] उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत राज्यों के आपसी युद्ध की सम्भावनाएँ कम होने तथा सुरक्षा व्यवस्था अंग्रेजों के हाथों में होने कारण राजपूत शासक विलासिता की ओर अग्रसर होने लगे थे। आमोद-प्रमोद, शिकार और महफिलें उनके जीवन का प्रमुख अंग बन गयी। किशनगढ़ राज्य के प्रबुद्ध शासकों ने सामाजिक संरचना में विभिन्न सुधार कार्यों की ओर ध्यान दिया। इस समय सती व त्याग जैसी घृणित प्रथा तथा बाल-विवाह के विरोध में नियम बनाये गये। इन नियमों को क्रियान्वित करने में अंग्रेज अधिकारियों ने भी विशेष रुचि दिखाई।

सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन

सती प्रथा - सती प्रथा का प्रारम्भ किशनगढ़ राज्य में राज-परिवारों द्वारा विकसित माना जाता है। सती प्रथा के मूल में मुख्य बात यही लगती हैं कि प्रारम्भ में तो अत्यन्त दु:खी नर-नारी दोनों ही असहाय पीड़ा, ग्लानि या किसी विषम समस्या से अविलम्ब छुटकारा पाने के लिए आग में जलकर, पानी में डूबकर या पहाड़ से गिरकर अपने प्राणों की आहुति कर देते थे। सतियाँ केवल राजपूत वंशों में ही नहीं अपितु मेहता, ओसवाल, जाट, नाई, धोबी, चमार, गूर्जर, कोली, कुम्हार आदि जातियों में भी होती थी। किशनगढ़ राज्य में कई शिलालेख हैं, जिसमें किस समय कौन सती हुई इसका उल्लेख है। कुछ शिलालेख घिस गये हैं जिनको स्पष्ट नहीं पढ़ा जा सकता है।

किशनगढ़ राज्य के द्वितीय महाराजा सहसमल की जाफराबाद में मृत्यु हो जाने पर रानी सिसोदनी ने अपने पति के पार्थिव शरीर के साथ ही अपने शरीर को भी चिता की ज्वाला में भस्मीभूत कर लिया था। किशनगढ़ में इनकी दूसरी महारानी हाड़ी ने मृत्यु के समाचार मिलते ही अपने शरीर को उसी समय चिता की ज्वाला में समर्पित कर

महासती हो गई। इसी प्रकार वि.स. 1715 ई. में धौलपुर के निकट हुए युद्ध में महाराजा रूपसिंह की मृत्यु हो जाने का समाचार किशनगढ़ पहुँचते ही उनकी सभी रानियों ने एक साथ सामूहिक जौहर करके सती हो गई थी।[2] किशनगढ़ के मुण्डोलाव गाँव में विवाह होने के बाद सती होने की घटनाएँ तो सुनने को मिली परन्तु यहाँ मात्र सगाई के बाद हुआ वियोग सहन न कर सकने वाली कुँवारी कन्याओं के भी सती होने के स्थल ऐतिहासिक रूप से आज भी संरक्षित हैं।[3]

इसके विपरीत तत्कालीन स्रोतों से यह बात स्पष्ट होती हैं कि किशनगढ़ राज्य में कई विधवा रानियाँ पति की मृत्यु के बाद भी लम्बे समय तक जीवित रही और उनके भरण-पोषण के लिए जागीरों की उचित व्यवस्था की गई। ब्रिटिश संरक्षण के बाद राजपूत राज्य किशनगढ़ के राजघराने में सती प्रथा लगभग 1818 ई. के बाद समाप्त सी हो गई। सर्वप्रथम अगस्त, 1845 ई. में जब मेजर लुडलों ने जयपुर राज्य के महाराजा द्वारा घोषणा पत्र को आम जनता में भेजा तो उसमें "राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत सती होना या सती होने में किसी प्रकार की प्रेरणा देना अपराध है, ऐसा करने वाले को कठोर दण्ड दिया जायेगा।"[4] इस बात को लेकर जयपुर राज्य के सरदारों ने कर्नल सदरलैण्ड को पत्र लिखकर किशनगढ़ राज्य में भी इसी प्रकार का घोषणा पत्र भेजने का अनुरोध किया।[5]

इस पत्र के आधार पर सन् 1856 ई. में राजस्थान के ए.जी.जी. ने भारत सरकार के आदेशानुसार किशनगढ़ नरेश को आदेश में लिखा कि अपने राज्य के लिए कानून बनाये कि सती होना अपराध है तथा अपराधी को कठोर दण्ड दिया जाये। जब इस आदेश की पालना न हुई तो ए.जी.जी ने पॉलिटिकल एजेन्ट के द्वारा पत्र भेजकर पुन: 1862 ई. में सती प्रथा के विरुद्ध आदेश जारी करके हमेशा के लिए इसे गैर कानूनी घोषित कर दिया था।[6] सती होना एक गौरव का कार्य समझा जाता था, इसीलिये यहाँ जो स्त्रियाँ सती हुई उनकी स्मृति में जगह-जगह सतियों के स्मारक बने हुए हैं।

किशनगढ़ राज्य के देवपुरी ग्राम में एक स्मारक पर उत्कीर्ण शिलालेख में भाद्रपद सुदी 15, वि.सं. 2000 में हाड़ी श्री हेमकंवरी के सती होने का उल्लेख मिलता हैं।[7] हेमकुँवरी के सती होने की घटना लोगों के समक्ष आज भी उस दृश्य को उत्पन्न कर देती जिससे आँखों में अश्रु की धारा को पुन: प्रवाहित कर देता है। झाबुआ राज्य के नरेश ने वि.सं. 2005 में देवपुरी में इनका मंदिर बनवाया था। किशनगढ़ राज्य में सती प्रथा का इतिहास देखें तो आश्चर्य होगा कि यहाँ एक हजार वर्ष पूर्व एक ओसवाल जैन महिला सर्वप्रथम सती हुई थी। वर्तमान में यह प्रथा पूर्णरूपेण समाप्त हो चुकी है क्योंकि सरकार के द्वारा कठोर कानूनों के निर्माण से आज सती महिमा का मण्डन करना भी घोर अपराध माना जाता है। यद्यपि आज के जमाने में तो सती होना अपराध माना जाता ही है, लोग भी इसको अमानवीय मानने लगे हैं।

घरेलू दास प्रथा - किशनगढ़ राज्य में विशेषकर राजपूत जाति में घरेलू दास प्रथा उन्नीसवीं सदीं के उत्तरार्द्ध तक जारी रही। विवाह के समय कन्या का पिता दहेज में अपनी हैसियत के अनुसार दास-दासियाँ दिया करता था। ये घरेलू दास-दासी राजपूतों की अवैध सन्तान थी और वंशानुगत सेवकों के रूप में अपने स्वामी की सेवा किया करते थे। यदि रानी के साथ विवाह के समय अच्छी संख्या में दास और दासी उसके पिता के यहाँ से नहीं आती थी तो जनता में से गरीब लोगों की लड़कियों को मोल लेकर दासियाँ बनाली जाती थी। यदि कोई दासी राजकुमार की धाय बन जाती थी तो उसका सम्मान बहुत बढ़ जाता था और इनको जागीरें दिये जाने का भी उल्लेख मिलता है।

किशनगढ़ राज्य में अन्य राज्यों की तरह महलों में अधिकाधिक दासियों को महारानी की सेवा में रखा जाता था। महारानियों के स्नान से लेकर श्रृंगार आदि सभी दैनिक कार्यों के लिए पृथक-पृथक दासी को नियुक्त किया जाता था। यहाँ की दासी प्रथा में एक विशेष बात यह थी कि अधिकांशतया दासियाँ विवाहित होती थी। राजकुमारों के विवाहों में दहेज में मिलने वाली अविवाहित दासियों का यहाँ के नौकरों से विवाह कर दिया जाता था। यदि कभी किशनगढ़ के महलों में कोई कुँवारी लड़की प्रारम्भ से ही दासी का काम करती थी तो उसे अपनी इच्छा से विवाह कर लेने की पूरी छूट थी और उसे महलों में ही दासी का कार्य करते रहने पर भी किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था।[8]

यहाँ अन्य राज्यों की भाँति पासवान प्रथा भी प्रचलित थी। राजा लोग रानियों व महारानियों के अतिरिक्त अन्य किसी जाति की स्त्री को अपनी पत्नी के रूप में रखते थे, वह स्त्री उस राजा की पासवान कहलाती थी। उदाहरणार्थ, ऐसा कहा जाता है कि सावन्तसिंह ने बणी-ठणी नामक पासवान को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करके उसे राज्य में सम्मानजनक स्थान प्रदान किया। किशनगढ़ से प्राप्त अभिलेखों के आधार पर कहते हैं कि बणी-ठणी को महाराजा राजसिंह ने नागरीदास की विमाता (सौतेली) बाँकावती जी की सेवा चाकरी करने हेतु खरीदा था। अंग्रेज सरकार ने 1818 ई. की सन्धियों के उपरान्त भी राज्य में दास प्रथा को बन्द नहीं किया। इसका कारण यह था कि यह प्रथा राजाओं के या जागीरदारों के महलों तक ही सीमित थी और दास-दासियाँ प्राय: सुखी थी। जब कभी इस विषय की कोई अंग्रेज उच्चाधिकारी चर्चा करता था तो यह उत्तर दे दिया जाता था कि यह लोग वास्तव में दास-दासियाँ नहीं हैं अपितु स्वेच्छा से वंशानुगत सेवक हैं और अन्य लोगों की भाँति उन्नति कर सकते हैं। इस प्रकार की परिस्थितियों में बीसवीं सदीं के प्रथम दो-तीन दशकों तक भी दास-प्रथा को समाप्त करने में सफलता नहीं मिल पाई। उन्नीसवीं सदीं के उत्तरार्द्ध में होने वाले सामाजिक सुधारों से इस दास जाति के लोगों में चेतना की लहर उठी और उन्होंने अपने आपको 'रावणा राजपूत' कहना शुरू कर दिया।[9]

कन्या वध – कन्या जन्म गत दो हजार वर्षों से भारत में अच्छा नहीं माना जाता था। किशनगढ़ राज्य के हिन्दुओं में कोई भी जाति पुत्री के जन्म का स्वागत नहीं करती थी, परन्तु राजपूतों में पुत्री का जन्म बहुत ही दुख:दायी माना जाता था। इस प्रथा के प्रारम्भ होने के पीछे अनेक कारणों में परिवार का सम्मान नष्ट हो जाने की आशंका तथा लड़की के विवाह की समस्या ये दो प्रमुख कारण थे। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक किशनगढ़ राज्य में कन्या वध की प्रथा सीमित मात्रा में प्रचलित थी। इसका एक कारण तो यह था कि पुत्री के विवाह में दहेज बहुत मांगा जाता था और चारण, भाट भी छोटे और बड़े जागीरदारों को तथा राजाओं को बहुत तंग करते थे।[10]

राजपूतों के अतिरिक्त कुछ अन्य दो-तीन जातियों में भी यहाँ कन्या वध प्रचलित था। माताएँ या तो कन्या को दूध पिलाती ही नहीं थी और यदि पिलाती थी तो अपने स्तनों पर अफीम या कोई दूसरा हल्का विष लगा लेती थीं, जिससे कन्या कुछ अरसे में मर जाती थी। इस परम्परागत प्रथा को समाप्त करने की दिशा में कोई भी व्यक्ति पहल करने में हिचकिचा रहा था। ब्रिटिश सरकार भी जल्दी कोई कदम उठाना नहीं चाहती थी। जनवरी, 1837 ई. में कर्नल सदरलैण्ड और मेजर थोरसबी ने इस विषय पर कुछ अन्य राजपूत शासकों से बातचीत की उसमें किशनगढ़ महाराजा बहादुरसिंह भी थे, परन्तु उन्हें पर्याप्त रूप से सफलता नहीं मिली।

ब्रिटिश अधिकारियों के प्रयत्नों से 1844 ई. में किशनगढ़ राज्य में कन्या वध गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यह अपराध राज्य में धीरे-धीरे कम होने लगा। अन्त में सन् 1870 ई. में एक अधिनियम पारित किया गया, जिसमें पैदा होने वाले बालक तथा बालिकाओं की सूचना देना अनिवार्य घोषित कर दिया गया। समय-समय पर उन क्षेत्रों में जहाँ कन्या वध अधिक प्रचलित था, कन्याओं की गणना द्वारा भी यह पता लगाया जाता था कि कन्या वध किया जा रहा है या इस कुप्रथा को त्याग दिया गया है। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के अन्त तक इस प्रथा का अन्त हो गया।[11]

त्याग प्रथा – उन्नीसवीं सदी में त्याग प्रथा का प्रचलन किशनगढ़ राज्य में तीव्र गति से फैल रहा था। राजपूत जाति में विवाह के अवसर पर बहुत से राज्यों के चारण, भाट एवं ढोली लड़की के परिवार वालों से मुंह मांगा इनाम प्राप्त करने के लिए यहाँ आते थे। इनके द्वारा हठ करने की प्रवृत्ति को ही त्याग कहा जाता था। इनकी जबरन मांग पूरी करने के कारण लड़की वालों को अत्यधिक व्यय करना पड़ता था, जिसके कारण उनकी स्थिति काफी दयनीय हो गई और परिणामस्वरूप कन्या वध को भी प्रोत्साहन मिला। 1844 ई. के आस-पास कन्या वध को जब किशनगढ़ राज्य ने अपराध के रूप में मानकर दण्ड भी निर्धारित कर दिया तब अंग्रेज उच्चाधिकारियों ने चारण और भाट

लोगों के त्याग को भी सीमित किया।

त्याग प्रथा के समाधान के लिए 1888 ई. में राजपूताना के तत्कालीन ए.जी.जी. कर्नल वाल्टर की अध्यक्षता में "वाल्टर राजपुत्र हितकारिणी सभा" में पारित प्रस्तावों के आधार पर त्याग प्रथा के विरोध में नियमों को कठोर बनाया गया। त्याग के नियम कठोर होने के कारण चारण समाज का अपेक्षित सहयोग नहीं मिला। चारण एवं भाटों के लिए त्याग को सीमित कर दिया गया तथा स्वयं के जिले में ही त्याग की मांग परिवार की आर्थिक स्थिति के आधार पर करने का नियम बनाया गया था।[12]

डाकिनी वध – डाकिनी वध की प्रथा का प्रचलन राज्य में 17वीं और 18वीं सदी में अधिक था। यहाँ के लोगों में यह मानसिकता थी कि निम्न जाति की स्त्रियों में जो कुरूप और वृद्धा हो वे डाकिनी होती थी। जिस बच्चे या स्त्री को डाकिनी लग जाती है, वह बीमार हो जाती है और धीरे उसकी बीमारी बढ़ने से मृत्यु को भी प्राप्त हो जाती थी। इस प्रकार के अनेक विचार यहाँ के समाज में प्रचलित थे। जिसके कारण उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में किशनगढ़ सहित सभी राज्यों ने कानून द्वारा इस कुप्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न किया। 1840 ई. के लगभग ब्रिटिश सरकार का ध्यान इस अंधविश्वास एवं क्रूरता की ओर गया। तब किशनगढ़ राज्य में महाराजा मौखमसिंह के समय ए.जी.जी. ने रेजीडेन्ट के द्वारा एक खरिता भेजा कि इस कुप्रथा को तुरन्त पूर्ण रूप से बन्द किया जावें। इसके साथ ही इस प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया और इस कानून का उल्लंघन करने वालों के लिए सजा की व्यवस्था की गई।[13]

औरतों और लड़कियों का क्रय-विक्रय – उन्नीसवीं सदी के मध्य तक किशनगढ़ राज्य में औरतों और लड़कियों की खरीद-फरोख्त सामान्य रूप से प्रचलित थी। इसके कारणों पर प्रकाश डाले तो प्रमुख रूप से राजपूत लोग अपनी पुत्री के विवाह में दहेज के साथ दास-दासी देने के लिए खरीदते थे तो कुछ जागीरदार या सम्पन्न वर्ग के लोग स्त्रियों को रखेलों के रूप में रखने के लिए भी खरीदा करते थे। किशनगढ़ महाराजा राजसिंह ने भी दिल्ली के चांदनी चौक से 1727 ई. में 10 वर्षीय कन्या बणी-ठणी को चौदह रुपये में खरीदा था। महाराजा राजसिंह का उद्देश्य अपनी रानी की सेवा चाकरी के लिए खरीदना था। 1847 ई. में समाज सुधार की दिशा में प्रयास करते हुए महाराजा पृथ्वीसिंह ने अपने समय में औरतों और लड़कियों के क्रय-विक्रय को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। महाराजा ने औरतों एवं लड़कियों को खरीदने एवं बेचने वाले दोनों पक्षों के खिलाफ सख्त कार्यवाही किये जाने की भी घोषणा की थी।[14] इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के अन्त तक मानव व्यापार की यह परम्परागत प्रथा समाप्त हो गई थी।

नुक्ता प्रथा (मृतक भोज) – नुक्ता प्रथा (मृतक भोज) का आयोजन हिन्दू समाज मे प्रौढ़ और वृद्धों की मृत्यु पर महारोग के समान व्यापक रूप से फैला हुआ था। राज्य में

गरीब लोगों को कर्ज लेकर भी नुक्ता का आयोजन करना पड़ता था और वे जीवन भर ऋण नहीं चुका पाते थे। किशनगढ़ दरबार में भी महाराजाओं के द्वादशे के दिन पूरे राज्य के लोगों को मृतक-भोज में शामिल होने के लिए बुलाया जाता था। महाराजा यज्ञनारायणसिंह इस नुक्ता प्रथा के घोर विरोधी थे, अत: उनकी इच्छा व आज्ञा से यह प्रथा किशनगढ़ राज्य में उनके समय में ही सदैव के लिए समाप्त हो गई थी।[15] इससे पूर्व राजपुत्र हितकारिणी सभा के 1893 ई. के कार्यों में मृतक भोज पर होने वाले खर्च पर नियंत्रण लगाने का था। जिसके कारण ही किशनगढ़ की कुछ खेतीहर जातियों एवं मुसलमानों ने भी अपने समाज के लिये मृतक भोज पर होने वाले खर्चों पर रोक लगाई थी। 1897 ई. में वाल्टरकृत राजपूत हितकारिणी सभा के निर्णयों को किशनगढ़ के महाजनों ने अपनी जातियों के लिए लागू किये जिनमें टीका, मृत्युभोज, त्याग प्रथा एवं बहु-विवाह जैसी बुराईयों को दूर करने के लिए नियम बनाये गये थे।[16]

विधवा पुनर्विवाह - विधवा पुनर्विवाह किशनगढ़ की परम्परागत सामाजिक संरचना के अन्तर्गत उच्च जातियों में निषेध था। इसे सांस्कृतिक परम्परा का आदर्श एवं सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक माना गया था। विधवा पुनर्विवाह की स्थिति उन्नीसवीं सदी में होने वाले सुधार प्रयासों के अन्तर्गत उच्च वर्ग में जागरूकता उत्पन्न करके इसके पक्ष को मजबूत बना गया। ब्रिटिशकालीन भारत में 1856 ई. में पारित किये गये विधवा पुनर्विवाह कानून का कानूनी रूप से किशनगढ़ राज्य में कोई प्रभाव नहीं पड़ा।[17] विधवा विवाह की समस्या मुख्यत: बाल-विधवाओं के रूप में थी।

विधवा पुनर्विवाह न होने पर केसरीमल भंडावत ने किशनगढ़ के उत्साही ओसवालों से 23 अगस्त 1885 ई. को एक मार्मिक अपील प्रसारित की। जिसमें देवर भोजाइयों के अवैध सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए बताया कि किशनगढ़ के 175 ओसवाल घरों में देवर भाभी के रिश्ते पति व पत्नी के रूप धारण कर चुके हैं और किशनगढ़ राज्य के दीवान केसरीसिंह और पंचायत ने इस व्यभिचार के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नहीं की है। इससे विधवाओं की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है और कुंवारों की अमरबेल भी खूब फल फूल रही है। यदि ओसवालों में वीरता है तो आगे आकर विधवा विवाह को धूमधाम से सम्पन्न करावे। इस अपील से यह स्पष्ट होता है कि ओसवाल समाज के स्त्रियों की स्थिति बहुत ही दयनीय थी और पंचायत एवं किशनगढ़ दीवान इस बुराई को दूर नहीं करना चाहते थे। अत: ओसवाल समाज मे विधवा पुनर्विवाह के प्रति चेतना जाग्रत करने में केसरीमल भंडावत की यह अपील बेहद कारगर थी।[18]

इस प्रकार किशनगढ़ राज्य में सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन में अंग्रेज सरकार एवं राज्य के शासक की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी। राजपूत समाज के हितों के संवर्द्धन

एवं सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिए अंग्रेज अधिकारी वाल्टर ने राजपुत्र हितकारिणी सभा का गठन किया। इस सभा के प्रस्तावों द्वारा राज्य में टीके की प्रथा, बहु-विवाह, विधवा पुनर्विवाह, त्याग प्रथा, मृतक भोज, नुक्ता प्रथा (मृतक भोज) एवं बाल-विवाह जैसी सामाजिक बुराईयों को दूर करने का प्रयत्न किया गया था।

सन्दर्भ

1. *श्यामलदास, वीर-विनोद, भाग-द्वितीय, बी.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, विवेकानन्द नगर, दिल्ली, 1986 ई., पृ. 522*
2. *संतोष कुमारी, "वाल्टरकृत राजपूत हितकारिणी सभा", राजस्थान इतिहास कांग्रेस जोधपुर सेशन, 2007 ई., वॉल्यूम-XXI पृ. 379*
3. *मिश्र जगन्नाथ प्रसाद, किशनगढ़ राज्य और सुमेरसिंह, संजय प्रकाशन, इटा (उत्तर प्रदेश) ,1972 ई. ,पृ. 19*
4. *शेखावत बिशनसिंह, आओ गाँव चले, राजस्थान पत्रिका, जयपुर, दिनांक 29 दिसम्बर, 1992, पृ. 8*
5. *हाथ बही नं. 4, पृ. 381.82, वि.सं. 1904 (यह पत्र भाद्रपद शुक्ल द्वितीया, वि. सं. 1903 को लिखा गया।) हाथ बही में नकल वि.सं. 1904 में उतारने का उल्लेख हैं। इसमें 27 अगस्त, 1846 ई. को जयपुर के पाँच सरदारों द्वारा कर्नल सदरलैण्ड को पत्र लिखा गया कि, "हमने अपने राज्य में इश्तिहार जारी कर दिया है कि सती प्रथा कानूनन अपराध हैं। हमारे यहाँ तो वैसे ही सती कम होती है परन्तु आप ऐसा ही पत्र किशनगढ़ राज्य में भी भिजवादें। इससे आपके दबाव से सतियाँ होना बन्द होगी।"*
6. *गुप्ता डॉ. निर्मला, राजस्थान 1790.1862 (अराजकता से व्यवस्था की ओर), राजस्थान ऑफसेट प्रिण्टर्स, जयपुर, 1983 ई., पृ. 157.158*
7. *किशनगढ़ के देवपुरी ग्राम में भाद्रपद सुदी 15, वि.सं. 2000 में उत्कीर्ण शिलालेख के अनुसार वर्णित।*
8. *गुप्ता डॉ. निर्मला, राजस्थान 1790-1862 (अराजकता से व्यवस्था की ओर) राजस्थान ऑफसेट प्रिण्टर्स, जयपुर, 1983 ई. ,पृ. 163*
9. *मिश्र जगन्नाथ प्रसाद, किशनगढ़ राज्य और सुमेर सिंह, संजय प्रकाशन, इटा (उत्तर प्रदेश), 1972 ई. ,पृ. 126.127*
10. *मर्दुमशुमारी रिपोर्ट, राज मारवाड़ 1861, पृ. 182 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
11. *टॉड जेम्स कर्नल, वीर विनोद, भाग - प्रथम, बी.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, विवेकानन्द नगर, दिल्ली, 1986 ई., पृ. 661*
12. *पारीक अविनाश, किशनगढ़ राज्य में सामाजिक संरचना, 'रासो' शोध पत्रिका, अजमेर, अंक-3, नवम्बर, 2005, पृ. 83*

13. वही, पृ. 84
14. सन्तोष कुमारी, 'वाल्टर राजपूत हितकारिणी सभा', राजस्थान इतिहास कांग्रेस, जोधपुर, सेशन-2007 ई.,वॉल्यूम-XXI पृ. 378
15. पत्रांक नं. बी.-19, कांकरोली, फाइल नं. बी-2, सोमानी दस्तावेज संग्रह, किशनगढ़।
16. मिश्र जगन्नाथ प्रसाद, किशनगढ़ राज्य और महाराजा सुमेरसिंह, संजय प्रकाशन, इटा (उ.प्र.), 1972 ई., पृ. 128
17. इनिससेलेन्सस पेपर (कोटी फाइल), नवम्बर, 1935 ई., से अक्टूबर, 1936 ई., फाइल नं. 45, आर.सी. नं. 574, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
18. वही, 3 मई, 1936 ई.

अलवर रियासत में उद्योग धन्धे, व्यापार एवं वाणिज्य (राजगढ़ निजामत के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन)

डॉ. फूलसिंह सहारिया

राजस्थान की रियासतों में अलवर रियासत अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। अलवर राज्य की स्थापना से पूर्व राजगढ़ निजामत राजनैतिक शक्ति का महत्वपूर्ण केन्द्र थी। इसलिए अलवर के शासकों द्वारा राजगढ़ निजामत पर विशेष ध्यान दिया। राजगढ़ निजामत में रियासतकालीन कृषि, पशुपालन, लघु उद्योग-धन्धे, व्यापार-वाणिज्य और व्यापारिक मार्गों का विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों से उल्लेख प्राप्त होता है।

1. कृषि

अलवर राज्य की आय का प्रमुख स्रोत कृषि एवं उससे होने वाला प्राप्त राजस्व था। कृषक पूरे राज्य में कृषि कर अपना गुजारा करते थे एवं मालगुजारी देते थे। इस क्षेत्र में मुख्य रूप से मीणा, माली, जाट, गुर्जर आदि जातियाँ कृषि कार्य से जुड़ी हुई थी। अलवर राज्य के 55 प्रतिशत भू-भाग पर खेती होती थी। कृषि क्षेत्र का 23 प्रतिशत भाग सिंचित था एवं 5 प्रतिशत भाग पर दो फसलें पैदा होती थी।[1] इस क्षेत्र की मिट्टी विभिन्न फसलों के लिए अच्छी और उपजाऊ थी। लगातार कृषि करने में वर्षा बहुत उपयोगी रहती थी। कुछ क्षेत्र पर नदी, कुएँ और कृत्रिम बाँध एवं टैंकों की सहायता से भी कृषि की जाती थी। 1961 के सेंसस सर्वे में राज्य की कुल जनसंख्या का 81 प्रतिशत भाग कृषि कार्य में संलग्न था।[2]

कृषि भारत की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था का आधार रही है। परिवार के सभी सदस्यों के सहयोग और आदिम हल-बैल की मदद से प्रत्येक जोत खण्ड में खेती होती थी।[3] ग्राम समुदाय पटेल, चौधरी या लम्बरदार के माध्यम से जमींदार या राज्य को गाँव के वार्षिक उत्पादन का निश्चित भाग, भूमि कर के रूप में देता था। कभी-कभी जमींदार अपने अधीनस्थ गाँवों को भू-राजस्व वसूली हेतु दूसरों को ठेके पर दे देता था, किन्तु कभी भी सामन्त या जागीरदार को ग्रामीण कृषि का स्वामी नहीं मानते बल्कि उसकी हैसियत एक अधिकारी के समान थी।[4]

अलवर राज्य की पाँच तहसीलों में राजगढ़ सबसे बड़ी निजामत थी। लेकिन भू-राजस्व सबसे कम प्राप्त होता था। यहाँ की आधी जमीन भू-राजस्व से मुक्त थी। यहाँ

के कुल खालसा क्षेत्र के 30 प्रतिशत भाग पर ही खेती होती थी, जबकि उसका 45 प्रतिशत भाग जंगल और पहाड़ियों से घिरा हुआ था, जो कृषि के लिए अनुपयुक्त था। इसका केवल 25 प्रतिशत भाग कृषि योग्य था।[5] राजगढ़ में खालसा के 112, जागीर के 75 व माफी के 27 गाँव थे। कृषक जातियों में मीणा, माली अधिक थे तथा ब्राह्मण एवं ठाकुर कम थे।[6]

2. पैदावार

राजगढ़ क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की पैदावार होती थी जिनमें गेहूँ, जौ, चना, ज्वार, बाजरा, मौंठ, उड़द, चौला, मक्का, ग्वार, तिल, सरसों, राई, जीरा, कासनी, अफीम, तम्बाकू, ईख, रूई, चावल आदि थी। सब्जियों में मुख्य रूप से गाजर, मूली, बथुआ, करेला, बैंगन, तुरई, कचरी, सेम, कोळा, (सीताफल), घीया, रतालू व अरबी थी। कई किस्म के फल यहाँ के बगीचों में पैदा होते थे।[7] राजगढ़ क्षेत्र में आम, नींबू, करौंजा, जामुन के बड़ी संख्या में बाग थे। यहाँ अनार, मौसमी, कैरी, नींबू, करोंदा की पैदावार अच्छी होती थी। फसलों में टिड्डियाँ, काँटा, कतीरा, बवल, कूकी, चंपा, महुआ, रोली आदि बीमारियाँ लगती थी।[8]

कृषि परम्परागत तरीके से हल और बैलों की सहायता से की जाती थी। प्राकृतिक दृष्टि से यहाँ की उपजाऊ मिट्टी को 3 भागों में विभाजित किया गया था-चिकनोट, मटियार एवं भूड़ा। भू-प्रबन्ध के अनुसार मिट्टी की किस्मों को सिंचाई के साधनों के आधार पर विभाजित किया गया था। जैसे चाही भूमि अर्थात् जिस भूमि पर कुओं द्वारा सिंचाई की जाती थी। डहरी- जो बन्धों और नदी-नालों के द्वारा सिंचित की जाती थी। इनके अतिरिक्त बारानी भूमि होती थी।[9] जो वर्षा पर निर्भर थी।

प्राकृतिक एवं कृत्रिम श्रेणी के रूप में भूमि का वर्गीकरण बन्दोबस्त की भांति था। प्रत्येक श्रेणी की भूमि को सिंचाई की सुविधाओं के आधार पर पुनः विभाजित किया गया था जैसे (1) चाही मुस्तकिल, चाही गैर मुस्तकिल, चाही मुस्तार (2) डहरी हल, डहरी सबीका, डहरी बारिशी (3) चिकनोट, मटियार व भूड़ को प्रथम व द्वितीय (4) बारानी के रूप में नहरी व खातली के रूप में विभाजित किया गया था।[10] भूमि की लगान दर भी प्रत्येक सर्किल में भूमि की किस्म, सिंचाई की सुविधा एवं फसल उत्पादन की क्षमता के अनुसार भिन्न-भिन्न थी।[11] मेजर पाऊलेट द्वारा जिंस की कीमतें प्रति रूपया की दर से थे[12] 1876 में खाद्यान्नों (जिंसों) की कीमतें भिन्न-भिन्न प्रकार की थी[13] जिंसो के अलावा मजदूरी के रूप में 1858 में साधारण मजदूर को 4 आना 3 पाई मिलते थे और कास्तकार 2 से ढ़ाई रुपये मासिक मिलते थे।[14]

मेजर पाऊलेट के नियमित बन्दोबस्त के समय कुओं की संख्या पिछले दस वर्ष के बन्दोबस्त के समय 12604 से बढ़कर 16074 हो गई। राज्य ने लगभग 80,000

रुपये तकाबी ;ण में खर्च किये, जिनसे लगभग 300 नये कुएँ बनाये गये। 100 से अधिक कुंओं की मरम्मत करवाई गई। कुओं में पानी की उपलब्धता के आधार पर तीन श्रेणियाँ थी। प्रथम श्रेणी सतह से पानी की तह तक 132 फीट, द्वितीय 70 फीट एवं तृतीय 40 फीट थी। प्रथम श्रेणी के कुओं के निर्माण की लागत 2000 रुपये, द्वितीय श्रेणी के 800 रुपये तथा तृतीय श्रेणी के कुओं की लागत 100 रुपये औसतन थी। कच्चे कुओं की संख्या 2672 थी। कच्चे कुओं की भी तीन श्रेणियाँ थी जिनमें प्रथम की लागत 80 रुपये, द्वितीय की 30 रुपये तथा तृतीय की 2 रुपये थी।[15] राजगढ़ की 1900-01 में भू-क्षेत्र की जमा उसकी दर जातिवार अनुकूल कर निर्धारण लिया गया।[16]

राजगढ़ निज़ामत में विभिन्न सरदार (जागीरदार) थे इन जागीरों से अलवर राज्य को बड़ी आय होती थी। इन जागीरों का विवरण अलवर डायरेक्ट्री 1928 में मिलता है[17] राज्य में कृषि कुओं की सहायता से की जाती थी। अलवर राज्य की पाँच निजामत में राजगढ़ निजामत सबसे बड़ी थी लेकिन भू-राजस्व सबसे कम प्राप्त होता था। यहाँ वर्षा का जल पहाड़ी ढलानों से बहुत तेजी से जमीन की ओर आता था जिसे रोककर सिंचाई के उपयोग हेतु बाँध बनाये गये थे, इन बांधों में प्रमुख थे-बाघोली, राजडोली, खोह, केलवार, टहला, तालाब, देवती, मल्लाना, नीमला मोतीवाडा, राजगढ़, माचेड़ी, डगडगा, जामडोली, धूलेटा, थोसड़ी। इनमें से कुछ बांध तकनीकी दृष्टि से श्रेष्ठ थे। तालाब, मल्लाना और देवती के बाँधों में वर्षभर पानी रहता था जिनसे न केवल सिंचाई होती है बल्कि आगे के बाँधों को फाटक खोलकर भरा जाता था। इन बाँधों से डहरी क्षेत्रों में सिंचाई होती थी। यह सिंचित क्षेत्र कुल क्षेत्र का 6 प्रतिशत था।[18] गूगरग्वारा, गुनियाका, साबोला, जयसागर, मानसरोवर, मोतीवाड़ा, बाघोला, प्रतापबंध आदि अन्य बाँध भी राजगढ़ में थे। 1928 में अलवर रियासत की डाइरेक्ट्री में मिट्टी के बने बाँधों की लिस्ट दी है जिनसे राज्य को आय होती थी।[19] सन् 1934 व 1943 के दौरान अलवर राज्य के राजगढ़ क्षेत्र में बांधों एवं नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्र एवं प्राप्त आय का विवरण था।[20]

3. पशुपालन

अलवर रियासत में पालतू पशुओं में मेवात व राठ नस्ल की गायें व बैल थे। ये बैल हल चलाने एवं बोझा खींचने में अत्यन्त उपयोगी थे। बानसूर व बहरोड़ क्षेत्र की बकरियाँ बहुत अच्छा दूध देती थी।[21] गाय दूध का प्रमुख साधन था। मेवात और राठ की पशुओं की नस्ल अच्छी थी जो अलवर के थानागाजी, लक्ष्मणगढ़, राजगढ़, रामगढ़, किशनगढ़ और तिजारा के पश्चात् बहरोड़, बानसूर और मंडावर में मिलती थी।[22] गाय, बैल के अतिरिक्त पालतू दुधारू पशुओं में प्रमुखतः भैंस व बकरी, घोड़े सेना एवं सवारी के काम आते थे।

सभी प्रकार के पशु-बाहर से लाये जाते थे क्योंकि यहाँ की नस्ल ज्यादा अच्छी

नहीं थी। कुछ अच्छी किस्म के मवेशी अलवर क्षेत्र से बाहर भेजी जाती थी।[23] बैलों का अलवर राज्य की कृषि व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान था। एक हल दो बैल वर्षा की बुवाई के लिए 20 से 25 बन्दोबस्त बीघा तैयार कर सकते थे। वर्षा ऋतु में इन दो बैलों की चराई के लिए साधारणत: 2-3 बीघा चरागाह भूमि छोड़ना आवश्यक था। फसलों की निराई इस चारागाह भूमि की कमी की पूर्ति करता था। प्रत्येक बीघा में 25 से 30 मन चारा उत्पन्न होता था। इस प्रकार प्रति मवेशी 15 सेर प्रतिदिन चारा चाहिए था। प्राय: 20 बीघा हल्की असिंचित भूमि और 2 बीघा पड़त एक जोड़ी बैल, एक गाय और दो छोटी मवेशियों के लिए पर्याप्त होती थी।[24]

मेजर पाउलेट ने अलवर राज्य में महाराजाओं के अस्तबल में घोड़े, ऊँट, हाथियों का उल्लेख किया है। घोड़े अरबी, काठियावाड़ी, अंग्रेजी नस्लों के थे। सिलहट नस्ल के हाथियों का उल्लेख किया है। गाय और बैलों की संख्या का जिक्र किया है तथा भेंस, ऊँटनी या ऊँटों का प्रयोग बोझा ढ़ोने के काम लिये जाते थे।[25]

पाउलेट ने पशुओं की विभिन्न बीमारियों का जिक्र किया है- 1. मेल जो सबसे खराब होती है। यह पेट को काट देती थी या फाड़ देती थी। 2. भांग या कुस्ती-मुँह या खुरों की बीमारी, 3. नरू रोग-जिसकी मुख्य पहचान छाती की सूजन थी, 4. अफारा-जो ग्वार के अधिक खाने से होता था, 5. कठसूजा- नथूनों का सूजन। अलवर राज्य में ब्रिटिश पशु बीमारी नियमावली लागू की गई जिसे गांवों के स्कूलों में पढ़ाई जाती थी। बछड़ों को अधिक अनुशासित बनाने के लिए उनका बन्धयाकरण को हिन्दू राज्यों में निषिद्ध किया गया लेकिन मुसलमान कास्तकार उसे गलत मानते थे।[26]

व्यवसाय

राजगढ़ ग्रामीण परिवेश का क्षेत्र था। यहाँ के निवासी कृषि एवं पशुपालन के अतिरिक्त छोटे-मोटे व्यवसाय कर अपने परिवार का लालन-पालन करते थे। रियासती काल में अलवर में मजदूरी की दरों का उल्लेख पाउलेट ने किया है।[27]

पूर्व में कृषक मजदूर को 2 रुपये 8 आना मजदूरी प्रति माह मिल जाती थी किन्तु 1876 में 3 रुपये से 4 रुपये तक का भुगतान देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त सूती कपड़े व जूते भी अक्सर उनको दिये जाते थे। दिन के मजदूर के लिए प्रति दिन 2 आना दिया जाता था। कुछ मजदूरों के लिए माहवार मजदूरी न देकर उन्हें भेंट स्वरूप अनाज आदि ही दिया जाता था जैसे चर्मकार, लुहार, खाती, धोबी आदि।[28]

गाँव में कुम्भकार द्वारा मिट्टी के बर्तन बनाकर उसे बेचते थे तथा विशेष अवसरों और उत्सवों पर वह आपूर्ति करता था।[29] काँकबाड़ी में बाँस की अच्छी किस्म थी जिससे लाठी और डण्ड़े के काम लेते थे। राजगढ़ क्षेत्र में खेती के अतिरिक्त मजदूरी, पशुपालन, मूंज व बान बँटकर अपनी आजीविका चलाते थे।[30]

राजगढ़ निजामत में विभिन्न जागीरदार निम्न जातियों से विभिन्न प्रकार की बेगार लेते थे तथा उनको प्रताड़ित करते थे जिसके समाचार पत्रों में कई प्रकरण प्रकाशित है।

इन अखबारों में जागीरदारों द्वारा बेगार लेने एवं अत्याचार करने से सम्बन्धित खबरें प्रकाशित हुई। ढिगावड़ा के ठाकुर उम्मेदसिंह लक्ष्मीनारायण कुम्हार के मकान पर बतौर बेगार मिट्टी के बर्तन लेने गये। कुम्हार के देने से मना करने पर ठाकुर साहब ने उसे बेंत से पीटा तथा ठाकुर के भाई पद्मसिंह (जो कस्टम पुलिस में था) ने उस कुम्हार को हथकड़ी डालकर अपनी कोठरी में बन्द कर उससे हमेशा के लिए बिना कहे व सुने बेगार देने को लिखवा लिया। कुम्हार ने कस्टम पुलिस द्वारा हथकड़ियों का यह दुरुपयोग तथा मारपीट की हरकत के खिलाफ नाजिम राजगढ़ की अदालत में दावा किया। जिस पर ठाकुर साहब पर मात्र 10 रुपये जुर्माना अदालत द्वारा किया गया। इससे पहले भी एक किसान की कन्या को मार देने के कारण उसे सजा हो चुकी थी।[31] इन अखबारों में जागीरदारों द्वारा बेगार लेने एवं अत्याचार करने से सम्बन्धित महत्वपूर्ण खबरे प्रकाशित हुई जिनमें अनावड़ा (राजगढ़) के जागीरदार ठा. माधोसिंह द्वारा तरह-तरह की लाग-बाग, भेंट, बेगार लेने के साथ किसानों के शोषण की एक किसान द्वारा सम्पादक के माध्यम शिकायते प्रकाशित की थी कि, जमीन की माल गुजारी के अलावा अनाज में से तीसरे हिस्से की बंटाई अलग से लेते थे, कुआँ चलाने पर लाग-बाग लेते थे, मक्का की फसल के समय की लाव 65 मुट्ठी ली जाती थी, किसानों के अनाज में से 20 सेर अनाज की लाव के हिसाब से ठिकाने के चपरासी को दिलाया जाता था और कामदार ठिकाना बड़ा दबंग व्यक्ति रखा जाता था जिसे ताकीद है कि किसानों से जितना रुपया ऐंठा जा सके, ऐंठे उसी में उसकी तरक्की मानी जाती थी।[32] इसी प्रकार राजगढ़ के पास धमरेड का स्थानीय पटवारी गणपति राम किसानों के साथ ज्यादती करता था। मनमानी तम्बाकू की पैदावार लिख लेता जिससे किसान को उतना ही कस्टम देना पड़ता था।[33] ठिकाना बुर्जा के ठिकानेदार के यहाँ गाँव वालों की ओर से एक जोड़ी बैलों के साथ एक आदमी रोजाना बेगार देने हेतु भेजा जाता। वह व्यक्ति वहाँ बेगार देता था। उसे किसी प्रकार की मजदूरी नहीं दी जाती थी।[34] बीजवाड़ चौहान के हरिजनों ने सम्पादक को चिठ्ठी लिखी जिसमें बताया कि बीजवाड़ चौहान ठिकानेदार हमसे बेगार कराते हैं, मनमानी करते हैं जबकि बेगार सभी जगह बन्द हो चुकी थी।[35]

उद्योग धन्धे- अलवर राज्य में जातीय धंधो के साथ कुछ राजकीय संरक्षित बड़े उद्योग भी थे जिनका विवरण इस प्रकार से है -

कपड़ा उद्योग

अलवर राज्य में गलीचा एवं कपड़ा उद्योग रियासत काल में काफी प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय था। यहाँ की 'जाजम' 'तोशक' जो हरसौरा में छापी जाती थी। यहाँ छपी हुई

'जाजम', 'लिहाफ' आदि स्थानीय लोगों के काम तो आती ही थी, लेकिन बाहर भी इनकी लगातार मांग बनी रहती थी। यहां के छीपा लोगों के इस उद्योग और परिश्रम को देखकर लगता है कि ये लोग शिल्प कार्य बड़ी चतुराई से करते थे।[36] रंगाई का कार्य राजगढ़ में बड़ी मात्रा में होता था।[37] यहाँ चूंदड़ी को छोड़कर शेष सभी प्रकार की रंगाई के लिए अलवर 1920 तक विश्व विख्यात था। यहाँ की रंगत तथा बँधाइयों में जो चमक रहती थी वह कहीं नहीं पाई जाती थी। रंगाई का कार्य प्राय: मुस्लिम परिवारों द्वारा 5 भागों में किया जाता 1. दुरूखी 2. मोठ्डा, 3. लहरिया गण्डेदार, 4. अरबई, 5. हल्की रंगत होती थी। दुरूखी देशभर में अलवर में ही तैयार की जाती थी। इसमें मलमल के कपड़े में दोनों ओर अलग-अलग दो रंग चढ़ाये जाते थे। यह सामान्य बात नहीं थी। यह उन सिद्धहस्त कारीगरों का श्रम और प्रशंसनीय कार्य था।[38] पगड़ी (फेटा) और औढ़नी पर डाई द्वारा -- रंग चढ़ाने के लिए केलीको प्रिटिंग इण्डस्ट्री प्रमुख थी। इस रंगाई और छपाई के लिए कारखाने अलवर राज्य में अलवर, राजगढ़, प्रतापगढ़ और नारायणपुर में थे। यहाँ के छीपा रजाई, चोली, अंगिया (ब्लाउज) और लहँगा के कपड़ों पर छपाई करते थे। कपड़ें के धागे बनाने का कार्य महिलाएँ करती थी। पुरुष कपड़ा बनाते थे। ये खेस और रेजी कहलाते थे। इनको बिक्री के लिए ग्रामीण हटवाड़ा या हाट बाजार में बेचा जाता था।[39] 1930 के बाद रंगरेजी कला अलवर से लुप्त हो गई।[40]

गलीचा एवं कालीन उद्योग - अलवर रियासतकाल में दूसरे राज्यों से कारीगर बुलाकर गलीचा और कालीन बनाना प्रारम्भ किया गया। गलीचा उद्योग अलवर राज्य के अलवर, नारायणपुर, अजबगढ़, हमीरपुर, माधोगढ़, चतरपुरा, रतनपुरा तथा राजगढ़ के पावटा, खोह, घाटड़ा इनके प्रमुख केन्द्र थे।[41] बहतूखुर्द के गलीचे उत्तम किस्म के थे।[42]

काष्ठ (लकड़ी) उद्योग- राजगढ़ में लकड़ी के खराद का काम खाती (जाँगिड़) जाति के लोग अच्छा करते थे। ये लकड़ी के दरवाजे, चौकी, खिड़की, पट्टे, घरेलू सामान बनाने के साथ कृषि कार्य में काम आने वाली वस्तुएँ-हल, गाड़ी, धनक, चकली, रथ और भैहली कलात्मक शैली में बनाते थे।[43] भैहली का नमूना थाना गाँव के श्री रमेश विजय के घर पर भग्न स्थिति में आज भी खड़ा हुआ है जो उस समय की काष्ठ कला का उदाहरण है।

कुम्हारी उद्योग - मिट्टी से बने हुए बर्तन, मटके, सुराही, कुल्लड़ आदि राजगढ़ क्षेत्र के ग्राम सूरेर, थाना, बहाली, अनावड़ा, फॅडरोली, खोह एवं राजपुर बड़ा में बनाये जाते थे।[44] इस कार्य को कुम्हार जाति करती थी।

चर्म उद्योग - चमड़े से आम लोगों की आवश्यकताओं की वस्तुएँ जैसे चड़स, घोड़ों की लगाम, चाबुक, जूते आदि बनाये जाते थे। इस कार्य में चमार (चर्मकार) जाति के लोग लगे हुए थे।[45] मरे हुए पशुओं की खाल को पकाकर चमड़ा तैयार किया जाता

था। पके चमड़े से जूते, चड़स, पानी की बाल्टी, तम्बाकू ले जाने के लिए बैग (थैले) बनाये जाते थे।[46]

पत्थर उद्योग- राजगढ़ के समीप की पहाड़ियों से छत की पट्टियाँ निकलती थी। राजगढ में 20 फीट लम्बी 2 फीट चौड़ी पट्टी निकलती थी। अजबगढ़ के पत्थरों को रेलवे स्टेशनों की तामीरों में काम में लिया जाता था। यहाँ आस-पास के क्षेत्रों से सफेद पत्थर एवं नीला पत्थर खूब निकलता था। नीले पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े करके भट्टों में पकाकर चूना बनाया जाता था। यहाँ बड़ी संख्या में चूने के भट्टे थे। राजगढ़ चूने (टण्टा) उद्योग के लिए प्रसिद्ध रहा था।[47] गुलाबी संगमरमर बलदेवगढ़ से, सफेद संगमरमर झिरी, खोह एवं गोरधनपुरा से मिलता था। इस खान उद्योग से कई परिवारों की रोजी-रोटी चलती थी।[48] राजगढ़ क्षेत्र में अभ्रक, लाल मिट्टी, एक किस्म का नमक, शोरा, पोटाश (खार, जवाखार, सज्जी) भी मिलते थे। इससे वहाँ के स्थानीय लोगों की दो वक्त की रोटी निकलती थी।

मछली पालन - राजगढ़ क्षेत्र में कई तालाब व झीलें थी जिनमें मछली पालन के साथ मत्स्याखेट किया जाता था। राजगढ़, अजबगढ़, भगोरा के तालाब व देवती की झील मछली पालन के लिए प्रसिद्ध थे, जो जयपुर की सीमा से लगती थी।[49] ये झीलें एवं तालाब जल मुर्गों के लिए प्रसिद्ध रही थी। जल मुर्गे एक ऐसे जाल से पकड़े जाते थे जो उनके समीप आने पर उन पर फैंका जा सके। मछलियों की कई किस्में-राहू, रोहू, मुराक, कालावत, सोल (लम्बी), सोली (छोटी), सींगी (छोटी), केर (लम्बी), पारिया आदि थी।[50]

ताँबा उद्योग - पूरे अलवर राज्य में 90 मन ताँबा निकलता था परन्तु ब्रिटिश सरकार के सिक्का 'टका' के प्रचलन के कारण उनकी कीमत और उत्पादन कम होने लगा। राजगढ़ तांबे के लिए प्रसिद्ध था। खो-दरीबा के पहाड़ी क्षेत्र में स्थित खान से ताँबा निकाला जाता था। पहले इसे कच्ची स्थिति में निकाला जाता था। मेजर केडल लिखते हैं कि राज्य में प्राचीन समय में बहुत सी खानें थी जिनमें काफी कार्य भी किया जाता था। अब काफी अरसे से उसे पूर्ण रूप से छोड़ दिया गया था। अब ताँबा काफी कम मात्रा में मिलता है। यह लाभ का उद्योग नहीं रहा। एक बार की भट्टी से तांबा तैयार करने में 125 रुपये का खर्चा आता था। 30 पौंड़ ताँबे की कच्ची धातू से 5 पौंड़ ताँबा निकलता था जो 16 प्रतिशत था। 32 परिवार जिनमें 88 औरत और मर्द अपना जीवन यापन ताँबे उद्योग से ही करते थे।[51]

लोह उद्योग - अलवर राज्य में लोहे निर्माण के कारखाने थे। अलवर राज्य में 200 भट्टियाँ लोहा गलाने की थी जिनमें 30 भट्टियाँ 1878 में कार्य रही थी। इन भट्टियों से 1500 मन (536 टन) वार्षिक उत्पादन था। इस लोह निर्माण कार्य में 5,92,200 मन

लकड़ी से 14,800 मन कोयला बनाया जाता। प्रत्येक भट्टी को एक बार भरने के पश्चात् नीचे आग लगा दी जाती थी। धीरे-धीरे लोहा गलता रहता था। 24 घंटे पश्चात् भट्टी खाली की जाती थी। पिघले हुए कोयले को 'शोरी' कहते थे। एक बार में करीब ढ़ाई मन (200 पोंड) लोहा निकलता था। अत: साल भर के 500 मन (साढ़े सत्रह टन) कोयला काम आता था जिसका मूल्य 4 रुपये प्रति मन (112 रुपया प्रति टन) के हिसाब से 200/- रुपया आँका गया था।[52] राजगढ़ के समीप भूरी की डूंगरी में लोहे की खान थी। इसके साथ ही लोहा गलाने की भट्टियाँ अलवर राज्य के दक्षिण में राजगढ़, टहला तथा बालेटा में थी।53 भानगढ़ व राजगढ़ की खानों में लोहा मिलता था। 1843 में लोहे की 30 भट्टियाँ टहला, राजगढ़ व बालेटा में लगी हुई थी।[54]

माचेड़ी कस्बे में दो प्रकार की धमाकेदार बन्दूकें बनाई जाती थी, जिन्हें तोड़ीदार व चापदार बन्दूकें कहा जाता था। इनकी कीमत 25 रुपये प्रति बन्दूक होती थी।[55] अलवर राज्य में तोपों के कारीगर सिद्धहस्त शिल्पी थे। तलवार साज भी माचेड़ी के प्रसिद्ध रहे थे।[56] अलवर राज्य में लोहे और फौलाद के अस्त-शस्त्र बनाने के बहुत से छोटे-छोटे केन्द्र थे। माचेड़ी, तिजारा, थानागाजी, राजगढ़ इत्यादि स्थानों पर बन्दूकें एवं तोपें ढ़ाली जाती थी। विशेषकर राजगढ़ तो बड़ी तोपों की ढ़लाई के लिए दूर-दूर तक विख्यात था। वर्तमान में अस्त्र-शस्त्र अलवर के संग्रहालय में संरक्षित हैं।[57]

बारूद एवं आतिशबाजी - अलवर राज्य में विभिन्न प्रकार की आतिशबाजी के कारीगर प्रसिद्ध रहे थे। अलवर के मुंशी बाजार में रहमत अली, हैसियत अली की दुकान आतिशबाजी के लिए प्रसिद्ध रही थी। अलवर के अतिरिक्त राजगढ़, रामगढ़, लक्ष्मणगढ़, बहादुरपुर, थानागाजी कस्बों में भड़बूजें और चर्मकार बारूद के कार्य एवं आतिशबाजी के काम में संलग्न थे।[58]

टकसाल-सिक्के निर्माण - अलवर राज्य की टकसाल में कभी देशी रुपये बनते थे। ये 'हाली' कहलाते थे, लेकिन अब ये प्रचलन में नहीं है। कलदार का प्रचलन कम हो गया परन्तु रुपये का चलन बढ़ गया। पैसा अंग्रेजी चलता था। 'पैसा' और 'पाई' भी प्रचलन में थे। पैसा और पाई के वनस्पति बनिये लोग 'कौड़ियाँ' ज्यादा पसन्द करते थे। पुराने पैसे जो पहले चलते थे उनको सिवाय घास और लकड़ी बेचने वालों के कोई नहीं लेता था।[59] अलवर राज्य की ओर से सिक्के ढालने के लिए 1772 ई. में टकसाल राजगढ़ में स्थापित की गई। इस टकसाल में सन् 1876 ई. तक चाँदी व ताँबे के सिक्के ढाले जाते रहे।[60] सन् 1873 ई. में यहाँ अंग्रेजी सिक्के ढालना चालू किये गये। अत: 10 मई 1877 ई. में राजगढ की टकसाल बन्द कर दी गई। राजपूताना में यह पहला राज्य था, जिसमें सबसे पहले अंग्रेजी सिक्का चालू किया गया। सन् 1877 ई. के पूर्व यहाँ 'रुपया', 'अठन्नी', 'चवन्नी' थे। यहाँ के सिक्के 'रावशाही' कहलाते थे। सोने के

सिक्के यहाँ कभी जारी नहीं किये गये। सन् 1852 ई. तक राजगढ़ में अठन्नी, चवन्नी और सिक्के बनाये जाते रहे।[61]

माप-तोल - अलवर राज्य में माप तोल का एक स्टैण्डर्ड था, जैसा कि मेजर पी. डब्ल्यू पाउलेट ने अलवर गजट में उल्लेख किया है। जैसे भारी वस्तु सेर, आधासेर, मन, टन था वहीं कपड़े की माप 3 अंगल चौड़ा-एक गिरह, 15 गिरह-एक गज था। वहीं अन्य वस्तुओं को तोलकर जैसे 8 चावल के दाने- 1 रत्ती, 8 रत्ती-1 माशा, 12 माशा-1 तोला, 13 माशा-1 पैसा, 2 पैसा-1 टका, 25 टका-1 सेर, 40 सेर-1 मन/दुकानदारों को यह निर्देश था कि उन्हीं बाँटों और मानकों का प्रयोग करें जिन पर राज्य की मुहर या स्वीकृति दी गई हो।[62]

व्यापार-वाणिज्य - अलवर राज्य में आवश्यकता की कुछ वस्तुएँ बाहर से मँगाई जाती थी। कुछ वस्तुओं का आयात भी किया जाता था जिसकी जानकारी इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया में दी गई है-राज्य में मुख्य रूप से कपास (कॉटन), खाद-तेल, चीनी, चावल, नमक, गेहूँ, जौ, चना, दाले, लोहा आदि बाहर से आयात किये जाते थे।[63] ये सभी सामान रेल्वे मार्ग से मँगाये जाते थे। कुछ सामग्री खाद तेल, गेहूँ, चना, जौ को बाँदीकुई, दौसा, भटिण्डा, सिरसा, भिवानी, गोपालगढ़ और सीकरी से 50 हजार सेर तथा 20000 सेर बाजरा, तेल, ग्वार, अहमदाबाद तथा अन्य स्थानों के लिए भेजा जाता था।[64]

अलवर राज्य में महाराजा तेजसिंह के काल में राशन की सप्लाई अलवर प्रशासन की ओर से की जाती थी जिसकी निगरानी के लिए एक केन्द्रीय सिविल सप्लाई कमेटी की स्थापना की गई थी। इस कमेटी के सदस्यों में भवानी सहाय शर्मा, रामजीलाल अग्रवाल, रामचन्द्र उपाध्याय, इन्द्रलाल मित्तल और मास्टर भोलानाथ थे। परन्तु राज्य की वितरण व्यवस्था ठीक नहीं होने के कारण कमेटी के लोगों ने प्रधानमंत्री को अपने इस्तीफे प्रजामंडल आंदोलन के माध्यम से सौंप दिये। राशन व्यवस्था में चीनी, गुड़, तेल, नमक की आम जनता में सप्लाई की जाती थी। राशन सामग्री को चोरी से स्थानीय बाजारों में बेच दिया जाता था। इस व्यवस्था से आम जनता की गाड़ी कमाई की खूब लूट मची जिसका उल्लेख समाचार पत्र 'स्वतंत्र भारत' के तत्कालीन अंकों में मिलता है।[65]

राज्य में आवागमन के साधन बैलगाड़ी, ऊँट, पैदल, गधों पर लादकर सामान स्थानीय रास्तों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाते थे। मुख्य साधन रेल्वे व सड़कों के रास्तों से बाहर सामान भेजना एवं मँगाया जाता था। पश्चिमी रेल्वे रास्ता दिल्ली से बाँदीकुई तथा बाँदीकुई से आगरा निकलती थी। राजगढ़ अलवर और बाँदीकुई के मध्य स्थित था। मुख्य सड़कों में दिल्ली से जयपुर तक जाने वाली सड़क थी। प्रत्येक कस्बे

को पक्की एवं गाँवों को जोड़ने वाली कच्ची सड़कें एवं रास्ते थे।[66] राजपूताना रेल्वे द्वारा देहली से अलवर के मध्य 14 सितम्बर 1874 को एवं 6 दिसम्बर 1874 को देहली से बाँदीकुई रेल मार्ग प्रारम्भ हुआ; राज्य के क्षेत्र में अजरका, खैरथल, अलवर, मालाखेड़ा, राजगढ़ आदि छः स्टेशन बनाये गये। अलवर रियासत को जोड़ने वाले विभिन्न स्थानों को जाने वाले रास्ते और सड़कें थी जिन पर आवागमन और माल लाया-ले जाया जाता था। प्रत्येक रास्ते पर जमादार नियुक्त किया गया जिसका 7 रुपये माह, सिपाही को 4 रुपये प्रतिमाह के वेतन पर सुरक्षा (गार्ड) हेतु लगाया गया। यात्रियों, आमजनों, व्यापारियों तथा उनके माल की सुरक्षा हेतु महाराजा जयसिंह के समय राजगढ़ निजामत में राजगढ़ थाना तथा उसके अधीन चौकियाँ पिनान, रामपुरा तथा राजपुर में थी। इस सर्किल का दूसरा थाना टहला में था जिसके अधीन पुलिस चौकी बलदेवगढ़ में थी।[67] राजगढ़ से जाने वाले रास्ते निम्न प्रकार थे[68]

1. राजगढ़-गोला का बास, अजबगढ़-सैंथल-जयपुर
2. राजगढ़ (थाना)-टहला-गुढ़ा-कटला-जयपुर
3. राजगढ़-गोठ-बसवा
4. राजगढ़-छीड़-रैणी
5. राजगढ़-घाटा-माचेडी
6. राजगढ़-अडोका-लक्ष्मणगढ़

प्रथम श्रेणी के रोड[69]

क्र.सं.	रोड-पक्की/कच्ची	लागत आई प्रति मील रु.	लम्बाई मील	कुल लागत
1	राजगढ़-टहला रोड	2000	16	32000
2	टहला- रामकुटी रोड	4000	4	16000
3	राजगढ़ रोड़- माचेडी गेट से महलबाग	2000	1.4	2800
4	राजगढ़ खास तवेला और जंक्शन से गंगाबाग			
5	सरिस्का मान सरोवर रोड	3846	14	
6	देवती रोड	5,633	3.2	
7	मिलान रोड-सरिस्का मानसरोवर रोड टहला रोड	-	0.8	53844
8	अप्रोच रोड मंगलसर	-	3.0	18025.6
9	हंस सरोवर रोड	-	-	-

द्वितीय श्रेणी के रोड[70]

क्र.सं.	रोड-पक्की/कच्ची	लागत आई प्रति मील रु.	लम्बाई मील	कुल लागत
1	सीलीसेढ सीराबास रोड	8000	8	64000
2	सरिस्का-थानागाजी रोड़	2000	6	12000
3	प्रतापगढ़-अजबगढ़ रोड़	1000	9	9000
4	बाराँ-बालेटा रोड़	1000	5	5000
5	अजबगढ़- टहला रोड़	5946	15.1	89769.5
6	कोलन-घाटी रोड़	-	3	-
7	राजगढ़- माचेडी रोड	-	4	-

तृतीय श्रेणी के रोड[71]

क्र.सं.	रोड-पक्की/कच्ची	लागत आई प्रति मील रु.	लम्बाई मील	कुल लागत
1	राजगढ़-बुर्जा रोड़	800	24	19200
2	माचेड़ी से लक्ष्मणगढ़	500	13	6500

मौसमी सड़कें[72]

क्र.सं.	रोड-पक्की/कच्ची	लागत आई प्रति मील रु.	लम्बाई मील	कुल लागत
1	कालीघाटी से बालेटा	600	12	7200
2	अजबगढ़ से भानगढ़	2000	2.0	40000

इन रास्तों पर अनाज, रूई, चीनी, गुड़, चावल, नमक, घी, कपड़ा और कई फुटकर चीजें बाहर से यहाँ बिकने आती थी एवं यहाँ से बाहर भेजी जाती थी।[73]

ऋण-साहुकारों द्वारा ऋण दिया जाता था। कर्जा देने से पूर्व प्रति रुपये के ऊपर ब्याज का आधा आना जोड़कर दिया जाता था। कभी-कभी यह 3 प्रतिशत तक बढ़ जाता था। अगर कर्ज वापिस चुकाते समय उसे वस्तु के रूप में चुकाया जाता तो साहुकार आधा आना प्रति रुपये को पहले वसूल कर चुका होता था जिसको इसमें शामिल नहीं करता था।[74] अलवर रियासत में हुण्डी का प्रचलन था। राजगढ़ में भी हुण्डी व्यवस्था थी। अलवर राज्य में तार पत्रों (टेलीग्राफ ऑफिस) के कार्यालय सभी निजामतों में थे।

राजगढ़ निजामत में राजगढ़, करनपुरा, टहला और ढिगावड़ा में थे। इन तारघरों के माध्यम से सूचनाओं का आदान-प्रदान अलवर राज्य में सुगमता से होता था।[75]

संदर्भ

1. पाउलेट, मेजर पी.डब्ल्यू-गजटियर ऑफ उलूवर, 1878 (अनु. अनिल जोशी) पृ. 86
2. माया राम, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अलवर, पृ. 209
3. देसाई, ए.आर.-भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ. 6-7
4. दत्त, रजनीपाम-आज का भारत, मेकमिलन इण्डिया लि., 1985, पृ.-244
5. बन्धांक 175, क्रमांक 9/टिक्कू/एसेसमेंट रिपोर्ट-थानागाजी, राजगढ़, 1923, पृ. 2, रा.रा.अभि.,अलवर
6. मखदमू, शेख मौहम्मद-अरजंग तिजारा, पृ.- 5
7. श्यामलदास, वीर-विनोद, पृ. 1360
8. पाउलेट, मेजर पी.डब्ल्यू-गजेटियर ऑफ उलूवर, 1878, (अनु. अनिल जोशी) पृ. 99
9. जोशी, अनिल-अलवर दर्शन, पृ. 117
10. बस्ता न. 229, क्रमांक 22, भाई हेतुसिंह, असेसमेंट रिपोर्ट 1921, पृ. 9-14, रा. रा.अभि. अलवर
11. अलवर राज्य मंत्रालय/बस्ता नं. 17/पत्रावली संख्या-282 आर. -39/एडिमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, एग्रीकल्चर डिपोर्टमेंट 1937-38, पृ. 115-118, रा.रा.अभि. अलवर
12. पाउलेट, मेजर पी.डब्ल्यू-गजेटियर अश्वफउलूवर, 1878, (अनु. अनिल जोशी) पृ. 98
13. माया राम, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अलवर, पृ. 380
14. पाउलेट, मेजर पी.डब्ल्यू-गजेटियर अश्वफउलूवर, 1878, (अनु. अनिल जोशी) पृ. 98
15. ओड़ायर, एम.एफ असेसमेंट रिपोर्ट अलवर स्टेट 1897-98, पृ. 10-11
16. ओडायर, एम.एफ फाइनल रिपोर्ट, अलवर स्टेट सैटिलमेंट, 1900-01, पृ. 79-81
17. डायरेक्ट्री ऑफ अलवर स्टेट, करेक्टेड अप टू 1928, स्टेट प्रेस अलवर, पृ. 80-84
18. ओड़ायर, एम.एफ असेसमेंट रिपोर्ट अलवर स्टेट 1898-99, पृ. 12
19. ओड़ायर, एम.एफ असेसमेंट रिपोर्ट अलवर स्टेट 1898-99, पृ. 12
20. जोशी, अनिल-अलवर दर्शन, पृ. 126-127
21. गहलोत, जगदीश सिंह-राजपूताने का इतिहास (अलवर राज्य का इतिहास) पृ. 220
22. मायाराम, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अलवर, पृ. 232

23. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 96
24. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 97
25. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 111-112
26. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 97
27. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 98
28. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 98
29. मायाराम, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अलवर, पृ. 268-69
30. क्रमांक 478, बन्धांक 68, ग्रन्थांक 4, रा.रा. अभिलेखागार, बीकानेर
31. बस्ता नं. 417, फा.नं.5 अलवर पत्रिका, 3 अगस्त 1948 रा.रा.अभिलेखागार, अलवर
32. बस्ता नं. 417, फा.नं.2 स्वतंत्र भारत (राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्रिका), 12 जनवरी 1948, पृ. 2, रा.रा.अभिलेखागार, अलवर
33. बस्ता नं. 417, फा.नं.2 स्वतंत्र भारत (राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्रिका), 1 मार्च 1947, पृ. 7, रा.रा.अभिलेखागार, अलवर
34. बस्ता नं. 417, फा.नं.2 स्वतंत्र भारत (राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्रिका), 1 मार्च 1947, पृ. 7, रा.रा.अभिलेखागार, अलवर
35. बस्ता नं. 417, फा.नं.2 स्वतंत्र भारत (राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्रिका), 24 मई 1947, पृ. 7, रा.रा.अभिलेखागार, अलवर
36. क्रमांक 318, बन्धांक 43, ग्रन्थांक 4, रा.रा. अभिलेखागार, बीकानेर
37. मखदमू, शेख मौहम्मद, अरजंग तिजारा, पृ. 64
38. जोशी, पिनाकी लाल- अलवर गजट 1928, अप्रकाशित, रा. रा. अभि. बीकानेर
39. मायाराम, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अलवर, पृ. 269
40. गति, मासिक पत्रिका (सितम्बर-अक्टूबर संयुक्तांक) 2009, पृ. 31
41. मत्स्य दर्पण, स्मारिका जिला प्रशासन, अलवर एवं पर्यटन विभाग राजस्थान, पृ.13
42. मखदमू, शेख मौहम्मद, अरजंग तिजारा, पृ. 56
43. मायाराम, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अलवर, पृ. 270
44. जोशी, अनिल- अलवर दर्शन, पृ. 67
45. मत्स्य दर्पण, स्मारिका जिला प्रशासन अलवर एवं पर्यटन विभाग राजस्थान, पृ.82
46. मायाराम, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अलवर, पृ. 270
47. (1) श्यामलदास-वीर विनोद, प. 1359 (2) मखदमू, शेख मौहम्मद, अरजंग तिजारा, पृ. 53
48. गहलोत, जगदीश सिंह-राजपूताने का इतिहास (अलवर राज्य का इतिहास), पृ. 221
49. श्यामलदास-वीर विनोद, पृ. 1358
50. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 30
51. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 82-83

52. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 77
53. जोशी, अनिल-अलवर क्षेत्र में औद्योगिक क्रान्ति माचेड़ी से भिवाड़ी तक, पृ. 07
54. गहलोत, जगदीश सिंह-राजपूताने का इतिहास (अलवर राज्य का इतिहास), पृ. 221
55. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 74
56. गहलोत, जगदीश सिंह-राजपूताने का इतिहास (अलवर राज्य का इतिहास) पृ. 245
57. जोशी, अनिल-अलवर क्षेत्र में औद्योगिक क्रान्ति माचेड़ी से भिवाड़ी तक, पृ. 07
58. गति मासिक पत्रिका, वर्ष 3, अंक 9-10 सितम्बर-अक्टूबर (संयुक्तांक), अलवर, पृ.
59. श्यामलदास-वीर विनोद, पृ. 1363
60. गहलोत, जगदीश सिंह-राजपूताने का इतिहास (अलवर राज्य का इतिहास) पृ. 233
61. बेब-द करेंसी ऑफ राजपूताना, पृ. 111
62. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 99
63. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग पंचम पृ. 265
64. रिपोर्ट ऑफ द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ अलवर स्टेट, 1892-93
65. बस्ता नं. 417 फा. नं.2, स्वतंत्र भारत (राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्रिका) 1,15 जनवरी, 1,5,22 मार्च, 26 अप्रैल, 17 मई, 22 जुलाई 1947 रा.रा. अभिलेखागार अलवर
66. गहलोत, जगदीश सिंह-राजपूताने का इतिहास (अलवर राज्य का इतिहास) पृ. 234
67. डायरेक्ट्री ऑफ अलवर स्टेट, करेक्टेड अप टू 31 दिसम्बर 1928, स्टेट प्रेस अलवर, पृ.5
68. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, प. 76-79
69. डायरेक्ट्री ऑफ अलवर स्टेट, करेक्टेड अप टू 31 दिसम्बर 1928, स्टेट प्रेस अलवर, पृ. 6-7
70. डायरेक्ट्री ऑफ अलवर स्टेट, करेक्टेड अप टू 31 दिसम्बर 1928, स्टेट प्रेस अलवर, पृ.8
71. डायरेक्ट्री ऑफ अलवर स्टेट, करेक्टेड अप टू 31 दिसम्बर 1928, स्टेट प्रेस अलवर, पृ.6-8
72. वही
73. श्यामलदास-वीर विनोद, पृ. 1373
74. पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू., गजेटियर, अलवर, पृ. 76
75. डायरेक्ट्री ऑफ अलवर स्टेट, करेक्टेड अप टू 31 दिसम्बर 1928, स्टेट प्रेस अलवर, पृ. 49

'इजारा व्यवस्था' : जयपुर राज्य के खालसा क्षेत्रों में प्रचलित भूराजस्व प्रणाली (19वीं-20वीं शताब्दी में)

डॉ. रश्मि मीना

1949 ई. में वृहत्तर राजस्थान में विलय से पूर्व जयपुर राज्य राजपूताना का तीसरा बड़ा राज्य था। इसका कुल क्षेत्रफल 15,601 वर्गमील तक फैला हुआ था।[1] 1727 ई. में जयपुर नगर की स्थापना से पूर्व यह आम्बेर रियासत के नाम से जाना जाता था, जिसपर लगभग 1200 ई. से कछवाहा वंश के राजपूत शासक शासन कर रहे थे। दुलहराय को इस राज्य का संस्थापक माना जाता है। सवाई जयसिंह (1699-1743 ई.) इस राजवंश के प्रतापी शासक हुए, जिनका जयपुर राज्य की समृद्धि तथा विस्तार में महत्पूर्ण योगदान रहा है। उनके शासक बनने के समय आम्बेर राज्य में केवल तीन परगने आम्बेर, दौसा तथा बसवा थे। सवाई जयसिंह ने मुगल बादशाह को प्रसन्न कर, अन्य राज्य की भूमि दबाकर व जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया। 1732 ई. में सवाई जयसिंह ने शेखावाटी के 51 परगने मुगल बादशाह से 25 लाख रुपये वार्षिक इजारे पर लिए। इन नए प्राप्त किए गए क्षेत्रों में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए सवाई जयसिंह ने कछवाहा उपशाखा के प्रमुखों को ये क्षेत्र जमींदारी के रूप में प्रदान किए तथा इनसे दीर्घावधि के भूराजस्व समझौते किए।[2] 1743 ई. में सवाई जयसिंह की मृत्योपरान्त धीरे-धीरे कामा, दबोई व पहाड़ी भरतपुर राज्य ने, थानागाजी, उजीबगढ़, बहरोड़, मंजपुर, प्रतापगढ़ आदि अलवर राज्य ने, नारनौल, कान्ति आदि झज्झर राज्य ने, फरीदाबाद, वल्लभगढ़ राज्य ने, टोंक व रामपुरा, टोंक राज्य ने तथा अंग्रेजों ने होडल व पलवल को अपने अन्तर्गत मिला लिया। 1803-1804 ई. के मराठा युद्ध में खेतड़ी के जागीरदार द्वारा अंग्रेजों की सहायता करने के फलस्वरूप लॉर्ड लैक द्वारा कोटपुतली खेतड़ी के जागीरदार को दे दिया गया था।[3] इस प्रकार समय-समय पर जयपुर राज्य की सीमाओं में निरन्तर परिवर्तन आते रहे।

'इजारा व्यवस्था' जयपुर राज्य के खालसा क्षेत्र के भूराजस्व प्रबंधन की मुख्य व्यवस्था थी, जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक नीलामी द्वारा उच्चतम बोली लगाने वाले को एक निश्चित परगना या क्षेत्र इजारे के रूप में एक निश्चित अवधि के लिए दे दिया जाता था। प्रारम्भ में पाँच वर्ष की अवधि के लिए इजारा क्षेत्र इजारेदार को दिया जाता था, परन्तु 1920 ई. से इजारे की अवधि को बढ़कर दस वर्ष कर दिया गया।[4] उल्लेखनीय है कि खालसा क्षेत्र वह क्षेत्र होता था, जिस पर दरबार (राज्य) को भूमि पर सर्वोच्च एवं

पूर्ण स्वामित्व के अधिकार प्राप्त होते थे। 1743 ई. में सवाई जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् कछवाहा शासकों के अधीन खालसा भूमि को बड़े स्तर पर इजारे के रूप में दिया गया था तथा यह राज्य की भूराजस्व व्यवस्था का सामान्य रूप बन गया था।[5] 'इजारा अनुदान' सामान्यत: महाजनों, बड़े सेठों, जागीरदारों एवं राज्याधिकारियों को दिये जाते थे। ये अनुदान मुख्य रूप से पुराने उजड़े हुए गांवों को पुन: बसाने तथा उन्हें उत्पादक बनाकर गांव की जमा (राजस्व) में वृद्धि करने के उद्देश्य से दिये गये थे। इस प्रकार के गांवों में भूराजस्व में पांच वर्षों तक प्रति वर्ष वृद्धि की जाती थी, जब तक कि यह सामान्य स्थिति में न पहुंच जाये।

'इजारा अनुदान' मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते थे - 'करार इजारा', जो कम अवधि के लिए दिये जाते थे, 'इजारा इस्तमरारी', जो लम्बी अवधि के लिए दिये जाते थे तथा 'तनख्वाह इजारा', जो राज्य के अधिकारियों को तनख्वाह के बदले दिये जाते थे।[6] एक गांव के इजारे को 'दारोबस्त' तथा एक से अधिक गांवों या एक गांव के इजारे को 'सरीकत' कहा जाता था। 'सरीकत खालसा' गांव के करार इजारा इसी गांव के जमींदार को मासिक करार के आधार पर दिये जाते थे ताकि गांव में एक ही राजस्व इकाई बनी रहे तथा गांव के कृषक जागीरदार एवं खालसा क्षेत्र के राजस्व अधिकारियों के दोहरे नियंत्रण से मुक्त हो सकें। राज्य द्वारा 'करार इजारा' दो या तीन वर्ष के लिए दिये जाते थे तथा जब उस गांव की जमा (भूराजस्व) सामान्य मांग तक पहुंच जाती थी तब राज्य द्वारा उस गांव का पुनर्ग्रहण कर दिया जाता था। 'इजारा इस्तमरारी' अनुदान 4 से 15 वर्ष की अवधि तक तथा कभी-कभी सदैव के लिए दिये जाते थे। इसके अन्तर्गत एक या अधिक गांवों, एक टप्पा या एक परगना इजारे के रूप में दिये जाते थे। राज्य द्वारा यह अनुदान जयपुर राज्य पर मराठा आक्रमणों के परिणामस्वरूप अव्यवस्थित प्रशासनिक तथा आर्थिक स्थिति से उबरने के लिए तथा मराठों को शान्त करने के लिए धन उगाही करने के उद्देश्य से देने प्रारम्भ किए गए थे। इनके साथ कुछ प्रशासनिक उद्देश्य भी जुड़े हुए थे, जैसे अपने क्षेत्र की रैय्यतों की चोरों एवं लुटेरों से रक्षा करने, अशान्त क्षेत्रों में शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए इत्यादि।

इजारेदारों को उनके इजारा में प्राप्त क्षेत्र का पट्टा प्रदान किया जाता था, जिसमें उस भूमि तथा राजस्व की राशि का विवरण अंकित रहता था। इजारेदार को पट्टे में तय की गई भू-राजस्व की राशि का भुगतान निश्चित समय पर दरबार को करना पड़ता था। इस राशि में उत्पादन की मात्रा के अनुसार परिवर्तन होता रहा था, परन्तु जमींदार वर्ग या कछवाहा सामन्तों के इजारेदारों की इजारा राशि निश्चित रहती थी। प्राकृतिक आपदाओं अथवा सेना द्वारा फसलों को नुकसान पहुंचाये जाने की स्थिति में स्थानीय राजस्व अधिकारियों अमीन, कानूननगो तथा चौधरी की जांच के आधार पर इस राशि में कुछ रियायत दी जा सकती थी।

इजारा समझौता एक या अधिक परगनों, एक या अधिक गांवों, एक खेत अथवा निश्चित फसल के लिए कृषि उत्पादन (माल) या भू-राजस्व के लिए अथवा कृषि उत्पादन (माल) सहित उस क्षेत्र के सम्पूर्ण राजस्व के लिए, एक या अधिक करों, यथा - मापा, राहदारी, सादारी, पेशकश भूमि आदि के लिए किए जा सकते थे। सामान्यत: इजारा राशि औसत हासिल का ही एक भाग होती थी, जो कि एक क्षेत्र विशेष से पांच या सात साल में प्राप्त होती थी। इजारेदारों को इजारा प्राप्त करने से पहले अपने पक्ष में एक साहूकार की गारन्टी देनी आवश्यक होती थी, जिसके बदले में साहूकार को भी इजारेदार के लाभांश का एक भाग मिलता था। यह परम्परागत दरों पर आधारित होता था। कभी-कभी जमींदारों की वित्तीय स्थिति कमजोर होने पर उनके क्षेत्र के गांव भी इजारे पर दे दिये जाते थे। इजारेदार राज्य के खर्चे पर कुछ राजस्व रिकॉर्ड्स तैयार करते थे तथा उनकी नियमित देखरेख करते थे तथा फिर उन्हें 'दीवान हुजूरी' के कार्यालय में भेज देते थे। कभी-कभी राज्य द्वारा रैय्यतों तथा पटेलों को उदार शर्तों पर इजारा प्रदान किये जाते थे, जिसे 'इजारा गुंजाइशी का' के रूप में जाना जाता था। कुछ इजारे गांव अथवा क्षेत्र विशेष के किसानों को संयुक्त रूप से दिये जाते थे। इसके अन्तर्गत खुली नीलामी की व्यवस्था नहीं थी तथा इनकी अवधि पांच से दस साल तक होती थी। निर्धारित अवधि समाप्त होने पर पुन: बढ़ी हुई राजस्व की दरों पर किसानों को संयुक्त रूप से इजारा दे दिया जाता था।[7] इस इजारा प्रणाली को 'खाम इजारा' कहा जाता था क्योंकि इसके अन्तर्गत दी गई भूमि कम उपजाऊ होती थी, इसलिए बड़े इजारेदार (महाजन, राजस्व अधिकारी, जागीरदार, आदि) इसका इजारा लेना लाभदायक नहीं समझते थे।[8] अत: इस तरह के क्षेत्रों को राजस्व अधिकारी किसानों पर संयुक्त रूप से थोप देते थे। 'खाम इजारा प्रणाली' में किसान राजस्व भुगतान के लिए संयुक्त रूप से जिम्मेदार होते थे, परन्तु व्यावहारिक तौर पर भूमि को संयुक्त रूप से प्रयोग करते थे तथा राजस्व का भुगतान पृथक्-पृथक् करते थे। इन किसानों द्वारा दिये जो वाले राजस्व का निर्धारण प्रत्येक किसान की जोतों के अनुसार किसान स्वयं अथवा तहसीलदार द्वारा किया जाता था।[9] राजस्व वसूली का कार्य पटेलों द्वारा किया जाता था, जिन्हें बदले में एकत्रित राजस्व का एक हिस्सा दिया जाता था तथा वह किसानों से अपनी लाग अलग से वसूल करता था।[10]

इजारा व्यवस्था के अन्तर्गत किसानों को व्यक्तिगत इजारे भी दिये जाते थे। वह भूमि को उपरोक्त इजारों में देने योग्य नहीं थी, उनका प्रबंधन तहसीलदार व्यक्तिगत इजारों के रूप में करता था। इन गांवों अथवा क्षेत्रों की भूमि किसानों को पृथक्-पृथक् बांट दी जाती थी, जिसे 'फांट बंदी' (Phant Bandi) कहा जाता था। इस पद्धति के अन्तर्गत भूमिहीन किसानों को दस वर्ष की अवधि के लिए भूमि प्रदान की जाती थी।[11] जिन क्षेत्रों को इजारेदार अथवा खाम-इजारेदारों द्वारा इजारे पर नहीं लिया जाता था, वह

साधारण किसान, कृषि श्रमिकों अथवा शिल्पकारों को दे दी जाती थी। ये भूमि सामान्यत: अधिक अनुपजाऊ किस्म की होती थी।

इस्तमरारी इजारा प्राप्त इजारेदार को अपने पक्ष में साहूकारों से जमानत राशि भरवानी पड़ती थी तथा वे राजा की अनुमति के बिना परगना नहीं छोड़ सकते थे। इन्हें अपने परगने के उपद्रवी जमींदारों को नियंत्रित करने, युद्ध के समय राज्य को सैनिक सहायता देने, परगने में चोरी एवं अन्य अपराधों की रोकथाम करने, परगने में रैय्यत को पुन: बसाने तथा परम्परागत दरों पर 'हासिल' (भूराजस्व) प्राप्त करने के कार्य करने पड़ते थे। इस प्रकार यह एक नई परम्परा का विकास था, जिसमें इजारेदार को राजस्व एकत्र करने के कार्य के साथ-साथ अधिकाधिक प्रशासनिक जिम्मेदारियां, जैसे- फौजदारी अधिकार, परगने में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखने के अधिकार आदि दिए गए थे। धीरे-धीरे साहूकारों को भी इजारे के साथ-साथ फौजदारी अधिकार दिए जाने लगे थे। कभी-कभी इस्तमरारी इजारा पड़ौसी राज्य के शासकों को भी दिये जाते थे। इनके अन्तर्गत वे गांव दिए जाते थे जो उनकी सीमाओं के नजदीक होते थे। उदाहरणार्थ- भरतपुर तथा करौली राज्य के शासकों ने जयपुर के महाराजा से इस्तमरारी इजारा के रूप में कुछ गांव प्राप्त किए थे।[12] इस प्रकार जयपुर राज्य से इस्तमरारी इजारा के साथ-साथ फौजदारी अधिकार भी प्राप्त कर राज्य के जमींदार व जागीरदार समान्तवादी प्रक्रिया में सम्मिलित हो गए तथा राज्य के कमजोर नियंत्रण के कारण उन्होंने अपनी स्थिति बहुत मजबूत कर ली थी।[13]

सामान्यत: इजारेदार अपनी इजारे की अवधि को लेकर आशंकित रहते थे, क्योंकि उनके इजारे की अवधि पूरी होने से पहले यदि कोई अन्य व्यक्ति उस इजारे की अधिक कीमत देने के लिए तैयार हो जाता था तो इजारेदार को कुल धन का 8वां भाग मुआवजे के रूप में देकर उससे वह इजारा क्षेत्र वापस लेकर अधिक कीमत देने वाले व्यक्ति को दे दिया जाता था।[14] परन्तु यदि किसी इजारेदार ने अपने इजारा क्षेत्र को पुन: बसाया हो तो उससे वह क्षेत्र वापस नहीं लिया जा सकता था। नए इजारेदार को पुराने इजारेदार की बकाया राशि तथा रैय्यतों को 'तकावी' के रूप में दी जाने वाली ऋण की राशि भी दरबार को चुकानी पड़ती थी। यदि इजारेदार समय पर इजारा राकि नहीं चुकाता था अथवा रैय्यतों द्वारा उसके अत्याचारों के विरुद्ध तीव्र विरोध किया जाता था तो राज्य उसके इजारा क्षेत्र को वापस ले सकता था। इजारेदारी व्यवस्था राज्य द्वारा स्थापित किए गए प्रशासन के अनुसार ही कार्य करती थी। इन क्षेत्रों में राज्य के राजस्व अधिकारियों द्वारा परम्परागत दरों के आधार पर करों का निर्धारण किया जाता था तथा इजारेदारों द्वारा इस राशि को एकत्रित कर लिया जाता था। इजारेदार राज्य के परगना अधिकारियों, जैसे - फौजदार, आमिल इत्यादि पर होने वाले व्यय को राज्य से प्राप्त करने का अधिकार

रखता था। इजारा में प्रदान किए गए गांवों को खालसा क्षेत्र से जागीर क्षेत्र अथवा जागीर क्षेत्र से खालसा क्षेत्र में स्थानान्तरित करने पर समस्या उत्पन्न हो जाती थी। जागीर क्षेत्र से खालसा क्षेत्र में गांवों को स्थानान्तरित करने पर इजारेदार इस क्षेत्र से राजस्व वसूली करते थे जो कि टप्पादार तथा अन्य राजस्व अधिकारियों द्वारा 'तन' के आधार पर निर्धारित किया जाता था। गांवों को खालसा क्षेत्र से जागीर क्षेत्र में स्थानान्तरित करने पर इजारेदार 'तन' दरों तथा जागीरदार के साथ किए गए मासिक राजस्व करार, जैसे - 6 महीने, 8 महीने, 10 महीने के अनुसार राजस्व वसूल करता था।

कभी-कभी धनी किसानों द्वारा भी अकेले या संयुक्त रूप से न केवल अपने गांवों, अपितु पड़ौस के गांवों को भी इजारे पर ले लिया जाता था। इजारेदार को भूराजस्व की दरों में वृद्धि करने का अधिकार नहीं था तथा प्राकृतिक आपदाओं के समय समस्त हानि उसे ही उठानी पड़ती थी। वे इजारेदार, जो वंशानुगत रूप से ग्रामीण अधिकारी वर्ग से नहीं होते थे, वे इजारा कर राशि के निर्धारण के लिए वंशानुगत एवं परम्परागत राजस्व अधिकारियों, जैसे - पटेल एवं पटवारी पर निर्भर करते थे। जिन क्षेत्रों में ग्रामीण समुदाय मजबूत थे तथा राज्य द्वारा उनके अधिकारों में वृद्धि कर दी गई थी, वे ग्रामीण समुदाय इजारेदारों पर निश्चित राशि से अधिक वसूली करने पर रोक लगा देते थे। कृषकों द्वारा भी निश्चित भूराजस्व से अधिक वसूली का विरोध किया जाता था। फलस्वरूप इन क्षेत्रों में शोषण की संभावनाएँ बहुत कम रह गई थीं।

जयपुर राज्य ने प्रथम बार 1925-1926 ई. में इजारा प्रणाली के स्थान पर 'रैय्यतवाड़ी' व्यवस्था लागू करने पर विचार किया था।[15] 1880 ई. के उपरान्त ब्रिटिश पद्धति पर राजपूताना के राज्यों के साथ भूमि बन्दोबस्त का कार्य आरम्भ हुआ, जिनका उद्देश्य राज्य एवं किसानों के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करना तथा इजारेदारों जैसे बिचौलियों को समाप्त करना था। जयपुर राज्य में 1932-1933 ई. में बड़े पैमाने पर इस पद्धति को लगभग समाप्त कर दिया गया था। परन्तु 1949 ई. तक यह पद्धति सीमित क्षेत्रों में जारी रही क्योंकि जो प्रभावशाली वर्ग इस प्रणाली को एक व्यवसाय के रूप में अपनाए हुए थे, उनका राज्य पर बहुत अधिक प्रभाव था। कुछ इजारेदार रैय्यतवाड़ी पद्धति अपनाकर बड़े भूस्वामी बन गए थे।[16] इस प्रकार स्पष्ट है कि इजारा प्रणाली जयपुर राज्य के खालसा क्षेत्रों में प्रचलित भूराजस्व प्रबंधन की एक महत्वपूर्ण पद्धति थी, जिसने अपना अस्तित्व 1949 ई. तक बनाए रखा, जबकि जयपुर राज्य का विलय वृहत्तर राजस्थान में हो गया।

संदर्भ

1. *जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1947-48, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 5*

2. *सी.यू. विल्स, ए रिपोर्ट ऑन दी लैण्ड टेन्योर एण्ड स्पेशल पॉवर ऑफ सरटेन ठिकानेदार्स ऑफ जयपुर स्टेट, नवम्बर 18, 1933, जयपुर, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 14*
3. *गहलोत, जगदीश सिंह, कछवाहों का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1966, पृ. 2*
4. *जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1922-1926, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 13*
5. *गुप्ता, एस.पी., दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ ईस्टर्न राजस्थान (1650-1750 ई.), मनोहर पब्लिकेशन, दिल्ली, 1986, पृ. 226*
6. *सिंह, दिलबाग, दी स्टेट, लैण्डलॉर्ड्स एण्ड पीजेन्ट्स, नई दिल्ली, 1990, पृ. 131*
7. *शर्मा, ब्रज किशोर, आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1998, पृ. 50*
8. *वही, पृ. 50*
9. *जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1922-26, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 17*
10. *जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1947, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 85*
11. *भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, फॉरेन डिपार्टमेंट, ए-रेवेन्यू - आई, प्रोसिडिंग्स, सितम्बर, 1883, नं 1-6, पैरा नं. 07*
12. *अड़सट्ठा दस्तावेज - परगना मलारना व परगना बहात्री, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
13. *सी.यू. विल्स, ए रिपोर्ट ऑन दी लैण्ड टेन्योर एण्ड स्पेशल पॉवर ऑफ सरटेन ठिकानेदार्स ऑफ जयपुर स्टेट, नवम्बर 18, 1933, जयपुर, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 14*
14. *सिंह, दिलबाग, दी स्टेट, लैण्डलॉर्ड्स एण्ड पीजेन्ट्स, न्यू देहली, 1990, पृ. 134*
15. *महकमा खास रिकॉर्ड्स, जयपुर, फाईल नं. आर -2-12 पार्ट 4, रिपोर्ट ऑन दी प्रोग्रेस ऑफ दी सेटलमेंट ऑपरेक्नस फॉर दी ईयर 1925-26, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, शाखा, जयपुर*
16. *शर्मा, ब्रज किशोर, आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1998, पृ. 49*

20वीं शताब्दी के मारवाड़ में वस्त्र उद्योग उत्पादन एवं नीतियाँ : एक अध्ययन

मंजू चौहान

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में कृषि तथा उद्योग का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये दोनों ही एक-दूसरे के पूरक है। कृषि पर आधारित अनेक छोटे-छोटे उद्योगों का प्रचलन प्राचीन काल से ही रहा है। मध्यकाल में भी कृषि उत्पादों पर आधारित उद्योग जैसे गन्ने से गुड़ बनाना, खाण्डसारी उद्योग, देशी शराब का उत्पादन आदि प्रचलित थे। ब्रिटिश काल में जब कृषि का वाणिज्यकरण हुआ तो नकदी फसलों अर्थात् कपास, चाय अफीम, नील आदि का उत्पादन बढ़ने के फलस्वरूप कृषि पर आधारित उद्योग गौण होते गुए तथा नकदी फसलों पर आधारित बड़े उद्योगों का विकास हुआ जिसमें वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, नमक उद्योग, आभूषण उद्योग, काष्ठ उद्योग, चमड़ा उद्योग आदि प्रमुख बड़े उद्योग थे।

राजस्थान के राज्य विशेषकर, बीकानेर, जैसलमेर, जयपुर आदि वस्त्र उद्योग के निर्माण में अग्रणी राज्य थे। जोधपुर, बीकानेर तथा जैसलमेर अपने ऊनी वस्त्रों के लिये तो बीकानेर व जयपुर राज्य कम्बल उद्योग तथा रंगाई-छपाई व मीनाकारी हेतु प्रसिद्ध थे। मारवाड़ सरकार अपने राज्य के औद्योगिक विकास में रूचि लेती थी। मारवाड़ में अनेक प्रकार के उद्योग प्रचलित थे जैसे कपड़ा उद्योग (सूत तथा ऊन) उद्योग, सेरेमिक (मिट्टी की वस्तुएँ बनाना) उद्योग, सोड़ा उद्योग, कांच उद्योग, धातु उद्योग, तेल उद्योग, सीमेन्ट उद्योग, प्लास्टर ऑफ पेरिस (सफेद खड़िया/सीमेन्ट) उद्योग आदि।

मारवाड़ का प्रमुख उद्योग कपड़ा उद्योग था जिसमें सूत तथा ऊन प्रमुख थे। मारवाड़ में सूत तथा ऊन का पर्याप्त उत्पादन होता था। मारवाड़ ऊन का प्रमुख केन्द्र था। भारतवर्ष में लगभग 5 करोड़ रतल (पाउण्ड) ऊन पैदा होती थी। जिसका अधिकांश भाग राजपूतानों की रियासतों बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर तथा जयपुर से ही प्राप्त होता था। किन्तु ब्रिटिश शासन काल में भारतवर्ष तथा राजपूताने के ऊन उद्योग को हानि हुई क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यवादी यह कदापि नहीं चाहते थे कि भारत के ऊन व्यवसाय की उन्नति से इंग्लैण्ड के लिवरपुल ऊन बाजार को किसी तरह की हानि पहुंचे। किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् राजपूतानें की रियासतों ने इस उद्योग की ओर ध्यान दिया तथा सन् 1948 में अखिल भारतीय कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में भारत सरकार ने राजपूतानें की

भेड़ों की नस्ल सुधारने तथा ऊन निकालने के समय धोने, काटने तथा छांटने की विधियों पर प्रकाश डाला। राजपूतानें की अन्य भेड़ों में से बीकानेर की भेड़ों की नस्ल उत्तम मानी जाती थीं फलस्वरूप उनकी नस्ल को सुधार कर ऊन उत्पादन को बढ़ाने पर जोर दिया गया। भारतवर्ष की ऊन इंग्लैण्ड के लिवरपुल बाजार में 'ईस्ट इण्डिया' वूल के नाम से जानी जाती थी। इसका मूल्य अन्य देशों के ऊन से हमेशा कम होता था। अत: यह कहा गया कि यदि राजपूताने की रियासतें ऊन की किस्मों में पूर्ण सुधार करें तो लिवरपुल के बाजारों में ही उसका चौगुना मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते है कि मारवाड़ तथा अन्य रियासतों में ऊन उद्योग विकसित तथा प्रमुख था। ब्रिटिश आर्थिक नीतियों ने इस उद्योग को नुकसान पहुंचाया किन्तु स्वतंत्रता पश्चात् भारत सरकार तथा राजपूतानें की रियासतों ने इस ओर ध्यान दिया।

मारवाड़ ऊन का केन्द्र था। यहां की खुली ऊन को बिनौने के लिये बहुत से कारखाने थे। इसके बावजूद भी अधिकांश ऊन को बाहर निर्यात कर दिया जाता था तथा ऊन को बिनौने का कार्य मारवाड़ के बाहरी क्षेत्रों जैसे बीवर आदि में होता था। इस प्रकार मारवाड़ में जो प्रेसिंग फैक्ट्रियां थी उनके पास बहुत कम या नहीं के बराबर काम रह जाता था। इसी प्रकार खुली तथा बिना ओटी हुई कपास (रूई) प्रतिवर्ष बाहर निर्यात कर दी जाती थी तथा मारवाड़ के बाहर बीवर आदि स्थानों पर ओटी जाती थी।

ऊन तथा रूई के मारवाड़ के बाहर निर्यात तथा ओटाई के कारण मारवाड़ के ओटाई कारखानों को नुकसान हो रहा था जिससे राज्य की आय में कमी तथा कारखानों के मजदूरों को बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा था अत: सोजत तथा पाली में जो ओटाई तथा बिनौने वाली फैक्ट्रियां थी उन्होंने मारवाड़ सरकार को यह सुझाव दिया कि सरकार खुली ऊन तथा बिना ओटी हुई और खुली रूई के निर्यात को रोकने के लिये निर्यात शुल्क बढ़ा दे। साथ ही यह भी कहा गया कि मारवाड़ में खुली ऊन तथा रूई की ओटाई को प्रोत्साहित करने के लिये खुली ऊन तथा रूई की तुलना में ओटी हुई ऊन तथा रूई पर निर्यात शुल्क कम रखा गया है। मारवाड़ सरकार ने कहा यदि पाली तथा सोजत की प्रेसिंग फैक्ट्रियां उचित लागत पर ओटाई करें तथा ऊन एवं रूई उत्पादकों को आवश्यक सुविधाएं प्रदान करें तो वे स्वाभाविक रूप से अपने उत्पाद को बाहर निर्यात करने की बजाय मारवाड़ के कारखानों में ओटाई के लिये देंगें।

Export Duty on Loose and Pressed Wool and Cotton

(Year 1948-49)

Loose	Pressed
Wool-Rs. 1/8 Per md	Wool-Rs. 1/4 Per md
Cotton- Rs. 15 Per md	Cotton- Rs. 12 Per md

इस प्रकार मारवाड़ में कपड़ा उद्योग हेतु कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था तथा कच्चे माल से उत्पाद तैयार करने हेतु मारवाड़ सरकार द्वारा आवश्यक प्रयास भी किए गये थे। कच्चे माल के निर्यात को रोकने हेतु उत्पादकों को आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने संबंधी कदम भी उठाए गए ताकि राज्य में औद्योगिक उत्पादन बढ़ें। साथ ही राज्य की आय में भी वृद्धि हो। मारवाड़ में रंगे तथा छपे हुए वस्त्र का उद्योग भी बहुत प्रसिद्ध था। यहां के छपे तथा रंगे हुए वस्त्रों का निर्यात ब्रिटिश भारत तथा मारवाड़ के बाहरी क्षेत्रों में भी किया जाता था। यह देश का एक बहुत बड़ा उद्योग था। मारवाड़ में रंगाई छपाई का कार्य मुस्लिम छिपास करते थे। ये लोग ब्रिटिश भारत में सफेद कपड़े का आयात करते थे तथा मारवाड़ में उन्हें रंगकर पुन: ब्रिटिश भारत के व्यापारियों को बेचते थे। कपड़े तथा रंग इत्यादि का आयात ब्रिटिश भारत से करते थे तथा आयातित सामग्री पर मारवाड़ सरकार को 1000/- शुल्क के रूप में देते थे।

वर्ष 1942 में मारवाड़ में रंगे हुए कपड़े के निर्यात पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। क्योंकि रंगाई उद्योग हेतु जो रंग तथा कपड़ा ब्रिटिश भारत से आयात किया जाता था उससे राज्य का धन बाहर जा रहा था तथा उसकी एवज में मारवाड़ में धन नहीं आ रहा था। क्योंकि ब्रिटिश व्यापारी मुस्लिम छिपास से रंग हुए वस्त्रों को कम रूपयों में खरीद कर अपने देश में तथा ब्रिटिश भारत में ऊँची कीमतों पर बेच कर मुनाफा कमा रहे थे वही मारवाड़ राज्य को इससे कोई मुनाफा नहीं हा रहा था फलस्वरूप मारवाड़ में रंगे तथा छपे हुए वस्त्रों के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया गया। (वर्ष 1942 में) इसी प्रकार पाली की उम्मेद मिल्स में कपड़े तथा यार्न (धागा/सूत) का उत्पादन होता था। वर्ष 1942 में इस मिल से कपड़े तथा यार्न के निर्यात को प्रतिबंधित कर दिया गया। इस मिल द्वारा कपड़े (खादी) तथा र्यान के उत्पादन तथा उपभोग के विभिन्न आंकड़े इस प्रकार है-

	Amount Manufactured	Consume in Marwar	Balance
Single Yarn	10,000 bales	2500 bales	75000 bales
Doubling Yarn	2000 bales	Nil	2000 bales
Khadi	16,000 bales	4000 bales	12000 bales
	28,000 bales	6500 bales	21,500 bales

Figures from January to July 1942

	Realing Yarn	Khadi Cloth In 1 bs	
6^{s}&8^{s}	Counts in lbs	Actual	Nominal
January	3,17,139	3,99,731	3,55,317
Februray	3,35,391	4,23,406	3,76,361

March	3,20,302	3,64,994	3,25,443
April	3,79,692	4,23,580	3,76,578
May	3,73,539	4,31,357	3,83,429
June	3,63,172	4,15,821	3,69,619
July	3,45,694	5,24,685	4,66,389
Total	24,34,949	29,83,578	26,52,076

	Cloth year 1941	Yarn 1941	
Month	Nominal lbs	Month	Nominal lbs
April	16,159	April	90,275
May	1,15,490	May	2,45,334
June	1,91,514	June	2,92,208
July	3,23,915	July	4,82,867
Aug	3,74,604	Aug	5,93,026
Sep	4,39,723	Sep	6,40,266
Oct	3,20,487	Oct	4,89,190
Nov	3,52,724	Nov	5,12,691
Dec	3,80,186	Dec	6,23,020

Figures for Year 1942

Month	Cloth lbs	Yarn lbs
Aug	2,81,414	1,66,829
Sep	3,67,715	5,14,089
Oct	4,15,915	5,60,172
Nov	4,24,979	5,88,895

मारवाड़ में खादी तथा यार्न के कुल उत्पादन का लगभग 20–25 प्रतिशत ही उपभोग हो पाता था इसलिये इसे बाहर निर्यात किया जाता था क्योंकि उत्पादन की तुलना में मारवाड़ में इनकी खपत ज्यादा नहीं थी।

इस प्रकार मारवाड़ में औद्योगिक विकास तथा औद्योगिक हितों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने मारवाड़ में कपड़ा के निर्यात को प्रतिबंधित किया जो मारवाड़ के

हित में था तथा कच्चे माल के निर्यात को रोककर मारवाड़ में रोजगार तथा आय के स्त्रोतों को बढ़ावा दिया एवम् मारवाड़ में ही उद्योगों को पनपने का अवसर प्रदान किया।

मारवाड़ का सूती वस्त्र उद्योग भी विकसित था। महकमा खास की फाइल संख्या 8 में मारवाड़ में सूती वस्त्र उद्योग से संबंधित जानकारी मिलती है जो इस प्रकार हैं–

Figures for Year 1928-29

Import Cotton	62,881 mbs
Import Areas	बम्बई, करौली, बीवर, अहमदाबाद
Ginning of Pressing Factories	भावी, पाली, सोजत
Ginning Factories	एरिनपुरा, सुमेरपुर, रानी, बाली, रिआन, बिलाड़ा, हरिपुर, सोजत रोड़, सोजत सिटी, बांसवाड़ा
Export Cloth	337 mds मूल्य 89,28,215

मारवाड़ में खादी कपड़े तथा 6^s–8^s काउन्टर यार्न का उत्पादन होता था जिसकी मांग मारवाड़ में इसके कुल उत्पादन मात्रा में बहुत कम थी।

वर्ष 1940–41 में मारवाड़ में औसतन खादी तथा यार्न का उपभोग

1940–41 में आयात की कुल राशि

यार्न ----------

राशि रु. 5,56,559

खादी, दसूती, चादर, लट्ठा, धोती, साड़ी, ड्रिल इत्यादि भारतीय मिलों में रंगे तथा छपे हुए सभी प्रकार के वस्त्र का मूल्य– 40,19,097/–

पिछले आंकड़ों के अनुसार 1940–41 की तुलना में 1942 में मारवाड़ में खादी तथा यार्न का उत्पादन बढ़ा फलस्वरूप निर्यात भी बढ़ा।

मारवाड़ सरकार द्वारा कपड़ों के निर्यात पर लगाये गये प्रतिबंधों से यह पता चलता है कि मारवाड़ सरकार कपड़ा उद्योग को बढ़ावा तथा प्रोत्साहन देकर मारवाड़ के औद्योगिक विकास की नीति अपना चुकी थी तथा इस उद्योग के विकास के लिये मुक्त व्यापार की नीति को नहीं अपनाया तथा मारवाड़ में ही इस उद्योग को बढ़ाने के प्रयास किये। साथ ही समय–समय पर मारवाड़ में अनेक फैक्ट्रियों की भी स्थापना की गई तथा मारवाड़ में औद्योगिक विकास की संभावनाओं को देखते हुए विभिन्न कपंनियां जो मारवाड़ में अपने उद्योगों फैक्ट्री स्थापित करने हेतु उत्साहित थी, को सहयोग तथा प्रोत्साहन भी दिया जिसके तहत उन्हें फैक्ट्री हेतु भूमि आवंटन, प्राधिकार कर में छूट,

आयात-निर्यात की सुविधाएं प्रदान की तथा कंपनियों को लाइसेंस भी प्रदान करती थी ताकि वे निर्विवाद रूप से कार्य कर सके। जहां स्वतंत्रता से पूर्व निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया था कि वहीं स्वतंत्रता के पश्चात् निर्यात शुल्क बढ़ा दिया ताकि राज्य से कच्चे माल के निर्यात को कम किया जा सके।

संदर्भ

महकमा खास विभाग की फाइल्स
जोधपुर जिला अभिलेखागार
Head Industries
File-1C/1- I- Factories and mills ect. 1930-35
File-3 C/1/1- I- Permission to start Factories and mills-1946-48
File-2 C/1-III - Factories and mills etc- 1947-48
File-8 C/1/6- II- maharaja Shri Umed Mills Ltd. 1929-42
File-10C/1/6-V, Maharaja Shri Umed Mills Ltd. 1929-42
File-20-General-1948-49

धाट का प्रथम स्वतंत्रता सेनानी राणा रतनसिंह सोढ़ा

तनेसिंह सोढ़ा

विभिन्न ऐतिहासिक संदर्भों के आधार पर धाट क्षेत्र को निम्न भौतिक क्षेत्रों में परिभाषित किया गया है। यथा-भारत विभाजन के दरम्यान इस क्षेत्र का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा पाकिस्तान में और 30 प्रतिशत हिस्सा हिन्दुस्तान में रह गया, जो कि धाट क्षेत्र कहलाया[1], पूर्व-पश्चिम में अमरकोट से लेकर चौहटन की पहाड़ियों तक और उत्तर दक्षिण में जैसलमेर के सता-सुन्दरा गांव से लेकर बाड़मेर जिले के सेडवा कस्बे तक और पाकिस्तान में सती डेहरा का क्षेत्र धाट कहलाया है।[2] धाट प्रदेश थार मरू का हिस्सा है। लम्बा चौड़ा सफेद रेगिस्तान होने के कारण इसे ''धौळी धाट'' भी कहा जाता है।[3] सनातन संस्कृति की सरिता सर्वप्रथम धाट की धवल धरती से प्रवाहित होकर माड़धरा (जैसलमेर) में पहुंची, जहां माड़ राग की उत्पति हुई।[4]

इसी धाट धरा के अमरकोट और नगर पारकर क्षेत्रों पर परमारवंशी राजपूतों की सोढ़ा शाखा का लम्बे समय तक शासन रहा, इसी कारण इस क्षेत्र को सोढांण भी कहा गया है। धाट और पारकर दोनों का समन्वित क्षेत्र सोढ़ाण प्रदेश है।[5] वीर प्रसूता सोढांण धरा धाट ने श्याम धर्म व अतीत का इतिहास संजोया है उन लोगों ने अपने अद्‌भुत साहस, अपूर्व शौर्य, बलिदान व अखण्ड तपतपस्या व परिलब्ध ज्ञान के उजाले से भ्रमित व अज्ञानी समाज को एक नवीन दिशा की आदर्श प्रेरणा देकर भव्य भक्ति की सुख्याति पाई है।[6] सोढ़ा राजपूतों की वीरता और दानवीरता जगजाहिर है।[7] आज भी सोढ़ांण धरा घाट में सोढ़ा राजपूतों की अमरकीर्ति के परिचायक पात्र सोढ़ो राणों, राणों मेहन्द्रो, राणों काछबों, राणों खींवरों के लोकगीत विशेष चाव से गाये जाते है।[8]

इसी क्षेत्र के प्रसिद्ध किले रतेकोट पर बाहड़मेर नगर के संस्थापक परमार राजा बाहड़राय के पौत्र और राजा चाहड़राय के पुत्र सोढ़ा जी ने 1124 ई. में रता मुगल को मारकर अधिकार कर लिया था; सोढ़ा जी के पौत्र राणा रायदे ने 1226 ई. में उमर सूमरा को पराजित कर अमरकोट किला जीता।[9] कालान्तर में सोढ़ा राजवंश में राणा दुर्जनसाल, राणा खींवरौ, राणा अवतारदे, राणा हम्मीर जैसे प्रतापी शासकों द्वारा अमरकोट शासित रहा। शेरशाह सूरी द्वारा पराजित होकर दर-बदर भटक रहें मुगल बादशाह हुमांयु को 22 अगस्त 1542 ई. में अमरकोट में शरण देने वाला सोढ़ा राणा वीसा (वीरसाल) ही था, जिसके राजप्रासाद में अकबर का जन्म हुआ था। तत्पश्चात अमरकोट पर सोढ़ा राजपूतों

ने अपना वर्चस्व बनाये रखा। 1709 ई. में कल्होड़ा वंश के शासकों ने राणा ईश्वरदास जी से अमरकोट छीन लिया तथा कल्होड़ो को टालपुरों-मीरों ने चुनौती दी, तो कल्होड़ो के शासक मियां गुलामअली ने मारवाड़ के शासक विजयसिंह (1752-1793) से सहायता मांगी, महाराजा विजयसिंह ने अमरकोट रियासत का क्षेत्र देने के बदले में सहायता देने की शर्त रखी, जिसे काल्होड़ा मियां गुलामअली ने स्वीकार कर लिया, 04 फरवरी 1781 ई. के चौयारी (पाकिस्तान के युद्ध में महाराजा विजयसिंह व मियां गुलामअली की संयुक्त सेना ने टालपुरा-मीरों के नेता मीर बीजड़ तालपुरिया को पराजित किया।[10] लेकिन मीर बीजड़ के पुत्रों अब्दुला व फतेहखां ने पुनः मुकाबला किया जो अन्त में 1783 ई. में पराजित हुए। सन्धि के शर्तानुसार मियां गुलामअली कल्होड़ा ने 1783 ई. में अमरकोट महाराजा विजयसिंह की राठौड़ सेना को सौंप दिया। महाराजा विजयसिंह ने लोढ़ा सोहामल को अमरकोट का सुबेदार नियुक्त किया।[11] 1783 से 1813 ई. तक अमरकोट पर जोधपुर रियासत का अधिकार रहा।[12]

1813 ई. में महाराजा मानसिंह की प्रशासनिक शिथिलताओं के कारण तालपुरियों (मीर) ने पुनः अमरकोट पर अधिकार कर लिया। 1843 ई. में ब्रिटिश सेनापति चार्ल्स नेपियर द्वारा टालपुरों-मीरों को पराजित कर धाट क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। इस पर राणा मेहराजसिंह द्वितीय व अन्य सोढ़ा जागीरदारों ने तिहरी गुलामी (जागीरदारी, महाराजा, अंग्रेज) के बदले में एकल गुलामी (सीधे अंग्रेजों के अधीन) हेतु पोलिटिकल ऐजेन्ट ट्रिविट से आग्रह किया तो वह इस हेतु सहमत हो गया, परन्तु वो जो देने को तैयार था वह राणा मेहराजसिंह द्वितीय तथा सोढ़ा जागीरदार लेने को राजी नहीं हुए। इस पर अंग्रेजों ने धाट खेत्र में लगान वसूली का दमन चक्र चलाया तथा जबरन जनता से मनमानी कर वूसली शुरू कर दी तथा उनके अत्याचार बढ़ते ही गये यही नहीं अग्रेजों ने कर वसूली की इजारेदारी व लीज टालपुरों-मीरों, सैयदों को देना प्रारम्भ कर दिया जिन्होंने धाट क्षेत्र में अन्याय व अत्याचार करना प्रारम्भ कर लिया। कालान्तर में पोलिटिकल ऐजेन्ट ट्रिविट ने खेजड़ियाली (पाकिस्तान) के मुहम्मद अलीशाह ने विद्रोह का कड़ाई से दमन शुरू किया तथा सख्ती से निपटने हेतु जनता पर मनमाने कर लगा दिये। धाट की जनता ने राणा मेहराजसिंह द्वितीय से सहायता की गुहार की परन्तु राणा अंग्रेजों के दबाव से जनता का खुलकर समर्थन नहीं कर सके। इस पर जनता ने रतनसिंह सोढ़ा से उन्हें राहत दिलाने हेतु निवेदन किया। जिसे रतनसिंह सोढ़ा ने स्वीकार कर लिया और राणा रतनसिंह ने मुहम्मद अलीशाह सैयद को समझाया परन्तु वह नहीं माना, तो दोनों के बीच बहस हुई और दोनों के परस्पर की चुनौती दी, हालांकि दोनों के बीच अली शाह सैयद द्वारा लगान की ऊंची बोली लगाने की बात को लेकर मामूली बहस हुई थी।[15]

रतनसिंह तत्कालीन अमरकोट के राणा मेहराजसिंह द्वितीय को चचेरा भाई था।

राणा खीमराजसिंह सुरताणोंत के पुत्र विजयसिंह हुए जिनके पुत्र सुरजमल जी का पोत्र अणदसिंह थे जिनके तीसरे पुत्र रतनसिंह हुए। राणा रतनसिंह का जन्म 19वीं शताब्दी के अमरकोट में हुआ था। रतन राणा बचपन से ही गर्वीला और वीर प्रकृति का व्यक्ति था। राणा रतन ने जनता की मदद हेतु अलीशाह सैयद और अंग्रेजों के दमन चक्र का विरोध किया तथा उन्हें करारा जवाब दिया। अंत में राणा रतनसिंह ने अपने साथी रामसर (पाकिस्तान) निवासी अपने सहयोगी भगूजी (संग्रासी सोढ़ा) के साथ मिलकर मुहम्मद अलीशाह सैयद की गोली मारकर हत्या कर दी। रतन राणा के सहयोगी रहे भगूजी सोढ़ा के वंशज नाथूसिंह सोढ़ा के अनुसार रजनसिंह द्वारा मुहम्द अली को गोली मारने के बाद भगूजी सोढ़ा ने तलवार से उसका सिर काट डाला। मुहम्मद अली की हत्या के बाद रतन राणा को धाट की जनता ने राणा घोषित कर दिया।[16] यद्यपि राणा रतनसिंह अमरकोट के राणा नहीं थे फिर भी धाट की जनता ने उन्हें सम्मान में राणा का लकब दिया जो भारत में अन्य किसी भी स्वतंत्रता सैनानी और देशभक्त के लिए जनता द्वारा ऐसे सम्मान का उदाहरण नहीं मिलता है।[17] आखिर पोलिटिकल ऐजेन्ट ट्रिवट लीज समाप्त करने को विवश हुआ।[18] अली की हत्या के बाद रतन राणा और उसके सहयोगी भगूजी सोढ़ा फरार हो गये। अंग्रेजों ने उनका पता लगाने के भरसक प्रयत्न किये परन्तु जनता में उनकी लोकप्रियता होने के कारण किसी ने भी उनका पता नहीं बताया। जनता ने गुप्त रूप से राणा रतन को सहयोग व आश्रय दिया।[19]

रतन राणा के सहयोगी भगूजी सोढा के वंशज नाथूसिंह सोढ़ा ने साक्षात्कार के दौरान बताया कि अली की हत्या किसने की, यह काफी दिनों तक पता नहीं चला। बाद में परमार राजपूतों की वला शाखा के ओपियों वला नामक व्यक्ति ने रतनसिंह और भगूजी द्वारा मुहम्द अली की हत्या की गुप्त जानकारी अंग्रेजों को दी।[20] उसके बाद अंग्रेज सरकार व उसके जासूस राणा रतनसिंह पीछे लग गये। राणा रतनसिंह व उसका साथी भगूजी सोढ़ा फरारी के दौरान किस-किस के पास रहें, उन्हें किस-किसने आश्रय दिया इसकी तत्कालीन स्त्रोतों से प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती है, फिर भी वार्ताकारों के अनुसार लगभग 6 महीनें तक वे धाट व सोढाण क्षेत्र के अलग-अलग स्थानों पर छिप कर रहें। नाथूसिंह सोढ़ा के अनुसार इस दौराणा राणा रतनसिंह ने जैसलमेर रियासत से शरण मांगी। परन्तु उस समय कोई भी शासक या जागीरदार अंग्रेजों से बेजह झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते थें, इसलिए किसी ने भी उनको शरण देने की हिम्मत नहीं दिखाई। इस दौरान राणा रतनसिंह व भगूजी कोटड़ा, सिवाना, जालौर, माउण्ट आबू तथा अरावली के क्षेत्र में छिपकर रहें।[21]

उधर अमरकोट की जनता ने राणा रतनसिंह द्वारा आततायी व अत्याचारी मुहम्मद अलीशाह सैयद से निजात दिलाने के कारण उसकी बहादुरी व साहस की कहानियों से

जोड़कर इसे लोकप्रिय बना दिया। राणा रतनसिंह की शूरवीरता, स्वातन्त्रय-प्रेम और बलिदान की गाथा के प्रेरणादायी लोकगीत आज भी सिन्ध, धाट, सोढ़ाण और राजस्थान क्षेत्र में गाये जाते है। एक ऐसा ही गीत ''रतन राणों'' इन क्षेत्रों में प्रचलित है।

म्हारा रतन राणा, एकर तो अमराणें घुड़लों पाछो घेर
अमरराणें में बोल सूवा मोर, हो जी हो
म्हारा रतन राणा, अमराणें में बोले सूवा मोर
बागां में बोले काळी कोयलड़ी रे
म्हारा सायर सोढा एकर सूं अमराणें घुड़लो घेर[22]

आखिरकार अंग्रेजों ने अपनी जासूसी और सैन्य शक्ति के बल पर राणा रतनसिंह व उसके साथी भगूजी सोढा को बधीबावळी क्षेत्र (यह स्थान बाड़मेर में है जहां पर अमरकोट जैसलमेर और जोधपुर तीनों रियासतों की सीमा मिलती है) से पकड़ लिया।[23] ''छेवट अंग्रेजां दाम नीति सूं काम लियौ। अेक देसद्रोही अर विस्वासघाती नैं धन रौ लालच देय नैं रतनसिंह नैं पकड़ावण रौ कावतरौ घड़ीज्यौ। अंग्रेजां री दाम नीति काम आयगी अर राणौ पकडीजग्यौ।''[24]

अंग्रजों ने राणा रतनसिंह व उनके साथी भगूजी सोढ़ा पर ब्रिटिश हुकूमत व महारानी विक्टोरियो के खिलाफ राजद्रोह करने का मुकदमा चलाया और सुनवाई के बाद रतन राणा को मृत्युदण्ड की सजा और भगूजी सोढ़ा को काले पानी की सजा सुनाई। राणा के खिलाफ न्यायालय में मुकदमा चला। शाहंशाह के विरूद्ध विद्रोह खड़ा करने का अभियोग उस पर लगाया गया और उसे फांसी पर चढ़ा दिया गया।[25] धाट व सोढ़ांण की जनता ने इसका पुरजोर विरोध किया तथा फैसले के खिलाफ बोम्बे प्रेसीडेन्सी के गवर्नर इन काउन्सिल के समक्ष अपील की गई, अपील स्वीकृत भी हो गई किन्तु ब्राह्मणों, कल्होड़ो और तत्कालीन राणा ने षडयंत्र रचकर आदेश जारी किये जाने में विलम्ब करवा दिया और आदेश जनता के समक्ष जारी करने के कतिपय क्षणों बाद ही राणा रतनसिंह को 1866 ई. में सूली पर लटका दिया गया।[26]

राणा रतनसिंह को फांसी की सजा देने के लिए अमरकोट किले के बीचो-बीच देहरी पर लाया गया और जब राणा ने उनकी अंतिम इच्छा के बारे में पूछा गया तो राणा ने एक ही इच्छा बताई और कहा कि ''मेरे हाथ खोल दो'', हाथ खोलने पर राणा ने अपने हाथ चेहरे तक पर उठाये और मूछों के दोनों किनारों (छोर) को मरोड़ते हुए कहा कि ''अब वह तैयार है।'' मूछों को मरोड़ना या ठीक करना धाट क्षेत्र के लोगों में बहादुरी और विजय का प्रतीक माना जाता है। यह दर्शाता है कि वे निडर व साहसी थे तथा यह उनके सर्वोच्च आत्म विश्वास का प्रतीक था। मृत्यु होने तक उसे फंदे से लटकाया गया। उसका पार्थिव शरीर पूरे अमरकोट में देखा जा सकता था जैसा कि अंग्रेज लोग चाहते थे

कि लोगों के दिलों में भय का एक उदाहरण बैठ जाये। राणा की घोड़ी देवनीक जिसने किले के प्रवेश द्वार पर इस शुरूआती प्रतिक्रिया को देख लिया था वह धड़ाम से गिर गई और उसकी मृत्यु हो गई।[27] रतनसिंह की घोड़ी के पोड़ के निशान अमरकोट किले के मुख्य दरवाजे की दीवार पर आज भी दिखाई देते है।[28] कहा जाता है कि राणा रतनसिंह की फांसी के स्थगन की सूचना एक ब्राह्मण जाति के डाकिये को मिल गई थी जिने मीर अलीशाह सैयद के परिवार में दबाव व लालच में आकर सूचना समय पर नहीं दी। जब राणा रतनसिंह को अब फांसी के फंदे पर ले जाया चुका था तो उसी वक्त यह बात बताई गई परन्तु राणा रतनसिंह ने अब फांसी के फंदे से उतरने से मना कर दिया था।[29] उसके बाद ब्राह्मणों का परिवार अमरकोट में पनप नहीं पाया और आज भी अमरकोट में ब्राह्मण नहीं रहते है वर्तमान राणा परिवार थळ के चैलार गांव से ब्राह्मण को बुलाकर अपनी धार्मिक क्रियाकलाप सम्पन्न करवाते है।[30]

नरपत दान आसिया वैतालिक के राणा रतनसिंह के बारे में इस प्रकार दोहे का प्रयोग किया गया है।

रतन राण सोढांण, सूली चढ़ियौ देस हित।
गावै कीरत गान, कण कण मरूथल काळिया।।

संग्राम सिंह सोढ़ा सचियापुरा ने अपनी रचना 'सो धरती सोढ़ांण' में राणा रतनसिंह के बारे में इस प्रकार दोहे का प्रयोग किया है।

आजादी हित देस री, रतन हुवो कुरबाण।
जोत जागई जोर री, सो धरती सोढांण।।[31]

राजस्थान के प्रसिद्ध कवि और लेखक डॉ. शक्तिदान कविया ने राणा रतनसिंह पर श्री रतन रांणै रा छंद नामक रचना लिखी है जिसमें इस प्रकार वर्णन मिलता है।

गूंजै जस गीतां गहर, अंजस सुत आणंद।
रंग सोढ़ै रतनेस रा, चंवू सारसी छंद।।[32]

अंग्रेजों के भय से इस पूरे प्रकरण में राणा रतनसिंह के चाचाओं ने भी रतनसिंह का साथ नहीं दिया। रतनसिंह के तीन पुत्र थे मोहड़सिंह, रणजीतसिंह एवं जीवराजसिंह जिनमें मोहड़सिंह व रणजीतसिंह की नि:संतान ही मृत्यु हुई। तीसरे पुत्र जीवराजसिंह के दो पुत्र हुए भैरसिंह व सोनसिंह जिन्होंने धाट क्षेत्र पर अपना वर्चस्व बनाये रखा तथा उन्होंने पूर्णतया स्वप्रयासों से 2000 एकड़ सिचित कृषि भूमि बिना किसी आवंटन व अनुदान के प्राप्त की और वडेली गांव की स्थापना की।[33]

जीवराजसिंह धाट के बैंच मजिस्ट्रेट भी रहे, उनके ज्येष्ठ पुत्र ठा. भैरसिंह जी गवर्नर के दरबारी और लोकल बोर्ड ऑफ अमरकोट के अधिष्ठाता रहें। ठाकुर भैरसिंह जी की छोटी पुत्री का विवाह जैसलमेर के महारावल गिरधरसिंह जी से हुआ था।

भैरसिंह के पुत्र खुमाणसिंह के पृथ्वीसिंह जस्टिस ऑफ पीस भी रहें।[34] बाद में यह परिवार राजनैतिक व सामाजिक उलझनों के कारण 1971 में भारत आ गए जो अभी जोधपुर में रहते है।[35] भगूजी सोढ़ा को काले पानी की सजा देकर अंडमान निकोबार निर्वासित किया गया वहीं उनकी मृत्यु हुई। इसके बाद उनके बारे में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। भगूजी सोढ़ा के पुत्र थानसिंह ने गांव थाने का तला (पाकिस्तान) बसाया।[36] भगूजी के वंशज भी जैसलमेर आ गये और मूलाना देवीकोट में बस गये। जहां भारत सरकार द्वारा उन्हें 1971 के युद्ध शरणार्थी के रूप में भूमि आवंटित हुई।[37]

इस प्रकार धाट क्षेत्र भी विदेशी सत्ता के विरूद्ध आजादी की लड़ाई के लिए आगे आया और यहां के वाशिंदों ने इसमें बढ़-चढ़कर भाग लिया। राणा रतनसिंह की अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ाई और उनकी शहादत अमर है तथा धाट क्षेत्र की आजादी की लड़ाई का अहम हिस्सा है।[38]

सन्दर्भ

1. *राठौड़ रायचन्द, रेगिस्तान जी तवारीख, वॉल्यूम 1 और 2, सिन्धी अदबी बोर्ड, सिन्ध (पाकिस्तान) 1956 पृ. 4*
2. *चांडक, पंकज, उमरकोट-जोधपुर संबंध, प्रोसंडिग्स ऑफ राजस्थान इतिहास कांग्रेस, जोधपुर वॉल्यूम, 29 पृ. 233*
3. *चूण्डावत, रानी लक्ष्मीकुमारी, सांस्कृतिक राजस्थान, राजस्थानी साहित्य संस्थान जोधपुर, 2007, पृ. 50*
4. *कविया, शक्तिदान, धरा सुरंगी धाट, ठा. जैतमालसिंह सोढ़ा, धाट धरा, जोधपुर 2009, पृ. 17*
5. *कविया, शक्तिदान, धरा सुरंगी धाट, ठा. जैतमालसिंह सोढ़ा, धाट धरा, जोधपुर 2009, पृ. 18*
6. *सचियापुरा, संग्रामसिंह संघ शक्ति, मासिक पत्रिका अगस्त, 1998 पृ. 257*
7. *कविया, शक्तिदान, धरा सुरंगी धाट, ठा. जैतमालसिंह सोढ़ा, धाट धरा, जोधपुर 2009, पृ. 19*
8. *कविया, शक्तिदान, धरा सुरंगी धाट, ठा. जैतमालसिंह सोढ़ा, धाट धरा, जोधपुर 2009, पृ. 28*
9. *सोलंकी, तेजसिंह, अमरकोट सिन्ध जो इतिहास, (अमरकोट तवारीख), सिन्ध, 1935, पृ. 7*
10. *ओझा गौरीशंकर हीराचन्द जोधपुर राज्य का इतिहास, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, जोधपुर, 1936 पृ. 166*
11. *वहीं, पृ. 167*
12. *चांडक, पंकज, उमरकोट-जोधपुर संबंध, प्रोसंडिग्स ऑफ राजस्थान इतिहास कांग्रेस, जोधपुर वॉल्यूम 29, पृ. 235*

13. *वही पृ. 236*
14. *कविया, शक्तिदान, धरा सुरंगी धाट, ठा. जैतमालसिंह सोढ़ा, धाट धरा, जोधपुर 2009, पृ. 13*
15. *साक्षात्कार, सोढ़ा दिलीपसिंह गांव मऊ, तालुका अमरकोट, जिला थारपारकर, पाकिस्तान, हाल निवासी, रेवन्तसिंह की ढाणी, जैसलमेर।*
16. *कविया, शक्तिदान, धरा सुरंगी धाट, ठा. जैतमालसिंह सोढ़ा, धाट धरा, जोधपुर 2009, पृ. 13*
17. *गढ़वीर, डॉ. मेघाराम, अम्बा की बातें, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 2013, पृ. 46*
18. *कविया, शक्तिदान, धरा सुरंगी धाट, ठा. जैतमालसिंह सोढ़ा, धाट धरा, जोधपुर 2009, पृ. 13*
19. *साक्षात्कार, नाथुसिंह सोढ़ा (राणा रतनसिंह के सहयोगी रहे भगुजी संग्रासी के वंशज, गांव थाने का तला, तालुका छाछरों, जिला थारपारकर, पाकिस्तान) हाल निवासी, मूलाना जैसलमेर।*
20. *साक्षात्कार, पीरदानसिंह परमार गांव हरयार-गोपासर (तालुका छाछरों, जिला थारपारकर, पाकिस्तान) हाल निवासी गफुर भट्टा, जैसलमेर।*
21. *साक्षात्कार, नाथुसिंह सोढ़ा (राणा रतनसिंह के सहयोगी रहे भगुजी संग्रासी के वंशज, गांव थाने का तला, तालुका छाछरों, जिला थारपारकर, पाकिस्तान) हाल निवासी, मूलाना जैसलमेर।*
22. *सोलंकी, तेजसिंह, अमरकोट सिन्ध जो इतिहास, (अमरकोट तवारीख), सिन्ध, 1935, पृ. 54*
23. *साक्षात्कार, परमार, नींबराजसिंह, गांव सारंगियार (तालुका छाछरों, जिला थरपारकर, पाकिस्तान) हाल निवासी बब्बर मगरा जैसलमेर।*
24. *राजपुरोहित, नृसिंह, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थान कवियों का योगदान, राजस्थान कांग्रेस शताब्दी समारोह समिति, 1988, पृ. 109।*
25. *अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी मासिक पत्रिका, राजपुत सोसायटी, जोधपुर, प्रधान संपादक, उपेन्द्रसिंह राठौड़ रातानाड़ा, जोधपुर 2013, पृ. 33*
26. *कविया, शक्तिदान, धरा सुरंगी धाट, ठा. जैतमालसिंह सोढ़ा, धाट धरा, जोधपुर 2009, पृ. 13*
27. *Hasan Shazia, Umarkot: Lost in History News Paper Dawn.com.Retrieved, 19.04.2015*
28. *गढ़वीर डॉ. मेघाराम, अम्बा की बातें, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2013, पृ. 57*
29. *साक्षात्कार, नाथुसिंह सोढ़ा (राणा रतनसिंह के सहयोगी रहे भगुजी संग्रासी के वंशज, गांव थाने का तला, तालुको छाछरों, जिला थारपारकर, पाकिस्तान) हाल*

निवासी, मूलाना जैसलमेर।

30. *साक्षात्कार, चतुर्भुज सैन, चार्ता गांव जिंजियर (तालुका छाछरों, जिला थारपारकर, पाकिस्तान) हाल निवासी गफुर भट्टा जैसलमेर*
31. *सचियापुरा, संग्रामसिंह ''सो धरती सोढांण'' अप्रकाशित*
32. *कविया, शक्तिदान, धरा सुरंगी धाट, ठा. जैतमालसिंह सोढ़ा, धाट धरा, जोधपुर 2009, पृ. 15*
33. *वहीं, पृ. 15*
34. *डॉ. कुंवर महेन्द्रसिंह नगर, राड़धरा के जेतमलोत राठौड़ों का ऐतिहासिक व सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान ग्रन्थागारा, जोधपुर 2012, पृ. 88*
35. *कविया, शक्तिदान, धरा सुरंगी धाट, ठा. जैतमालसिंह सोढ़ा, धाट धरा, जोधपुर 2009, पृ. 18*
36. *साक्षात्कार, नाथुसिंह सोढ़ा (राणा रतनसिंह के सहयोगी रहे भगुजी संग्रासी के वंशज, गांव थाने का तला, तालुको छाछरों, जिला थारपारकर, पाकिस्तान) हाल निवासी, मूलाना जैसलमेर।*
37. *कविया, शक्तिदान, धरा सुरंगी धाट, ठा. जैतमालसिंह सोढ़ा, धाट धरा, जोधपुर 2009, पृ. 18*
38. *गढ़वीरसिंह डॉ. मेघाराम, अम्बा की बातें, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2013, पृ. 46-47*

हाड़ौती क्षेत्र में सामाजिक जागरण के अग्रदूत : पं. नयनूराम शर्मा

डॉ. अर्चना द्विवेदी

राजस्थान का हाड़ौती क्षेत्र मध्यकाल से अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पहचान रखता है। हाड़ा राजपूतों द्वारा शासित क्षेत्र हाड़ौती क्षेत्र कहलाया। वर्तमान में इस क्षेत्र में मुख्यत: कोटा, झालावाड़, बाराँ एवं बून्दी जिले शामिल किए जा सकते हैं। इस क्षेत्र में स्वतन्त्रता संघर्ष सामन्तवादी सामाजिक व्यवस्था के प्रतिरोध के रूप में मुखरित होकर सामाजिक जागरण का रूप लेता गया।

19-20वीं शताब्दी के हाड़ौती क्षेत्र का सामाजिक जागरण समाजीकरण की वह विशिष्ट प्रक्रिया थी जिसके माध्यम से मानवतावाद पर आधारित जिन नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना हुई, उनके माध्यम से राजनैतिक जनजागरण की बुनियाद निर्मित हुई। इस विशिष्ट प्रक्रिया के प्रादुर्भाव के सूत्र यूरोप के इतिहास के उस चिन्तन और साहित्य में मिलते हैं जिसमें नवजागरण को एक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक अवधारणा के रूप में परिभाषित किया गया है। यह सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण गुणात्मक रूप से मध्यकाल से भिन्न है। इस जागरण के द्वारा मानवमात्र की समानता, भ्रातृत्व की भावना ने समाज में नये मानदण्ड स्थापित करने का प्रयास किया। जब आधुनिकीकृत समाज सामन्तवादी समाज के मानदण्डों एवं मूल्यों को ध्वस्त कर रहा था, तथापि उनके सामाजिक मूल्यों एवं व्यवस्थाओं को कुरीतियों के रूप में परिभाषित कर उनके उन्मूलन की प्रक्रिया को, जिस उमंग से पूरा कर रहा था, तब उस उमंग को सामाजिक जागरण का नाम दिया गया। यह मूलत: सामन्तवादी व्यवस्था विरोधी जागरण था।[1] इसकी तीन प्रमुख विशेषताओं की ओर विद्वानों ने संकेत किया है : इसका धर्मनिरपेक्ष स्वरूप, मानवतावादी विश्वदृष्टि तथा प्राचीन संस्ति पर इसकी निर्भरता। सामाजिक जागरण में समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं बुराइयों के खिलाफ हम न केवल आवाज उठाते हैं, अपितु सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जागृत व्यक्ति अन्तिम सांस तक लड़ता है, जबकि सांस्कृतिक जागरण में हमारी चेतना स्पन्दित होती है, और एक चेतन मन के साथ जीवन की समस्त गतिविधियों को हम देखते हैं। हाड़ौती क्षेत्र के सामाजिक जागरण में अनेक सुधारकों में पं. नयनूराम शर्मा सामाजिक जागरण के अग्रदूत हैं। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक सामाजिक जागरण की दिशा में कार्य किया। उनके सहयोगी श्री भैरव

लाल कालाबादल ने अपने लेखन[2] में पं. नयनूराम शर्मा को अनेकश: याद किया है। प्रस्तुत शोधपत्र में हाड़ौती क्षेत्र के स्वतन्त्रता सेनानी, साहित्यकार, पत्रकार पं. नयनूराम शर्मा के द्वारा अपने समय तथा समाज में किये गये सामाजिक जागरण के योगदान को रेखांकित करते हुए उसका मूल्यांकन किया जा रहा है।

आपका जन्म सन् 1886 में मन्दसौर मध्यप्रदेश के भैन्सोदा गांव में हुआ था।[3] छ: वर्ष की आयु में आपकी माता का देहान्त हो गया था और आपकी विधवा मौसी ने ही आपका लालन-पालन किया। आपके पिता ने आपको बंगाली बाबू लक्ष्मीनाथ चटर्जी के पास पढ़ने के लिए भेजा और आगे की पढ़ाई के लिए आपको झालावाड़ भेजा गया। यहां से आपने प्रथम श्रेणी में मिडिल पास किया। आप पढ़ने में होशियार थे, जिस कारण आपके प्रधानाध्यापक श्री गोवर्धनलाल जी ने आपको कोटा आगे की पढ़ाई के लिए भेजा। शिक्षा विभाग के तत्कालीन निर्देशक लाला दयाकृष्ण जी ने आपकी आर्थिक स्थिति एवं कुशाग्र बुद्धि को देखते हुए आपको नोबल्स स्कूल के छात्रावास का अधीक्षक बना दिया। अपने पद का दायित्व निभाते हुए आपने यहां से दसवीं कक्षा पास की। कोटा रियासत के तत्कालीन आई.जी. पुलिस ओंकार सिंह जी ने पहले आपको स्टोर कीपर बनाया और बाद में पुलिस इंस्पेक्टर की ट्रेनिंग करने फिल्लौर (पंजाब) भेजा। फिल्लौर से ट्रेनिंग करके आने के बाद आप कोटा, कैथून और गिरधरपुरा के थानेदार रहे। जब आप कैथून के थानेदार के पद पर काम कर रहे थे, तब कोटा दरबार में डाढ़देवी के जंगलों में शिकार खेलने के लिए हांका करने के लिए भीड़ जुटाने का काम आपको सौंपा। आप दो दिन तक तो यह काम करते रहे, पर दरबार शिकार करने वहां नहीं आये, तीसरे दिन उन्हें फिर यह व्यवस्था करने के लिए कहा गया तो आपने हांका करने के लिए शिकार में आने वाले हाथियों के महावतों को ही पकड़ लिया, जब आपसे हाथियों के वहां न पहुंचने का कारण पूछा गया तब आपने उत्तर दिया कि यहां तो हर आदमी हांके से बचने के लिए अपने आपको महावत बताता है। आपका यह उत्तर आपकी वाक्चातुर्य और निर्भीकता का परिचायक है। साथ ही साथ यह वाक्या इस बात का भी परिचायक है कि आप बेगार प्रथा के विरोधी थे। इस घटना से क्रुद्ध होकर आपका तबादला गिरधरपुरा के थाने में कर दिया गया। यह वह समय था जब देश में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष चल रहा था और राजस्थान में भी क्रांति की चिंगारी सुलग रही थी। इसी समय आपका क्रांतिकारी साधु सीतारामदास और किसान आंदोलनकर्ता विजयसिंह पथिकजी से आपका संपर्क हुआ। इस संपर्क के प्रभाव स्वरूप आपने पूरी तरह से अपने को देश के प्रति समर्पित करते हुए अपनी पुलिस की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

खैराबाद तहसील में अपनी तारीख पेशी पर से लौटते समय 14 अक्टूबर, 1941 ई. की रात को आपकी हत्या कर दी गई। आपके गांव निमाणा में बनी आपकी

समाधि पर प्रतिवर्ष 14 अक्टूबर को बड़ी संख्या में लोग अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं। आपके सहयोगी श्री भैरवलाल 'कालाबादल' एवं अन्य सहयोगियों के अथक प्रयत्नों से बाद में कोटा शहर में भी आपकी प्रतिमा स्थापित की गई। जहां आज भी आपकी बलिदान तिथि पर पुष्पांजलि अर्पित की जाती है।[4]

पं. शर्मा को जीवन की गहरी समझ थी। वे यह भली-भांति जानते थे कि शिक्षा और स्वास्थ्य वे मूलाधार हैं जिनके माध्यम से उदात्त जीवन मूल्यों की स्थापना की जा सकती है। अत: उन्होंने अपने सामाजिक जागरण में शिक्षा एवं स्वास्थ्य को प्रमुखता दी। जिसकी संक्षिप्त समीक्षा इस प्रकार है-

शिक्षा के प्रति जागरण- नयनूराम जी ने साढ़े तीन साल कोठरी की कैद से मुक्त होने के बाद अपने आप को रचनात्मक कार्यों के साथ-साथ सामाजिक जागरण के विभिन्न कार्यों में लगा लिया। उन्होंने लोगों में शिक्षा के प्रति जागृति फैलाने के लिए एक शिक्षा मंडल की स्थापना की और रामगंजमंडी क्षेत्र में 1927 से 1930 के बीच लगभग 42 स्कूल खोले। इनमें शिक्षित राजनैतिक कार्यकर्ताओं को शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया। शिक्षकों को वेतन 10-12 रुपये मासिक दिया जाता था। बाद में इन स्कूलों को कोटा राज सरकार ने अपनी मान्यता दे दी थी और इन्हीं के शाला निरीक्षक इन स्कूलों का कड़ाई से निरीक्षण किया करते थे। गांव में पढ़ने के इच्छुक लोगों के लिए आपने एक चल-पुस्तकालय अपने पिताजी नरसिंह जी के नाम पर खोला जो गांव-गांव जाकर पढ़ने के इच्छुक लोगों को पुस्तकें देता और एक सप्ताह के बाद उन पुस्तकों को लेकर उनके स्थान पर दूसरी पुस्तकें दे देता था। इस प्रकार, आपने उस समय की जनता को शिक्षा के प्रति एक अनोखा जागरण किया जिसने हाड़ौती क्षेत्र के ग्रामीण समाज में पढ़ाई-लिखाई के प्रति जनता को आकर्षित करने का काम किया।

स्वास्थ्य के प्रति जागरण- पं. शर्मा ने शैक्षिक जागरण के साथ-साथ गांवों में स्वास्थ्य संबंधी जागृति एवं सेवा-उपचार के लिए ग्राम सुधार का कार्यक्रम आंदोलन के स्तर पर चलाया। गांव में आयुर्वेदिक औषधालयों की स्थापना हाड़ौती सेवा संघ के माध्यम से की गयी। गांव में साफ-सफाई पर भी विशेष ध्यान दिया गया। कोटा दरबार ने भी इन औषधालयों से उपचार दिलाने के लिए अपने प्रशासन को आदेश दे रखा था। उस समय फैलने वाली संक्रामक बीमारियों में हैजा प्रमुख थी जिसकी रोकथाम के प्रयासों में पं. नयनूराम शर्मा की भूमिका प्रमुख थी। अन्य अनेक बीमारियों की रोकथाम एवं उनके बारे में जनजागरण के कार्य के प्रति इनकी भूमिका आज भी स्मरणीय है। आपके द्वारा स्थापित औषधालयों ने उस समय के ग्रामीण समाज के सामुदायिक स्वास्थ्य रक्षण में अपनी महती भूमिका निभाई।

किसानों में जागरण- बिजौलिया और बेंगू के किसान आंदोलन से प्रेरित होकर

बूंदी के किसानों ने भी आंदोलन प्रारंभ किया। बूंदी में भी किसानों को अनेक प्रकार की लाग देनी पड़ती थी और उनसे बेगार भी ली जाती थी। इसके अतिरिक्त समूचे राज्य में सार्वजनिक सभाओं, राष्ट्रीय गान और नारों पर पूर्णत: प्रतिबंध था। अत: 15 जून, 1922 को बूंदी के किसानों ने सत्याग्रह आरंभ किया, जिसका नेतृत्व पं. नयनूराम शर्मा के अधीन था।[5] सामन्ती अत्याचारों से जूझते हुए किसानों के लिए 23 जून, 1922 को डाबी के तालाब पर एक विशाल आमसभा का आयोजन किया गया। इस सभा में उनके स्वयंसेवी अंगरक्षक नानक भील ने झंडागीत गाया जिससे क्रुद्ध होकर पुलिस अधीक्षक इकराम हुसैन ने उसे गोली मार दी और नानक भील मंच पर ही शहीद हो गये। पुलिस के आतंक से डर कर उनके साथी नानक की लाष को लेकर जंगल में इधर-उधर फिरते रहे, बाद में देवगढ़ के नाले पर उनका अंतिम संस्कार किया गया। जिसमें लोग इतने नारियल लेकर आये कि उन नारियलों से ही दाह संस्कार हो गया। डाबी की घटना के पश्चात् भी किसानों ने साहस नहीं छोड़ा था।

सन् 1920 ई. में विजयसिंह पथिक ने वर्धा में जमनालाल बजाज, रामनारायण चौधरी, अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह बारहठ और हरिभाई किंकर के सहयोग से राजस्थान सेवासंघ की स्थापना की। कालान्तर में नयनूरामजी इसके सदस्य और बाद में राजस्थान सेवासंघ की एक शाखा कोटा में खोली गई जिसके आप अध्यक्ष बने। आपने सेवासंघ का दायित्व निभाते हुए हाड़ौती क्षेत्र में क्रांति का शंखनाद फूंका। कोटा में राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकड़ने पर पंडित नयनूराम शर्मा और उनके साथियों को तत्कालीन सरकार ने रियासत से बाहर कर दिया। रियासत से निष्कासन के बाद नयनूराम जी को पुलिस के पकड़ने के डर से इधर-उधर रहना पड़ा। डाबी में आयोजित विशाल आमसभा के बाद से ही पुलिस आपको पकड़ना चाहती थी। इसके लिए पुलिस ने एक षड्यंत्र रचा। बूंदी जिले के निमाणा गांव के एक ब्राह्मण को नयनूराम जी को अपने घर भोजन पर आमंत्रित करने के लिए तैयार किया गया पर नयनूराम जी ब्राह्मण के निमंत्रण को टालते रहे। ब्राह्मण के बार-बार आग्रह करने पर अंतत: उन्होंने उसके आग्रह को स्वीकार कर लिया और उसके घर भोजन के लिए गये। नयनूराम जी जंगली जानवरों एवं अपनी जान की सुरक्षा के लिए अपने साथ एक दुनाली बंदूक रखते थे। खाना खाते समय आपने बंदूक को खूंटी पर टांग दिया। जैसे ही आप भोजन करने बैठे, पहले से ही घर में छिपी पुलिस ने आपको पकड़ लिया और वहां से ले जाकर बूंदी की शहर कोतवाली में रखा, पर वहां लोगों की भारी भीड़ इकट्ठी होते देख उन्हें बून्दी के तारागढ़ दुर्ग की एक छोटी सी कोठरी में बन्द कर दिया, और उस कोठरी की सीढ़ियां पुलिस ने तोड़ दी ताकि आप भाग न सकें और कोई आपको छुड़ाने के लिए कोठरी तक पहुंच न सके। दिसंबर 1922 में आपको इस कोठरी में रखा गया था। तब नवीन राजस्थान ने पंडितजी के पिताश्री का

बधाई का वह पत्र प्रकाशित किया, जिसे उन्होंने अपने पुत्र को भेजा था।[6] यह पत्र बूंदी प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार, क्रूरता और दमन की कहानी को उद्घाटित करने वाला था। नवीन राजस्थान ने इसे अपने 3 दिसम्बर, 1922 के अंक में निम्न प्रकार इसे प्रकाशित किया।

''पंडित नयनूराम को बधाई!

(पिता की ओर से पुत्र को)

''प्रिय पुत्र नयनूराम, आशीर्वाद!

मुझे आज यह जानकर अत्यंत हर्ष हुआ है कि तुम राजस्थान की निस्वार्थ भाव से सच्ची सेवा करते हुए बूंदी राज्य के बड़े ही अन्यायी नरपिशाच के द्वारा पकड़े गये हो और उस कूकर शाही के पाशविक अत्याचारों को सहन करने के लिए अहिंसात्मक सत्य का दृढ़ कवच पहनकर हंसते हुए सब कष्टों को झेल रहे हो। एतदर्थ तुमको तो बधाई है ही, किंतु देश की भलाई में बलिदान होने वाले तुम्हारे जैसे सुपुत्र के उत्पन्न होने से मैं भी अपना और निज पूर्वजों का सौभाग्य समझता हूं। जाओ बेटा, कृष्ण मंदिर में जाओ और आत्मिक बल बढ़ाओ। भारतमाता को स्वतंत्र बनाओ और दिखाओ हाड़ा के स्वार्थी गुलामों को सच्चे ब्राह्मणों की करामात- श्रीरंग की सच्ची भक्ति अन्त में पापों का नाश करेगी और सत्य विजयी होगा। तुम्हारा मंगलकांक्षी पितृ

नरसिंह शर्मा''

10 मई 1923 को आपको चार साल की सजा सुनाई गयी। इस दौरान आप पहले से ही जेल में थे।[7] उनके साथ सेवा संघ के एक अन्य कार्यकर्ता नारायण सिंह भी जेल में थे। दोनों को समान सजा सुनाई गई थी तथा सजा समाप्त होने के पश्चात् इन दोनों के बूंदी राज्य में प्रवेश पर पाबंदी लगा दी गई थी। बिजौलिया के सेवा संघ के कार्यकर्ता भंवरलाल सुनार (प्रज्ञा चक्षु) को भी बरड़ के किसान आंदोलन के सिलसिले में दो वर्ष की कैद की सजा दी गई थी।[8] लगभग साढ़े तीन साल तक उस कोठरी में कैद रहने के बाद, विजयसिंह पथिक ने 'ट्रेजडी इन बूंदी' (बूंदी में दुखान्त) लिखकर सभी को इस घटना की ओर आकर्षित किया[9] और साथ ही में इसकी एक मुद्रित प्रति भारत में आये एक ब्रिटिश सांसद को दी। उस सांसद ने उस प्रति को ब्रिटिश संसद में रखा, तब भारत के तत्कालीन वायसराय से उस पर टिप्पणी मांगी और आपको कोठरी से रिहा कर दिया गया। 'बूंदी की दंडाज्ञा' पंडित नयनूराम जी आदि को चार-चार वर्ष की कड़ी सजा दी गयी है। वह किसी भारी अपराध पर नहीं, प्रत्युत इसलिए कि पंडित जी आदि ने राज की आज्ञा के विरुद्ध सभाएं कीं। भारतीय कानून की नियम से आज्ञा भंग का अधिक से अधिक दंड 6 मास की कारावास हो सकता है, किन्तु बूंदी में तो कोई कानून है ही नहीं.

..... ।[10] 'बूंदी रियासत का घोर पतन' नामक लेख से भी पं. नयनूराम जी के साथ दुर्व्यवहार की भर्त्सना तरुण राजस्थान में की गई।[11] अक्टूबर 1923 में भंवरलाल सुनार तथा 24 सितंबर 1924 को नयनूराम शर्मा और नारायण सिंह जेल से रिहा हो गये थे।[12] समाचार पत्र में पंडितजी की रिहाई के बाद अनेक लेख प्रकाशित किये गये-'निमाना में पंडित नयनू का स्वागत', 'तपस्वियों का स्वागत', 'मातृभक्तों की रिहाई'।[13]

राष्ट्रीय जागरण- आपका राष्ट्रप्रेम, आपको सर्वसमाज में राष्ट्रीय एवं सामाजिक जागरण का काम भी चलाने के लिए प्रेरित करता रहा। राष्ट्रीय आंदोलन को अधिक गति देने के लिए आपने श्री प्रभुलाल विजय के साथ मिलकर सन् 1930 ई. में मित्र मंडल की स्थापना की और इसे आगे चलकर हाड़ौती प्रजामंडल में परिवर्तित कर दिया।[14] सन् 1937 में जब कोटा में नगर कांग्रेस कमेटी की स्थापना हुई तब उसका अध्यक्ष आपको बनाया गया। उस कमेटी की कार्यकारिणी में अनेक स्वतंत्रता सेनानी थे। तनसुखलाल मित्तल एवं नाथूलाल जैन कमेटी के मंत्री थे। मोतीलाल जैन आपसे प्रभावित होकर इस कमेटी में शामिल हुए। कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन (1938) में रियासतों की देशी राज्य लोक परिषदों को समर्थन देने का प्रस्ताव पारित किया गया। इससे कोटा राज्य प्रजा मण्डल में एक नयी शक्ति और नये जीवन का संचार हुआ। कोटा राज्य प्रजामंडल का वार्षिक अधिवेशन सन् 1938 ई. में बारां में एवं मई 1939 में चौथा अधिवेशन मांगरोल में आपके सभापतित्व में आयोजित किया गया।[15] इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष मोतीलाल जैन जी थे। अधिवेशन में उत्तरदायी शासन की मांग की गई और राजप्रशासन की आलोचना की गई। आपने कोटा-बूंदी प्रजामंडल की स्थापना अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आंदोलन चलाने के लिए की। इस सम्मेलन में छः साल तक के बच्चों की अनिवार्य शिक्षा पर जोर दिया गया। प्रजामंडल की रामगंजमंडी शाखा ने अपना अधिवेशन 17-18 अप्रैल, 1940 को रखा। इसमें सीमाशुल्क और सहकारी समिति की आलोचना करते हुए कुछ प्रस्ताव पारित किये गये।[16] इस सम्मेलन में ग्रामीणों की उपस्थिति कम ही रही।[17]

आपने मालवा एवं राजपूताना को संगठित कर स्वतंत्रता के लिए एक साथ काम करने के लिए 'मालवा-राजपूताना संगठन' बनाया। आपका सबसे महत्वपूर्ण रचनात्मक सामाजिक कार्य झालावाड़ में हरिजनों को मन्दिर प्रवेश कराना था। हरिजनों का झालरापाटन के द्वारकाधीश मन्दिर में प्रवेश झालावाड़ राजराणा राजेन्द्रसिंह जी एवं श्रीमति रामेश्वरी नेहरू जी के आतिथ्य में संपन्न हुआ। रामेश्वरी नेहरू आपके इस कार्य से इतनी अधिक प्रसन्न हुई कि उन्होंने वहीं पर आपको राखी बांध दी और आपने भी भाई का फर्ज निभाते हुए बाजार से साड़ी लाकर भेंट स्वरूप आपको दी। इस घटना का विवरण अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने आपकी प्रशंसा करते हुए किया।[18]

पत्रकारिता के माध्यम से जागरण- राजस्थान सेवा संघ की स्थापना के पश्चात् ही सन् 1922 में 'नवीन राजस्थान' साप्ताहिक का प्रकाशन अजमेर से प्रारंभ हुआ, जिसके संचालक विजयसिंह पथिक जी थे और आप जैसे विशिष्ट राजनैतिक कार्यकर्ता इस पत्र के संवाददाता थे।[19] आपने अपने अनेक लेखों द्वारा उत्तरदायी सरकार, सामन्तशाही और नौकरशाही की भर्त्सना की। आपके अनेक लेख उस समय की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में छपते थे, जो राष्ट्रीय एवं सामाजिक जागरण से ओतप्रोत रहते थे। आपने 'सुधारों की आवश्यकता' एवं 'बूंदी के नागरिकों को मेरा उत्तर' नामक अनेक लेखों के माध्यम से जनता को जागृत करने का कार्य एक पत्रकार के रूप में बखूबी किया।[20]

मोटा खादी का कुर्ता और घुटने तक धोती पहनने वाले पं. नयनूराम शर्मा ने समाज हित में अनेक रचनात्मक एवं सामाजिक कार्य भी निस्वार्थ भाव से किये। आपकी सरलता, संघर्षशीलता एवं त्याग की प्रशंसा महात्मा गांधी तक भी पहुंच गई थी। इस प्रकार सामंतवादी समाज की जकड़न एवं ब्रिटिश आक्रांताओं के उत्पीड़न से पं. नयनूराम शर्मा ने शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में बहुविध प्रकार से कार्य करते हुए सामाजिक जागरण की दिशा में बुनियादी कार्य किया, जिसके प्रभावस्वरूप सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक पूरी पीढ़ी तैयार हुई। राष्ट्रप्रेम की अलख जगाते हुए उन्होंने जिस सामाजिक जागरण का मूलाधार तैयार किया उस पर विजयसिंह पथिक, भैरूलाल कालाबादल, हीरालाल जैन, पं. अभिन्नहरि, मोतीलाल जैन, इन्द्रदत्त स्वाधीन, तनसुखलाल मित्तल, गौरीशंकर घड़ीसाज, मांगीलाल भव्य, नाथूलाल जैन जैसे अनेक कार्यकर्ताओं ने हाड़ौती क्षेत्र में सामाजिक जागरण का कार्य बखूबी किया।

संदर्भ

1. *प्रणव देव, हाड़ौती क्षेत्र के सामाजिक जागरण में 'कालाबादल' का योगदान, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस के 32वें अधिवेशन में वाचित शोध पत्र, पृ. 1*
2. *भैरूलाल कालाबादल (सं.) , किसानों की पुकार सन् 1941 ई., जे.के. जैन सं. स्वाधीनता के गीत, राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर, 1987 पृ. 73*
3. *डॉ. प्रेमचंद विजयवर्गीय का लेख, स्वतंत्रता संग्राम के ज्वलायमान नक्षत्र: पं. नयनूराम शर्मा, पृ.-8, हाड़ौती स्वातन्त्र्य स्वर्ण जयन्तिका,1997 ई., कोटा*
4. *राम नारायण मीणा एवं ओम नागर (सं.) , कालाबादल रे! अब तो बरसादे बलती आग, पृ.-66, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2017*
5. *डॉ. के. एस. सक्सेना, राजस्थान में राजनैतिक जन-जागरण, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, तृतीय संस्करण 1999*
6. *डॉ. मनोहर प्रभाकर, राजस्थान में हिन्दी पत्रकारिता, पृ. 77, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1981*
7. *तरुण राजस्थान, 22 जुलाई 1923, पृ. 1, रविवार, राजस्थान राज्य अभिलेखागार,*

बीकानेर – ''पंडित जी कहते हैं– चार वर्ष.....सजा कोई बात नहीं देश के लिए तो मरना.....हम इस दमन की अग्नि में तपकर कुंदन बनेंगे। यह..... योग्यता की प्रथम परीक्षा है। मैं परमात्मा से प्रार्थना.....मैं इस परीक्षा में उत्तीर्ण होउँ।''

8. *डॉ. बृजकिशोर शर्मा , राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आंदोलन, पृ. 156, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2001*
9. *तरुण राजस्थान 13 जनवरी 1924, राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर*
10. *तरुण राजस्थान, 29 जुलाई 1923, पृ. 5, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
11. *तरुण राजस्थान 24 अगस्त 1924, पृ.–7, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
12. *तरुण राजस्थान 19 अक्टूबर 1924, राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर*
13. *तरुण राजस्थान, 28 सितंबर–19 अक्टूबर 1924, राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर*
14. *गोपीनाथ शर्मा , आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ.–320, ग्रंथ भारती जयपुर 1994*
15. *कोटा राज्य कान्फिडेन्शियल फाइल न. 12/33 महकमा खास, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
16. *कोटा राज्य कॉन्फिडेन्शियल फाइल न. 12/33 महकमा खास, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
17. *डॉ. विनीता परिहार, राजस्थान में प्रजामंडल आंदोलन, पृ. 126, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, तृतीय संस्करण 2010*
18. *The Hindustan Times, 28 September 1933, Page-10 "Harijans friends need for opening temple to untouchables"- R.N. Choudhary*
19. *डॉ. विष्णु पंकज, भाषायी पत्रकारिता और जनसंचार (राजस्थान संदर्भ), पृ. 181, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर 1991*
20. *तरुण राजस्थान, 14 फरवरी 1926, 21 फरवरी 1926, 28 फरवरी 1926, राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर*

मेवाड़ पुरोधा : श्री भूरेलाल बया

डॉ. मनोज दाधीच

वीर वीरांगनाओं की भूमि, त्याग बलिदान की भूमि राजस्थान में सबसे पहले क्रान्ति का श्री गणेश करने वाली मेवाड़ की पावन भूमि के उदयपुर में श्री भूरेलाल बया का जन्म 22 अगस्त 1904 को एक प्रतिष्ठित ओसवाल परिवार में हुआ। श्री बयाजी के पूर्वज वर्तमान से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भूतपूर्व मारवाड़ राज्य की ओसा नगरी से निकल कर मंडोर जा बसे थे। इस परिवार के तेजाजी अपने पुत्र नारायणदास के साथ मंडोर से जोधपुर चले गये। जालोर अधिपति के निमंत्रण पर तेजाजी का परिवार जालोर जा बसा। कालान्तर में यह परिवार कुंभलगढ़ और चित्तौड़गढ़ होता हुआ 1725 में उदयपुर पहुंच गया। इस परिवार के एक पूर्वज ने महाराणा भीमसिंह द्वारा शिकार किये गये सुअर का सही–सही वजन बताया तभी उक्त परिवार को बया की उपाधि प्रदान की गई।[1]

बाल्यकाल और प्रारम्भिक शिक्षा

श्री बया के पिता बचपन में ही स्वर्ग सिधार गये। अत: बयाजी बाल्यकाल में ही अपनी माता के साथ अपने ननिहाल चले गये। उनका ननिहाल उदयपुर के प्रसिद्ध दीवान खानदान गिलून्डियों के यहाँ था। ननिहाल में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आप रतलाम चले गये। जहाँ जैन ट्रेनिंग कॉलेज में आपने मेट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। पारिवारिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अध्ययन छोड़कर मेवाड़ राज्य में दाण (कस्टम) विभाग में नौकरी कर ली। इसी समय उनकी माताजी का भी स्वर्गवास हो गया। कुछ समय बाद श्री बया जी के नाना सा मोड़ीलाल गिलुण्डियां की नियुक्ति जहाजपुर हाकिम पद पर हो गई। अत: बया नौकरी छोड़ जहाजपुर चले गये। वे अपने नाना के साथ कपासन, राशमी में भी रहें और बाद में बीमारी के कारण उदयपुर आ गये।[2]

सार्वजनिक जीवन की ओर कदम

सन् 1926 में श्री बयाजी अपने एक परिजन के साथ बम्बई चले गये और उनके आढ़त के व्यापार में कार्य करने लगे। सार्वजनिक कार्यों में प्रारम्भ से ही उनकी रूचि रही, साथ ही गाँधीजी के असहयोग कार्यक्रम के प्रति ये अपार श्रद्धा रखते थे। सन् 1928 में साइमन कमीशन भारत आया। इसी समय से बया जी साइमन कमीशन के विरूद्ध सभाओं में भाग लेने लगे। वे बम्बई प्रदेश कांग्रेस के सदस्य बन गये और खादी

पहनने लगे। महात्मा गांधी से प्रभावित होकर उन्होंने चरखा कामना प्रत्येक रविवार को खादी फेरी में सम्मिलित होना प्रारम्भ कर दिया। गांधी विचार, प्रगाढ़ निष्ठा और आस्था होने से आपने जीवन में कर्म और सेवा को सदा प्राथमिकता प्रदान की। 1925 में आजादी के संघर्ष से जुड़ने के पश्चात् आपने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।[3]

महात्मा गांधी का सानिध्य, सत्याग्रह और जेल :

श्री बया को महात्मा गांधी का सानिध्य सन् 1928 में बारदोली के किसान सत्याग्रह के अवसर पर साबरमती आश्रम में प्राप्त हुआ। सन् 1929 में श्री बया ने 'सन्देश' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। 12 मार्च, 1930 को महात्मा गांधी ने साबरमती आश्रम में 'दांडी यात्रा' कर नमक सत्याग्रह की शुरूआत की। उसी दिन श्री बया ने 18वीं बार 'वार कौन्सिल' के संचालक की हैसियत से स्वयं सेवकों के दल के साथ 'गेटवे ऑफ इण्डिया' पर नमक बनाकर सरकारी कानून को भंग किया। अत: श्री बया जी पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। वे 20 दिनों बाद अदालत द्वारा रिहा किये गये। बम्बई पुलिस ने उन्हें दो वर्ष के लिए बम्बई से निष्कासित कर उदयपुर पहुँचा दिया।[4]

उदयपुर निवास के समय मेवाड़ सरकार द्वारा लगाये करों के विरूद्ध जोरदार हड़ताल हुई। बयाजी ने बम्बई में स्वदेशी आन्दोलन को पुर्नगठित करने का प्रयत्न किया और पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट ने उन्हें एक वर्ष की सजा देकर यरवदा जेल भेज दिया। जहाँ उनके साथ साधारण कैदी की तरह सख्ती की गई। यही श्री बया जी की मुलाकात सेठ जमनालाल बजाज से हुई। 5 मई, 1933 को श्री बयाजी को एक बार पुन: महात्मा गांधी का सानिध्य प्राप्त हुआ।[5]

जेल से रिहा होने के पश्चात श्री बया उदयपुर आ गये। इसी वर्ष उन्होंने ब्यावर में रियासती कार्यकर्ता सम्मेलन में भाग लिया। गाँधीजी के आदेशानुसार श्री बया जी सपरिवार जनवरी 1934 में वर्धा पहुंच गये और गांधीजी की रचनात्मक प्रवृत्तियों में भाग लेने लगे।[6]

मेवाड़ प्रजामण्डल और भूरेलाल बया :

सन् 1938 हरिपुरा कांग्रेस में निर्णय लिया गया कि कांग्रेस भविष्य में रियासती आन्दोलनों में रूचि लेगी फलस्वरूप रियासतों में कांग्रेस के समान प्रजामण्डल, प्रजापरिषद आदि नामों से संगठनों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। मेवाड़ में प्रजामण्डल की स्थापना माणिक्यलाल वर्मा के प्रयत्नों से सम्भव हुई। इस शुभ अवसर पर बयाजी वर्धा से पुन: उदयपुर लौट आये। 4 अप्रेल 1938 को उदयपुर में सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की बैठक में प्रजामण्डल का विधान स्वीकार किया गया। श्री बयाजी मेवाड़ प्रजामण्डल के उपाध्यक्ष बनाये गये। 11 मई 1938 को सरकार ने मेवाड़ प्रजामण्डल पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

माणिक्यलाल वर्मा को मेवाड़ से निष्कासित कर दिया गया। साथियों की सलाह पर वे अजमेर चले गये और वहीं उन्होंने प्रजामण्डल का अस्थाई कार्यालय स्थापित किया। वर्माजी ने प्रजामण्डल महासमिति की बैठक का आयोजन किया, जिसमें प्रजामण्डल से पाबन्दी हटाने और महात्मा गांधी का आशीर्वाद प्राप्त कर सत्याग्रह प्रारम्भ करने का निर्णय लिया गया।[7]

प्रजामण्डल ने महात्मा गांधी का आशीर्वाद प्राप्त करने की जिम्मेदारी बयाजी पर डाली। गांधीजी उसी समय दिल्ली में रहते थे। श्री बया जी गांधीजी का आशीर्वाद प्राप्त कर नाथद्वारा, राजसमन्द होते हुए रेल द्वारा उदयपुर पहुंचे। पुलिस ने बयाजी को उदयपुर स्टेशन पर गिरफ्तार कर सराड़ा जेल भेज दिया। लगभग 6 माह तक बयाजी अपने साथियों वैद्य भवानी शंकर पालीवाल उदयपुर, दानमल भाटिया (नाथद्वारा मंदिर के मुखिया) जेठमल पारीक और डॉ मन्नालाल (नाथद्वारा) रमेशचन्द्र व्यास (भीलवाड़ा) के साथ सराड़ा जेल में रहे। जेल से रिहा हो उदयपुर पहुंचने पर सरकार ने उनके भविष्य में राजनीति में भाग न लेने का लिखित आश्वासन मांगा। आश्वासन देने से इंकार करने पर उन्हें 9 माह के लिए सराड़ा जेल भेज दिया गया। जेल में बयाजी का स्वाध्याय और सूत कताई का कार्य सुचारू रूप से चलता रहा। किन्तु बयाजी का स्वास्थ्य गिरने लगा। अत: उन्हें बीच में ही रिहा कर दिया गया। रिहाई के पश्चात् बयाजी उदयपुर आये और यहाँ से वर्धा अपने परिवार के पास चले गये। इसी बीच गांधीजी के प्रयत्नों से फरवरी 1941 में प्रजामण्डल से प्रतिबन्ध हटा लिया गया।[8]

नवम्बर 1941 में उदयपुर में प्रजामण्डल अधिवेशन के आयोजन का निश्चय किया गया। इस अवसर पर बया जी स्वागत समिति के अध्यक्ष चुने गये। प्रजामण्डल कार्य समिति ने अधिवेशन में राष्ट्रीय नेताओं को लाने का दायित्व बयाजी को सौंपा। बयाजी ने गाँधीजी से राष्ट्रीय नेताओं को अधिवेशन में भेजने की प्रार्थना की। गांधीजी के आदेशानुसार आचार्य कृपलानी और श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित अधिवेशन में सम्मिलित हुए। अधिवेशन में मेवाड़ के उत्तरदायी शासन की पुरजोर मांग की गई। कांग्रेस के नेतृत्व में स्वाधीनता संग्राम का जोरदार अभियान प्रारम्भ हुआ। जिसके परिणामस्वरूप मेवाड़ की जनता में निरंकुश शासन के विरूद्ध नवजागरण और नवीन चेतन का प्रार्दुभाव होने लगा। मेवाड़ में नव चेतना जागृत करने में माणक्यिलाल वर्मा, भूरेलाल बया, बलवन्त सिंह मेहता, वैद्य भवानी शंकर, दयाशंकर श्रोत्रिय, रूपपाल सोमाना, नरेन्द्रपाल चौधरी जैसे कर्मठ जन नेताओं का उल्लेखनीय योगदान रहा।[9]

भारत छोड़ो आन्दोलन और बयाजी :

9 अगस्त 1942 को बम्बई में राष्ट्रीय कांग्रेस ने अंग्रेजों के विरुद्ध 'भारत छोड़ो' आन्दोलन प्रारम्भ किया और गांधीजी ने राष्ट्र के नाम ''करो या मरो'' का सन्देश दिया।

20 अगस्त को मेवाड़ प्रजामण्डल ने महाराणा को 2 घण्टे के भीतर अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद करने की चेतावनी दी। 21 अगस्त को मेवाड़ प्रजामण्डल ने उदयपुर के ''तीज का चौक'' में सभा आयोजित कर आन्दोलन में भाग लेने की घोषणा की।

मेवाड़ सरकार ने बयाजी सहित प्रजामण्डल के प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इस अवसर पर 600 विद्यार्थी भी गिरफ्तार किये गये। जिसमें महेन्द्र प्रताप बया (पुत्र भूरेलाल बया) भी थे। प्रमुख नेताओं को ईसवाल जेल में बन्द रखकर 1944 के बीच रिहा कर दिया गया।[10]

मेवाड़ रिलीफ सोसायटी की स्थापना

बयाजी की सेवाएं जहाँ एक और राजनैतिक सत्याग्रहियों में रही वही दूसरी ओर गांधीजी के रचनात्मक कार्यों में उनकी विशेष रूचि रही। सन् 1943 में मेवाड़ और अजमेर के बीच खारी नदी में बाढ़ आने से आसीन्द के ऊपर से लेकर (गुलाबपुरा) तक, गुलाबपुरा मण्डी और हुरड़ा परगने में भयंकर जन-धन की हानि हुई। कई गाँव बाढ़ में बह गये, हजारों लोग घरों से बेघर हो गये। इस समय प्रजामण्डल ने बयाजी के संयोजकत्व में मेवाड़ रिलीफ सोसायटी की स्थापना की। सोसायटी ने जिस प्रभावी ढंग से बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में सहायता का कार्य किया, उससे सरकारी और गैर सरकारी सूत्रों में बया जी और उनके सहयोगगियों की बड़ी प्रशंसा हुई। साथ प्रजामण्डल की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई। लोगों की सेवा के कारण बयाजी प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में उभरे और 1944 में मेवाड़ प्रजामण्डल के अध्यक्ष चुने गये।[11]

किसान सत्याग्रह और ताना जागीरदार के विरुद्ध संघर्ष

भीम के निकट ताना नामक ठिकाने का जागीरदार हमेशा नशे में धुत होकर लोगों पर जुल्म करता रहता था। ठिकाने के लोग उसके आंतक से दुखी और भयभीत थे। सन् 1946 के आरम्भ में यहाँ प्रजामण्डल की स्थापना से लोगों में साहस आया। बयाजी के नेतृत्व में यहाँ सार्वजनिक सभा की व्यवस्था की गई। जागीरदार ने सभा मण्डप में आग लगा दी। जागीरदार के कृत्य के विरूद्ध आस-पास के गांवों से झुण्ड-झुण्ड में लोग सभा स्थल पर पहुंचने लगे। बयाजी ने वर्माजी को सूचना दी और मेवाड़ प्रधानमंत्री सर टी. विजयराघवाचार्य को पत्र लिखा। सरकार ने राजसमन्द के मजिस्ट्रेट को जागीरदार को समझाने भेजा, किन्तु जागीरदार नहीं माना, फलत: ताना के निकट के क्षेत्रों में तनाव बढ़ गया। यह स्थिति देखकर जागीरदार झुक गया। उसने बया और उपस्थित जन समुदाय से क्षमा माँगी और पुन: स्वयं के खर्चे से सभा मण्डप बनवाया। जागीरदार द्वारा लाग-बाग माफ करने की घोषणा भी की गई।[12]

मेवाड़ प्रजामण्डल का बिजौलिया अधिवेशन

सितम्बर 1946 में पं. नेहरू के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार ने पद ग्रहण किया। फलत: देशी रियायतों में राजनैतिक हलचलें पुन: बढ़ गई। मार्च 1947 में मेवाड़ प्रजामण्डलों ने बिजौलिया में अपना दूसरा अधिवेशन किया। अध्यक्षीय भाषण देते हुए बयाजी ने मेवाड़ सरकार को चेतावनी दी कि यदि सरकार निकट भविष्य में जनता के प्रतिनिधियों को सत्ता हस्तान्तरित करने की दिशा में कदम नहीं उठाये तो मेवाड़ में विद्रोह के वे स्वर फूट पड़ेंगे, जिसका सामना करना सरकार के लिए असम्भव होगा।

राजस्थान के कतिपय राजाओं द्वारा ''राजस्थान संघ'' बनाने का प्रयत्न किया गया। जिसकी प्रतिक्रिया में बयाजी ने कहा राजस्थान का जन सामान्य भी राजपूताना को एक संगठित इकाई के रूपमें देखना चाहता है। किन्तु राजाओं के प्रयत्न तभी सफल होंगे, जबकि जनता की राय से जनता के हित सामने रखकर प्राप्त निर्माण का कार्य किया जावें। मेवाड़ में जागीरदारी जुल्मों को देखकर बयाजी ने जागीरी प्रथा को अन्त में आवश्यक बताया।

प्रजामण्डल के इस ऐतिहासिक अधिवेशन में मेवाड़ के क्रान्तिवीर बिजौलिया किसान आन्दोलन के सूत्रधार विजयसिंह पथिक भी बिजौलिया पहुंचे। जहाँ अधिवेशन में उपस्थित विशाल जन समुदाय ने करतल ध्वनि के साथ उनका अभिवादन किया। मेवाड़ प्रजामण्डल का यह अन्तिम अधिवेशन था और बया प्रजामण्डल के अन्तिम अध्यक्ष थे।

प्रजामण्डल की शासन सुधारों की माँग को ध्यान में रखकर मई, 1947 में महाराणा ने प्रजामण्डल के दो प्रतिनिधि मंत्रीमण्डल में शामिल करने की घोषण की। श्री माणिक्यलाल वर्मा ने बयाजी से मंत्रीमण्डल में शामिल होने का आग्रह किया, किन्तु संस्था के हित को ध्यान में रखकर बयाजी अध्यक्ष पद पर ही बने रहे। अत: मोहनलाल सुखाड़िया और हीरालाल कोठारी प्रजामण्डल प्रतिनिधि के रूप में राज्य मंत्रीमण्डल में सम्मिलित हो गये।[13]

मेवाड़ धारा सभा चुनाव और शांति आनन्दी की शहादत:

फरवरी 1948 में महाराणा ने मेवाड़ में विधानसभा चुनावों की घोषणा की। इस चुनाव में श्री बया उदयपुर के वार्ड नं. 1 से खड़े हुए। उनका प्रतिद्वन्द्वी क्षत्रिय परिषद का उम्मीदवार था। 4 अप्रेल को मतदान प्रारम्भ हुआ। एक मतदान केन्द्र पर प्रजामण्डल समर्थकों ने तिरंगा ध्वज लगा दिया। जिसे क्षत्रिय परिषद् समर्थकों ने कुएं में डाल दिया। उक्त घटना से सम्पूर्ण शहर में उत्तेजना फैल गयी। उत्तेजित जनसमुदाय को शान्त कर बया जी महाराणा से मिले जहां उन्हें उचित कार्यवाही का आश्वासन मिला। कुएं से

झण्डा निकाल ट्रक पर सजा कर सम्पूर्ण शहर में जुलूस के साथ घुमाया गया। अगले दिन प्रजामण्डल नेताओं के आह्वान पर नगर में हड़ताल रखी गई और चुनाव स्थगित कर दिये गये। उसी समय क्षत्रिय परिषद् के लोगों ने हड़ताल समाप्त कर बाजार खोलने की अपील करते हुए उत्तेजनात्मक भाषण दिये। श्री बया, प्रेमनारायण माथुर और दुर्गाशंकर दुर्गावत ने जनता को शान्त किया। नगर प्रजामण्डल मंत्री परशराम त्रिवेदी, नरेन्द्रपाल चौधरी, रोशनलाल शर्मा, नंदकुमार त्रिवेदी जनता को आगे बढ़ने से रोक रहे थे। शहर कोतवाली घण्टाघर के पास पुलिस ने शान्त जनता पर लाठी चार्ज और गोलियों की बौछार कर दी। इस बौछार में दो किशोर शान्तिलाल और आनन्दीलाल मारे गये। गुलाबसिंह शक्तावत, परशराम त्रिवेदी, नंदकुमार त्रिवेदी, लक्ष्मीलाल चित्तौड़ा के पैरों में गोली लगी। घटना के विरोध में मोहनलाल सुखाड़िया और हीरालाल कोठारी ने राज्य मंत्रीमण्डल से त्यागपत्र दे दिये। 6 अप्रेल को नगर में कर्फ्यू लगा दिया गया।

किन्तु सरकार ने प्रजामण्डल को गोलीकाण्ड में शहीद किशारों की शवयात्रा निकालने की इजाजत दी। श्मशान भूमि में जनता को सम्बोधित करते हुए बया ने कहा ''इस चिता में शान्तिलाल आनन्दीलाल नहीं अपितु सामन्तशाही जल रही है शांतिलाल-आनन्दीलाल तो अमर हो गये।''[14]

मंत्रीमण्डल में बया जी

18 अप्रेल 1948 को मेवाड़ राज्य का संयुक्त राजस्थान में विलय हो गया। माणिक्यलाल वर्मा संयुक्त राजस्थान के प्रधानमंत्री बने। श्री बया भी मंत्रिमण्डल में सम्मिलि हुए। राजस्व, रसद, रेल और जागीर मंत्री की हैसियत से उन्होंने संयुक्त राजस्थान में जागीर प्रथा समाप्त करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई।

14 जनवरी 1949 को सरदार वल्लभभाई पटेल ने वृहद राजस्थान में निर्माण की घोषणा की। यह निर्णय भी हुआ की महाराजा जयपुर राजस्थान के राजप्रमुख और हीरालाल शास्त्री मुख्यमंत्री होंगे। 4 अप्रेल 1949 को प्रेमनारायण माथुर ने बयाजी को संदेश दिया कि मनोनीत मुख्यमंत्री ने उन्हें जयपुर बुलवाया है। 7 अप्रेल 1949 को वृहद राजस्थान निर्माण के पश्चात् श्री बया, मंत्रीमण्डल के सदस्य बने। उन्हें सिंचाई, रेलवे, सार्वजनिक, निर्माण विभाग, परिवहन और संचार विभाग का कार्य दिया गया।[15]

रचनात्मक कार्यों की ओर :

गांधीजी के प्रभाव के कारण बया जी के मानस में रचनात्मक प्रवृत्तियों को मूर्तरूप देने की जिज्ञासा बलवती हो गई। फलतः राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जन्म दिवस 2 अक्टूबर, 1950 को अपनी रचनात्मक प्रवृत्तियों को स्थायी संस्थागत स्वरूप प्रदान करने हेतु मेवाड़ में सर्वप्रथम नव निर्माण संघ की स्थापना उदयपुर में की। संघ का उद्देश्य

सत्य, अहिंसा, विश्व एकता और शांति के आधार पर सर्वोदय समाज की स्थापना करना था। संघ की प्रवृत्तियाँ इसकी स्थापना के समय से निरन्तर विकासोन्मुख लक्ष्य की ओर गतिमान है।[16] स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा, जननायक, निर्भिक एवं जुझारू व्यक्तित्व के धनी कीर्ति शेष श्री भूरेलाल बया का 88 वर्ष की आयु 21 जनवरी, 1992 को निधन हो गया।[17]

सन्दर्भ

1. *कर्नल महेन्द्र प्रताप बया पुत्र स्व. भूरेलाल बया से साक्षात्कार।*
2. *पानगड़िया, बी.एल., कर्मयोगी श्री भूरेलाल बया (अभि. ग्रन्थ पृ. 26)*
3. *जोशी, सुमनेश, राजस्थान में स्वतंत्रा संग्राम के सेनानी, पृ. 467*
4. *पानगड़िया, बी.एल., पूर्वाक्त, पृ. 27*
5. *नव निर्माण संघ उदयपुर द्वारा प्रकाशित पत्र स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा भूरेलाल बया जन्म शताब्दी (22 अग. 1904-2004)*
6. *श्रीमाल, मोहनलाल, गांधीवादी आदर्शों को समर्पित भूरेलाल बया अभि. ग्रंथ, पृ. 10-11*
7. *गोस्वामी, केशरपुरी, मेवाड़ के अहिंसक वीर रत्न भूरेलाल बया सर्वोदय साधना संघ चन्देरिया राज.*
8. *सराड़ा जेल के अनुभव अभि. ग्रंथ, नेहरू म्यूजियम नई दिल्ली के सौजन्य से, पृ. 38-40*
9. *पानगड़िया, बी.एल., पूर्वोक्त, पृ. 67*
10. *वही, पृ. 66-68*
11. *जैन, गजेन्द्र कुमार, जिकी जिंदादिली बेजोड़ है अभि. ग्रंथ, पृ. 43-45*
12. *एक जागीरदार का हृदय परिवर्तन - भूरेलाल बया, नेहरू म्यूजियम नई दिल्ली।*
13. *पानगड़िया, बी. एल., कर्मयोगी श्री भूरेलाल बया, अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. 30-31*
14. *स्व. भूरेलाल बया स्मारक समिति, नवनिर्माण संघ द्वारा 2/12/1996 को भूरेलाल बया मूर्ति अनावरण अवसर पर प्रकाशित पत्र।*
15. *शर्मा, रामकृष्ण, भूरेलाल बया व्यक्तित्व कृतित्व, पृ. 10*
16. *नवनिर्माण संघ उद्भव एवं विकास की जीवन्त कहानी (1950-2000), प्रकाशक नव निर्माण संघ।*
17. *नव निर्माण संघ उदयपुर द्वारा प्रकाशित पत्र-स्वतन्त्रता संग्राम के अमर पुरोधा श्री भूरेलाल बया जन्म शताब्दी (22 अगस्त, 1904-2004)।*

 ISSN 2321-1288

झालावाड़ राज्य के सामाजिक जागरण में 'गौरी शंकर आर्य' का योगदान

डॉ. प्रणव देव

सामन्तवाद में जकड़े स्वतंत्रता संघर्षकालीन झालावाड़[1] के समाज को सामाजिक जागरण के माध्यम से गतिशील बनाया गया। इस सामाजिक जागरण में राष्ट्रीय चेतना एवं नई आर्थिक व्यवस्था के सूत्र शामिल थे। झालावाड़ राज्य की स्थापना सन् 1838 में कोटा राज्य को खण्डित कर की गई थी। यह नई रियासत ब्रिटिश आदर्शों से पूर्णता पोषित थी। यहां के अनेक शासकों ने यूरोप की यात्राएं की थीं। जिनके परिणामस्वरूप वे यूरोपीय समाज के पुनर्जागरण से प्रभावित थे। अत: उन्होंने अपनी राज्य में सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण को सकारात्मक सहयोग ही नहीं दिया अपितु इसके अगुवा भी बने। क्योंकि यह राज्य पूर्णत: ईस्ट इंडिया कम्पनी के सहयोग से स्थापित हुई थी। अत: ब्रिटिश शासन ने यहां के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर गम्भीर प्रभाव छोड़े। जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप बौद्धिक विकास के लिये अनुकूल स्थितियां उत्पन्न हुई। यद्यपि यह भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि यहां का सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण पूर्णत: पश्चिमी उदारवादी चिन्तकों एवं भारत में पश्चिमी शिक्षा के प्रसार का ही परिणाम था, अथवा पाश्चात्य उपनिवेशवादी शासन का प्रतिफल। सामाजिक जागरण के प्रारम्भ के बीज ब्रिटिश शासन एवं ईसाई मिशनरियों में थे किन्तु उसका विस्तार एवं पल्लवन स्वदेशी, आर्य समाज, मित्र मण्डल, बाल मण्डल में था। जिनमें नवोदित मध्यमवर्ग का अभूतपूर्व योगदान था। यह मध्यमवर्ग साहित्यकार, पत्रकार, कलाकार के रूप में सामाजिक जागरण की पुष्ट पृष्ठभूमि तैयार कर रहा था। झालावाड़ राज्य के अनेक समाज सेवियों में श्री गौरीशंकर आर्य का नाम उल्लेखनीय है। आपका जन्म 21 अगस्त सन् 1921 में झालरापाटन में हुआ था। आर्य जी का प्रारम्भिक जीवन अत्यंत संघर्षपूर्ण रहा था। तीन दिनों के अंतर से उनके माता-पिता का अकस्मात् निधन हो गया। आपका विवाह श्रीमती बसन्त कुमारी के साथ सम्पन्न हुआ। आपके दो पुत्रों में एक डॉ. धन्वन्तरि, एम.डी., पी-एच.डी. है। पुत्रवधू डॉ. हरिकृष्णा एम.डी. जबकि छोटे पुत्र शारीरिक शिक्षक है। जमाता डॉ. रमेश कुमार पुराणेतिहासाचार्य है। आप शिक्षा स्नातक होने के साथ हिन्दी विषय में अधिस्नातक तक उच्चे शिक्षा प्राप्त कर शिक्षण के साथ साहित्य सृजन में भी कार्य करते रहे। आपकी साहित्य यात्रा का श्री गणेश सन् 1935 में ब्रजभाषा छन्द रचना से हुआ था। मार्च 1946 में सन् 1979 तक वे शैक्षित जीवन से सक्रिय रूप से जुड़े रहे। तथापि उनकी सारस्वत साधना निरन्तर चलती रही।

आपके शिक्षाविद्, पत्रकार, कहानीकार, नाटककार, निबंधकार, व्यंगकार एवं विचारक एवं सुहृदय कवि के रूप में सामाजिक जागकरण की अलख जगाई थी। ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली पर आपकी अच्छी पकड़ थी। आपकी कविताओं में प्रसाद और माधुर्य के गुणों की अनुपम छटा है। श्रृंगार रस की रचनाओं में सामाजिक जागरण के अनेक कथ्य दिखाई पड़ते हैं। आप लेख, कविताएं एवं व्यंग्य के माध्यम से समाज को जागृत करने का कार्य करते रहे। आपने अपने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रप्रेम, आदर्शवाद, संस्कृति, सामाजिक जागरण एवं जीवन मूल्यों के प्रति आस्था के लिए समाज को एक दिशा देने का कार्य किया।

आर्य जी को कवित्व संस्कारों से प्राप्त हुआ था। अत: 23 वर्ष की आयु में उन्होंने ''गेय-गीता'' की रचना की। उन्होंने अपनी किशोरावस्था में न सिर्फ स्वतंत्रता संघर्ष को देखा है अपितु उसमें भागीदारी की है। इसका संकेत वे अपने कहानी संग्रह के कृतज्ञता ज्ञापन में इस प्रकार करते है- मैं आभारी हूं मेरे बचपन के साथी और 1942 के आन्दोलन में कुछ करने को बेताब श्री विनयकुमार तिवारी (अब संन्यासी स्वामी विनयशरण आनंद) जिन्होंने ब्रिटिश शासन के समय महू की छावनी में मिलिट्री अफसर की मार खाई और मुझे बचाया। अगस्त क्रान्ति के दौरान झालावाड़ में जो मित्र मण्डल ने जुलूस आदि निकाले उनमें आपने स्थानीय कार्यकर्ता की भांति सक्रिय भागेदारी की। इसके साक्ष्य झालावड़ के स्वतंत्रता सेनानियों के संस्मरणों में मिलते है। वे भारत छोड़ो राष्ट्रीय आंदोलन से छद्म रूप से संलग्न थे। सेवानिवृति के पश्चात् वे पत्रकारिता से सक्रिय रूप से जुड़ गये। राजस्थान पत्रिका में दो दशकों तक संवाददाता रहे एवं 'आओ गांव चले' स्तंभ में निरंतर लेखन के साथ हाड़ौती एवं राज्य के प्रतिष्ठित पत्रों में निरंतर छपते रहे। सन् 1991 में उनके 'कड़वा मीठा सच' के लिए राजस्थान पत्रिका के कोटा संस्करण को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

गद्य लेखक के रूप में आर्य जी की दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। प्रथम पुस्तक ''अभी तो मैं मरा नहीं'' (एकांकी संग्रह) का प्रकाशन सन् 1996 ई. में उन्होंने स्वयं मुद्रक अर्चना प्रकाशन अजमेर के माध्यम से करवाया। इसी प्रकार द्वितीय पुस्तक 'अपने आस-पास' (कहानी संग्रह) का प्रकाशन सन् 2000 में स्वयं इन्दौर से करवाया था।

प्रथम पुस्तक एकांकी संग्रह में विविध शैलियों के माध्यम से नैतिक मूल्यों को जीवन में उतारने के माध्यम से सामाजिक जागरण के अनेक आयामों को स्पष्ट करने का सार्थक प्रयत्न किया गया है। सामाजिक जागरण संबंधी पं. आर्य की दृष्टि पहचानने के उद्देश्य से उनके इस एकांकी संग्रह की संक्षिप्त समीक्षा की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। इस संग्रह में कुल आठ एकांकी है - नासूर, दण्डित द्रोण (ध्वनि रूपक), अपंग

(ध्वनि रूपक), जय-पराजय (छाया नाटक), अभी तो मैं मरा नहीं, और सिकंदर लौट गया, सुख का आधार, त्रिवेणी (छाया नाटक)। इनमें से ज्यादातर नाटक अतीत या वर्तमान समाज के जीवन मूल्यों में आई विद्रूपताओं, सामाजिक बुराईयों को प्रतिबिम्बित करते है। डॉ. शान्ति भारद्वाज राकेश[2] ने इस एकांकी संग्रह के आमुख को लिखते हुए नाटक एवं नाटककार के बारे में यह टिप्पणी की है- श्री आर्य सांस्कृतिक धरोहर और स्थापित जीवन-मूल्यों के प्रति सर्वाधिक जागरूक हैं, लेकिन उनके आदर्श और मर्यादाएं परंपरागत होकर भी रूढ़ नहीं है। वे बहुत कुछ नया पाना चाहते हैं, नया होना चाहते हैं, लेकिन विरासत में उनके पास ऐसा बहुत कुछ है, जिसे वे खोना भी नहीं चाहते। इतिहास और पौराणिक कथाओं में ही उन्हें वह माध्यम दिखाई देता है जो उनके चिंतन को, उनकी संवेदना को वाणी देता है लगता है कि कथाओं को वे पढ़ते नहीं उनका अवगाहन करते हैं और उनकी प्रासंगिकता को प्रखरता से उजागर करते हैं। इतिहास का भ्रम या छल जो हमारी अस्मिता को ललकारता है, उसे तोड़ने का दायित्व-निर्वाह भी जैसे उनके रचनाकार का उद्देश्य है। यह कहना उनकी रचनाओं को छोटा करना नहीं है कि वे उद्देश्यपरक हैं। नाटक या एंकाकी की चर्चा तब सार्थक है जब देखा जाए कि वह मंचन के लिए कितना उपुर्यक्त है। इस दृष्टि से भी नाटककार सर्वत्र बेहद जागरूक है। एकांकी, रेडियो-नाटक और छाया-नाटक इस संकलन में सभी हैं और उन्हीं के अनुरूप शिल्प, सवांद और संकेत भी। भाषा जटिल या शास्त्रीय तो नहीं है; लेकिन विषय और कथ्य के अनुरूप संस्कारित अवश्य है। वह मात्र मनोरंजन नहीं करता; अपितु कुछ सार्थक कहने के लिए मनोरंजन की इस विधा का उपयोग करता है।

संग्रह का पहला एकांकी नासूर अलाउद्दीन और पद्मिनी पर अपना विचार प्रकट करते हुए निष्कर्ष रूप में यह बताता है कि पतिव्रता पद्मिनी को शत्रु की छाया भी नहीं छु सकी। इस 'एकांकी' में इतिहास और समय का संवाद, खिलजी द्वारा आईने में पद्मिनी के रूप-दर्शन को उजागर करता है। राणा का अपहरण, नारीवेश में राजपूतों का अभियान, साका आदि के प्रसंग, इस एकांकी की परिधि को अधिक व्यापक बनाते हैं। उन्हें यह तथ्य अधिक संतोष देता है कि आईने में भी रानी ने नहीं, दासी ने मुंह दिखाया था। 'दंडित द्रोण' में गुरु की महिमा-मण्डित व्याख्या की तुला पर द्रोणाचार्य के गुरुत्व को प्रताड़ित किया गया है। मात्र राजकुमारों के गुरु द्रोणाचार्य, भील-बालक (आम आदमी) एकलव्य को राजकुमार अर्जुन से श्रेष्ठ कैसे हो जाने देते? यह विचारणीय है कि वैचारिक विन्यास भिन्न हो सकता किन्तु रचनाकार चर्चा के लिए कथ्य देने में सफल रहा है।

'अपंग' विवाह की सामाजिक समस्या से सम्बद्ध नाटक है। वर और वधू स्वविवेक से अपना भविष्य निर्धारित करे तो इस सामाजिक समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। यह संदेश देना इस एकांकी का उद्देश्य है यह दहेज-प्रथा पर चोट करता है।

दहेज लोभी को चार पहियों वाली चौकीनुमा गाड़ी पर बैठे अपाहिज भिखारी की उपमा दी गई है। जय-पराजय का कथ्य है कि आत्मोत्थान के लिए कठोर तप करने से अच्छा सभी के सुख और विकास के लिए स्वयं को विसर्जित करने का मार्ग है। इस नाटक भी भाव भूमि में पण्डित आर्य की समाज सेवा की भावना मूलाधार प्रतीत होती है। 'जय पराजय' में वाचक-वाचिकाओं के संवादों की पृष्ठभूमि पर विश्वमामित्र और मेनका की प्रेम-गाथा है। मेनका का कथन द्रष्टव्य है- 'मेरा निष्काम कर्म सक्रिय है, जीवन है, जबकि आपका वह तप, निश्चल या क्रियाहीन और स्वार्थ-परिपूर्ण था। जिसका था लक्ष्य मोक्ष। अस्तु, वह अपूर्ण था।

अभी तो मैं मरा नहीं' में रावन नहीं मरता क्योंकि रावणी-वृत्तियां सजीव हैं। राम के भक्त ही उसे मरने नहीं दे रहे हैं। डॉ. शान्ति भारद्वाज राकेश ने इस एकांकी पर यह सार्थक टिप्पणी की है-यह एकांकी मुझे मंचन की दृष्टि से जटिल लग रहा है; लेकिन कथ्य स्पष्ट और प्रेरक है। सामाजिक जीवन में अनास्था एवं जीवन मूल्यों में गिरावट के लिए आत्ममन्थन की ओर ये एकांकी प्रेरित करता है। और सिकंदर लौट गया एकांकी में एक आदर्श प्रशासन का ऐतिहासिक आधार दिया गया है। इस एकांकी में सिकंदर और सिल्यूकस की चाणक्य से भेंट दोनों राज्यों की शासन-व्यवस्था का तुलनात्मक विवेचन हुआ है। चाणक्य के इशारे पर संचालित साम्राज्य, अर्थ-पिपासु, मात्र उत्सवधर्मी और स्वेच्छाचारी नहीं, बल्कि प्रजाजनों के लिए है। चाणक्य इसीलिए झोंपड़ी में रहता है।

एकांकी संग्रह का सातवां एकांकी 'सुख का आधार' जनसंख्या वृद्धि की आधुनिक समस्या पर आधारित है। ऐसा प्रतीत होता है कि रचनाकार गांधी आधारित जीवनमूल्यों से पूर्ण प्रभावित होकर आत्मसंयम का मार्ग अपनाने के पक्ष में है, परन्तु इस विषय में गंभीर है कि सीमित साधनों और सुविधाओं से सुख पाने के लिए सीमित परिवार की अत्यन्त आवश्यकता है।

'त्रिवेणी' की गंगा और जमुना का कथानक भी पार्श्व से ही उच्चारित होता है। गंगा और जमुना का मिलन नहीं सरस्वती का अवतरण है। यहां रंग-भेद की दुखती रग का भी नाटककर ने स्पर्श किया है और संवेदना की भाव-भूमि पर एकता का संदेश देते हुए इसे सुलझाने के लिए सरल मार्ग संकेतित किया है। इस प्रकार आठो एकांकी विभिन्न सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए सामाजिक जागरण का कार्य सरस नाट्य साहित्य के माध्यम से करने का प्रयास करते है। इस नाट्य रचना के बार में डॉ. रामचरण महेन्द्र (कोटा) का कथन है-''नाटकों के क्षेत्र में आपके नवीन प्रयोग देखकर आश्चर्य हुआ। आपकी लेखनी मंजी हुई है। नाट्य लेखन में आपकी गति देखकर तथा आदर्श और मर्यादाएं जानकर संतोष हुआ। आप सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति जागरूकहै। आज के युग में ऐसे आदर्शवादी एकांकी विद्यार्थियों के लिए अतयावश्यक है। इतिहास के दर्पण में आपने उज्जवल संस्कृति के दर्शन कराये है।''[3]

एकांकी संग्रह की भांति ही आपके कहानी संग्रह 'अपने आस-पास' की कहानियाँ अत्यंत जीवन्त हैं। भोगे हुए यथार्थ को सशक्त अभिव्यक्ति देती हैं। इन्द्रजाल, एक और शम्बूक, औकात, और न्यायालय उठ गया, गूंगा, तत्व-दर्शन, तृतीय नेत्र, पायन्दाज, प्रायश्चित, फाँस, बदनाम, बुढ़ापे का सहारा, मुई खाल की साँस, मुजरिम, रक्तबीज, वह बहाल हो गया, संवैधानिक हक, हमसब एक है, होत न आज्ञा बिन पैसा रे नामक कुल 19 कहानियों का संग्रह है। कथा संग्रह के प्रारम्भ में अपना कथ्य के अन्तर्गत पण्डित आर्य ने इसके बारे में स्वयं लिखा है कि- ''सन् 1941 में मैं अध्यापक बना और 1952 में ग्रामीण क्षेत्र की पाठशाला में पहुंचा,उस समय जो कुछ मैंने देखा मेरे मन ने जो सहा और अन्य सहते हुओं को अनुभव किया उससे प्रसूत हुई 'पायन्दाज'। ईश्वर की कृपा कि यही कहानी जादव यूनिवर्सिटी कलकत्ता द्वारा आयोजित सुलेखा कहानी प्रतियोगिता में पांचवे स्थान पर आई और इसी से मुझे आगे प्रेरणा मिली। इसके पश्चात् समय-समय पर अनेकाने विभिन्न परिस्थितियों में ये कथाएं उतरती गईं। इन्हीं का एक संग्रह आपके सामने विनत भाव से प्रस्तुत है। एक नई बात और हुई-मुझे लगने लगा कि हमारे चारों और कहानियां ही कहानियां ही बिखरी पड़ी हैं। चेतन अचेतन सबकी अपनी-अपनी कहानी है। ऐसा आभास हुआ कि किसी भी कथा को सुनने के लिए केवल कान ही अपेक्षित नहीं, वह नेत्रों से भी सुनी जाती है। मेरा मन शायद व्यथा आपको ऐसा ही लगेगा। कहीं-कहीं वह मुस्कुराया भी किन्तु वैसे ही जैसे रोते हुए बालक को कोई गुदगुदी चला दे। संवैधानिक हक, पायंदाज बुढ़ापे का सहारा, एक और शंबूक, मुजरिम, बदनाम, मुईखाल की सांस, हम सब एक है, होत न आज्ञा, बिन पैसा रे, और गूंगा साहित्यिक मुलम्मा चढ़ाकर 'डायमंड कट' से निखारकर आकर्षक बनाई गई सत्य घटनाएं है जिनके कई पात्र आज भी कहीं न कहीं हैं। उनका व्यंग्य तथा कविता संग्रह उनके जीवन काल में अप्रकाशित ही रहा, आज भी उसे प्रकाशन की प्रतीक्षा है। पण्डित गदाधर भट्ट का विचार है कि-लगभग 2 दशकों तक आर्य जी की अनेक रचनाएँ शिक्षक दिवसीय प्रकाशनों में निरंतर छपती रहीं।[4]

राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी ने पण्डित गौरी शंकर आर्य पर एक लघु पुस्तिका (मोनो) भी प्रकाशित की है। सन् 1994में उनकी उत्कृष्ट काव्य-साधना के लिए आर्य जी को राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी द्वारा सम्मानित किया गया। जयपुर की ''जय साहित्य'' संस्था द्वारा भी पुरस्कार से नवाजे गये। अखिल भारतीय साहित्य परिषद् एवं राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, दिल्ली द्वारा भी वे सम्मानित हुए थे। आर्य जी का समग्र साहित्य सामाजिक जागरण को सकारात्मक दिशाबोध करता हुआ प्रतीत होता है। उनकी सभी कहानियां एवं एकांकी मानवतावादी जीवन दर्शन से ओतप्रोत रहे है। समासत: आपका जीवन एवं साहित्य सामाजिक जागरण की प्रेरणा तथा नवीन चिन्तन से परिपूर्ण है। उनके नवगीत की पंक्तियाँ हैं-

कण कण से ज्योतित करने में जल जाना इनका जीवन है।
इससे अधिक साध दीयों की मन से कोई रही नहीं है।।

वास्तव में आर्य जी शिक्षा एवं साहित्य के माध्यम में अपनी साधनापूर्ति के लिए प्रकाश स्तम्भ बनकर जन-जन को जागृत कर शिक्षा का प्रकाश बांटते रहे।

झालावाड़ राज्य के सामाजिक जागरण के उल्लेखनीय कार्यकर्त्ता के रूप में पं. गौरीशंकर आर्य की सेवायें आज स्मरणीय हैं। आर्य उपनाम आपने आर्य समाज के प्रभाव से स्वीकार किया तथापि आर्य समाज के सामाजिक जागरण के कार्यक्रमों में स्थानीय स्तर पर आप भागीदारी भी करते रहे। साहित्यकार के रूप में माँ शारदा के वरद पुत्र, यशस्वी साहित्यकार गौरीशंकर आर्य ने जिन दा पुस्तकों को प्रकाशित किया, उनकी सामग्री आपने रियासती काल में ही तैयार कर ली थी। आप जीवन के अंतिम क्षणों तक साहित्य के माध्यम से सामाजिक जागरण करते हुए भारतीय संस्कृति की सेवा करते रहे। 80 वर्ष की आयु में 24 मार्च सन् 2001 को दिवंगत हो गए।

संदर्भ

1. *झालावाड़ राज्य राजपूताने की रियासतों में राजनैतिक परिस्थितिवश ब्रिटिश सन्धियों के परिणामस्वरूप 8 अप्रैल 1838 ई. में अस्तित्व में आया। इस प्रगतिशील राज्य में वर्तमान झालावाड़ जिला शामिल है। जिसमें कुल 17 परगनों में से 14 परगने कोटा राज्य से एवं 3 परगने ब्रिटिश सरकार से मिले थे, इन परगनों के नाम क्रमश: चेचट, सुकेत, चौमेहला (मय गंगधार, डग, आवर एवं पचपहाड़), झालरापाटन, रीछवा, बकानी, दलहनपुर, कोटड़ा-भालता, सरड़ा, रटलाई, मनोहरथाना, फूल बड़ोद, चाचोरनी, काकूनी, छीपाबड़ोद, शाहबाद और शेरगढ़ थे। इस राज्य की स्थापना के मूल में झाला जालिमसिंह था तथा राज्य के राजाओं में राजराणा मदनसिंह (1838-1845 ई.), पृथ्वीसिंह(1845-1875 ई.), जालिमसिंह द्वितीय (1876-1896 ई.), भवानीसिंह (1899-1929 ई.), राजेन्द्रसिंह (1929-1943 ई.), हरिशचन्द्र (1943-1949 ई.) रहे हैं। इनमें सामाजिक सांस्कृतिक जागरण की दृष्टि से अन्तिम 3 राजा महत्वपूर्ण रहे है।*
2. *गौरी शंकर आर्य: अभी तो मैं मरा नहीं आमुख पृष्ठ V-VII 1996 कवि कुटीर चौमहला*
3. *गौरी शंकर आर्य, अपने आस-पास कहानी संग्रह कवि कुटीर चौमहला 2000 पृष्ठभाग, कवर पृष्ठ*
4. *गदाधर भट्ट, सांस्कृतिक झालावाड़, भट्ट प्रकाशन झालावाड़, द्वितीय संस्करण 2004, पृ. 67*
5. *वही, पृ. 85*

 ISSN 2321-1288

रियासती राजस्थान के जनजागरण में स्त्री अस्मिता सम्बन्धि मुद्दे

श्याम सुन्दर ठेनुआं

राजस्थान में जनांदोलन रियासती शासकों, सामंतों और ब्रिटिश औपनिवेशक शासन के त्रिआयामी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शोषण के प्रतिक्रियास्वरूप रियासत प्रजा का प्रतिउत्तर था।[1] इस जनजागरण के अभ्युदय में प्रेस, आधुनिक शिक्षा, समाज सुधार संगठनों जैसे आर्य समाज देश हितैषिणी सभा, वाल्टरकृत हितकारिणी सभा के साथ-साथ ब्रिटिश शासित राज्यों में होने वाले राजनीतिक आंदोलनों का भी महत्वपूर्ण योगदान था।[2] जनजागरण रियासती राज्यों में पैदा होने वाली एक सतत वैचारिक क्रांति थी जो समय समय पर होने वाले कृषक, आदिवासी और राजनीतिक अधिकारों के लिए जनआन्दोलनों में परिलक्षित हुई।

जनजागरण के परिणामस्वरूप होने वाले इन आन्दोलनों में स्त्रियों ने भी पुरूषों के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर भाग लिया। इन आन्दोलनों में स्त्रियों ने धरना, प्रदर्शनों, हड़ताल और सत्याग्रह जैसे गांधीवादी पद्धति का अनुसरण करते हुए रियासती शासकों के विरूद्ध प्रजा की आवाज का बुलंद ही नहीं किया बल्कि रियासती शासकों के निर्मम दमनचक्र को साहस से सहन किया वो तथ्य आने वाले समय से उभरने वाले मध्यम वर्ग के प्रजामंडल आन्दोलन का प्रेरणास्त्रोत बनकर उभरा।[3]

रियासती राज्यों में होने वाले जनआन्दोलन ब्रिटिश प्रशासित भारत में होने वाले आंदोलनों से दो तरह से भिन्न थी।[4] पहला ये आन्दोलन शोषणकारी शासकों व सामंतों के विरूद्ध थे। दूसरा इन आंदोलनों व ब्रिटिश प्रशासित भारत में होने वाले आंदोलनों में प्रक्रिया सम्बन्धी अंतर था। राजस्थान के जनान्दोलनों की शुरूआत निम्न वर्गीय कृषकों व दलित आदिवासियों के द्वारा उन पर भूराजस्व तथा विभिन्न तरह के करों के बलात अधिरोपण को लेकर हुई। प्रारम्भ में इन समूहों की मांगे भू-अधिकारों की मान्यता वनाधिकारों की सुरक्षा तथा करवृद्धि की समाप्ति थी। आने वाले समय जनान्दोलनों का नेतृत्व नवविकसित शिक्षित माध्यम वर्ग के हाथ में आ गया। इस मध्यम वर्ग में आधुनिक पाश्चात्य पद्धति से शिक्षित, वकील, अध्यापक व्यापार लोग शामिल थे, जिनके हित शोषणरहित, उदारतावादी, लोकल्याणकारी, तथा पेशेवर समूह न्यायपरक व उत्तरदायित्वपूर्ण शासन व्यवस्था में थे। यह वर्ग ब्रिटिश प्रशासित भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में होने वाले आन्दोलन से प्रेरणा प्राप्त करता था। इसी क्रम 20वीं शताब्दी में शासन में सुधारों और जनाधिकारों की मांगों को लेकर विभिन्न रियासती राज्यों में प्रजामंडलों की स्थापना हुई।[5]

प्रजामंडल आन्दोलन राजस्थान में स्वतंत्रता आन्दोलनों का दूसरा चरण का प्रतिनिधित्व करते है। जिसमें व्यवस्थित व सामान तरीके से संघर्ष करने का निर्णय लिया गया लेकिन प्रजामंडली के अधिकतर नेता व रियासतकालीन भी औपनिवेशक मुक्ति के पश्चात रियासती राज्यों में स्थापित होने वाली व्यवस्था के बारे में स्पष्ट नहीं थे।[6] इस दौरान प्रजामंडल के नेताओं ने रियासती राज्यों में शासन सुधारों के रूप में शासन को उत्तरदायित्वपूर्ण बनाने के लिए मताधिकार पर आधारित चुनी हुई विधायिकों को स्थापना की मांग की। राजस्थान के रियासती राज्यों में स्वाधीनता के लिए किए गए संघर्ष में महिलाओं ने बढ़ चढ़कर भाग लिया किन्तु उनके अस्तित्व सम्बन्धी मांगे इस पूरे समय काल में मुख्यधारा के राजनीतिक आंदोलनों से गायब ही रही या फिर समाज सुधार संगठनों में ''देश हितैषिणी सभा'' तथा ''वाल्टरकृत हितकारिणी सभा'' राजपूत और चारणों में व्याप्त सामाजिक बुराइयों जैसे-त्याग, टीका, रीत, बहुविवाह, तथा कन्यावध को रोकना था।[7] अत: इन दोनों संगठनों के क्षेत्र सीमित था व इन्होंने स्त्री अस्मिता के ऐसे मुद्दों को प्राथमिकता दी जो प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष थे। इन दोनों संगठनों की तुलना में ''आर्यसमाज'' के क्षेत्र व स्त्री अस्मिता सम्बन्धी मुद्दों में व्यापकता थी।

''अस्मिता'' शब्द का अर्थ स्वयं की पहचान से है। स्त्री अस्मिता में स्त्रियों की स्थिति, विकास और उनके सशक्तिकरण के लिए आवश्यक सम्पूर्ण मुद्दे शामिल होते है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन में स्वतंत्रता और समानता के साथ साथ नीति निर्माण में स्त्रियों की भागीदारी के साथ साथ स्वयं के ही उनकी अस्मिता को स्थापित कर सकती है। हालाँकि स्वतंत्रता, समानता और स्त्री अस्मिता जैसे तत्व भारतीय राजनीति के नवीन, गत्यातम्क और आधुनिकता के प्रतीक है जो कि लोकतंत्र के आधारस्तंभ का कार्य भी करते है। लेकिन बीसवीं शताब्दी में अस्मिता एवं पहचान जैसे मुद्दों ने भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण स्थिति हासिल कर ली थी। व्यवहार में पहचान आधारित मुद्दों का प्रयोग ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रवादी आन्दोलन को कमजोर करने तथा ब्रिटिश शासन की भारत में वैधता के साथ-साथ उसकी अक्षुणता बनाये रखने के लिए धार्मिक आधार पर मुस्लिम एवं जातीय आधार पर दलितों के लिए प्रयोग किया।[8]

इतिहास लेखन में बौद्धिक सत्र पर साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने राष्ट्रवादी इतिहास लेखन को संतुलित करने के लिए किया है।[9] वैचारिक स्तर भारतीय इतिहास लेखन में लिंग आधारित मुद्दों को सब-आल्टरन व नारीवादी इतिहासकारों ने नयी पहिचान दी है।[10]

राजस्थान की रियासतों में जनांदोलन दो चरणों में हुए। पहले चरण में कृषक आदिवासी आन्दोलन हुए जो लगातार प्रजामंडल आंदोलनों के साथ भी सामानांतर रूप से चलते रहे।[11] ये आन्दोलन रियासतों शासकों के शोषण भू अधिकारों और विभिन्न तरह के लाग-बाग के खिलाफ संगठित होते रहे और मांगों के पूरे हो जाने के पश्चात जल्दी ही विघटित हो जाते थे।[12] इन प्राथमिक स्तरों आन्दोलनों में भी महिलाओं की पर्याप्त भागीदारी रही। 1918-22 ईस्वी में उदयपुर के बिजोलिया, बेगू, बूंदी में वरड, अलबर में नीमुचाना, 1922-24 के मध्य उदयपुर में काचेला, पारसोली में 1922 ईस्वी में खेतड़ी 1925 और 1935 में सीकर, 1939 में शेखावटी और 1941 में बीकानेर रियासत के कागद और दूधवाखारा कृषक आन्दोलन के साक्षी बने।[13] अधिकांश कृषक विद्रोहों में भाग लेने वाली महिलाये निम्न कृषक या आदिवासी समुदाय से आती थी लेकिन इन आंदोलनों की नेतृत्वकर्ता महिलाये मध्यम वर्ग से आती थी जिनके परिजन पहले से ही राजनीतिक आंदोलनों से जुड़े हुए थे।[14] इस प्रकार ये आन्दोलन वास्तव में स्वत: स्फूर्त प्रकार के होते थे जिन्हें ऊपर से नेतृत्व देने का प्रयास किया जाता था।[15] उदयपुर राज्य के बेगू, वरड, और बिजोलिया में श्रीमती अंजना देवी, नारायणी देवी तथा सत्यभामा देवी ने भाग लिया। अंजना देवी ने तो अमरगढ़ ठिकाने के मीना आदिवासियों के समर्थन में सत्याग्रह किया था।[16] अलबर रियासत में श्रीमती महिमा देवी किंकर के नेतृत्व में महिलाओं ने कृषक आन्दोलन में भाग लिया।[17] शेखावटी, सीकर जैसे ठिकाने जयपुर रियासत के अधीन थे यहां के किसान भी ठिकानेदारों की ज्यादतियों से पीड़ित थे इसी कारण इस क्षेत्र में होने वाले कृषक आंदोलनों में जमना देवी बजाज और रत्न देवी शास्त्री के नेतृत्व में स्त्रियों ने भागीदारी की।[18] इन आन्दोलनों की प्रकृति प्राक-औपनिवेशिक की थी जिसमें स्त्री अस्मिता जैसे आधुनिक प्रकार के मुद्दों की खोजन करना उचित नहीं होगा। पहले चरण के कृषक आंदोलनों की पद्धति गांधीवादी पर आधारित थी जो सर्वदा महिलाओं के अनुकूल थी।[19]

राजनीतिक जनजागरण का दूसरा चरण मुख्य धारा की राजनीति से जुड़ा हुआ है। इस चरण का नेतृत्व नवोदित मध्यम वर्ग के हाथ में था। इसी वर्ग के द्वारा विभिन्न रियासतों में प्रजामंडलों की स्थापना हुई। प्रजामंडल के द्वारा व्यवस्थित प्रकार से विभिन्न रियासतों में जनाधिकारों को लेकर तथा शासन व्यवस्था में सुधार करते हुए उत्तरदायित्वपूर्ण बनाये जाने की मांगों को लेकर हुई।[20] प्रजामंडल आंदोलनों के अधिकांश नेता और नेत्रिया पहले चरण के कृषक आंदोलनों में भाग ले चुके थे। नागरिक अधिकारों को लेकर प्रजामंडल के द्वारा चलाये गए सत्याग्रहों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी रही। महिलाओं ने गांधीवादी का अनुसरण करते हुए रचनात्मक कार्यों में भागीदारी की इस रचनात्मक कार्यों में महिला मंडलों की स्थापना करना तथा शिक्षा के लिए रात्रि

पाठशालाओं का आयोजन करना शामिल था।[21] अन्य कार्यों में खादी, चरखा, छुआछुत निवारण जैसे कार्य शामिल थे। प्रतापगढ़ रियासत में महिला शिक्षा के लिए एक महिला विद्या मंदिर की स्थापना हुए जिसमें शांतिबाई पोद्दार ने प्रतिदिन 2 घंटे अध्यापन करने का वचन दिया।[22]

कमला कुमारी के द्वारा मुंबई केम्प झालावाड़ से एक पत्र उदयपुर के प्रांतीय महिला कार्यालय को लिखा गया जिसमें महिलाओं में नवीन चेतना फैलाने के लिए 2 मई को महिला दिवस मनाने के लिए प्रस्ताव रखा गया इसके साथ इस पत्र में महिलाओं के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों की मांग की गई।[23] इसी क्रम में अलवर प्रजामंडल की स्थापना 10 मई 1938 को हुई जिसकी अध्यक्षता श्रीमती सुशीला देवी के द्वारा की गई।[24] श्रीमती शांति गोठाडीया ने 1943 में प्रजामंडल के रामगढ़ अधिवेशन के मंच से पदा प्रथा त्यागने का प्रस्ताव रखा। उस समय यह एक क्रान्तिकारी कदम था इस कार्य के कारण उन्हें उनके स्वजनों के विरोध का सामना करना पड़ा।

ऐसी ही रचनात्मक कार्यक्रम के रूप में वनस्थली विद्यापीठ की स्थापना 1929 में जयपुर प्रजामंडल के गांधीवादी नेता पं. हीरालाल शास्त्री के द्वारा की गई। उनके इस कार्य में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रत्न शास्त्री का योगदान भी रहा। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य ऐसे कर्मठ कार्यकर्ताओं का निर्माण करना था जो राष्ट्र प्रेम की भावना से ओतप्रोत हो इसके अलावा महिलाओं में शिक्षा के माध्यम से जागरूकता पैदा करना था। जयपुर प्रजामंडल की स्थापना 1931 में भी रत्न शास्त्री का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने रियासती राज्य के विरूद्ध राज्य के स्वाधीनता सेनानियों की भूमिगत गतिविधियों में सहयोग ही नहीं दिया अपितु उन्होंने रियासती शासक व अंग्रेजी राज की बिना किसी भय के वनस्थली में अनेक कार्यकर्ताओं व विद्यार्थियों को राजस्थान सहित अन्य राज्यों में जाकर आन्दोलन में सम्मिलित होने का समर्थन किया।[25]

अजमेर ब्रिटिश शासन के द्वारा सीधे प्रशासित होता था। 1930 के नमक सत्याग्रह में स्कूल छात्राओं और महिलाओं ने बड़े उत्साह के साथ भागीदारी की। इसी आन्दोलन में सोफिया हाई स्कूल की छात्र प्रेमलता भार्गव व राजरानी भार्गव के द्वारा सत्याग्रह का नेतृत्व किया इसीलिए दोनों छात्राओं को स्कूल से निष्कासित कर दिया गया यह पहला अवसर था जब किसी आन्दोलन में स्कूली छात्राओं ने भाग लिया था। 1928 में जानकी देवी बजाज और सत्या देवी कलांची के द्वारा अजमेर में अखिल भारतीय महिला मंडल की बैठक का आयोजन किया और राजस्थान के रियासती राज्यों में महिला के लिए मताधिकार की मांग की गई। यह ऐसा पहला अवसर था जिसमें महिलाओं के राजनितिक समानता की बात किसी महिला मंच से की गई।[26]

स्त्री अधिकारों और महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में आर्य समाज और पत्रकारिता

का महत्वपूर्ण योगदान रहा। आर्य समाज की पहुंच समस्त रियासतों पर थी। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायियों में सामंतों से लेकर आम कृषक वर्ग के लोग भी शामिल थे। यही कारण था कि ''आर्य समाज'' को ''देश हितैषिणी सभा'' और ''वाल्टरकृत हितकारिणी सभा'' की तुलना में व्यापक जनाधार मिला हुआ था। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य सामाजिक सुधारों के माध्यम से हिन्दू पुनरुत्थान का था। आर्य समाजियों ने प्राचीन हिन्दू धर्मग्रन्थों और धर्मशास्त्रों के आधार पर स्त्रियों की सामाजिक समानता की बात की। इन्होंने स्त्री शिक्षा, बाल विवाह का विरोध तथा विधवा विवाह का समर्थन किया। आर्य समाज ने समाज सुधारों को व्यवहारिक स्तर पर प्रचार, उपदेशों, व्याख्यानों तथा लेखों के माध्यम से किया था। इसी दिशा में आर्य समाज की स्थापना 13 फरवरी 1981 को अजमेर में की गई इसके साथ ही इस संस्था की शाखायें अन्य शहरों जैसे जोधपुर, बीकानेर व चुरू में भी खोली गई।[27] स्वयं स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने उपदेशों व भाषणों के माध्यम से तर्क व वैज्ञानिकता के जरिये विधवा विवाह का समर्थन किया। उन्होंने ऋग्वेद में वर्णित सूक्तों के माध्यम से विधवा पुनर्विवाह को वैधता देने की बात कही।[28] स्वामी जी ने शिक्षा को स्त्री उद्धार के लिए शिक्षा को जरूरी माना। उनके अनुसार शिक्षा ही वह माध्यम है जो स्व अस्मिता का ज्ञान कराती है। स्वामीजी के उपदेशों से प्रभावित होकर जोधपुर के शासक जसवंत सिंह द्वितीय (1873-1896 ईस्वी) व उनके छोटे भाई तथा राज्य के प्रधानमंत्री प्रतापसिंह ने लोगों को शिक्षित करने के लिए ''नोबल्स स्कूल'', ''वैदिक कन्या पाठशाला'', ''आर्य अनाथालय'' तथा ''वनिता आश्रमों'' की स्थापना में रूचि ली।[29]

वनिता आश्रमों में विधवा महिलाओं को भरण पोषण व जीविकोपार्जन की शिक्षा दी जाती थी। ''तरूण राजस्थान'' में बीकानेर के वनिता आश्रम के प्रबंधक जयभगवान की प्रशंसा में लेख लिखे गए। आर्य समाज का समाज पर अधिकतम प्रभाव पत्रकारिता के माध्यम से पड़ा। इस दिशा में ''आर्य मार्तंड'' नामक समाचार पत्र का उल्लेखनीय योगदान रहा। इस समाचार पत्र में सताध सुधार सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित नहीं किये गये बल्कि ब्राह्मण, राजपूत और महाजनों जैसी उच्च जातियों की विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह के लिए नि:शुल्क विज्ञापन छपवाए गए।[30] आर्य समाज ने अपने वार्षिक अधिवेशनों में इस सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध भजनों, उपदेशों, व्याख्यानों के माध्यम से समाज में जागरूकता पैदा करने के लिए धनाढ्य लोगों से अपनी मुहीम को आगे बढ़ने के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करने का संकल्प किया गया।

आर्य समाज की विधवा पुनर्विवाह की मुहीम के प्रति समाज की प्रतिक्रिया मिलीजुली ही रही। 1911 की जनगणना के अनुसार सर्वाधिक विधवा महिलायें ब्राह्मण, राजपूत और महाजन जैसी उच्च जातियों की थी।[31] जबकि सर्वाधिक विधवा विवाह, जाट, मीणा और निम्न जातियों के दर्ज किये गय हालांकि इन निम्न जातियों में विधवा

पुनर्विवाह जैसी प्रथाए पहले से मौजूद थी।[32] लेकिन आर्य समाज ने निम्न जातियों की इन प्रथाओं को शास्त्रसम्मत वैधता देने का प्रयास किया। इस दौरान रियासमी शासकों का रूख रूढ़िवादिता के पक्ष में था उन्होंने विधवा पुनर्विवाह और विधिसम्मत बनाने का प्रयास नहीं किया उल्टे निम्न जातियों के ''नाता'' और ''ठौर बिठाई'' जैसी प्रथाओं पर कर व शुल्क लगाकर हतोत्साहित करने का प्रयास किया।[33] आर्य समाज के प्रचार के प्रभावस्वरूप रियासती जनता की मनोदशा में परिवर्तन आया रहा था इस तथ्य की पुष्टि जोधपुर ''महकमा खास'' में सामान्य लोगों के द्वारा दायर की गई उन अर्जियों व प्रार्थना पत्रों से होती है जो पुनर्विवाह के लिए की गई थी।[34]

महिला जागरूकता को पैदा करने में समाचार पत्रों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। राजस्थान के सन्दर्भ स्त्री अस्मिता सम्बन्धी प्रश्नों को उठाने में ''त्यागभूमि'' नामक समाचार पत्र की अग्रणीय भूमिका रही। यह पत्र 1927 में अजमेर से प्रख्यात स्वंत्रता सेनानी हरिभाऊ उपाध्याय के द्वारा निकाली गयी। इसके प्रत्येक अंक में 3 पृष्ठ महिलाओं के मुद्दों से संबंधित होते थे। ये पृष्ठ निरंतर रूप से आधी दुनिया नामक शीर्षक से प्रकाशित हुए।[35] इस प्रकार महिलाओं ने कृषक-आदिवासी से लेकर मुख्यधारा की राजनीति के प्रजामंडल आंदालनों में प्रत्येक प्रकार से उपस्थिति दर्ज ही नहीं करायी बल्कि पुरूषों के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर भाग लिया। इनकी सभाओं की अध्यक्षता से लेकर धरनों, जुलूसों, सत्यग्राहों से बढ़कर पुलिसया बर्बरता और जेल जाने तक को जिस अदम्य साहस से सहन किया यह तथ्य इतिहास के अमिट पन्नों में दर्ज हो गया। महिलाओं के इस संघर्ष के बावजूद भी उनके अस्तित्व, विकास और सबलीकरण के मुद्दे इन आंदोलनों में अधूरे रूप से ही उठाये गए। इस दौरान महिलाओं के केवल सामाजिक मुद्दों को ही उठाया गया। सामाजिक मुद्दों में भी शिक्षा, विधवा विवाह, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, बहुविवाह, कन्या वध और सती प्रथा पर ही ध्यान केन्द्रित रहा।[36] सती प्रथा, दास प्रथा और कन्यावध जैसी प्रथाओं पर ब्रिटिश सरकार के दबाव में रियासती शासकों ने इन प्रथाओं पर नियंत्रण लगाने का प्रयास किया।[37] स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यक्रम स्त्रियों के विषय से संबंधित ही बनाये गए और यही कारण है कि चिकित्सा, तकनिकी और वकालत जैसे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति नगण्य ही रही।[38] आर्य समाज ने लड़कियों और लड़कों के सहशिक्षा का विरोध करते हुए पृथक शिक्षा देने का समर्थन किया।[39] दहेज प्रथा और डाकन प्रथा ज्योंकि त्यों बनी रही।

महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की तुलना में उन्हें अधिकतम स्वतंत्रता देना अधिक महत्वपूर्ण है। यह स्वतंत्रता महिलाओं के आर्थिक और राजनीतिक समानता से संभव हो सकती है। सुरक्षा का मुद्दा पित्रशताब्दी मानसिकता में लौटा देगा क्योंकि सुरक्षा की जिम्मेदारी पुरूषों के हाथ में होगी। स्वतंत्रता पुरूषों के अहम् पर चोट कर सकता है। अत: आर्थिक और राजनीतिक समानता की बात राजस्थान के जनजागरण

में किसी भी संगठन और आंदोलनों में नहीं उठाई गई। स्वतंत्रता के पश्चात डॉ. भीमराव अम्बेडकर के द्वारा प्रस्तावित विधेयक जैसे 'हिन्दू कोड बिल' और हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक संसद में अधिनियम नहीं बन पाये। इन विधेयकों में हिन्दू समाज में व्यापक सुधार किये जाने थे जो दलितों और महिलाओं की आर्थिक और राजनीतिक समानता से सम्बन्धित थे।[40] आने वाले समय में ये विधेयक टुकड़ों में कानूनों का रूप ले सके। इन विधेयको का विरोध करने वाले अधिकतम नेता उसी वर्ग से आते थे जो कभी ब्रिटिश शासन और सामंती शासन के खिलाफ महिलाओं की भागीदारी को अनिवार्य मानते थे लेकिन महिलाओं के अदम्य बलिदान को कठिन संघर्ष के फल यानि 'स्वतंत्रता' को उन्हें देने के पक्ष में नहीं थे। आज भी आधी आबादी बगैर किसी वेतन के समाज में विकास में योगदान करती है और आधी आबादी के किसी उचित प्रतिफल के बिना समाज का सम्पूर्ण विकास असम्भव है?[41] स्त्रियों की अस्मिता के यही प्रश्न आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाये हुए है।

सन्दर्भ

1. *कालूराम शर्मा एवं प्रकाश व्यास, राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण, पृ. 496*
2. *वही, पृ. 534*
3. *पेमाराम, राजस्थान में किसान आन्दोलन, पृ. 38*
4. *प्रो. ब्रजकिशोर शर्मा, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, अंक 28, पृ. 235*
5. *प्रो. ब्रजकिशोर शर्मा, राजस्थान में कृषक आन्दोलन, पृ. 45*
6. *पूर्वोक्त, पृ. 236*
7. *सक्सेना, आर.के., सोशल रिफॉर्म्स इन्फेंटीसायड एंड सती, पृ. 25,26,45*
8. *हशन, मुशीरुल, कम्युनल पोलटिक्स, अध्याय 6 और 7*
9. *शुक्ला, आर.एल., आधुनिक भारत का इतिहास (संपा.) पृ.55*
10. *गुहा, रंजीत, एन इंडियन हिस्ट्रोग्राफी ऑफ इंडिया, अ नाइनटीन सेंचुरी एजेंडा एंड इट्स इम्पलीकेशन, पृ. 122*
11. *पेमाराम, राजस्थान में किसान आन्दोलन, पृ. 86*
12. *सक्सेना, के.एस., राजस्थान में राजनीतिक जनजागरण, जयपुर 1972, पृ. 64-65*
13. *डॉ. विनीता परिहार, राजस्थान में प्रजामंडल आन्दोलन, जयपुर पृ. 9, 13 व 17*
14. *डॉ. सोभंग माथुर, स्ट्रगल फॉर रेस्पोंसेवल गवर्नमेंट इन राजस्थान पृ. 34, 34*
15. *सुमित सरकार, आधुनिक भारत, पृ. 61, 62*
16. *आर.एन. चौधरी, अंजना देवी चौधरी, अजमेर, 1972, पृ. 64, 65*
17. *सुमनेश चौधरी, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी*
18. *पेमाराम, शेखावटी में किसान आन्दोलन*
19. *जे.पी. सूद, आधुनिक राजनितिक विचारों का इतिहास, मेरठ, पृ. 167*

20. *सक्सेना, के.एस., राजस्थान में राजनीतिक जनजागरण, जयपुर, 1992, पृ. 90*
21. *डॉ. विनिता परिहार, राजस्थान में प्रजामंडल आन्दोलन, पृ. 57*
22. *वागड़ के स्वतंत्रता सेनानियों का 57वें स्वतंत्रता दिवस पर विनम्र स्मरण, दैनिक भाष्कर का विशिष्ठ संस्करण, अगस्त 2004*
23. *वही*
24. *हरिनारायण सैनी, आजादी का आन्दोलन और अलवर, अलवर जिला स्वाधीनता स्वर्ण जयंती समारोह समिति, 1928, पृ. 222*
25. *राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के साक्षी, राजस्थान राजकीय अभिलेखगार, बीकानेर, अंक 4, पृ. 71 से 74*
26. *सक्सेना, के.एस., पूर्वोक्त, पृ. 115*
27. *महर्षि घासीराम, दयानंद सरस्वती का जीवन चरित, अंक 2 पृ. 180*
28. *डॉ. मेघना शर्मा, दयानंद एंड हिज कांसेप्ट ऑफ नियोग, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस (पब्लिश्ड प्रोसेडिंग), अंक 27, पृ. 145*
29. *जोधपुर रिकार्ड्स, हकीकत बही संख्या 31, पृ. 333, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
30. *आर्य मार्तंड 18 अप्रैल 1929*
31. *डॉ. आर.के., सक्सेना, एजुकेशन एंड सोशल एमुलियरेसन ऑफ वीमेन, जयपुर, 1972, पृ. 107*
32. *'नाता', 'पल्ले लगाई', 'घर में घालना' तथा 'ठौर बिठाई' (ब्रज) जैसी रिवाजें बी.एल. पनगाडीया एवं एन.सी. पहाड़िया (संपा.) राजस्थान पोलिटी, इकॉनमी एंड सोसाईटी, पृ. 190-200*
33. *निम्न जातियों पर बीकानेर राज्य में ''रीठ'' तथा जोधपुर में ''नाताकागली'' नामक कर वसूले जाते थे। कागदा री बही संख्या 12, वि. सम्वत 1859, पृ. 69, 70; मारवाड़ मर्दशुमारी रिपोर्ट 1891, पृ. 40 व 105*
34. *महकमा खास, जोधपुर, फाइल संख्या 2/10, वस्ता सं. 6, 1938-1935, रा.रा. अभि., बीकानेर*
35. *त्याग भूमि, फाल्गुन सम्वत 1985*
36. *डॉ. आर.के. सक्सेना, पूर्वोक्त, पृ. 131*
37. *कालूराम शर्मा और प्रकाश व्यास, पूर्वोक्त, पृ. 477-485*
38. *जी.सी. वर्मा, मॉडर्न एजुकेशन इन राजस्थान, जयपुर, 1985, पृ. 425*
39. *रामलखन शुक्ला (संपा), आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 325*
40. *विपिन चन्द्र, स्वतंत्रता के पश्चात भारत, पृ. 130*
41. *डॉ. मेघना शर्मा, ''महिलाओं के श्रम का मोल कौन आंकेगा?'' दैनिक युगपक्ष, बीकानेर संस्करण, 2 मई 2018*

 ISSN 2321-1288

साम्राज्यवादी दौर में उदारवादी शासक : महाराज राणा भवानीसिंह

डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल

महाराज राणा भवानीसिंह राजपूतना की एक छोटी रियासत झालावाड़ के शासक थे। सन् 1938 में कोटा राज्य का विभाजन कर बनाये गये इस राज्य के निर्वाण में कोटा के राज राणा और वास्तविक शासक झाला जालिमसिंह की निर्णायक भूमिका थी। जालिम सिंह ने 1817 में ब्रिटिश सरकार का संरक्षण स्वीकार करते समय संधि में यह पूरक धारा जुड़वाई कि कोटा राज्य के प्रमुख महाराव होंगे, लेकिन राज्य की प्रशासनिक शक्तियां जालिमसिंह तथा उसके वंशजों के हाथों में रहेगी।[1] सन् 1824 में जालिमसिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र माधोसिंह एवं मदनसिंह ने क्रमशः शासन की बागडोर संभाली लेकिन महाराव किशोर सिंह एवं राजराणा मदनसिंह में लगातार बढ़ते विवाद के समाधान हेतु ब्रिटिश सरकार ने जालिम सिंह के उत्तराधिकारियों के लिए नये राज्य का गठन किया। इसमें शाहबाद, खानपुर, अकलेरा, मनोहरथाना, रटलाई, झालरापाटन आदि के 17 परगने शामिल थे। लेकिन बाद में झालावाड़ नरेश महाराज राणा जालिमसिंह (1875–1896) की स्वतंत्र नीतियों से नाराज होकर ब्रिटिश सरकार ने उन्हें अपदस्थ किया तो कोटा राज्य की मांग पर उसके 14 परगनें लौटा दिये। जालिम सिंह के कोई संतान न होने के कारण उन्हीं के वंशजों में से एक फतेहपुर के जागीरदार ठाकुर छत्रसाल के पुत्र भवानीसिंह को पुनगर्ठित झालावाड़ राज्य का शासक बनाया गया। नये राज्य में चौमहला, झालरापाटन तहसील के अलावा सुकेत तहसील का दक्षिणी हिस्सा शामिल था।[2] प्रशासन की समस्त शक्तियां प्रदान करते हुए राजपुताना एजेन्ट सरआर्थर मार्टिंडेल ने 6 फरवरी 1899 को भवानीसिंह को गद्दी सौंपी। इस पद पर वे 13 अप्रेल 1929 तक मृत्युपर्यन्त रहे।

महाराज राणा के शासन का दीर्घकाल राज्य राष्ट्र एवं अन्तरराष्ट्रीय मंच पर कई बदलावों का गवाह रहा। परम्परा से राजतंत्रीय एवं सामन्ती मूल्यों के वाहक होते हुए भी भवानीसिंह झालावाड़ जैसी छोटी सी रियासत में सकारात्मक बदलाव प्रगतिशील एवं उदारवादी मूल्यों के संवाहक बन कर उभरे। उन्होंने 1904 से कई बार पश्चिमी देशों की यात्राएं की और उन देशों में हो रही तकनीकी, वैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रगति को समझने और यथासंभव उसका अपनी प्रजा के हित में अनुकरण करने की कोशिश की। इस पत्र में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में समाहित ऐसे अनेक आयामों पर प्रकाश डालने की कोशिश की जायेगी जिन पर इतिहासकारों का समुचित ध्यान जाना चाहिए। शासन की लगाम थामने के साथ ही भवानी सिंह को दोहरे संकट का सामना करना पड़ा। राज्य के 17 परगनों में से 14 परगने कोटा राज्य को दे दिये गये परिणाम स्वरूप राज्य का क्षेत्रफल 2695 वर्ग मील से घटाकर लगभग 809 वर्गमील, जनसंख्या 3,00,000 से घट कर 96,198 (1911 की जनगणना के अनुसार) और आय 15 लाख रुपये वार्षिक से घटकर लगभग 4.25 लाख रह गई। दूसरा 1899 से 1901 के बीच राज्य में भंयकर अकाल पड़ा।[3] जो आज भी झालावाड़ की लोक स्मृति में छप्पन (सम्वत् 1856) के अकाल के नाम से जीवित है। महाराज राणा ने शुरू से लगातार राज्य के विघटन को रद्द करने की भारतीय गर्वनर जनरलों से मांग की और अपनी आर्थिक विपत्ति से भी लगातार अवगत कराते रहें। दूसरी ओर राज्य में पड़ने वाले अकाल का सामना करने के लिए उन्होंने संवेदनशीलता और उदारता का परिचय देते हुए स्वयं को प्रजावत्सल सिद्ध किया। राज्य में तुरन्त राहत कार्य शुरू कर दिये जिससे हजारों लोगों की जान बच गई। भारी मात्रा में अनाज का आयात कर प्रचलित दरों से काफी कम मूल्य में जनता को अनाज उपब्लध कराया। यही नहीं जनता पर बकाया 3,64,627 (ब्रिटिश मुद्रा) की राजस्व राशि को माफ कर दिया।[4] तत्परता से उठाये गये राहत कार्यों के परिणाम स्वरूप राज्य का खजाना खाली हो गया और किसी भी प्रकार और अतिरिक्त सहायता के अभाव में आगामी दो दशकों तक भी राज्य की अर्थव्यवस्था अकाल के भायावह प्रभावों से नहीं उभर पाई।[5] लेकिन भवानीसिंह का उदार शासन यथावत कायम रहा।

राज्य की प्रगति और ब्रिटिश सरकार के साथ तादात्म्य स्थापित करन के लिए भवानीसिंह ने सन् 1900 में स्थानीय डाक व्यवस्था को समाप्त करते हुए औपनिवेशिक डाक व्यवस्था को लागू कर दिया तथा सन् 1901 में राज्य की टकसाल बन्द कर दी गई। अब राज्य में एक मात्र वैध मुद्रा ब्रिटिश मुद्रा थी। इसके साथ ही मापतोल की ब्रिटिश पद्धति अपना ली गई।[6] नवाचार अपनाते हुए वे अपनी विरासत और प्रजा को नहीं भूले।[7] राजकीय अदालतों और कार्यलयों में नागरी लिपि अपनाना तथा कई छोटे–छोटे उपकरों को समाप्त कर जनता को संतुष्ट करना इसी तरह के उदाहरण है।

महाराज राणा भवानीसिंह स्वास्थ्य लाभ के लिए अप्रेल 1904 से नवम्बर 1904 तक इग्लैण्ड गये, जहां से उन्होंने यूरोप के कई देशों की यात्रा की। इस दौरान उन्होंने कई वैज्ञानिक संस्थानों, कला संस्थानों, ऐतिहासिक स्थलों और कारखानों को देखा।[8] इस यात्रा के देनन्दिन संस्मरणों को उन्होंने स्वयं ट्रेवल पिक्चर्स नामक चित्रमयी डायरी के रूप में लिखा। यह डायरी उनके व्यक्तित्व के कई सकारात्मक, साहित्यिक, बौद्धिक एवं सर्जनात्मक आयामों को उजागर करती है। इस यात्रा ने उनके अनुभव का दायरा

बढ़ाया और कई क्षेत्रों में दृष्टिकोण को व्यापक किया। इसके बाद उन्होंने अपनी प्रजा को सुधारने के बहुआयामी प्रयास किये। छोटी सी रियासत के शासक होते हुए भी उनके व्यक्तित्व का प्रभाव देश-विदेश में ज्ञात था। यही कारण है। कि सन् 1912 में जब वे दूसरी बार इंग्लैण्ड यात्रा पर गये तो वहां पर उनकी गतिविधियों, भेंटो, मुलाकातों को प्रिन्ट मीडिया ने प्रमुखता से छापा। इस सामग्री के अध्ययन से भी भवानीसिंह के व्यक्तित्व एवं प्रशासनिक कुशलता, ज्ञानपिपासा, सहृदयता जैसे कई पक्ष उजागर होते है। ट्रेलर्स पिक्चर्स एवं 1912 की यात्रा सम्बन्धी प्रेस कटिंग्स के अध्ययन से स्पष्ट होता कि पश्चिमी देशों के इतिहास, संस्कृति, रहन-सहन, प्रकृति, बागवानी, बगीचे, तकनीकी और वैज्ञानिक आविष्कार, कल-कारखाने, स्थापत्य, कला, साहित्य, नाटक, संगीत, इमारतें, राजनीतिक संस्थायें सब कुछ को उन्होंने पूरी जिज्ञासा और रूचि से देखा लेकिन अंधानुकरण किसी का नहीं किया। उन्हें स्वदेश, उसकी फितरत और उसकी खूबियों का भी निरन्तर अहसास था इसीलिए वे कई जगहों पर पूरब-पश्चिम की तुलना करते जाते है।[9]

भवानीसिंह ने 9 जुलाई 1912 को लन्दन काउन्टी कौन्सिल की उस साप्ताहिक बैठक ने भाग लिया जिसमें लन्दन की मोटर-बस और ट्राम संचालन एवं वित्तिय प्रबंधन पर विस्तृत विचार विमर्श किया गया।[10] यही नहीं इंग्लैण्ड की वैश्विक एवं महान वैज्ञानिक संस्था रॉयल सोसायटी की 250वीं वर्षगांठ के उपलक्ष में लंदन में आयोजित किये गये सभी समारोह, वैज्ञानिक उपकरण प्रदर्शिणियों उत्सवों और भोजों में भवानीसिंह ने सोसायटी के भारतीय प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। दुनिया भर से इस समारोह में भाग लेने आये हजारों प्रतिनिधयों में महाराज राणा भवानीसिंह भारतीय वेशभूषा एवं आभूषणों के कारण आकर्षण का केन्द्र रहे।[11]

ब्रिटिश न्याय व्यवस्था में रूचि दिखाते हुए महाराज राणा ने 17 जुलाई 1912 को अपीलीय न्यायालय में उपस्थित होकर न्यायाधीश कैनेडी के सामने राजस्व अपील मामले में सोलिसिटर जनरल का भाषण सुना। वहां के प्यूपल वेस्टमिस्टर गेजेट पॉल, मॉल गजेट यार्कशायर हेराल्ड जैसे कई अखबारों ने इस खबर को प्रमुखता दी।[12] महाराज राणा को पूर्वी एवं पश्चिमी दोनों शैली के साहित्य, संगीत नृत्य एवं नाटकों में रूचि थी। यही वजह है कि उन्होंने ब्रिटेन प्रवास के दौरान आयोजित होने वाले सम्बन्धित समारोहों में भाग लेने का मौका शायद ही कभी छोड़ा हो। रॉयल एकेडमी ऑफ म्यूजिक परिसर का उद्घाटन समारोह (डेली टेलीग्राफा 24 जून 1912) हो या पायट्री सोसायटी का संगीत कार्यक्रम (कांसिग्टन न्यूज 12 जुलाई 1912) अरेबियन नाइट्स बॉल (पॉल, मॉल गजेट 13 दिसम्बर 1912) या फेरेन्डोल नामक कृषक सामूहिक नृत्य का आयोजन सभी में भाग लिया। उन्हें अंग्रेजी साहित्य में रूचि थी लेकिन संस्कृत साहित्य की

गहराईयों व सम्पन्नता की चेतना भी उनमें कूट कूट कर भरी हुई थी। लन्दन में उन्होंने इंडियन आर्ट ड्रामेटिक एंड फ्रेन्डली सोसायटी द्वारा कालिदास पर आयोजित बैठक की अध्यक्षता की। कालिदास द्वारा 2000 साल पहले लिखे गये नाटकों की गरिमा का कलात्मक सम्पादन की विद्यमान नाटकों की तुलना नहीं की जा सकती।

कालिदास को भारत का शेक्सपियर कहना उन्हें अवांछनीय लगा क्योंकि कालिदास और शेक्सपियर दोनों अमर साहित्यकार दो अलग-अलग परिवेश एवं अलग-अलग युग में हुए थे। उनका कहना था कि अंग्रेजी छात्रों के लिए संस्कृत पढ़ना उतना ही जरूरी है जितना यूनानी और रोमन भाषा क्योंकि यह विचारों और भावनाओं का खजाना है।[13] संस्कृत ही नहीं हिन्दुस्तानी (हिन्दी) को भी अन्तरराष्ट्रीय मंच पर उचित स्थान दिलाना चाहते थे। इसीलिए लंदन के पोलिग्लोट (बहुभाषी) क्लब में हिन्दुस्तानीयों को शामिल करने का प्रस्ताव रखा था, ताकि भारत और ब्रिटेन के सम्बन्धों की दृष्टि से यह क्लब वैश्विक भाईचारा व शान्ति में योगदान दे सके।[14] व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में स्वदेशी एवं विदेशी भाषाओं की भूमिका के महत्व को समझते हुए ही महाराज राणा ने राज्य के विद्यालयों में हिन्दी, उर्दू, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था की थी।[15]

झालावाड़ राज्य में शुरू से ही अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को अपना लिया गया था। यहां 1883 में बालिका स्कूल एवं 1887 से हाई स्कूल स्तर की शिक्षा दी जा रही थी। भवानीसिंह के शासन काल में शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। अपने ज्ञान एवं अनुभव की व्यापकता के साथ राज्य की प्रजा की उन्नति के लिए व्याकुलता के कारण भवानीसिंह ने राज्य में शिक्षा की उन्नति पर बहुत अधिक बल दिया। इस क्षेत्र में वे कई मायनों में अपने समय से आगे थी। आजादी के 70 साल बाद भी राज्य की जनता को मुफ्त शिक्षा एवं अन्य सुविधायें उपलब्ध नहीं करा पाया है लेकिन भवानीसिंह के राज्य में विद्यार्थियों को नि:शुल्क शिक्षा के अलावा पाठ्य पुस्तकें भी उपलब्ध कराई जाती थी। योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति दी जाती थी तथा क्रिकेट एवं टेनिस खेलने वाले बालकों को सामग्री उपलब्ध कराई जाती थी।[16] वे संवेदनशील एवं सुशासन के लिए शासक का जनता में मेल जोल जरूरी समझते थे।[17] इसीलिए उन्हें अपने राज्य एवं जनता की जमीनी स्तर पर समझ थी। राज्य में सौंधिया जाति के विशेष पिछड़ेपन को देखते हुए उन्होंने सौधिया बाहुल्य क्षेत्र डग में राजेन्द्र सौधिया स्कूल खोला था।[18] स्त्री शिक्षा के प्रति उनके उत्साह और लगन का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि इसके प्रोत्साहन के लिए राज्य की ओर से हर छात्रा को प्रतिवर्ष 'साड़ी' दी जाती थी।[19] आज सरकारें स्कूटी देकर इतिहास दोहरा रही है। इस प्रकार अल्प संसाधनों वाली छोटी सी रियासत में महाराज राणाा शिक्षा पर बड़ी राशि खर्च की जिसके परिणाम स्वरूप 1904-05 में

राजपूताना राज्यों में साक्षरता में 7वें स्थान पर था जिसकी 3.3 प्रतिशत जनता साक्षर थी।[20] शिक्षा में व्यक्तिगत रूचि के कारण उन्होंने कई नवाचार किये। इसी क्रम में 1925 में दरबार हाईस्कूल झालरापाटन में ऑल्ड ब्वॉयज असोसियेशन का गठन किया गया था जिसके संरक्षक स्वयं महाराज राणा भवानीसिंह थे। इस संस्था के माध्यम से उन्होंने पूर्व छात्रों के माध्यम से समाज को शिक्षा व्यवस्था में शामिल करने का काम किया और इसे संस्था नहीं, बल्कि आंदोलन का रूप दिया।[21] महाराज राणा के पूर्ण प्रयासों के बावजूद वित्तीय संकट के चलते राज्य को कई स्कूल बंद करने पड़े।[22] जिसे राज्य का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है।

भवानीसिंह बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। स्थापत्य में उनकी रूचि एवं समझ को देखते हुए ही ब्रिटिश मीडिया ने उन्हें व्यावहारिक शिल्पकार कहा था। जिन्हें एक और पाश्चात्य स्थापत्य शैली के आराम व सुविधा तो दूसरी और पूर्व स्थापत्य शैली के आकर्षण एवं उपयुक्तता के महत्व की समझ थी।[23] पूर्वी एवं पश्चिमी शैली के मिश्रण से उन्होंने राज्य में कई भवन बनवाये, परमानन्द पुस्तकालय, बालिका विद्यालय एवं नाट्यशाला एवं स्वयं उनका राजमहल इसी मिश्रित स्थापत्य के चिरस्मारक है। चार मंजिला राज प्रासाद जहां एक और भव्य बैठक, भोजन कक्ष, निजी अध्ययन कक्ष, स्वागत कक्ष जैसे अनेक अधुनातन सुविधाओं से लेस है वहीं दूसरी ओर बाहरी तौर पर देखने में मुगलकालीन भव्यता एवं अलंकरण युक्त है।

राज्य के शैक्षणिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं भौतिक विकास के लिए आर्थिक सुदृढ़ता के महत्व को वे भली भांति समझते थे। वे राज्य की माली हालात से ब्रिटिश सरकार को लगातार अवगत कराते रहे। विदेश यात्रा के दौरान ब्रिटिश पूंजीपतियों को राज्य में कपास उत्पादन में निवेश के लिए आमंत्रित किया, राज्य में नागदा मथुरा रेलवे ट्रेक चालू होने के बाद क्षेत्र के व्यापार को बढ़ावा देने के लिए छत्रपुर नामक नई तहसील का गठन किया गया।[24] बागवानी तथा कृषि उत्पादन जैसे सब्जियों, फलों-फूलों, दालों आदि की बेहतर किस्मों एवं उत्पादन में सुधार को प्रोत्साहन देने के लिए कई प्रकार के पुरस्कारों की शुरूआत थी। इसी दिशा में 1907 में कृषि बागवानी प्रदर्शनी की भी शुरूआत की गई।[25] पीवत की काश्त बढ़ाने के लिए ग्राम सलोत्या एवं गोलखेड़ी में सिंचाई हेतु पम्प लगाये गये।[26]

अपनी बहुआयामी ऊर्जा को उन्होंने राज्य की भलाई और उन्नति के लिए अनवरत उपयोग में लिया। वे राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय स्तर की कई समितियों के सदस्य एवं पदाधिकारी रहे जो शिक्षा, वनस्पति शास्त्र, खगोल विज्ञान, भूगोल, कला, साहित्य, भाषाविज्ञान आदि से सम्बन्धित थी। राजतंत्रीय प्रणाली के प्रतिनिधि होते हुए भी महाराज राणा भवानीसिंह नितान्त निस्पक्षता एवं लोकतांत्रिक तरीके से शासन चलाते थे। उनके

व्यक्तित्व का आंकलन करते हुए 'राजपूत हेराल्ड' नामक जनरल ने उचित ही लिखा था:- 'राज्य में हिन्दू एवं मुसलमानों के साथ समान व्यवहार किया जाता है। लोक से दूर करने वाली वर्तमान शिक्षा प्रणाली उन पर असर नहीं कर पाई है। बहुत छोटी सी रियासत के शासक होते हुए भी अपने विवेकी एवं सहृदय गुणों ने उन्हें देश के सर्वाधिक सुसंस्कृत एवं उत्साही शासकों की अग्रिम पंक्ति में ला खड़ा किया है।[27]

इस प्रकार साम्राज्यवाद के दौर में भवानीसिंह ऐसे उदारमना, प्रगतिशील और प्रजावत्सल शासक थे, जिनके व्यक्तित्व के कई अद्‌भुत पहलुओं के उजागर करने की दरकार है। राज्य के राजकोष पर एकाधिकार होते हुए भी आर्थिक संकट में अपने तमाम निजी खर्चों को 3 हजार रुपये तक सीमित कर लेने वाले शासक भवानीसिंह ही हो सकते थे।[28] ऐसे व्यक्तित्व का अध्ययन नई पीढ़ी के लिए प्रासंगित एवं प्रेरणादायी हो सकता है।

संदर्भ

1. *बी.ए. ढोडियाल, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, झालावाड़, 1960, पृष्ठ 30।*
2. *द रूलिंग प्रिंसेस, चीफ्स एंड लीडिंग पर्सोनेज इन राजपूताना एंड अजमेर कलकत्ता, 1924, पृष्ठ 169।*
3. *अ रिप्रजेन्टेशन फ्रॉम एच.एच. महाराज राणा भवानीसिंह ऑफ झालावाड़ टू बेरॉन चेम्सफॉर्ड द वायसराय ऑफ इण्डिया, 1 जुलाई 1919, पृष्ठ 1, 6*
4. *एम्प्रेस मंथली जनरल हिज हाइनसे द राजराणा ऑफ झालावाड़ दिसम्बर 1911, प्रेस कटिंग्स ऑफ दर टूर ऑफ एच.एच. महाराज राणा भवानीसिंह ऑफ झालावाड़ 1912 पृष्ठ 2 राजकीय परमानन्द पुस्तकालय, झालावाड़।*
5. *अ रिप्रजेन्टेशन ऑफ एच.एच. महाराज राणा भवानीसिंह, उपर्युक्त, पृष्ठ 6।*
6. *रिपोर्ट ऑन द एडमिनिसिट्रेशन ऑफ द झालावाड़ स्टेट 1909 पृष्ठ 12*
7. *एम्प्रेस, उपर्युक्त*
8. *भवानीसिंह, ट्रेवल पिक्चर्स, द रिकॉर्ड ऑफ अ यूरोपियन टूर, लागंमेन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी, लंदन, 1912*
9. *उपर्युक्त, पृष्ठ 147, 150, 146, 279।*
10. *डेली टेलीग्राफ, 10 जुलाई 1912 टाइम्स, 10 जुलाई 1912, मोर्निंग पोस्ट, 10 जुलाई 1912, प्रेस कटिंग्स ऑफ द टूर ऑफ महाराज राणा भवानीसिंह, उपर्युक्त, पृष्ठ 11-12।*
11. *प्रेस कटिंग्स उपर्युक्त, पृष्ठ 13-15*
12. *उपर्युक्त, 16,22,23,26*
13. *टाइम्स 28 दिसम्बर 1912, स्टेण्डर्ड, 31 दिसम्बर 1912, मोर्निगं पोस्ट, 31 दिसम्बर 1912 मैनचेस्टर 31 दिसम्बर 1912, उपर्युक्त, पृष्ठ 57-59।*

14. *टाइम्स ऑफ इंडिया, 2 दिसम्बर 1912, प्रेस कटिंग्स, उपर्युक्त, पृष्ठ 57।*
15. *रिपोर्ट ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द झालावाड़ स्टेट, 1909, पृष्ठ 14-15,23*
16. *उपर्युक्त 14, इंपीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, भाग 14, संस्करण, 1908, पृ. 121*
17. *भवानीसिंह द्वारा 18 जुलाई 1912 को ब्रिटिश पत्रिका पॉल मॉल गजेट को दिये गये साक्षात्कार में, प्रेस कटिंग्स, उपर्युक्त, पृष्ठ 16*
18. *रिपोर्ट ऑन दी एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द झालावाड़ स्टेट, 1909, अपेन्डिक्स, 25 पृष्ठ 23*
19. *बी.एन. ढोंडियाल, उपर्युक्त, पृष्ठ 33*
20. *इंपीरियल गजेटियर, पूर्वोक्त, 121*
21. *द एनुअन रिपोर्ट ऑफ द ओल्ड ब्वायज असोसिएशन, दरबार हाईस्कूल, झालरापाटन, 31 दिसम्बर 1926, पृ. 3-4*
22. *द रिपोर्ट ऑन एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द झालावाड़ स्टेट, 1926 पृष्ठ 24 अपेंडिक्स 25, पृष्ठ 24-26*
23. *पॉल मॉल गजेट, 15 अगस्त 1912, प्रेस कटिंग्स उपर्युक्त, पृष्ठ 29*
24. *रिपोर्ट ऑन एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द झालावाड़ स्टेट, 1909, पृष्ठ 4*
25. *उपर्युक्त, पृष्ठ 4, एम्प्रेस, उपर्युक्त, पृष्ठ 2*
26. *विष्णुदास त्रिपाठी, झालावाड़ राज्य का भूगोल, पृष्ठ 42, अप्रकाशित*
27. *राजपूत हेराल्ड, करैक्टर स्कैच, एच.एच. द महाराजा ऑफ झालावाड़ 19 जुलाई 1912, प्रेस कटिंग्स, उपर्युक्त, पृष्ठ 9*
28. *अ प्रजेन्टेशन फ्रॉम एच.एच. राणा भवानीसिंह, उपर्युक्त, पृष्ठ 6-7*

शाहपुरा राज्य में उत्तरदायी शासन

श्रीमती रोशन गहलोत

शाहपुरा राज्य की स्थापना वि.सं. 1688 ई. में हुई थी। इसके पूर्व प्राकृतिक दृष्टि से मेवाड़ का ही भू-भाग होने के कारण आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से भी यह मेवाड़ राज्य के रूप में ही रहता आया है। रहन-सहन, खानपान, धार्मिक और सामाजिक सिथति, बोली आदि की दृष्टि से भी मेवाड़ और इस प्रदेश में कोई भिन्नता नहीं रही।[1] राजपूताने की रियासतों में आबादी, क्षेत्रफल और आमदनी आदि की दृष्टि से शाहपुरा की गिनती छोटी रियासतों में की जाती हैं। इसका क्षेत्रफल 405 वर्ग मील व आबादी 61000 हैं। यह एक तरह अजमेर-मेरवाड़ा तथा तीन तरफ से मेवाड़ राज्य से घिरी, मेवाड़ राज्य के वंशजों से शासित रियासत है।[2]

शाहपुरा राज्य की स्थापना के संबंध में लिखा गया है कि महाराणा अमरसिंह के तीसरे पुत्र सूरजमल का पुत्र सुजाणसिंह, महाराणा अमरसिंह के तीसरे पुत्र सूरजमल का पुत्र सुजाणसिंह, महाराणा जगतसिंह के शासन काल में शिकार की घटना तथा हीड़ खीचाने के संबंध में उठे विवाह के कारण नाराज होकर मुगल बादशाह शाहजहाँ द्वारा संवत् 1686 में उसे फुलियां की जागीर का पट्टा दिया गया। तब सुजाणसिंह द्वारा शाहजहाँ के नाम पर शाहपुरा की स्थापना की गई थी तथा संवत् 1688 पौष सुदि द्वितीया (14 दिसम्बर 1631 ई.) को राजमहल की नींव रखी गयी थी।[3]

सुजाणसिंह बादशाह की सेवा में रहते हुए अपने पुत्रों सहित धरमत के युद्ध में वीरगति को प्रापत हो गया, तब सुजाणसिंह का पौत्र तथा फतेहसिंह का पुत्र हिम्मतसिंह पांच वर्ष की अल्पायु में गद्दी पर बैठा। अल्पायु के कारण इनके काका दौलतसिंह दिल्ली में शाही सेवा में गये तथा तीन वर्ष वहां रहकर पुनः शाहपुरा आ गये। जब हिम्मतसिंह को शाही सेवा में उपस्थित होने का फरमान भेजा तो उसने शाही सेवा से इंकार कर स्वेच्छा से शाहपुरा राज्य की राजगद्दी त्याग दी। संवत् 1721 में आश्विन सुदि तृतीया को दौलतसिंह शाहपुरा की राजगद्दी पर बैठे। हिम्मतसिंह ने महाराणा से ढिकोला की जागीर प्राप्त की। औरंगजेब द्वारा गोलकुण्डा के युद्ध के समय दौलतसिंह वहीं था, जो वीरगति को प्राप्त हो गया। तब भारतसिंह शाहपुरा की राजगद्दी पर आसीन हुए। भारतसिंह द्वारा शाही सेवा में जाने के कारण उसे जहाजपुरा का परगना व बदनौर का पट्टा जागीर में प्रदान किया गया था।[4]

शाहपुरा रियासत में दोहरी शासन व्यवस्था चल रही थी। वृद्ध राजा ने अपने सारे अधिकार युवराज को सौंप दिये। शासन की सारी शक्तियां, अधिकार, महकमा खास के पास थे। स्टेट के दीवान के पास कोई अधिकार नहीं थे, वे सिर्फ पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट के सामने रियासत में होने वाली हरकतों के लिए जवाबदार होते। इनकी नियुक्ति छः महीने बाद बदलते रहते थे। जहां शासन की नींव कानूनों के आधार पर नहीं बल्कि विचित्र नियमों पर आधारित थी। ये नियम संक्षिप्त में इस प्रकार थे–[5]

थाने में या सदर में सूचना दिये बिना कोई भी सभा–सोसायटी नहीं कर सकता था।

पुलिस आज्ञा का उल्लंघन करना राष्ट्रद्रोह माना जाता था।

रियासत में पेम्पलेट, बुलेटिन नहीं छपा सकते थे।

राज्य की इजाजत के बिना पाठशाला नहीं खोली जा सकती थी।

व्यापारी धूप व बारिश के वक्त दुकानों पर पर्दे नहीं लगा सकते थे।

बाजार में व्यापारी गद्दी या तकिये नहीं लगा सकते थे।

दर्जी–नाई–मेज–कुर्सी लगाकर नहीं बैठ सकते थे।

शाहपुरा राज्य में काफी समय से चल रही प्रजामण्डल की मांग को स्वीकार कर लिया तथा बालाजी की छत्री के अलावा सभी जगह सभाएँ करने की इजाजत दे दी। शाहपुरा राज्य में उत्तरदायी शासन दिवस मनाया गया, प्रजामंडल कार्यालय पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया तथा उसके समर्थन में अनेक प्रस्ताव पारित किये।[6]

शाहपुरा रियासत में जल्दी ही लेजिस्लेटिव एसेम्बली बनाकर जनता को उसके चुने हुए मेम्बरों द्वारा राज्य के कानून बनाने तथा और भी कुछ दूसरे कार्यों में हाथ बढ़ाने का मौका दिया जायेगा। अधिकार प्राप्त युवराज ने 10 नवम्बर को हुई राज्यसभा में बजट का भाषण देते हुए घोषणा की और कहा कि यह महाराजा का हुकुम है। शाहपुरा प्रजामण्डल अखिल भारतीय देशी राज्य लोकपरिषद् से प्रतिबद्ध हुआ तथा इसका प्रथम वार्षिकोत्सव प्रारंभ हुआ। जिसमें शाहपुरा मेवाड़ राज्य प्रजामण्डल के अध्यक्ष माणिक्यलाल वर्मा तथा मंत्री श्री भूरेलाल बंया ने शासन की वर्तमान परिस्थितियों तथा देशी राज्यों की नीति पर विवेचनात्मक भाषण दिया, तथा शाहपुरा को अत्यन्त पिछड़ा राज्य बताया।[7]

22 अगस्त 1945 ई. में शाहपुरा महाराज ने नई घोषणा कर व्यापारियों व जनता पर लगे अनेक प्रतिबंध हटा दिये।[8] श्रीमान राजधिराज साहब तथा प्रजामण्डल अध्यक्ष श्री गोकुल लाल जी असावा के बीच विधान ढाँचा बनाने की बातचीत 31 अक्टूबर 1946 ई. को हुई।[9] शाहपुरा रियासत के युवराज सुदर्शन देव ने अपनी घोषणा में कहा कि महाराजा ने अपने 10 नवम्बर 1945 ई. को दिये भाषण में जो घोषणा की थी कि हमारा

ध्येय एसेम्बली स्थापित कर शासन प्रबंध में प्रजा को हाथ बंटाने का अवसर देना है, इसलिए यह निश्चित किया गया है कि शासन विधान का मसौदा तैयार करने के लिए प्रजा वर्ग को शामिल किया जाए। अतः सदस्यों की समिति बनायी जायेगी, जिसमें ठाकुर उदयसिंह जी (खामोर) मेजर दौलतसिंह जी, प्रो. असावा चंदनसिंह जी भड़कतिया तथा काजी नवाब अली साहब इस समिति के संचालक रहेंगे तथा कोरम तीन सदस्यों का होगा। आर्डर संख्या 2061, आर्डर 16 संख्या 4 तारीख 9/10/1946 द्वारा एक समिति बनाई गई थी।[10]

शाहपुरा के राजा राजाधिराज उम्मेदसिंहजी ने 3 फरवरी 1947 ई. को सार्वजनिक घोषणा द्वारा उत्तरदायी शासन को मान्यता प्रदान कर दी तथा शाहपुरा रियासत का उत्तरदायित्व अपने पुत्र सुदर्शन देव को सौंप दिया। अपनी घोषणा में राजा ने कहा कि मेरी चिर–प्रतिक्षित इच्छा है कि मैं अपने पुत्र को राजगद्दी पर बैठा देखना चाहता हूं तथा अपने आपको धार्मिक कार्यों में लगाना चाहता हूं। नये राजाधिराज अपनी जिम्मेदारी को अच्छी तरह से पूरी करेंगे।[11]

नये राजा सुदर्शन देव ने शासक बनते ही जनता के लिए अनेक रियासतों की घोषणा की थी। राजतिलकोत्सव पर हरिजनों के सुधार कार्य के लिए पांच हजार की रकम देने की घोषणा की तथा गौशाला के लिए दो सौ बीघा बाड़ा बनाने की स्वीकृति प्रदान की। महकमा खास रियासत शाहपुरा द्वारा शासन विधान एक्ट 1947 की धारा 67 के अनुसार राजाधिराज सुदर्शन देव द्वारा जारी नोटिफिकेशन घोषित करते हुए कहा कि उक्त धारा में निर्दिष्ट एसेम्बली द्वारा निर्मित कौन्सिल के निर्माण काल तक अन्तः कालीन व्यवस्था के लिए दो मंत्रियों की नियुक्ति की जायेगी, जिनमें एक प्रो. गोकुलला जी असावा होंगे। रायबहादुर रामस्वरूप जी रावत अपना दीवान पद छोड़ देंगे और आर्डर तारीख 18/07/1947 के अनुसार अवकाश पर रहेंगे तथा शाहपुरा में एडवाइजर के तौर पर कार्य करेंगे। इसके बाद दूसरे मंत्री मेजर दौलतसिंह जी को नियुक्त किया।[12]

शाहपुरा राजाधिराज सुर्दशन देव ने 14 अगस्त 1917 ई. को अपने भाषण में कहा कि ''शाहपुरा के इतिहास में आज का दिन खास होगा, क्योंकि मैं जनता की मांगों को पूरा करने में पूर्ण रूप से सफल हुआ। मैं अपना कर्तव्य समझ कर मेरी प्रजा को पूर्ण उत्तरदायी शासन की बागडोर सौंप दूं, इसी उद्देश्य से मैंने सभी को यहां आमंत्रित किया है। शाहपुरा विधान परिषद् ने जो विधान हमारे सामने रखा, उसमें अल्प संशोधनों के साथ मैंने स्वीकार कर लिया है। इस विधान का लक्ष्य पूर्ण उत्तरदायी सरकार स्थापित करना हैं। इसके अनुसार राज्य में एक व्यवस्थापिका सभा होगी, जिसके 21 सदस्य होगें, जो राज्य के विभिन्न भागों से चुने जायेगें, जो जनता का प्रतिनिधित्व करेंगे। इसका कार्यकाल 4 वर्ष का होगा, तथा बहुमत वाले सदस्य को 'प्रधानमंत्री' बनाया जायेगा।

न्याय विभाग पूर्ण रूप से स्वतंत्र होगा।'' शाहपुरा रियासत में उत्तरदायी शासन की घोषणा से सभी लोगों में प्रसन्नता थी। सरदार वल्लभ भाई पटेल, डॉ. पट्टाभिसीतारमैया, बलवन्तसिंह मेहता, श्री हीरालाल शास्त्री, जयनारायण व्यास, माणिक्यलाल वर्मा, हरिभाऊ उपाध्याय, पण्डित जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं ने शाहपुरा के विधान की प्रशंसा की तथा इसे जल्द लागू करने की शुभकामना प्रकट की।[13]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शाहपुरा राज्य के उत्तरदायी शासन में मुगल बादशाहों का भी हस्तक्षेप रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय इसमें प्रजामंडलों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है तथा इसमें कई दिग्गिज राजनेताओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

संदर्भ

1. *शाहपुरा राज्य की ख्यात, सम्पा. डॉ. मनोहरसिंह राणावत, भाग 1-2*
2. *उदयपुर प्रजामण्डल बस्ता नं. 22 फाइल नं. 9, पृ. 86-88 रा. अभि. बीकानेर, 1938-42 ई.*
3. *शाहपुरा राज्य की ख्यात, सम्पा. डॉ मनोहरसिंह राणावत, भाग 1-2, उदयपुर 2005 ई.*
4. *पूर्वोक्त*
5. *पूर्वोक्त*
6. *पूर्वोक्त फाइल, पृ. 69-71*
7. *उदयपुर प्रजामण्डल बस्ता नं. 22 फाइल नं. 8, पृ. 5, 20 राज. अभि. बीकानेर*
8. *पूर्वोक्त, पृ. 33*
9. *उदयपुर प्रजामण्डल बस्ता नं. 21 फाइल नं. 6, पृ. 3-4 राज. अभि. बीकानेर*
10. *उदयपुर प्रजामण्डल बस्ता नं. 21 फाइल नं. 4 पृ. 44 महकमा खास रियासत शाहपुरा सं. 2061/15 सं. नं. 4 आर्डर तारीख 09/10/1946, राज. अभि. बीकानेर*
11. *पूर्वोक्त, पृ. 71-72*
12. *पूर्वोक्त, पृ. 73-80*
13. *पूर्वोक्तत, पृ. 122, 89-93 (हिज हाईनेस राजाधिराज सुदर्शन देव बहादुर का तारीख 14 अगस्त 1947 ई. को दिया भाषण) राज. अभि. बीकानेर*

राजस्थानी काव्यधारा का बिजौलिया के किसानों की जनजागृति में योगदान

डॉ. भरत देवड़ा

राजस्थान के कण-कण में मातृभूमि के प्रति प्रेम, स्वाभिमान, स्वामिभक्ति और स्वतंत्रता की भावना सदैव से विद्यमान रही है। जिसके कारण राजस्थान की धरती साहित्य, श्रृंगार, वैभव एवं शौर्य से सदैव गौरवान्वित रही है। यहाँ के सपूतों को जननी एवं जन्मभूमि की रक्षा के लिए प्राण-न्यौछावर करने की प्रेरणा जन्म से ही दी जाती है। कवि सूर्यमल्ल मिश्रण अपनी रचना 'वीर सतसई' में मातृभूमि की रक्षा के लिए प्राण न्यौछावर करने का पाठ बालक को पालने में ही सीखाते है कि-

इला न दैणी आपणी, हालरियै हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बडाई माय।।

यहाँ के शूरवीरों ने इस धरती को अपने बलिदान से ज्योतित किया है तो यहाँ के कवि भी उस काल, देश एवं परिस्थितियों से अछूते नहीं रहे हैं। राजस्थान के लोगों में जन चेतना जागृत करने में राजस्थानी साहित्य का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन साहित्यिक रचनाओं में दोहा, सोरठा, गीत, कविता, लोकगीत आदि प्रमुख है। भले ही इस समय आज के समान राष्ट्र और राष्ट्रभक्ति जैसी परिभाषा नहीं रही हो लेकिन स्वाभिमान एवं स्वतंत्रता के लिए जीने एवं मरने की जिजीविषा साफ दिखाई देती है। राजस्थानी भाषा के काव्य में स्वतंत्रता की विस्तृत भावना का दर्शन होता है काव्य प्रतिभा के धनी यहाँ के नेताओं ने न केवल स्वाभिमान व स्वतंत्रता के लिए प्रत्यक्ष रूप से इन आंदोलनों में भाग लिया बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से अपनी रचनाओं के माध्यम से जन जागृति का शंखनाद किया था। बिजौलिया के किसानों में जनजागृति लाने वाले ऐसे क्रांतिकारी नेताओं एवं कवियों में विजयसिंह पथिक, माणिक्यलाल वर्मा, प्रज्ञाचक्षु भंवरलाल स्वर्णकार आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

राजस्थान में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत में सर्वप्रथम संगठित किसान आंदोलन प्रारम्भ करने का श्रेय मेवाड़ रिसासत के बिजौलिया ठिकाने के किसानों को जाता है। बिजौलिया मेवाड़ राज्य का प्रथम श्रेणी की जागीर था। यहां के ठाकुर राव सवाई कृष्णसिंह के समय बिजौलिया की जनता से 84 प्रकार की लाग-बागें ली जाती थी। किसान अपनी उपज का आधे से अधिक भाग लगान के रूप में ठिकाने को देता। इतना

ही नहीं बल्कि इसके अतिरिक्त उसे बेगार भी करनी पड़ती थी। जागीरदार की कठोर एवं अन्यायपूर्ण लागतों तथा उसके अत्याचारी दमन व शोषण से यहां के किसान तिलमिला उठे। 1897 ई. में उपरमाल (बिजौलिया) के किसान गिरधारीपुरा नामक ग्राम में एक मृत्यु-भोज के अवसर पर एकत्रित हुए और उन्होंने अपनी शिकायतों को नानजी पटेल और ठाकरी पटेल के नेतृत्व में उदयपुर के महाराणा को भेजा। राजा ने जांच के लिए अधिकारी भेज दिया लेकिन उसकी सिफारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं करने के कारण ठाकुर के हौसले में वृद्धि हुई। 1903 ई. में राव कृष्णसिंह ने बिजौलिया जनता पर चँवरी कर नामक नई लाग थोप दी। जिसका किसानों ने विरोध किया तो उन्हें लाग बागों में कुछ छूटे दी गई लेकिन 1906 ई. में राव कृष्णसिंह की मृत्यु पर पृथ्वीसिंह जागीर का स्वामी बना। उसने 'तलवार बंधाई' नामक नवीन लाग किसानों पर थोप दी। किसानों के आन्दोलन को दबाने के लिए दमनात्मक नीति का प्रयोग किया गया लेकिन साधु सीताराम दास, ब्रहादेव तथा फतहकरण चारण ने किसानों को 1913 में पुन: संगठित करने का प्रयास किया।[1]

साधु सीताराम दास के आग्रह पर विजयसिंह पथिक ने 1916 ई. में बिजौलिया के किसान आंदोलन की बागडौर अपने हाथों में ली। किसानों को अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध संगठित करने के लिए पथिक जी ने सर्वप्रथम 'ऊपरमाल पंचायत बोर्ड' की स्थापना की। जिसका अध्यक्ष साधु सीताराम दास को बनाया गया। साथ ही उन्होंने 'ऊपरमाल सेवा समिति'की स्थापना कर युवाओं में देशभक्ति का संचार किया। पथिक जी आंदोलन को बल देने के लिए प्रचार और प्रकाशन की आवश्यकता से अनभिज्ञ नहीं थे अत: उन्होंने किसानों के कष्टों तथा राज्य के किसानों के संघर्ष की सूचना देने के लिए ऊपरमाल का डंका नामक पंचायत का एक पत्र निकलवाया। गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' नामक समाचार पत्र ने बिजौलिया आंदोलन का प्रचार प्रसार सम्पूर्ण देश में किया। इसमें छपने वाले स्थाई स्तम्भ का संपादन स्वयं विजयसिंह पथिक ने किया था।[2]

विजयसिंह पथिक ने अपनी काव्य रचनाओं के माध्यम से भी बिजौलियां के किसानों में जन-जागृति फैलाने का कार्य किया। 1917 ई. में हरियाली अमावस्या के दिन 'ऊपरमाल पंच बोर्ड' के नेतृत्व में किसान आंदोलन के संघर्ष की शुरूआत करते हुए उन्होंने किसानों में जोश भरने के लिए कहा कि -

हरियाली अमावस सुखद शुभ मुहूर्त मान लो।
स्वतंत्रता के अर्थ सब धर्म युद्ध को ठान लो।।

इस अवसर पर पथिक जी ने योगी नाम से स्वयं ने एक विज्ञप्ति लिखी -

आधुनिक शासन प्रणाली है नहीं अब काम की।
नीति दुनिया से निराली है नहीं अब काम की।।

धार निश्चय है लिया हम कर वही दिखलायेंगे।
स्वातं य समर क्षेत्र में रण बांकुरे कहलायेंगे।। (योगी)

उन्होंने इन छन्दों में किसानों को अपनी स्वतंत्रता के लिए युद्ध लड़ने के लिए तैयार होने की सलाह दी है।

यश वैभव सुख की चाह नहीं, परवाह नहीं जीवन न रहे।
यदि इच्छया है, यह है, जग में स्वेच्छाचार दमन न रहे।।

इस छन्द के माध्यम से उन्होंने बताया है कि हमें यश, वैभव व सुख की चाह नहीं होनी चाहिए। इस अत्याचारी तानाशाही सामन्ती व्यवस्था का अंत होना चाहिए, यह मेरी इच्छा है चाहे इसके लिए प्राण भी क्यों न देना पड़े। पथिक जी की उपर्युक्त पंक्तियों ने बिजौलिया के किसानों को संगठित होकर सामन्ती अत्याचारों के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरित किया।[3]

क्रांतिकारी विजयसिंह पथिक अपनी काव्यधारा में किसानों व मजदूरों के झण्डें को आकाश में फहराने की कामना करते हुए, उन्हें आलस छोड़ जागृत होने का आह्वान किया है।

लहरावेगो, लहरावेगों, झण्डो यो करसाणां को।
घर महलां पै, मींदरापै कोट किलांपै, भंडारांपै।। .....
घणा सो चुक्या जाग उठ्या हां, आलम निंद्रा त्याग उठ्या हां।
घणी सह चुक्या अब न सहांगा, लेकर गांव स्वराज रहांगा।
देखलिया मं या का लक्खण, स्वारथ धरम धनवानां को। ....
गांधी जी की छाप लगाकर, चरखा को झंडो फहराकर।
खूब दूकान चलाई थांने, लूट प्रजा सब खाई थांने। ....
अब न कणी की साख भरांगा, म्हां को परबंध म्हई करांगा।
पंच बोर्ड कौसिल सब ही में, वोट किसानों ने म्हां दांगा। ....
गृह उद्योग चलवांगा म्हें, पक्को माल बणावांगा म्हें।
घर-घर अलख जगावांगा म्हें, सबने ज्ञान सिखावांगा म्हें।
बली बणांगा क्यूं क जगत में, सब कुछ है बलवाणां को।।
लहरावेगो लहरावेगो, झंडो यो करसाणां को।।[4]

उपर्युक्त कवितांश में पथिक जी ने स्पष्ट किया है कि किसानों ने अत्याचारी शासन का जुल्म खूब सह लिया है लेकिन अब नहीं सहेंगे। अब स्वयं का ग्राम स्वराज स्थापित करेंगे, किसानों के वोट से पंच बोर्ड का गठन करेंगे। ऊँच-नीच व भेदभाव के स्थान पर एकता स्थापित करेंगे। अब जंगल व खनिज सम्पदा पर किसानों का अधिकार होगा। स्वदेशी उद्योग व शिक्षा के विकास पर बल देकर सभी में जन जागृति लायी

जायेगी। अब किसानों के हल के निशान व गांधीजी के चरखे के निशान वाला झण्डा फहराया जायेगा। किसानों के द्वारा चयनित ग्राम स्वराज की स्थापना होगी। इस प्रकार उन्होंने इस गीत के माध्यम से अत्याचारी दमनकारी अन्यायपूर्ण एवं शोषणकारी शासन के स्थान पर जनता को स्वराज, राष्ट्रीय उद्योग, राष्ट्रीय शिक्षा के विकास की बात कही है। इससे यह जान पड़ता है कि राष्ट्रीय स्तर पर 1905 ई मे बंग-भंग के पश्चात् चलने वाली स्वदेशी आंदोलन जिसमें विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं को बढ़ावा, राष्ट्रीय शिक्षा तथा स्वशासन की माँग की गई थी उसका एवं गांधी के असहयोग आंदोलन, खादी प्रसार एवं दलितो उद्धार आंदोलन की छाया इस आंदोलन पर भी पड़ी थी।

ऊपरमाल में किसान सत्याग्रह प्रारम्भ होने से पहले एवं बाद की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए पथिक जी ने लिखा है कि -

धन्य धन्य हे ऊपरमाल।
अजब हो गया तेरा हाल।
बहुत दिनों से तू सोती थी, सिसक सिसक कर तू रोती थी।
कैसा सुख, कैसा दु:ख,
कैसा चोर ठगों का जाल।
जाता कहां। कमाया माल।।
आंख खोल कर अब जागी है, धर्म कर्म में अब लागी है।
काम निहार, रह तैयार,
जननी !निज सिर केश सम्हाल।
चले आज अनोखी चाल।। [5]

उक्त छन्द के अनुसार कवि पथिक जी ने बताया है कि यह ऊपरमाल की धरती एवं धरती पुत्रों का हाल सामन्ती शोषण के कारण बहुत बुरा हो गया था लेकिन अब यहां की जनता जाग चुकी है अब इन्होंने सत्य धर्म पर मरना सिख लिया है। अब ऊपरमाल जो उजड़ गया था पुन: बहाल हो जायेगा।

पथिक जी ने अपनी गीत के माध्यम से स्वशासन की कल्पना करते हुए 'पधारो फिर म्हां के गणराज' नामक गीत लिया।

फिर गणराज सिखाओ म्हांने, पंच राज को रस्तो।
म्हांका राज काज म्हां करलां, शासन होवे सस्तो ।।
पांच पंच में हार्यां जीत्यां कुणने आवे लाज ।
रक्षा, शिक्षा, न्याय सभी, म्हां गांव-गांव मिल करलां
अदालतां तो रो खरचों मेटां , सत्य हृदय में धरलां

न्याय करां हंसा जू सांचो सुधरे सारा काज
जंगल खान्यां आप सम्हालां करां खड़ा उद्योग।
गांव-गांव ने चमन बणावां बांको लेकर मोज।। [6]

उक्त छन्द में पथिक जी ने किसानों के ग्राम स्वराज के स्थापना की बात कही है जहां जनता द्वारा चुना हुआ पंच हो उनके शासन में शिक्षा, शासन, न्याय सब सस्ता हो, जंगल, खनिज सम्पदा पर जनता का अधिकार हो तथा उनके गांवों का सर्वांगीण विकास हो।

विजय सिंह पथिक के समान भंवरलाल स्वर्णकार प्रज्ञाचक्षु ने भी अपने गीत एवं काव्यमय रचनाओं के माध्यम से आंदोलन का प्रचार-प्रसार किया था। उनके गीत समस्त ऊपरमाल के किसानों में लोकप्रिय हुए। उनका 'भावना' गीत निम्न लिखित है -

पथिक की महिमा भारी जी।
गुण गावे मेवाड़ देश सारा नर नारी जी।।
अणी देश में दुख घणो हो, म्हां की कोई नहीं सुणै हो।
सूक दिया रू काम बणे हो, लूट-लूट खावै छा सा ओहदा धारी जी।।...
राणो दुख दियो अति भारी, स्वतंत्रता की बाड़ उजाड़ी।
ईश्वर वेग सुणी है म्हारी, कृपा करी भगवान पथिक भेज्यो अवतारी जी।।
आता ही ज्ञान यही प्रगटायो, सत्याग्रह करणो सिखलायो।
वन्दे मातरम् मंत्र पढायो, दु:ख सूं लिया उबार महात्मा है तपधारी जी।। [7]

उक्त गीत में इस मेवाड़ राज्य सामन्ती लूट से परेशान जनता के बारे में बताया गया है कि पथिक जी के आने से पहले यहां की जनता सामन्ती शोषण से दुखी थी लेकिन भगवान में पथिक को अवतार बना कर भेजा है जिसका मेवाड़ की जनता गुणगान गाती है क्योंकि उसने यहां की जनता को सत्याग्रह का पाठ पढाया तथा वंदे मातरम् का जय उद्घोष किया है। जनता को दु:ख से उबारने के कारण इस गीत में उन्हें महात्मा कह कर सम्बोधित किया गया है। इस प्रकार पथिक जी के कार्य एवं जनता में उनके प्रति सम्मान की जानकारी इसमें मिलती है।

प्रज्ञाचक्षु भंवरलाल स्वर्णकार ने एक अन्य गीत 'सत्याग्रह की रेल' की रचना की थी। जिसमें ऊपरमाल से प्रारम्भ होकर सत्याग्रह के सम्पूर्ण राजस्थान में फैलने का वर्णन है।

सत्याग्रह की रेल ऊपरमाल सूं चली।
तीन बरस डूंगर पै घूमी हेरी गली गली।।
रावड़दा सूं टक्कर खाकर बेगूं में मिली।। ....
गारड म्हां का विजयसिंह जी जोधा महाबली।

अजमेर सूं सीटी दी दी फूली और फली।। [8]

उक्त रचना में किसान आंदोलन के धीरे धीरे ऊपरमाल से रावड़दा, सादड़ी, देलवाड़ा, बेगूं आदि क्षेत्रों में फैलने का वर्णन है इस सत्यागह रूपी रेल का नेतृत्व विजयसिंह पथिक कर रहे थे।

एक अन्य रचना में प्रज्ञाचक्षु भवरलाल स्वर्णकार ने बिजौलिया किसान आंदोलन की तुलना रूस की बोल्शेविक क्रांति से करते हुए लिखा है कि -

मान-मान मेवाड़ा राणा प्रजा पुकारे रै-राणा मान रै।
बिजौलिया का दुख: की अरज्यां लिख लिख रैयत थाकी रै।। ....
मान-मान मेवाड़ा राणा प्रजा पुकारै राणा मान रै।
रूस जार रा पत्ता न लागियां सुन राणा फतेमाल रै।।

उक्त छन्द में मेवाड़ महाराणा को संबोधित करते हुए लिखा गया है कि बिजौलिया की जनता अपने दु:खों के प्रार्थना पत्र लिख-लिखकर थक चुकी है अब तुम मान जाओ तथा इन किसानों के दु:खों को दूर कर दो नहीं तो रूस के जार वाला हाल होगा जिसका वहां की क्रांति के कारण उसका वंशानुगत शासन तक चला गया इसलिए मेवाड़ महाराणा आप भी सम्भल जाओ एवं किसानों के दु:खों को दूर कर दो।[9]

बिजौलिया के ठाकुर ने किसान आंदोलन को निर्ममतापूर्वक कुचलने के अनेक प्रयास किये। रामनारायण चौधरी ने अपनी डायरी में लिखा है कि बिजौलिया आंदोलन राष्ट्रीय भावना से प्रेरित था और प्रत्येक स्थान पर वन्दे मातरम् की आवाज सुनाई देती थी। महात्मा गांधी और तिलक जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने इस दमन की नीति की निन्दा की। जब इस आंदोलन ने उग्र रूप धारणा कर लिया तब राजस्थान के ए.जी.जी. सर हालैण्ड एवं मेवाड़ रेजीमेन्ट विलकिन्सन बिजौलिया पहुंचे ताकि समस्या का समाधान निकाला जा सके। मेवाड़ राज्य के प्रतिनिधियों एवं बिजौलिया किसानों के प्रतिनिधियों में वार्ता के पश्चात 1922 ई. में एक समझौता हुआ। किसानों की अनेक मांगें मान ली गई, इसमें बेगार प्रथा समाप्त करने,करों में कमी करने की मांग भी शामिल थी। लेकिन कुछ समय बाद बिजौलिया ठाकुर ने समझौते का उल्लघंन करते हुए पुन: नये कर लगा दिये अत: पथिक जी के नेतृत्व में पुन: किसान सत्याग्रह प्रारम्भ हो गया। पथिक जी की परामर्श के आधार पर भू-राजस्व न देने, खादी पहनने, मद्यपान न करने एवं अहिंसात्मक साधनों से आंदोलन चलाने की प्रतिज्ञा यहां के किसानों ने ली। इससे हमें यह भी जान पडता है कि यह किसान आंदोलन राष्ट्रीय स्तर पर चलने वाले गांधीजी के आंदोलनों से भी प्रभावित था। किसानों की इस प्रतिज्ञा से नाराज हो सेटलमेन्ट कमिश्नर सी.जी. ट्रेंच ने किसानों की जमीनें जब्त कर ली, लेकिन किसानों ने बड़ी निर्भीकता से इन अत्याचारों का सामना किया। यद्यपि 1931 ई. में ट्रेंच ने बिजौलिया के ठाकुर की और से हरिभाऊ उपाध्याय

को आश्वासन दिया कि 1922 ई. के समझौते का पालन किया जायेगा, लेकिन 1931 ई. में जब ठाकुर द्वारा समझौते का पुन: उल्लंघन किया गया तो माणिक्यलाल वर्मा के नेतृत्व में किसानों ने जबरदस्ती भूमि पर कब्जा किया और जुताई की। बिजौलिया के ठाकुर ने किसानों पर बहुत अत्याचार किये लेकिन फिर भी किसानों ने अपना सत्याग्रह जारी रखा।10 इसका वर्णन माणिक्यलाल वर्मा ने अपने 'पंछीड़ा' गीत में किया है-

मर्दाओ रे! काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।
तन का कपड़ा भी खोवे छा। हां पड़या-पड़या थें रोवे छा।।
आंसू सूं डीलड़ो धोवे छा, मर्दाओं रे! काली तो ...।।
ढांडा थांने जाण सिपाही कूटे छा, धनमाल कमाई लूटे छा।
ढूजां के खूंट खूंटे कूटे छा, आपस में भाई फूटे छा।
बेगारां का जूता सिर पर लागे छा, मर्दाओ रे!काली तो ....।। [11]

उक्त छंद में भाद्रपद माह की बरसात वाली काली रात में भूखे व नंगे हाल में सोये हुए किसान (मर्दा) का चित्रण किया गया है। साथ ही इसमें शासन ठिकानों के अत्याचारों, बेगार लेने, नजराना एवं रिश्वत खोरी का संजीव वर्णन किया गया है। आगे वह लिखते हैं कि इन सभी दुखों से मुक्ति पाने के लिए सत्याग्रह ही एक मात्र साधन है। आगे वह लिखते हैं कि -

मर्दाओ रे! हाथ जोड़बो छोड़ आख्यां राती कर लो।
ईखुसामद ने दूरी धर लो, झूठो मत पीवो थां जड़दो।
यो मर्द नसो डील में भरदो, मर्दाओ रे! काली तो ....।।
मर्दाओ रे!मरतां मर जाज्यो पण लागत मत दीज्यो।
घणी करे तो हासिल भी मत दीज्यों, बेड़ी का दु:ख थे पालीज्यो।
अन्नदाता कहबो छोड़ दो, यो मत खीज्यो, मर्दाओ रे ! काली तो ....।। [12]

उक्त छन्द में माणिक्यलाल वर्मा कहते है कि हे वीर किसानों आपकी हिम्मत को देख अन्यायी शासक को डर लगने लगा है अत: अब आपके ऊपर अत्याचार होने वाले है आपको जेलों में डाला जा सकता है, आप पर गोलियां चलायी जा सकती है। लेकिन आप इन अत्याचारों से घबराना मत वीरों मर जाना लेकिन लगान एवं लाग-बाग मत देना। अब उनके समक्ष हाथ जोड़ना छोड़ संघर्ष प्रारम्भ कर दो तो जीत अवश्य तुम्हारी होगी। इस प्रकार किसानों के निरन्तर सत्याग्रह के चलते अन्तत: मेवाड़ राज्य के प्रधानमंत्री सर सुखदेव प्रसाद ने आश्वासन दिया कि किसानों की जब्त भूमि उन्हें पुन: लौटा दी जाएगी। अब बिजौलिया किसान सत्याग्रह के समक्ष ठिकाने को झुकना पड़ा और सत्याग्रहियों की मांगे स्वीकार करनी पड़ी। अन्तत: किसानों का यह सत्याग्रह सफल रहा।

इस प्रकार बिजौलिया किसान आंदोलन का नेतृत्व प्रदान करने वाले प्रमुख नेताओं ने न केवल प्रत्यक्ष रूप से इस आंदोलन के लिए कार्य किया बल्कि उन्हें अपने गीतों एवं कविताओं के माध्यम से सामन्ती शोषण एवं अत्यचारों का पर्दाफाश कर यहां के किसानों को एकता के सूत्र में बांध सत्याग्रह के लिए प्रेरित किया। साथ ही इन स्वतंत्रता सैनानियों ने राष्ट्रीयता के विकास एवं राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रति भी यहाँ के लोगों में जनजागृति लाने का कार्य किया। स्वदेशी आंदोलन के लिए अपनाये गये विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी अपनाने, राष्ट्रीय शिक्षा तथा स्वशासन जैसे उद्देश्य हमें इन काव्य रचनाओं में दिखाई देते है। सत्याग्रह, खादी प्रसार, हिजरत, मद्यनिषेध, अछूतोद्धार जैसे गांधी जी के रचनात्मक कार्य भी इन आंदोलनों में अपनाये गये थे। पथिक जी ने राष्ट्रीय शिक्षा के विकास के लिए अनेक पाठशालाएं खोली, अछूतोद्धार एवं मद्यनिषेध जैसे कार्यक्रम चलाये,'ऊपरमाल पंचायत बोर्ड' का गठन कर ग्राम स्वराज की मांग रखी। वन्दे मातरम् की गूंज इस आंदोलन में सुनाई देती थी। गांधी जी ने स्वयं बिजौलिया किसान आंदोलन की प्रसन्नशा की थी। माणिक्यलाल वर्मा ने गांधीजी के सविनय अवज्ञा आंदोलन के साथ अपनाये गये लगान अदा न करने के कार्यक्रम से प्रभावित होकर अपने 'पंछीड़ा गीत' में लिखा है कि 'मर्दाओ रे! मरता मर जाज्यो पण लागत मत दीज्यो।' यानि उन्होंने किसानों को लगान अदा न करने की सलाह दी थी। इस प्रकार बिजौलिया किसान आंदोलन से राजपूताना में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीति चेतना का विकास ही नहीं बल्कि राष्ट्रवाद की भावना का भी विकास हुआ तथा इस चेतना एवं राष्ट्रवाद को जगाने का कार्य यहां के स्वतंत्रता सैनानियों ने किया। जिनके गुणगान यहां के लोक गीतों में भी मिलता है।

धन्य धन्य पथिक महाराज, राजस्थान जगाने वाले। ....
प्रथम ले बिजौलिया को साथ, बढाया जग में अपना-अपना हाथ।
कराया फिर कांग्रेस का साथ, देश में शक्ति जगाने वाले।। [13]

इसमें विजयसिंह पथिक को राजस्थान की जनता को जगाने तथा राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने के लिए धन्यवाद दिया गया है। इसी प्रकार बिजौलिया की महिलाएं कुलदेवी की पूजा करते समय गीत गाती हैं-

म्हाने विजेसिंह आय जगाओ, ए माय थारो गुण नहीं भूलां।
म्हाने जत्या सू पिटता बचायो, ए माय थारो गुण नहीं भूलां।। ....
म्हारे देश-प्रेम सिखलाओं, ए माय थारो गुण नहीं भूलां।
म्हांने सत्याग्रह को पाठ पढ़ायो, ए माय थारो गुण नहीं भूलां।। [14]

इस गीत में विजयसिंह द्वारा किसानों को दुखों से उभारने, राष्ट्रभक्ति की भावना जगाने का गुणगान किया गया है। इस कार्य के लिए विजयसिंह को यहां के लोग

'महात्मा' कह कर पुकारते थे। राष्ट्रीय आंदोलन के आदर्शों पर चलने वाला यह आंदोलन अपने उद्देश्य में सफल रहने के साथ-साथ राजनीतिक चेतना एवं राष्ट्रवाद के विकास में भी महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

संदर्भ

1. *नागोरी, एस.एल. एवं नागौरी, कान्ता : राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 55-57, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2012*
2. *सक्सेना, शंकरसहाय एवं शर्मा, पद्मजा : बिजोलिया किसान आंदोलन का इतिहास, पृ. 96-98, राजस्थान राज्य आभिलेखागार, बीकानेर, 1972*
3. *वही , पृ. 69, 89*
4. *देपावत, मूलदान एवं अमरावत, प्रकाश : आजादी री अलख, पृ. 95-96, राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति जनहित प्रन्यास, बीकानेर, 1998*
5. *नागोरी, एस.एल. एवं नागोरी कान्ता : पूर्वोक्त, पृ. 146-147*
6. *सक्सेना, शंकरसहाय एवं शर्मा, पद्मजा : पूर्वोक्त, पृ. 281*
7. *वही, पृ. 280*
8. *वही, पृ. 280-281*
9. *पेमाराम : एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान, पृ. 26, जयपुर पब्लिशिंग हाऊस, जयुपर, 1986।*
10. *सक्सेना, शंकरसहाय एवं शर्मा, पद्मजा : पूर्वोक्त, पृ. 188-190।*
11. *भाटी, नारायणसिंह : स्वतंत्रता आंदोलन की राजस्थानी प्रेरक रचनाएं (गोरा हटजा), पृ. 137, राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर, 1956*
12. *वही, पृ. 137*
13. *नागोरी, एस.एल. एवं नागोरी कान्ता : पूर्वोक्त, पृ. 148*
14. *वही, पृ. 148*

मेवाड़ प्रजामण्डल और उदयपुर का 1948 का धारासभा चुनाव

डॉ. हेमेन्द्र चौधरी

मेवाड़ आरम्भ से ही स्वतंत्रता का पुजारी रहा है। 1818 ई. की अंग्रेजों की सन्धि के साथ ही मेवाड़ में अंग्रेजों का प्रतिरोध शुरू हो गया। देश के सभी प्रान्तीय और देशी रियासतों में मेवाड़ एक ऐसा राज्य रहा है जिसने राष्ट्रीय स्तर पर चलने वाली देशभक्ति धारा के साथ अपना कर्तव्य निभाया है। 1857 ई. की क्रान्ति में जहां क्रान्तिकारियों की मदद मेवाड़ निवासियों ने की तो बाद में धार्मिक-सामाजिक सुधार आन्दोलन में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मेवाड़ को कर्मभूमि को चुन मेवाड़ का राष्ट्रीय महत्व को बढ़ा दिया।

स्वयं अंग्रेजों के खिलाफ आन्दोलन देश के सभी हिस्सों में अलग-अलग नेतृत्व में चल रहे थे तो 1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना के साथ में आन्दोलन एक ही नेतृत्व एवं एक ही धारा में आन्दोलित होने लगी। प्रान्तीय भारत में चल रहे आन्दोलनों से देशी रियासतों और मेवाड़ भी अछूता नहीं रहा और मेवाड़ में बिजोलिया आन्दोलन चल पड़ा। कांग्रेस की नरम, नरम एवं गांधीवादी विचारधारा को हम बिजौलिया आन्दोलन में देखते है। मोतीलाल तेजावत का ऐकी आन्दोलन, गोविन्द गुरू का भगत आन्दोलन, अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद में मेवाड़ का प्रतिनिधित्व आदि अनेक ऐसे राष्ट्रीयता प्रेरित कारणों ने मेवाड़ को तपे-तपाये नेता और नेतृत्व प्रदान किया।

1938 ई. के हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस ने रियासतों के प्रति अहस्तक्षेप की नीति का परित्याग कर रियासतों में चल रहे आन्दोलनों को अपना समर्थन देने की घोषणा की, तब मेवाड़ में भी 24 अप्रैल, 1938 ई. को मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना हुयी और मेवाड़ में एक संगठित राजनैतिक आन्दोलन की शुरूआत हुयी, जिसका मुख्य उद्देश्य मेवाड़ के महाराणा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन की स्थापना था।[1]

इसी उद्देश्य को लेकर प्रजामण्डल ने अंग्रेजों की नीतियों एवं मेवाड़ सरकार से उत्तरदायी शासन की मांग को लेकर आन्दोलन शुरू किया, मेवाड़ सरकार ने मेवाड़ प्रजामण्डल पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 4 अक्टूबर, 1938 ई. को सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ एवं 3 मार्च, 1939 ई. को गांधी जी के आदेश पर सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया।[2] इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप मेवाड़ में जागृति आयी और

मेवाड़ सरकार को प्रशासनिक सुधारों के लिए मजबूर होना पड़ा और मेवाड़ प्रधानमंत्री सर टी.वी. राघवाचार्य की सलाह पर मेवाड़ धरासभा अधिनियम-1941 लाया गया।[3]

1942 ई. के भारत छोड़ो आन्दोलन के तहत मेवाड़ प्रजामण्डल ने पुनः आन्दोलन की राह पकड़ी, मेवाड़ प्रजामण्डल पुनः प्रतिबन्धित कर दिया गया, परिणामतः धारासभा चुनाव एवं उत्तरदायी शासन की प्रक्रिया बन्द हो गयी।

31 दिसम्बर, 1945 ई. से 2 जनवरी, 1946 ई. को उदयपुर में अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद का अधिवेशन आयोजित हुआ,[4] जिसकी अध्यक्षता जवाहलाल नेहरू की और नेहरू ने राजा, महाराजाओं को प्रजा का उत्तरदायी शासन सौपने की बात कही। महाराणा भुपालसिंह ने संवैधानिक सुधारों की दशा में कदम उठाया।

मेवाड़ सरकार ने मई 1946 ई. को ठाकुर गोपालसिंह के नेतृत्व में एक समिति का गठित की, इस समिति द्वारा प्रस्तुत संवैधानिक सुधारों को महाराणा द्वारा अस्वीकृत कर दिये,[5] तत्पश्चात 3 मार्च, 1947 ई. को महाराणा ने सुधारों की घोषणा की, इसके व्यस्क मताधिकार का प्रावधान था, परन्तु योजना में पर्याप्त सुधार न होने के कारण मेवाड़ प्रजामण्डल ने इसे अस्वीकृत कर दिया।[6] 23 मार्च, 1947 ई. को कन्हैयालाल माणिक्यलाल मुंशी की सलाह पर महाराणा ने अपनी सुधार योजना की घोषणा की, जिसे मुंशी संविधान के नाम से जाना जाता है।[7]

प्रजामण्डल के विरोध के कारण डॉ. मोहनसिंह मेहता ने इस संविधान में संशोधन किया, जिसको ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्यक्ष एवं व्यस्क मताधिकार के साथ चुनाव प्रणाली को सरल बनाया गया, जिसमें धारासभा का रूख बदल गया। जो इस प्रकार है[8]-

प्रजामण्डल ने विधान में संविधान के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में चुनाव परोक्ष न कराकर प्रत्यक्ष कराने का स्वागत किया तथा संविधान में संशोधन की प्रणाली को सरल बनाने का आभार जताया।[9] ग्रामीण क्षेत्रों में 90 हजार जनसंख्या के स्थान पर 60 हजार जनसंख्या पर निर्वाचन करने पर धारा सभा का रूप बदल दिया गया।

इसके अन्तर्गत उदयपुर की जनसंख्या 60 हजार, भीलवाड़ा की 25 हजार, नाथद्वारा व चित्तौड़ की 11-11 हजार अर्थात् कुल 1 लाख 7 हजार शहरी आबादी आंकी गयी। इसी तरह उदयपुर से 5, भीलवाड़ा-नाथद्वारा से 2-2 सीटे अर्थात् कुल 11 शहर सीटे रखी गयी। मेवाड़ की 23 लाख आबादी में से शहर आबादी कम करके लगभग 21 लाख 75 हजार ग्रामीण आबादी रहती है। इस आबादी से 60 हजार जनसंख्या के पीछे एक प्रतिनिधि भेजने का प्रावधान किया गया। साथ ही मुंशी संविधान के आर्टिकल धारा 5 (अ) से कोई परिवर्तन न करने पर जमींदारी वर्ग के प्रतिनिधियों की संख्या पहले की अपेक्षा बढ़ गयी। मोटे रूप से धारासभा का गठन इस प्रकार रखा गया:-

पांच नाम जद

1. धारासभा का अध्यक्ष – 1
2. राज्य का प्रधानमंत्री – 1
3. राज्य के निजी मंत्री – 3

आम निर्वाचन क्षेत्र- 50 जिसमें 14 शहरी व 36 ग्रामीण क्षेत्र

इसके अन्तर्गत उदयपुर में 7 निर्वाचन क्षेत्र में 3 आम, 1 मजदूर, 1 महिला, 2 मुसलमान।

इसके अन्तर्गत भीलवाड़ा में 3 निर्वाचन क्षेत्र में 1 आम, 1 मजदूर, 2 मुसलमान, चित्तौड़ के 2 निर्वाचन क्षेत्र में दोनों ही आम तथा नाथद्वारा के 2 निर्वाचन क्षेत्र में दोनों ही आम क्षेत्र।

विशेष हित वाले 25 निर्वाचन क्षेत्र में से 15 जमींदार क्षेत्र 2 उमराव तथा 8 आम के लिए इसके अलावा 5 शिक्षित वर्ग, 3 व्यापारी वर्ग, 1 खनिज उद्योग, 1 अन्य कल कारखाने का प्रावधान था। इस प्रकार धारासभा की ताकत 56 से बढ़कर 70 हो गयी।[10]

चुनाव में प्रजामण्डल का भाग लेना

मेवाड़ प्रजामण्डल ने अपने 11 जून, 1947 ई.के प्रस्ताव में चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया था। प्रजामण्डल ने एक घोषणा पत्र तैयार किया, जिसमें प्रजामण्डल ने उत्तरदायी शासन स्थापित करने, जागीर प्रथा समाप्त करने, अस्पतालों की संख्या बढ़ानें निर्वाचित नगरपालिकाऐं स्थापित करने और ग्रामीण पुनर्निर्माण का कार्य करने का वादा किया।

मेवाड़ प्रजामण्डल और धारासभा का चुनाव

11 जून, 1947 ई. के प्रस्ताव में प्रजामण्डल ने धारासभा चुनाव में भाग लेने का प्रस्ताव पारित किया। मुंशी संविधान के संशोधन के बाद प्रजामंडल ने संशोधन में कुछ कमियां बताते हुए चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया।

धारासभा चुनाव कार्यक्रम के तहत उदयपुर में 4 अप्रेल, भीलवाड़ा, चित्तौड़ एवं नाथद्वारा क्षेत्रों में 11 अप्रेल 1948 ई. को चुनाव कर 20 अप्रेल, 1948 ई. तक परिणाम घोषित करने की घोषणा की गई। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में चुनाव की दिनांक एवं क्षेत्र घोषित कर माह अप्रेल में चुनाव करवाकर अंतिम चुनाव परिणाम 22 मई तक घोषित करने का निश्चय किया गया। स्त्रियों व पुरूषों के वोट देने का स्थन अलग-अलग रखा गया। चुनावी घोषणा होने के बाद प्रजामण्डल के चुनावी प्रक्रिया में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया जिसमें चुनावी घोषणा पत्र तथा अर्थ संग्रह पर विचार किया गया तथा

शहरी क्षेत्र के चुनाव हेतु जिला बोर्ड से दिनांक 28 जनवरी तक तथा देहातों से 12 फरवरी, 1948 ई. तक उम्मीदवारों के पैनल मांगे गये।

धारासभा चुनाव के लिए उम्मीदवारों के नामजगदी के पर्चे 6 फरवरी को जमा कराने थे। दोपहर 8 फरवरी 1948 ई. को मेवाड़ सरकार के सामने पर्चे दाखिल हो गये।

धारासभा चुनाव के उम्मीदवार इस प्रकार थे, उदयपुर में (ए) मण्डल से भूरेलाल बया (प्र.म.), अक्षसिंह देवपुरा, रोशनलाल मेहता, गुमानसिंह राठौड़, (बी) मण्डल से प्रेमनारायण माथुर व वकील ईस्माईल अली (प्र.म.), वैध अनन्तशंकर, दिलीपसिंह हीरालाल मूर्डिया, शौकतअली, (सी) मण्डल से मा. बलवंतसिंह मेहमा (प्र.म.), शौकतअली अलानुर, सुंरनारायण श्रीवास्तव, बशीर अहमद (डी) मण्डल से श्रीमती विजय लक्ष्मी नागर (प्र.म.), जो निर्विरोध पहले ही चुनी गयी।[11]

नाथद्वारा से प्रजामण्डल से मोहनलाल सुखाडिया व नरेन्द्रपालसिंह चौधरी, चित्तौड़ से लोकेन्द्र शर्मा व मोहनलाल सुराणा और भीलवाड़ा से भंवरलाल भदादा व शरफराज आदि प्रजामण्डल के टिकिट पर थे। प्रजामंडल ने इस उम्मीदवारों की सूची निकाली तथा जनता से प्रजामंडल के उम्मीदवारों को वोट देने की अपील की तथा स्वतंत्र उम्मीदवारों से अपील की कि वे अपना नाम मेवाड़ की प्रतिनिधि लोक संस्था के पक्ष में वापस ले लेवें।[12] इसी प्रकार प्रजामण्डल ने देहाती क्षेत्रों में अपने उम्मीदवारों की घोषणा कर दी साथ ही प्रजामण्डल के नाथद्वारा व भीलवाड़ा के उम्मीदवार निर्विरोध चुने गये।[13] इससे प्रजामण्डल की पहली जीत हुई।

चुनावी प्रचार: भाषण, प्रचार-प्रसार व घोषणा पत्र

मेवाड़ प्रजामण्डल के चुनाव लड़ने का मुख्य उद्देश्य उत्तरदायी शासन कायम करना था। इस उद्देश्य को लेकर प्रजामण्डल के नेता जनता के सामने गये तथा प्रजामण्डल की स्थापना के समय से लेकर अब तक किये गये संघर्ष व उपलब्धियों से जनता को अवगत कराया, अपने उद्देश्यों को बताने का माध्यम प्रजामण्डल नेता गांव-गांव में दौरा करते, भाषण देते, सभा लेते तथा छपे हुए इश्तिहार निकाल कर जनता से राजनैतिक चेतना जागृत करने तथा उन्हें अपना मत देने के अधिकार को समझाते तथा प्रजामण्डल के पक्ष में मत देने के लिए कहते। मोहनलाल सुखाड़िया ने सलूम्बर के साथ-साथ गमराणा, मानपुर, धरियावद आदि स्थानों का दौरा किया। उन्होंने अपने भाषण में जागीरी जुल्मों पर प्रकाश डाला और पुरजोर शब्दों से जनता से अपील की कि वे आने वाले चुनावों में प्रजामण्डल का साथ देकर पंचायती राज कायम करने में सहायक बने।[14] प्रजामण्डल द्वारा जनता के सम्मुख प्रस्तुत अपने घोषणा पत्र में प्रजामण्डल की स्थापना से लेकर अब तक के लिए गये कार्यों व उपलब्धियों को बताया तथा भविष्य में किये जाने वाले कार्यों को बतया, जिसमें राज्य के सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक उत्थान के

साथ-साथ शासक के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ग की आवश्यकता की पूर्ति तथा उनकी दशा सुधारने के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों की घोषणा की गयी। घोषणा पत्र के अनुसार प्रजामण्डल ने धारा सभा का मुख्य उद्देश्य मेवाड़ में पूर्ण उत्तरदायित्व शासन कायम करना बताया तथा इसके लिए उनसे लक्ष्य की प्राप्ति तक संघर्ष करने का निर्णय लिया।

प्रजामण्डल अपने घोषणा पत्र में बताया कि जिम्मेदार हुकुमत धारासभा सर्वोपरी राजनैतिक संस्था होगी, सम्पूर्ण मंत्रीमण्डल इसके प्रति उत्तरदायी होगा, नागरिकों को मौलिक अधिकार जो भारतीय प्रजातंत्र के विधान में समावेश किये जायेगें तथा महाराणा एक वैधानिक शासक होगा और शासन का स्वरूप स्थानीय स्वराज्य होगा।

घोषणा पत्र में धार्मिक उत्थान सामाजिक उत्थान, किसानों की आर्थिक उन्नति, जागीदारी प्रथा का अन्त करने, भू-बन्दोबस्त संबंधी कानून चरागाह की समस्या, घास की समस्या, मजदूरों के लिए एवं मजदूरी संबंधी कानून, औद्योगिक विकास, व्यापार-व्यवसाय में अवसर एवं प्रोत्साहन आदि कार्यक्रम की क्रियान्तिवति करने की घोषण मेवाड़ प्रजामण्डल के धारासभा चुनाव घोषण पत्र फरवरी 1948'' में कर जनता को अवगत करवाया।[15]

धारासभा चुनाव व उदयपुर में गोलीकाण्ड

धारासभा चुनाव 4 अप्रेल, 1948 ई. से होने वाले थे। प्रजामण्डल व क्षत्रिय परिषद् ने अपने उम्मीदवार तय कर चुनाव में उतार दिये। मेवाड़ प्रजामण्डल के बलवन्त सिंह मेहता (सी) वार्ड से निर्विरोध निर्वाचित हो गये। इसी वार्ड से मुस्ताक अहमद भी निर्विरोध चुन लिये गये। लेकिन (ऐ) वार्ड से श्री भुरेलाल बया और (बी) वार्ड से प्रेमनारायण माथुर का चुनाव होना था। इनके विरोध में क्षत्रिय परिषद् के उम्मीदवार डॉ. गुमानसिंह राठौड़ चुनाव मैदान में थे। चुनावी प्रचार शुरू हो गया, दोनों दल एक दूसरे की आलोचनाएं व जनता को प्रलोभन देने की घोषणा की तथा दोनों ने अपने-अपने भविष्य के कार्यक्रमों के लिए चुनावी घोषणा पत्र जारी किये।

मेवाड़ प्रजामण्डल के कुछ उम्मीदवार निर्विरोध निर्वाचित हो जाने पर क्षत्रिय परिषद् के कार्यकर्ताओं में तनाव व्याप्त था। 4 अप्रेल, 1948 ई. को प्रजामण्डल की महिला कार्यकर्ता ट्रक आदि में बैठकर चुनाव प्रचार कर रही थी। परिषद् के कार्यकर्ताओं ने इस महिला प्रचार टोली के साथ अभद्र व्यवहार किया। इस बात की सूचना प्रजामण्डल कार्यालय पहुंची तो भुरेलाल बया, देवीलाल मेहता व जनार्दन राय नागर मौके पर पहुंचे तथा इस कृत्य की तीव्र आलोचना की, जिसे आसपास भीड़ एकत्रित हो गई थी। वहां पास ही बड़ी सादड़ी की हवेली पर भुरेलाल बया ने क्षत्रिय परिषद् का झण्डा लगा देखा। यह हवेली उस समय धारासभा के चुनाव का पोलिंग स्टेशन था। इस

कारण पोलिंग स्टेशन पर केसरिया झण्डा लगाने का विरोध हुआ। प्रजामण्डल नेताओं ने आवाज उठाई की पोलिंग स्टेशन सरकारी ईमारत है, इस ईमारत पर क्षत्रिय परिषद का झण्डा लगाना उचित नहीं है, इसे तुरन्त उतारा जाये। काफी समय तक वाकयुद्ध चला, स्थिति तनाव पूर्ण होती देख पुलिस ने हस्तक्षेप किया और एक सिपाही को भेजकर केसरिया झण्डा उतरवा दिया। इसी बीच क्षत्रिय परिषद् के कार्यकर्ताओं ने घटना स्थल पर उपस्थित प्रजामण्डल के मंत्री व प्रजामण्डल कार्यकर्ताओं को घेर लिया। उन्हें गालियां दी गई व कुछ मारपीट भी हुई यह सब पोलिंग स्टेशन पर पुलिस के सामने हुआ।

इस समय प्रजामण्डल का प्रचार ट्रक भी वहां पहुंच गया, इस ट्रक पर तिरंगा झण्डा लगा हुआ था। क्षत्रिय परिषद् के कार्यकर्ताओं ने ट्रक से तिरंगा उताकर पास ही के कुंए में डाल दिया, जिससे स्थिति ओर तनावपूर्ण हो गई। जबरदस्त नारे बाजी होने लगी। एक और क्षत्रिय परिषद् के लोग थे, दूरी तरफ प्रजामण्डल के कार्यकर्ता व जनता थी। जनता ने मांग की कि तिरंगा झण्डा कुएं से निकाल कर वापस ट्रक पर लगाया जाये अन्यथा भूख हड़ताल की जायेगी। कुछ प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं ने महाराणा से भेंट की और सारी स्थिति को समझाया। इस समय तक वातावरण उग्र हो चुका था। हीरालाल कोठारी पर क्षत्रिय परिषद् के कार्यकर्ताओं ने हमला करने का प्रयास किया। पुलिस ने उनका बीच बचाव किया। कुछ बाद इस्पेक्टर ऑफ जनरल पुलिस घटना स्थल पर आये और राष्ट्रीय झण्डे को एक घण्टे के प्रयास के बाद कुंए से बाहर निकाला गया।

इसी गीले तिरंग झण्डे को ट्रक पर पुनः लगाया गया और सारे शहर में जुलूस निकाला गया यह जुलूस मोहता पार्क पहुंचा। जहां यह आम सभा में बदल गया, इसके पांच छः हजार व्यक्तियों की सभा में भाग लिया और यह तय किया गया कि तिरंगे झण्डे के अपमान को लेकर दूसरे दिन 5 अप्रैल को शहर में पूर्णतया हड़ताल रखी जाय तथा चुनाव का बहिष्कार किया जाय।[16]

गोलीकाण्ड

प्रजामण्डल के आह्वान पर 5 अप्रैल, 1948 ई. को उदयपुर शहर में पूर्ण हड़ताल रखी गई। मेवाड़ सरकार ने धारा 144 लगा दी तथा सभाओं और जुलूसों पर पाबन्दी लगा दी, जिससे जनता में भंयकर रोष व्याप्त हो गया, कुछ ही घण्टो के बाद सरकार को सद्बुद्धि प्राप्त हुई और धारा 144 हटा दी गयी।

क्षत्रिय परिषद ने इस हड़ताल को तुड़वाने का प्रयास किया, परिषद् के कार्यकर्ता एक ट्रक पर चढ़कर चुनाव प्रचार करते हुए बड़ा बाजार में आयें, वहां उन्होंने प्रजामण्डल के विरूद्ध शरारत भरा और रोष पैदा करने वाला प्रचार-प्रसार व भाषण आदि दिये।

जनता की भीड़ इकट्ठी हो गई और मांग की कि प्रजामण्डल के विरूद्ध इस तरह झूठा प्रचार तुरन्त बन्द किया जाना चाहिए अन्यथा वे क्षत्रिय परिषद् की ट्रक को आगे नहीं जाने देंगे। क्षत्रिय परिषद् वाले बार-बार यह दोहरा रहे थे कि वे राष्ट्रीय झण्डें का सम्मान करते है। अत: लोगों ने फोरन मांग की कि अगर ऐसा है तो ट्रक पर जिस क्षत्रिय परिषद् का झण्डा फहरा रहा है वहां पर राष्ट्रीय झण्डे को फहरा दे और बाद में उसे गुजरने दिया जायेगा।[17]

इस प्रकार नोक-झोंक की सूचना प्रजामण्डल कार्यालय को प्राप्त हुई तब भुरेलाल बया, प्रेमनारायण माथुर, जनार्दन राय नागर, देवीलाल मेहता आदि कार्यकर्ता बड़ा बाजार पहुंचे। इन सभी ने भीड़ को शान्त रहने का अनुरोध किया। किसी ने इनकी बात नहीं सुनी, इस समय तक शाम के 5 बच गये थे। इसी समय रिसाले से गस्त करते हुए पांच सात घुड़सवार और पुलिस के लोग आ गये थे, घुड़सवारों ने रास्ता रोक दिया। भीड़ इतनी बढ़ गई थी कि ट्रक को आगे बढ़ाना भी संभव नहीं था, लोगों ने ट्रक को वापस घण्टाघर की तरफ पीछे ले जाने की मांग की। क्षत्रिय परिषद् के कार्यकर्ता आगे बढ़ने के लिए जोर देते रहे। इसी समय क्षत्रिय परिषद् का एक कार्यकर्ता नंगी तलवार लेकर सड़क पर कूदा। किन्तु पुलिस ने उसे पकड़ लिया। लेकिन इससे उतेजना काफी बढ़ गई थी। तब आई.जी.पी. आये और पुलिस ने ट्रक ड्राईवर को उतारकर पुलिस ड्राईवर को बिठाकर ट्रक को पीछे लेने को कहा। ट्रक घण्टाघर की ओर पीछे-पीछे धीरे-धीरे खिसक रही थी, उनके साथ जनता की भीड़ भी आगे-आगे बढ़ रही थी, घण्टाघर पुलिस कोतवाली पर आते आते भीड़ में से किसी ने पत्थर व चप्पल निकाल कर कोतवाली की ओर फेंके उस समय कोतवाली के पूर्व दिशा के बरामदे में सीटी मजिस्ट्रेट इन्द्रजीत मेहता व पुलिस अधिकारी खड़े थे, पत्थर व चप्पल आदि उनके आकर लगे। सिटी मजिस्ट्रेट ने तुरन्त पुलिस को फायरिंग के आदेश दिये कोई 15-20 गोलियां पुलिस ने चलाई।

इस फायरिंग में शान्तिलाल एवं आनन्दीलाल नामक दो छात्र मारे गये, जो रिश्ते में मामा-भुआ के भाई थे, इन दोनों के अलावा परशराम त्रिवेदी, नन्द कुमार त्रिवेदी, कालुलाल नहवाया, सोहनलाल कोठारी, रोशनलाल चौरड़िया, (बनेड़ा), गणेशलाल मुरावत, लक्ष्मीलाल चितौड़ा, विद्यार्थी गुलाबसिंह शक्तावत और प्रेमशंकर इन सभी के पैरों में गोलियां लगी, जिन्हें ऑपरेशन कर निकाला गया। विद्यार्थी गुलाबसिंह शक्तावत को चार दिन बाद 9 अप्रैल को अस्पताल में भर्ती करवाना पड़ा।[18]

पुलिस ने यह गोलिया बिना किसी चेतावनी के चलायी थी। गोलिया चलाने से भगदड़ मच गई। इसी दौरान क्षत्रिय परिषद् की ट्रक चुपचाप खिसक गयी। शहर में

कर्फ्यु लगा दिया गया। इस गोली कांड के विरोध में मोहनलाल सुखाड़िया एवं हीरालाल कोठारी ने त्यागपत्र दे दिया।[19] 6 अप्रेल, 1948 ई. को प्रात: मोहनलाल सुखाड़िया एवं हीरालाल कोठारी की सम्मति से कर्फ्यु उठा दिया गया। शान्तिलाल व आनन्दीलाल की शव यात्रा (शहीद जुलुस) में प्रजामंडल के सभी कार्यकर्ता तथा 7-8 हजार का अपार जन समूह था। भारी भीड़ को देखकर धारा 144 हटा दी गयी थी। इस गोलीकाण्ड से स्थिति बदल गई। मेवाड़ सरकार ने प्रस्तावित विधान सभा चुनावों का स्थगित कर दिया। संविधान वापस ले लिया और प्रतिक्रियावादी सक्रिय हो गये।

प्रजामण्डल ने राज्य सरकार की कठोर आलोचनाएं की और अखबारों ने शासन को पुलिसराज की संज्ञा दी। प्रजामण्डल ने गोलीकाण्ड की जांच के लिये न्यायिक आयोग नियुक्त करने की मांग की और प्रेस ने प्रजामण्डल की इस मांग का समर्थन किया। प्रजामण्डल और क्षत्रिय परिषद् दोनों ने ही गोलीकाण्ड को लेकर आलोचना की तथा दोष दोनों ने एक-दूसरे पर डाला। महाराणा प्रजामण्डल की न्यायिक जांच सम्बन्धी मांग को स्वीकार कर चुके थे। उन्होंने एक जांच ट्रीब्युनल नियुक्त किया। वस्तुत: प्रजामण्डल चाहता था कि गोली काण्ड की जांच भारत सरकार द्वारा नियुक्त आयोग को सौंपी जाय, अत: उन्होंने जांच का बहिष्कार किया। चुनाव आगामी आदेश तक स्थगित कर दिये गये।[20] इधर रियासती एकीकरण चल रहा था, महाराणा ने तुरन्त संयुक्त राजस्थान संघ में जाने का निर्णय लिया, इसके साथ ही पूर्ण उत्तरदायी का सपना अपूर्ण रहा और मेवाड़ राजस्थान में शामिल हो गया।

सन्दर्भ

1. *सुखाड़िया, मोहनलाल, मेवाड़ प्रजामण्डल (1938 से 1945 ई.), पृ. 1*
   पाक्षिक रिपोर्ट, सन् 1938, महकमा खास, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, शाखा उदयपुर।
2. *पाक्षिक रिपोर्ट, सन् 1938, महकमा खास, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, शाखा उदयपुर।*
3. *सज्जन कीर्ति सुधाकर, दिनांक 22 फवरी, 1940 ई (समाचार पत्र)*
4. *आल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेंस रिकार्ड, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाईब्रेरी, न्यू दिल्ली।*
5. *हिन्दुस्तान टाईम्स, 3 नवम्बर , 1946 ई. (समाचार पत्र)*
6. *नवजीवन, 17 मार्च एवं 14 अप्रैल, 1947 ई. (समाचार पत्र)*
7. *सज्जन कीर्ति सुधाकर, 16 जून, 1947 ई. (समाचार पत्र)*
8. *नवजीवन, 02 फरवरी एवं 16 फरवरी 1948 ई. (समाचार पत्र)*
9. *मेवाड़ प्रजामण्डल, धारासभा चुनाव घोषणा पत्र, फरवरी 1948 ई. संरक्षित राजस्थान राज्य अभिलेखागार शाखा, उदयपुर।*

10. *नवजीवन, 26 जनवरी, 1948 ई. (समाचार पत्र)*
11. *नवजीवन, 09 फरवरी, 1948 ई. (समाचार पत्र)*
12. *नवजीवन, 02, 16, 24 फरवरी 1948 ई. (समाचार पत्र)*
13. *नवजीवन ,16 फरवरी 1948 ई. (समाचार पत्र)*
14. *नवजीवन, 20 जनवरी 1948 ई. (समाचार पत्र)*
15. *मेवाड़ प्रजामण्डल, धारासभा चुनाव घोषण पत्र, फरवरी 1948 ई. संरक्षित राजस्थान राज्य अभिलेखगार शाखा उदयपुर।*
16. *कोठारी डॉ. देव, स्वतंत्रता आन्दोलन में मेवाड़ का योगदान, पृ. 231-232; नवजीवन; दिनांक 10 अप्रैल, 1948 ई. 'भूरेलाल बया द्वारा व्यक्तव्य' (समाचार पत्र)*
17. *वही*
18. *माथुर (डॉ.) गिरिशनाथ, उदयपुर के स्वतंत्रता सेनानी (अप्रकाशित ग्रंथ) पृ. 113; नवजीवन, दिनांक 10 अप्रैल, 1948 ई. (समाचार पत्र)*
19. *नवजीवन, दिनांक 10 अप्रैल, 1948 ई. (समाचार पत्र)*
20. *कोठारी (डॉ.) देव; स्वतंत्रता आन्दोलन में मेवाड़ का योगदान, पृ. 233*

बीकानेर राज्य की जल संरक्षण नीति एवं प्रयास

डॉ. मीना कुमारी

जल संरक्षण की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। बढ़ती हुई आबादी और इससे जुड़ी हुई जरूरतों ने मरूस्थल में जल संरक्षण की तरफ ध्यान देना और भी जरूरी हो गया था। इस क्षेत्र में जल प्रबन्धन उचित प्रकार से किया जाता था अन्यथा जल की कमी वाले क्षेत्र से गुवाड़ियां पलायन करना शुरू कर देती थी।[1] पलायन से गांव के गांव सूने होने लगते थे।[2] किसी भी राज्य की सुदृढ़ता का आधार वहां की आबादी का समृद्ध होना ही होता है, इसी आबादी हेतु राज्य सरकार द्वारा जल प्रबन्धन हेतु जलाशयों का निर्माण करवाया जाता था।[3] इस निर्माण कार्य से अधिक जल की एक एक बूंद के संरक्षण के लिए कुछ नीतियां निर्धारित की जाती थी जिससे जल संरक्षण द्वारा समाज में सुव्यवस्था बनी रहे।

पश्चिमी राजपूताना में वर्षा की अनियमितता वाले इस क्षेत्र में भू-जल भी अत्यंत गहराई में मिलता था और अधिकतर जगह भू-जल बिरावणा ही था। उपरोक्त इन परिस्थितियों में मरुभूमि में जल संरक्षण के प्रयास और भी जरूरी हो जाते हैं। इसी सन्दर्भ में राज्य सरकार ने जल के उपभोग को सुनिश्चित करने हेतु जल एवं इसके संसाधनों का वर्षभर उचित मात्रा में उपयोग में लिया जाए इसी हेतु राज्य सरकार ने जल एवं इसके उपभोग पर कराधान प्रणाली अपनाई।

मानव स्वभाव है कि जब तक किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित नहीं किया जाए तब तक उसकी महत्ता समझ में नहीं आती, और उस वस्तु का असीमित रूप से उपभोग ही नहीं किया जाता बल्कि उसका दोहन भी शुरू हो जाता है। इसी सिद्धांत के अंतर्गत बीकानेर राज्य सरकार ने कुओं से पानी उपभोग पर अंकुश लगाने के लिए कर निर्धारित कर दिया था। बीकानेर बहियात के अनुसार जन सामान्य लोगों को पानी पीने के लिए बाब चुकानी पड़ती थी।[4] पिहाई बाब राज्य के राजकोष में जमा होती थी।[5] कुओं से जलापूर्ति करने वाले मालियों व सिक्कों से राज्य द्वारा कोहर री भाछ नाम से कर वसूला जाता था।[6] इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को सीमित मात्रा में ही जल मिलता था और इसी सीमित मात्रा में मिले इस जल से ही वह अपने दैनिक-जीवन की समस्त जल सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था।

बीकानेर राज्य सरकार ने जलाशयों के पानी से सिंचित भूमि पर अतिरिक्त

कराधान लागू किया गया था जिसके अनुसार बीकानेर के चूरू परगने में कुओं-तालाबों से सिंचित जमीन पर प्रति बीघा डेढ़ आना बिधेड़ी कर वसूल किया जाता था।[7] कृषि प्रधान देश के इस मण्डल में कृषि व पशुपालन का अन्योन्याश्रित संबंध है। मरूस्थलीय भाग में कृषि व्यवस्था पूर्णरूपेण अनिश्चित वर्षा पर आधारित है। इस गंभीर स्थिति में शुष्क एवं घने रेतीले क्षेत्र में उन्नत पशु सम्पदा यहां के निवासियों के लिए महत्वपूर्ण देन है क्योंकि पशुपालन के अतिरिक्त यहां के लोगों के लिए जीवन-यापन का दूसरा साधन उपलब्ध नहीं था। इस तरह यहां के लोग ज्यादातर पशुपालन पर ही निर्भर थे।[8] क्योंकि पशुओं की वृद्धि से उस क्षेत्र विशेष के कुएं पर आश्रित जनता प्रभावित होती थी। बीकानेर राज्य व्यापार-वाणिज्य में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था और यहां के चूरू, राजगढ़, रेणी, सुजानगढ़ और अन्य कस्बे शनै-शनै राज्य स्तर के ही नहीं अपितु देश के व्यापारिक केन्द्र बन गए थे।[10] इन व्यापारिक मार्गों पर बिना किसी अनुमति के कोई भी व्यक्ति और कारवां अपने पशुओं को किसी के जलाशय से जल नहीं पिला सकता था। जल की महत्ता को व्यक्त करने वाली इस नीति के तहत आने-जाने वाले कारवों या राहगीरों को जलाशय से अपने पशुओं को जल पिलाने की पूर्व अनुमति लेनी पड़तीथी। राजदरबार द्वारा दिए गये उस आदेश को दिखाने पर ही ऊँटों और अन्य पशुओं को पानी पीने दिया जाता था।[11] उदाहरणार्थ यहां तक यदि सेना जब विभिन्न स्थानों से गुजरती थी तो वे भी अपनी इच्छानुसार रास्ते के जलाशय का उपभोग नहीं कर सकते थे। यहाँ तक कि सैनिकों और लश्कर के पशुओं के लिए जल की व्यवस्था भी राज्य सरकार के आदेश से ही होती थी।[12] बीकानेर शहर राज्य की स्थाई सेना के लिए बीकानेर के चन्दन सागर कुएं से जल की व्यवस्था करवाई गई थी। इस हेतु राज्य द्वारा कोहर के माली को पीछ बाबत पिहाई दी गई थी।[13]

राज्य सरकार जल संरक्षण के लिए पेड़-पौधों की अधिकता के महत्व को भी समझती थी कि जितने अधिक पेड़-पौधे होंगे, मरुभूमि के तपते हुए धोरों की जमीन में वर्षा उतना ही अधिक आकर्षित करेंगे। राज्य सरकार कृत्रिम जलाशय निर्माण की मंजूरी उसके साथ बाड़ी या अन्य रूप से वृक्ष रोपण के साथ देती थी। चूरू के लोहिया के कुएँ-बाड़ी की जमीन का पट्टा श्रावण सुदी 2 वि.सं. 1921/1864 ई. का है। जौहरी सागर तालाब एवं उसकी पायतण के लिए मिति वैशाख वदी 4 सम्वत् 1921/1864 ई. को प्रदत्त पट्टे में स्पष्ट किया गया कि यदि इस पट्टे के बाद कोई वाद विवाद करता है तो उसे श्री दरबार की तरफ से वादी के दावे को अमान्य माना जायेगा। बीकानेर महाराजा सरदारसिंह (1851-1872 ई.) ने वि.सं. 1924/1867 ई. में चूरू में मगनी सागर कुआँ बनाने के लिये, बीकानेर राजदरबार के पोतेदार मगनीराम मोतीराम को जमीन के पट्टे प्रदान करने की मंजूरी दी थी।[14] इसी के अंतर्गत कच्चे तालाबों के किनारे भी वृक्षारोपण

किया जाता था, ताकि तालाब का पानी सूर्य की ऊष्मा से जल्दी सूखे भी नहीं और पाळ मजबूती पा सके जिससे बारिश के पानी के तेज बहाव से पाळ तोड़कर पानी बह ना पाए। जलाशयों के किनारे अतिरिक्त भी वृक्षारोपण के संरक्षण के प्रयास किये जाते थे। इन प्रयासों में बीड़-ओरण निर्मित करवाना भी शामिल था। जिसके लिए सरकार द्वारा हरे पेड़-पौधों को काटने की मनाही थी।[15] उदाहरणार्थ बीकानेर के गांव ईंदपालसर के स्वामी मनरूप जी को स्थानीय कुओं से पाणी पीछ करने का राजकीय आदेश हुआ साथ ही ओरण की भूमि से झाड़ बोरड़ी व खेजड़ी के वृक्षों को न काटने की हिदायत भी राज्य सरकार द्वारा दी गई थी। इसी तरह से यदि जोड़ (बीहड़) में कोई अपने पशुओं से वहां के पेड़-पौधों को कोई नुकसान पहुंचाता था तो उसे दरबार की तरफ से ऐसा न करने का आदेश दिया जाता था और साथ ही यदि वापस ऐसा किया तो दरबार में उपस्थित होना पड़ेगा उदाहरणार्थ-

जोड़ रो हुवालदारो जोग्या खुवास हीमसिंघ रो खेत
वा पुनसुख घणे रो खेत डोगरो कने
खुवाया सु आछो काम न कयो आगे सु कणीरो
उजाड़ करायो तो ओलभो आसी।[16]

बीकानेर के महाराजा ने इस मरूक्षेत्र में वृक्षों के महत्व को समझकर ही यहाँ सर्वप्रथम वन सम्पदा की सुरक्षा के लिए ''जंगलों का बिल, रियासत बीकानेर सन् 1927 ई.'' पास किया था। यह उस समय का असधारण राजपत्र तारीख 11 अगस्त 1927 ई. में प्रकाशित करके सम्पूर्ण रियासत में लागू किया गया था। इस बिल ने यहां वनारोपण एवं यहां के प्राणियों को राहत देने में अपना योगदान दिया था।[17]

जलाशयों में वर्षा जल का अधिक से अधिक संरक्षण हो इस हेतु पानी के आगोर की सार-सम्भाल की ओर भी राज्य सरकार विशेष ध्यान देती थी, जिससे कि आगोर में गिरे हुए जल की बूंद-बूंद का संरक्षण हो सके। इसी सन्दर्भ में आगोर से मिट्टी निकालने और वहां पर किसी भी प्रकार का गड्ढ़ा खोदने की मनाही होती थी। उदाहरणार्थ - वि.सं. 1827/1770 ई. ये गांव भरपालसर के चौधरियों को दिये गए आदेश में उल्लेख मिलता है कि तालाब के आगोर में माटी खोदी या गढ्ढा बनाया गया तो गुनेहगारी (जुर्माना) लगायी जाऐगी।[18] आगोर पर कब्जा करने वाले को छः महीने के कारावास के साथ-साथ एक हजार रुपये के अर्थदण्ड का भी प्रावधान होता था। आगोर के पानी के तालाब में आने से रोकने वाले को भी दण्डित किया जाता था।[19]

किसी भी जलाशय के जल का समुचित उपभोग हो और उस जलाशय के जल का समुचित उपयोग हो इस हेतु भी समस्त नियम राज दरबार में बने होते थे। जलाशय के किसी कारणवाश क्षतिग्रस्त होने पर मरम्मत करवानी आवश्यक होती थी।[20] बीकानेर

बहियात के अनुसार वि.सं. 1893-94/1837-38ई. में राजगढ़ के उत्तरी दिशा में स्थित सीतलजी का कुआं बन्द था उसे पुन: चालू किया गया सब कुंए की मरम्मत बीढ़ो बांध कर की गई थी। साथ ही सारण भी पुन: निर्मित करवाई गई थी।[21] इसी तरह से यदि किसी गांव का कुआं खराब हो जाता था तो सरकार उस गांव के पास के किसी गांव के चौधरी को बाकायदा आदेश देती थी कि जब तक कुआं पुन: बहाल नहीं हो जाता तब इनके लिए यहाँ पानी की व्यवस्था की जाए।[22] उदाहरणार्थ-

गाँव सामलसर रो चोधरियो समसुतो जोग तीथा गाँव माठसर रा कुवो ढेह पड़ीयो छै चु कुवोबांध इतरे पीछ थारे कुवे करण देजो जेठ सुदी 13।[23]

राज्य सरकार जलाशय के उचित उपभोग के साथ-साथ उसकी गुणवत्ता के बनाये रखने के प्रयास भी किए जाते थे। जलाशय का जल स्वास्थ्यवर्धक रहे, इस हेतु राज्य द्वारा कुछ नियमों का पालन भी करवाया जाता था। जैसे जलाशय से 50 फीट की दूरी पर भी यदि कोई गन्दगी डाल दी जाती थी तो सूचना देने से एक सप्ताह के अन्दर गन्दगी उठानी पड़ती थी। तय समय में काम नहीं होने पर उसको जुर्माने सहित दण्ड दिया जाता था।[24] जलाशयों की गुणवत्ता की समय-समय पर इसकी स्वास्थ्य अधिकारी द्वारा जांच भी करवाई जाती थी, अगर किसी स्वास्थ्य अधिकारी की रिपोर्ट के अनुसार किसी जलाशय में पानी दूषित हो जाने की पुष्टि हो जाती थी, तो सार्वजनिक सूचना द्वारा ऐसे पानी के पीने पर रोक लाई जाती थी।[25]

जल का ज्यादा से ज्यादा संरक्षण किया जा सके इस कार्य के प्रोत्साहन स्वरूप जलाशय के निर्मित करवाने पर उसमें जो भागीदार होते थे, उन्हें राज्य सरकार की तरफ से छूट प्रदान की जाती थी या फिर उनके उस साल का कर माफ कर दिया जाता था।[26] इसके साथ ही यदि कहीं जल संरक्षण हेतु किसी जलाशय का निर्माण करवाया जाता था और स्थानीय लोग इसे बनाने में समर्थ नहीं होते थे तो राज्य सरकार की तरफ से आर्थिक मदद की जाती थी। उदाहरणार्थ-

राजगढ़ रा हुवलदार जोग्य तीथा गाँव नांगल छोटी रा चोधरी अमरे नु कुण्ड एक नये पाको करसी ते वास्ते रु. 40 श्री दरबार सु दराया छे सु गांव नांगल री रकम में हुवालदार हुआ सु भरा देजो तेरा खंजान्ची बागमल जमा खरच करा लेजो दु. मोहोतो मेघराज वैसाख वद 6।[27]

जल लम्बे समय तक उपभोग में आ सके, इस हेतु राज्य सरकार सामर्थ्यवान व्यक्तियों को तालाब के पक्का बनाने की अनुमति दी जाती थी, जिससे पानी की एक-एक बूंद को जमीन रिसने से बचाकर जल का संरक्षण कर सके। भादरा के बैनीवाल के भिरानी गांव के जागीरदार मोमनराम बेनीवाल ने वि.सं. 1885/1825 ई. में पक्के तालाब निर्मित करवाया था।[28]

यदि कोई जल संरक्षण में किसी भी तरह की बाधा पहुंचातेथे तो दरबार की ओर से ऐसा न करने का आदेश निकाला जाता था। उदारहणार्थ-भोजासर रो भोगतो चौधरियों समसुतो जोग तिथा गांव राजासर फगेडीये रे भाटी सेरे खेतसिंघोत श्री दरबार मालम कराई मै म्हारा गांव री कांकड़ में तलाई खोदता था सु थे बुर दीवी नहीं सु आछो काम न किया हमे आपरे गांव री कांकड़ में मलाई खोदण देजो झगड़ो अडबी हुवे तो श्री दरबार आय जाव करजो मी. आसाढ़ सुदी1।[29]

निष्कर्षत: बीकानेर राज्य के प्रशासन ने जल समस्या से निपटने के लिए प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न नीतियाँ अपनाई थी एवं इन नीतियों के तहत राज्य द्वारा भरसक प्रयत्न किए गए ताकि आम जन तक जल की पर्याप्त उपलब्धता हो सके एवं जल तथा जलीय स्त्रोतों का संरक्षण किया जा सके। वर्तमान में बढ़ते हुए जल संकट से निजात पाने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों को कुछ इसी प्रकार की जल नीतियों के बनाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. *कागद बही नं. 32, वि.सं. 1882/1825 ई., पृ. 17 एफ-2,3*
2. *सनद परवाना बही नं. 14, वि.सं. 1831/1774 ई., पृ. 158 एफ-2*
3. *मीना कुमारी, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध*
4. *राजेन्द्र कुमार, पृ. 112 उद्धृत कागद बही नं. 30, वि.सं. 1881/1824 ई, पृ. 346 एफ-2, कौंसल रे हुकमा री बही नं. 5, वि.सं. 1931/1874 ई., पृ. 35, बीकानेर रिकार्ड्स; सनद परवाना बही नं. 13, वि.सं. 1830/1773 ई., पृ. 47 एफ-2, जोधपुर रिकार्ड्स*
5. *राजेन्द्र कुमार, पृ. 112*
6. *जी.एस.एल. देवड़ा, राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था, धरती प्रकाशन बीकानेर, प्रथम संस्करण 1981, पृ. 182*
7. *सावा बही चुरू, नं. 2, वि.सं. 1882/1825 ई., इमेज नं. 49-63, ऑनलाइन सर्वर, बीकानेर रिकोर्ड्स, रा.रा.अ.बी।*
8. *रिर्पोट ऑफ दी बीकानेर बैकिंग इनक्वायरी कमेटी (1930), पृ. 70 रा.रा.अ.बी.*
9. *सर्वे के दौरान जानकारी मिली (साक्षात्कार- श्री मानसिंह जांगिड़, उम्र 94 वर्ष, लाखलान, तारानगर, चूरू*
10. *जी.एस.एल. देवड़ा, राजस्थान इतिहास के अभिज्ञान रूप, पूर्वोक्त, पृ. 214*
11. *कागद बही, नं. 47, वि.सं. 1897/1840 ई., पृ. 21, 260, बीकानेर रिकोर्ड्स, रा.रा.अ.बी*
12. *कागद बही, नं. 24, वि.सं. 1875/1818 ई., पृ. 3 एफ, 2; कागद बही, नं. 47, वि.सं. 1897/1840 ई., पृ. 21;*

13. राजेन्द्र कुमार, पूर्वाक्त, पृ. उद्धत कौंसल रे हुकमा री बही, नं. 5, वि.सं. 1931/1874 ई., पृ. 35, बीकानेर रिकोर्ड्स, रा.रा.अ.बी.
14. मरू श्री, जुलाई-दिसम्बर 1982, वर्ष 11, अंक 4, वर्ष 12, अंक 1, पृ. 39-48
15. मीना कुमारी, अप्रकाशित शोध प्रबंध, कोटा विश्वविद्यालय कोटा 2015, पृ. 182
16. कागद बही, नं. 6, वि.सं. 1839/1782 ई., इमेज नं. 84, ऑनलाइन सर्वर, बीकानेर रिकार्ड्स, रा.रा.अ.बी.
17. एवर नं. 4, सन् 1927 ई., जंगलों का बिल, रियासत बीकानेर सन् 1927 ई. गवर्नमेंट प्रेस, बीकानेर;
18. कागद बही नं. 3, वि.सं. 1827/1770 ई. इमेज नं. 81, बीकानेर रिकॉर्ड्स रा.रा. अ.बी.
19. बृजरतन जोशी, जल और समाज, पुस्तक संसार चौड़ा रास्ता, जयपुर 2005, प्रथम संस्करण, पृ. 55-60
20. महकमा खास, फाइल नं. 1, प्र. 22, रा.रा.अ.बी.
21. सावा बही राजगढ़, पं. 18, वि.सं.1893-9/1837-38 ई. इमेज नं. 286 ऑनलाईन सर्वर, बीकानेर, रिकॉर्ड्स, रा.रा.अ.बी.
22. सावा बही सूरतगढ़ नं. 2, वि.सं. 1945/1888 ई., इमेज नं. 13; सावा बही सूरतगढ़, नं. 7, वि.सं. 1855/1798 ई., पृ. 3, ऑनलाइन सर्वर, बीकानेर रिकोर्ड्स, रा.रा.अ.बी.
23. कागद बही, नं. 12, वि.सं. 1859/1802 ई., इमेज नं. 32, ऑनलाइन सर्वर, बीकानेर रिकॉर्डस, रा.रा.अ.बी.
24. म्यूनिसिपल एक्ट, राजश्री बीकानेर, एक्ट नं. 6, 1923 ई. गवर्नमेंट प्रेस बीकानेर, 1923, प्र. 30,31, रा.रा.अ.बी.
25. म्यूनिसिपल एक्ट, सन् 1923 पूर्वोक्त, पृ. 30, 31
26. कागद बही, नं. 5, वि.सं. 1838/1781 ई., इमेज नं. 17, ऑनलाइन सर्वर, बीकानेर रिकॉर्ड्स, रा.रा.अ.बी.
27. कागद बही, नं. 74, वि.सं. 1924/1867 ई., प्र. 10 एफ-1 ऑनलाइन सर्वर, बीकानेर रिकॉर्ड्स, रा.रा.अ.बी
28. सर्वेक्षण के समय शिलालेख का पाठ-
इस पक्के तालाब का निर्माण श्री मोमनराम बैनीवाल संवत् 1885 में बनवाया। जन्म वि. संवत् 1864 स्वर्गवास वि. संवत् 1905।
29. कागद बही, नं. 32, वि.सं. 1882/1825 ई., पृ. 119 एफ 1-3, ऑनलाईन सर्वर, बीकानेर रिकॉर्ड्स, रा.रा.अ.बी.

बीकानेर रियासत की विश्वविख्यात 'गंगा रिसाला' (ऊंट वाहिनी सेना) द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दी गई योद्धिक सेवाएं

गिरधारी सिंह

प्राचीनकाल में राज्य के अस्तित्व के लिए सेना का बहुत महत्व था। राज्य का विस्तार एवं विकास प्रत्यक्ष रूप से राज्य की सेना पर निर्भर था। शक्तिशाली सेना के द्वारा ही राज्य को शक्ति संपन्न बनाया जा सकता था। इसी अनुक्रम में पूर्वमध्यकाल एवं मध्यकाल के मामलूक, खिलजी, तुगलक, सैयद एवं लोदी राजवंशो तथा मुगल शासकों ने आधुनिक युद्ध प्रणाली से सुसज्जित सेना द्वारा ही भारत जैसे विशाल देश को विजित किया एवं लम्बे समय तक अपना शासन भी बनाये रखा। इसी समय राजस्थान में भी अनेक रियासतें थी जो अपनी सैन्य क्षमता एवं वीरता के लिए जानी जाती थी। इसी क्रम में बीकानेर रियासत भी अपनी सैनिक क्षमता के लिए जाती थी। बीकानेर राज्य की विषम भौगोलिक परिस्थितियों ने भी यहां के लोगों को स्वाभाविक रूप से कठोर एवं संघर्षशील बनाया जो उन्हें एक अच्छे योद्धा बनाने में सहायक रहा।

गंगा रिसाला (ऊंट वाहिनी सेना) का गठन - मरूस्थल अर्थात रेगिस्तान के जहाज 'ऊंट' को इस रेगिस्तानी क्षेत्र में दीर्घकाल से ट्रांसपोर्टेशन के उद्देश्य से इस्तेमाल किया जाता रहा था। यह पहला मौका था जब बीकानेर नरेश महाराजा गंगासिंह के शासनकाल के दौरान ऊंट को घोड़े के समकक्ष महत्ता प्रदान करते हुए उसे आर्मी का एक हिस्सा बनाते हुए समसामयिक बीकानेर राज्य की सेना में एक ''कैमल-कॉर्प'' का गठन किया। बीकानेर राज्यकी रीजेंसी कौंसिल ने सन् 1889 ईस्वी में यह 'कैमल-कॉर्प' खड़ी की तथा इसका नामकरण तत्कालीन बीकानेर नरेश महाराजा गंगासिंह के नाम पर गंगा रिसाला रखा गया।

गंगा रिसाला पूरे भारत में अपनी तरह की पहली ऊंट वाहिनी सेना थी जो क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों एवं अच्छी नस्ल के ऊंटों की उपलब्धता के कारण राज्य की सुरक्षा के लिए काफी उपयोगी थी।

चीन के बॉक्सर युद्ध (1898 से 1901) में गंगा रिसाला की भूमिका - बॉक्सर विद्रोह या मुक्केबाज विद्रोह चीन में सन् 1898 से 1901 तक चलने वाला यूरोपीय

साम्राज्यवाद और ईसाई धर्म के फैलाव के विरूद्ध एक हिंसक आन्दोलन था। इसका नेतृत्व एक ''धार्मिक समस्वर संघ'' (यीहेतुआन) नाम के संगठन ने किया था, जिन्हें 'धार्मिक और समस्वरीय मुक्को का संघ'' भी कहा जाता था। मुक्केबाज को अंग्रेजी में बॉक्सर कहते हैं इसलिए विद्रोहियों को यही बुलाया जाने लगा।

चीन में हुए इस 'बॉक्सर विद्रोह' में ब्रिटिश एम्पायर की तरफ से तत्कालीन बीकानेर नरेश महाराजा गंगासिंह एवं उनकी गंगा-रिसाला ने अगस्त 1900 ईस्वी में सेवाएं प्रदान करते हुए बहुत ही सराहनीय प्रदर्शन किया था।[1] चीनी भूक्षेत्र को देखते हुए 'गंगा रिसाला' को वहां पर डिसमांउडेंट यूनिट के रूप में इस्तेमाल किया गया था। सी. यू. एचीसन के अनुसार 'इम्पीरियल सर्विस कैमल-कॉर्प गंगा रिसाला ने चीन अभियान में महाराजा गंगासिंह की निज कमांड में इंफेंट्री के रूप में अपनी सेवाएं प्रदान की थी।

भारतीय नरेशों में केवल महाराजा गंगासिंह ही चीन युद्ध शामिल हुए। इनकी विशिष्ट सेवाओं के बदले में भारत के सम्राट ने गंगा-रिसाला के झण्डे में 'चाइना 1900' का सम्मान चिन्ह लगाने की अनुमति दी थी। जनरल सर अलफ्रेंड गसेली ने इस युद्ध की याद स्वरूप महाराजा गंगासिंह को शत्रुओं से छिनी हुई एक तोप भेंट की। जून 1902 में सम्राट एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के अवसर पर महाराजा गंगासिंहजी को सम्राट द्वारा ''चाइना मैडल'' प्रदान किया गया।

सोमालीलैण्ड युद्ध (1902-1904 ईस्वी) में गंगा रिसाला की सेवाऐं - सोमालिया, अफ्रीका के पूर्वी किनारे पर स्थित एक देश है। इसके उत्तर पश्चिम में जिबूती, दक्षिण पश्चिम में केन्या, उत्तर में अदन की खाड़ी, पूर्व में हिन्द महासागर और पश्चिम में इथियोपिया स्थित है।

औपनिवेशिक काल में अफ्रिका के हॉर्न में सोमाली-निर्जन क्षेत्रों को सामूहिक रूप से 'सोमालीलैण्ड' के रूप में जाना जाता था। 1884 में ब्रिटेन ने तत्कालीन सोमाली सुल्तानों के साथ क्रमिक सन्धियों पर हस्ताक्षर कर उत्तरी सोमालिया में ब्रिटिश सोमालीलैण्ड रक्षक की स्थापना की। 1900 ईस्वी में सोमाली धार्मिक नेता सैयद मोहम्मद अब्छुल्ला हसन (जिसे अक्सर ब्रिटिशों द्वारा ''मैड मुल्ला'' कहा जाता था) ने अंग्रेजों के विरूद्ध अपना प्रथम दरवेश विद्रोह प्रारम्भ किया जो 1920 ईस्वी तक विभिन्न चरणों में चलता रहा।

1902 में महाराजा गंगासिंहजी ने सोमालीलैण्ड की लड़ाई में अपनी सेना की सेवाएं देने का प्रस्ताव अंग्रेजी सरकार को भेजा एवं अनुमति मिलने पर जनवरी 1903 में गंगा-रिसाला के 216 सैनिक और 250 ऊंट इस युद्ध में भेजे गये। युद्ध क्षेत्र में केवलय यही एक ऊंट सेना होने के कारण और साथ ही इसके लिए अनुकूल जलवायु वहां प्राप्त

होने से लड़ने के अलावा रास्ता खोजने, मरूभूमि में जल तलाश करने, पत्र लाने-ले जाने आदि कार्यों में भी इससे बड़ी सहायता प्राप्त हुई।

गंगा रिसाला की शत्रु सेना से दो बड़ी मुठभेड़ हुई। सोमालीलैण्ड युद्ध के बाद गंगा-रिसाला मेजर गफ की अध्यक्षता में बोहोट्ल एवं धारातोल भी गई। यहां भी इन सैनिकों ने अपनी विशिष्टता दिखलाई।[2] अंत में अंग्रेजों को मैड मुल्ला के विरूद्ध सफलता मिली।

प्रथम विश्वयुद्ध में महाराजा गंगासिंह एवं गंगा रिसाला - महाराजा गंगासिंह जी ने अंग्रेजों के प्रथम विश्व युद्ध में शामिल होने की संभावना देख 03 अगस्त 1914 को सम्राट जार्ज पंचम एवं भारत के वाइसराय को अपनी सेना के युद्ध में शामिल होने की इच्छा प्रकट की। अंग्रेज सरकार द्वारा अनुमति मिलने पर अक्टूबर 1914 में गंगा रिसाला स्वेज (मिश्र) पहुंचा। स्वेज नहर के आस-पास का प्रदेश ऊंट सेना के लिए उपर्युक्त था। मिश्र में एक मात्र केमल कोर होने के कारण, युद्ध के साढे चार वर्षों की अवधि तक स्वेज के पूर्व में रक्षा, भ्रमण और जासूसी देखभाल के कार्य विख्यात रेजीमेंट (गंगा-रिसाला) पर निर्भर था।

20 नवम्बर 1914 को प्रथम बार गंगा-रिसाला की बिर-अल-अस में शत्रु सेना से मुठभेड़ हुई जिसमें ऊंट वाहिनी के सैनिकों ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। जनवरी-फरवरी 1915 में जमाला पाशा की अध्यक्षता में तुकी सेना के अग्रसर होने पर गंगा-रिसाला की शत्रु सेना से निरन्तर मुठभेड़ होती रही और शत्रु सेना आगे बढ़ने में कामयाब न हो सकी। इसी वर्ष महाराजा गंगासिंहजी ने स्वयं अपनी सेना का संचालन करते हुए कतीब-एल-खेल के युद्ध में तुर्क सेना को परास्त किया।[3]

1918 में गंगा-रिसाला का केन्द्र अमरिया के समुद्र तट पर रक्षकों की सहायता के लिए नियत किया गया जिसमें जहाज के साथ डूबने वाले लोगों की प्राण रक्षा करते हुए उन्हें सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाया। अंतत: 11 नवम्बर 1918 को प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त होने पर शत्रुओं से छिने हुए दो हवाई जहाज, सात मशीनगनें, 51 बन्दूकें, कुछ तलवारे आदि युद्ध की स्मृति स्वरूप बीकानेर राज्य को अंग्रेज सरकार की तरफ से भेंट की गई। गंगा-रिसाला के अफसरों एवं सैनिकों को उनकी वीरता के लिए सम्मानित किया गया। पेरिस शांति सम्मेलन में महाराजा गंगासिंहजी को आमंत्रित किया गया एवं 28 जून 1919 के संधि पत्र पर भारतीय प्रतिनिधि और ब्रिटिश साम्राज्य के साझेदार की हैसियत से महाराजा गंगासिंह ने हस्ताक्षर किये।[4]

द्वितीय विश्व युद्ध एवं गंगा रिसाला - द्वितीय विश्व युद्ध के समय महाराजा गंगासिंहजी द्वारा अपनी सेवाएं देने के अनुरोध को अंग्रेज सरकार द्वारा स्वीकृति प्रदान करने के उपरान्त 17 अगस्त 1940 को गंगा-रिसाला बीकानेर से रवाना होकर युद्ध क्षेत्र

(मध्य-पूर्व) में पहुंचा।[5] यह भारतीय राज्यों में प्रथम कोर थी जिसकों इस महायुद्ध में जाने का सर्वप्रथम सम्मान मिला। इस कोर की ताकत पहले की तुलना में 45 प्रतिशत अधिक थी। कोर की कमान लेफ्टिनेंट कर्नल खेमसिंह के हाथ में थी।

दिसम्बर 1942 में मिश्र एवं लीबीया में राष्ट्र संघ के हस्तक्षेप के कारण गंगा-रिसाला को अरब से हटाकर सिंध प्रांत (अब पाकिस्तान में) में तैनात किया गया। जून 1944 तक सिंध प्रांत में सक्रिय सेवा के बाद गंगा रिसाला ने हुरों के विद्रोह को दबाने में भाग लिया। इस तरह लगभग 4.5 वर्ष तक महायुद्ध में अपनी सेवाएं देकर 30 जनवरी 1945 को गंगा-रिसाला वापिस अपनी रियासत बीकानेर लौटी।

गंगा रिसाला ने साम्राज्यवादी युद्धों (प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध) एवं ब्रिटिश सोमालीलैण्ड में महत्वपूर्ण सेवाएं देकर अपनी उपयोगिता को सिद्ध किया तथा बीकानेर रियासत की गौरवशाली परम्परा को कायम रखते हुए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति एवं सम्मान अर्जित किया। स्वतंत्रता के पश्चात गंगा-रिसाला को 13 ग्रेनेडियर्स के रूप में भारतीय सेना में शामिल किया गया। 1965 एवं 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्धों में भी इस सेना ने कई अग्रिम चौकियों पर पाकिस्तानी सेना से टक्कर ली। आज भी सीमा सुरक्षा बल में ऊंटों की सेना की उपयोगिता एवं क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों के मध्य पाकिस्तान से लगी अंतर्राष्ट्रीय सीमा की चौकसी का सम्पूर्ण भार इन्हीं ऊंटों की सेना पर टिका हैं।

संदर्भ

1. *बीटसन, ए हिस्ट्री ऑफ द इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स ऑफ नेटिव स्टेट्स, पृ. 21*
2. *द हाउस ऑफ बीकानेर, बीकानेर-1933, पृ. 45*
3. *पन्नीकर, के.एस., हिज हाईनैस द महाराजा ऑफ बीकानेर-ए बायोग्राफी, लन्दन 1937, पृ. 159*
4. *ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, बीकानेर राज्य का इतिहास भाग-2, पृ. 142*
5. *सिंह, डॉ. करणी, बीकानेर राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से संबंध (1465-1449), बीकानेर 1968, पृ. 329*

बीकानेर राज्य के महाराजा सूरतसिंह के काल में सैन्य संगठन

डॉ. मोहम्मद फारूक चौहान एवं डॉ. शारदा शर्मा

महाराजा सूरतसिंह बीकानेर रियासत (राज्य) के 17वें शासक थे। सन् 1949 में बीकानेर रियासत के राजस्थान संघ में विलय से पूर्व बीकानेर राठौड़ राज्य के नाम से ज्ञात था। राठौड़ सरदारों के आक्रमण से पूर्व यह क्षेत्र 'जांगल देश' के नाम से जाना जाता था।[1] बीकानेर राज्य 27°12' से 30°12' उत्तरी अक्षांश और 72°12' से 75°41' पूर्व देशांतर के बीच फैला हुआ था।[2] इसका क्षेत्रफल 23317 वर्गमील था।[3] क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत की समस्त रियासतों में छठी[4] और राजपूताने में दूसरी बड़ी रियासत थी।[5] राजस्थान राज्य में विलीनीकरण से पूर्व बीकानेर राज्य के उत्तर व पश्चिम में भावलपुर रियासत, दक्षिण-पश्चिम में जैसलमेर रियासत, दक्षिण में जोधपुर रियासत, दक्षिण-पूर्व में जयपुर रियासत, पूर्व में लोहारू रियासत व हिसार जिले एवं उत्तर-पूर्व में फिरोजपुर जिले थे।[6]

बीकानेर रियासत की सीमा पर स्थित क्षेत्रों में लड़ाइयां होती रहती थीं। उन्हें दबाने के लिए मजबूत सेना का गठन जरूरी था। मौजगढ़ के खुदाबख्श की सहायता करने के लिए मेहता मंगनीराम की अध्यक्षता में 25,000 सेना खुदाबख्श के साथ रवाना की।[7] भटनेर से भट्टियों को निकालने के लिए सुराणा अमरचन्द की अध्यक्षता में वि.सं. 1861/1804 ई. में 4,000 की सेना भटनेर गई। जोधपुर के शासक मानसिंह के विरुद्ध सवाईसिंह की सहायतार्थ 8,000 सेना भेजी। वि.सं. 1863/1803 ई. को यह युद्ध हुआ था।[8] वि.सं. 1866/1809 ई., 1810 ई., 1812 ई. व 1813 ई. में अमरचन्द ने बागी ठाकुरों को खूब सजा दी। 1805 ई. में धौकल सिंह की मदद के वास्ते मारवाड़ पर 80,000 सेना के साथ महाराजा सूरतसिंह ने चढ़ाई की।[9] कान के कच्चे सूरतसिंह ने होनहार दीवान अमरचन्द को अपने दरबारियों के बहकावे में 1815 ई. में मरवा दिया था। सच्चाई मालूम होने पर अपने कृत्य पर बहुत पछताए।

सेना में बंदूकची भी होते थे। नगर की रक्षा हेतु चहारदीवारी पर स्थित बड़े दरवाजों व बारियों पर बंदूकची तैनात रहते थे। बंदूकचियों को उस समय कितना वेतन दिया जाता था उसका भी अनुमान लगाया जा सकता है। भैय्या जी संग्रह, बस्ता नं. 16, बही नं. 89 में विवरण[10] मिलता है कि -

38) बारी सोढ़ारी

9) सोढा हीयो घोड़ो

3) सोढ़ा जीवणो

12।।) बारी मंडला री मेते जोहणो

2।।) मंडलो हणोतसिंघ

19) बारी मंडला री

4) हणोत सिंह

3) मंडलो गुमाणसिंघ

सहर कोट रे बंदूकचीयों के जमा खरच री बही, वि.सं. 1883-1885/ 1826-1828 ई., बही से स्पष्ट होता है कि बंदूकचीयों की तनख्वाह 1।।) से लेकर 3) या 4) रु. तक होती थी।

बीकानेर सेना में पैदल, घुड़सवार व तोपें शामिल थीं। सामंतों के अधिक विद्रोही हमलों से परेशान होकर महाराजा सूरतसिंह ने 1818 ई. में अंग्रेजों से संधि कर ली। अंग्रेजों की संधि से राज्य को बहुत फायदा हुआ। अंग्रेजों के सहयोग से काफी हद तक सामंतों के विद्रोह को दबाने में सफलता भी मिली। इसके बावजूद विद्रोह तो होते ही रहते थे।

बीकानेर की सीमा पर स्थित भावलपुर के शासक भावलखां ने अपने अधीन किरणी जातीय खुदाबख्श नामक सामंत पर आक्रमण किया। खुदाबख्श ने शीघ्र ही सूरतसिंह की शरण ली। महाराजा सूरतसिंह दूरदर्शी थे। उन्होंने पाया कि किरणीकी सम्प्रदाय भावलपुर में सबसे अधिक प्रबल बलशाली और असीम साहसी था। बीकानेर राज्य की सीमा का विस्तार करने का यह सुयोग महाराजा खोना नहीं चाहते थे। अत: उन्होंने खुदाबख्श को आश्रय दिया और राठौड़ों की सेना एकत्रित करने का निश्चय किया। उन्होंने यह भी सोचा कि इससे राठौड़ सामंत युद्ध में प्रवृत्त हो पिछली बातें भूल जाएंगे। हालांकि राठौड़ सामंत सूरतसिंह से अप्रसन्न थे, परन्तु उस समय रणभूमि में अपना-अपना पराक्रम दिखाने के लिए वे अपनी-अपनी सेना को साथ लेकर राजधानी में आने लगे थे। नियारों के सामंत 500 पैदल और 300 अश्वारोही सेना के साथ आए थे। उस समय उस सेना के साथ बीकानेर के निम्नलिखित सामंत अपनी सेना के साथ आए थे[11]-

सारणी 1 : भावलपुर के युद्ध में शामिल बीकानेर सामंतों की सेना

	सामंत	पैदल	अश्वारोही
बन्दूकधारी			
भूखरका के सामंत अभयसिंह	2000	300	-
पूगल के सामंत राव रामसिंह	400	100	-
रानेर के सामंत हाथी सिंह	150	8	-
सतीसर के सामंत करण सिंह	150	9	-
जसाना शारोह के सामंत अनूपसिंह	250	40	-
इमनसर के सामंत खेतसिंह	350	60	-
जांगलू के सामंत बेनीसिंह	250	9	-
जांगलू के सामंत भूमसिंह	61	2	-
योग	3611	528	-
मोजी पड़िहार के अधीन की तोपें	-	-	21
नरपति के अधीन की विदेशीय सेना या खासपायगां	-	200	-
गंगासिंह के अधीन की मंडली	1500	200	4
दुर्जनसिंह के अधीन की मंडली	600	60	4
अनोकसिंह	300	-	
लाहौरी सिंह सिक्ख सामंतगण		250	-
बुधसिंह		250	-
अफगान सामंत सुल्तान खां तथा अहमद खां			
के अधीन की सेना	-	400	-
कुल सेना	5711	2188	29

महाराजा सूरतसिंह ने इस प्रकार अपनी प्रबल सेना को इकट्ठा करके अपने दीवान के पुत्र जैतराव मेहता के हाथ में प्रधान सेनापतित्व का कार्यभार सौंपा। लेकिन जैतराव मेहता के तुरन्त आक्रमण न करने पर विजयी पताका न फहराई जा सकी। सूरतसिंह ने असंतुष्ट होकर उक्त सेनापति का पद व मान घटा दिया। दो वर्ष बाद असंतुष्ट भाटियों को हराकर भटनेर पर अधिकार कर बीकानेर राज्य में मिला लिया। इस युद्ध से महाराजा सूरतसिंह का बल, गौरव बढ़ गया था। लेकिन अत्यधिक उत्साह, घमण्ड व अदूरदर्शिता व समय पर तुरन्त निर्णय न ले पाने की वजह से जयपुर के शासक सवाई सिंह के कहने पर धोंकल सिंह को मारवाड़ के सिंहासन पर बैठाने के लिए

मारवाड़ शासक से युद्ध करने के लिए मारवाड़ राज्य के अधीन फलौदी को अपने अधिकार में ले लिया तथा इस जीत को साधारण समझ कर सूरतसिंह ने धोंकलसिंह के पक्ष को छोड़कर राजधानी में आ गए। मानसिंह ने अति शीघ्र अपनी शासन शक्ति को प्रबल व संगठित कर फलौदी पर पुनः अधिकार कर लिया और बीकानेर पर आक्रमण करने के लिए तैयार हुए। इससे भयभीत होकर सूरतसिंह ने मानसिंह से भयवश संधि कर ली तथा बहुत से रुपए देकर अपनी रक्षा की। इस अपमान को सहन न कर पाने की वजह से वे बीमार हो गए तथा मरणासन्न स्थिति तक पहुँच गए थे। लेकिन कुछ समय बाद वे स्वस्थ हो गए। सामंतों से उनका टकराव होता ही रहता था। कर्नल जेम्स टॉड ने महाराजा सूरतसिंह के शासनकालीन सामंतों के अधीन सेना की जो संख्या थी उसका वर्णन किया है –

सारणी 2 : बीकानेर के पूर्वतन सामंत श्रेणी की सूची[12]

सामंत का नाम	वंश	निवास	आमदनी	पैदल सेना	घुड़सवार
1. बैरीशाल	बीका	महाजन	40,000	5,000	100
2. अभयसिंह	बेनीरोत	भूकरका	25,000	5,000	200
3. अनूपसिंह	बीका	जसाना	5,000	400	40
4. प्रेमसिंह	बीका	बाई	5,000	400	25
5. चैनसिंह	बेनीरात	सावा	20,000	2,000	300
6. हिम्मतसिंह	रावोत	रावतसर	20,000	2,000	300
7. शिवसिंह	बेनीरोत	चूरू	25,000	2,000	200
8. उम्मेदसिंह	बीदावत	बीदासर			
9. जैतसिंह	बीदावत	साउनदवा	50,000	10,000	2,000
10. बहादुरसिंह	नारनोत	मैमनसर			
11. सूर्यमल		तिनदीसर	40,000	4,000	500
12. गुमानसिंह		काटर			
13. अताईसिंह		कुटचौर			
14. शेरसिंह	नारनोत	निम्बाजी	5,000	500	125
15. देवीसिंह	नारनोत	सीधमुख			
16. उम्मेदसिंह		कारीपुरा	20,000	5,000	400
17. सुरतानसिंह		अनीतपुरा			

18. करणीदान		बिपासर			
19. सुरतानसिंह	कछवाहा	नयनावास	4,000	150	30
20. पद्मसिंह	पंवार	जैसीसर	5,000	200	100
21. किशनसिंह	बीका	हदेसर	5,000	200	50
22. रायसिंह	भाटी	पूगल	6,000	1,500	40
23. सुरतानसिंह	भाटी	राजासर	1,500	200	50
24. लखनेरसिंह	भाटी	सनेर	2,000	400	75
25. कर्णीसिंह	भाटी	सतीसर	1,100	200	9
26. भूमसिंह	भाटी	चक्करा	1,500	60	4
बीका के प्रारम्भिक चार सामंत					
1. भवानीसिंह	भाटी	विचनोक	1,500	60	6
2. जालिमसिंह	भाटी	गुरियाला	1,100	40	4
3. सरदारसिंह	भाटी	सुरजीरा	800	30	2
4. कायमसिंह	भाटी	रनदीसर	600	32	2
चन्दनसिंह	करमसोत	नोखा	11,000	1500	500
सतीदान	रूपावत	बादोला	5,000	200	25
भूमसिंह	भाटी	जांगलू	2,500	400	9
केतसी	भाटी	जामिनसर	15,000	500	150
ईश्वरीसिंह	मण्डला	सारोदा	11,000	2000	150
पद्मसिंह	भाटी	कूदसू	1,500	60	4
कल्याणसिंह	भाटी	नैनिया	1,000	40	2
योग			3,32,100	44,072	5,402

चूंकि महाराजा सूरतसिंह के उनके अधीन सामंतों से सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। इस वजह से उन्हें अंग्रेजों से 1818 ई. की संधि करनी पड़ी। अगर सामंतों से महाराजा के सम्बन्ध अच्छे होते तो लड़ाई के मैदान में बीका वंश की दस हजार राजपूत सेना को इकट्ठी कर सकते थे। राजा की अपनी निजी अधीन सेना में केवल एक दल विदेशीय पांच सौ पैदल, 5 तोपें और 250 अश्वारोही थे। ये सभी विदेशीय सेनापति के अधीन में चलते थे। बीकानेर के सामंतों के अधीन में सेना की संख्या अधिक थी लेकिन महाराजा सूरतसिंह को इसकी चौथाई सेना इकट्ठी करना मुश्किल था। कर्नल टॉड के अनुसार महाराजा सूरतसिंह के शासनकाल में विदेशी सेना की संख्या निम्न प्रकार थी[13] –

सारणी 3 : महाराजा सूरतसिंह के शासनकाल की विदेशी सेना

	अश्वारोही	पैदल	तोपें
सुल्तान खां	–	200	–
अनोखेसिंह सिक्ख	–	250	–
बुधसिंह देवड़ा	–	200	–
दुर्जनसिंह बटालियन के अधीन की	700	4	4
गंगासिंह बटालियन के अधीन की	1000	25	6
योग विदेशीय	1700	679	10
बड़ी तोपें	–	–	21
कुल योग	1700	679	31

बीकानेर के सामंतों की सैनिक सेवा को महाराजा सूरतसिंह के समय में नकदी में बदला गया। शुरू में 60 रुपए प्रति सवार के हिसाब से नकद लेने का निश्चय किया गया। बाद में 125 रुपए के हिसाब से लिया जाने लगा।[14] सैनिकों के साथ रखे सामान व सामग्री का जिक्र भी बहियों में मिलता है।[15] सावा बही राजगढ़, नं. 16, वि.सं. 1885/1828 ई., पृ. 135ब में इस सम्बन्ध में विवरण इस प्रकार है–

174) 1)25 मोहोते सेरमल तालके तबेले घोड़ा 34 उठ 5 बछैरा पखालियो भैसो 1 सीलपोस 33 सोहोणी 1 चरवैदा 13 ताबीनदार 2 तेरे दाणा राबत पैटीया रोकड़ मीरचै मसालो फलीयो

53।।) ।19 तोपखाने तालके घोड़ा 5 ऊठ 1 काठी 1 भैसो 1 शी 11 सीलपोस 1 जजलचोर सागड़ी 4 पंखेदार 1 सीको 1 तेरे दोणो रातब पेटीया मीरचे मसालो फलीयो

बंदूकचियों के साथ सामान तथा जिन कार्यों में खर्च होता था उसका ब्यौरा भी बहियों में मिलता है।[16] बीकानेर राज्य के महाराजा सूरतसिंह के काल में सैन्य संगठन मजबूत था। जिसकी वजह से वह बीकानेर रियासत को अपने सीमावर्ती इलाकों से रक्षा करने में सफल रहे।

संदर्भ

1 *जयसोम : कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तनकम् काव्यम्, पृ. 25; ओझा, जी.एच., बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग–1, बीकानेर, 2007 ई., पृ. 27; देवड़ा, जी.एस.एल., राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था, बीकानेर, 1981, पृ. 1*

2 *दी इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग–8, लंदन, 1908 ई., पृ. 202; सिंह, डॉ. करणी, बीकानेर के राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध, बीकानेर, 1968 ई., पृ. 1; मुंशी सोहनलाल, तवारीख राजश्री बीकानेर, 1890 ई., पृ. 1; मेघसिंह, तारीख रियासत बीकानेर (उर्दू), भाग–1, 1898 ई., जेल प्रेस, बीकानेर, पृ. 1; ज्वाला सहाय, वकाए राजपूताना (उर्दू), जिल्द–3, आगरा, 1879 ई., पृ. 517*

3 *जूदेव, कन्हैया, बीकानेर राज्य का इतिहास, बम्बई, 1972 ई., परिशिष्ट, बीकानेर राज्य का भूगोल, पृ. 9; नीलसन, डब्ल्यू.एच., मेडिको टोपोग्राफिकल अकाउण्ट ऑफ बीकानेर, लंदन, 1898 ई., पृ. 1*

4 *सिंह, डॉ. करणी, बीकानेर के राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध, बीकानेर, 1968 ई., पृ. 1; कैप्टेन पी.डब्ल्यू. पाउलेट ने बीकानेर राज्य के गजेटियर में पृ. 91 पर बीकानेर राज्य का क्षेत्रफल 23500 वर्गमील लिखा है जो स्पष्ट रूप से गलत है। के.डी. अर्सकिन ने बीकानेर गजेटियर के पृष्ठ 91 पर क्षेत्रफल 23311 वर्ग मील बताया है। अधिकांश इतिहासकारों ने क्षेत्रफल 23317 वर्ग मील ही बताया है; खत्री, दीनानाथ, बीकानेर राज्य का इतिहास, अ.सं.पु.बी., 1978 ई., पृ. 2; देवड़ा, जी.एस.एल., राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था, बीकानेर, 1981 ई., पृ. 1*

5 *राजपूताना की रियासतों में केवल जोधपुर का क्षेत्रफल ही अधिक था – सेंसस ऑफ इण्डिया, 1931 ई., बीकानेर स्टेट, वोल्यूम–2, लखनऊ, 1934 ई., पृ. 1*

6 *मुंशी सोहनलाल, तवारीख राजश्री, बीकानेर, 1890 ई., पृ. 1; मेघसिंह; तारीख रियासत बीकानेर (उर्दू), 1898 ई., जेल प्रेस, बीकानेर, पृ. 1–2; ज्वाला सहाय, विकाया राजपूताना, आगरा, 1879 ई., पृ. 517, जिल्द–3, भाग–8*

7 *ओझा, जी.एच., बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग–2, बीकानेर, 2007 ई., पृ. 33*

8 *पाउलेट, पी.डब्ल्यू., गजेटियर ऑफ द बीकानेर स्टेट, बीकानेर, 1932 ई., पृ. 75*

9 *मुंशी सोहनलाल, तवारीख राजश्री बीकानेर, बीकानेर, 1890 ई.*

10 *भैय्या जी संग्रह, बस्ता नं. 16, बही नं. 89*

11 *टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान इतिहास, भाग–2, हिन्दी अनुवाद बलदेव प्रसाद मिश्र, बम्बई, 2009 ई., श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, पृ. 388–389*

12 *टॉड, कर्नल जेम्स : एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, वोल्यूम–2, मद्रास, 1873 ई., पृ. 185–186 (हिन्दी अनुवाद – राजस्थान का इतिहास–राजपूत जाति का इतिहास – अनुवादक पण्डित बलदेव प्रसाद मिश्र, बम्बई, 1909 ई., पृ. 433–434)*

13 *टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान इतिहास, भाग–2, हिन्दी अनुवाद बलदेव प्रसाद मिश्र, बम्बई, 2009 ई., श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, पृ. 432*

14 *शर्मा, कालूराम, 19वीं सदी के राजस्थान का सामाजिक व आर्थिक जीवन, जयपुर, 1974 ई., पृ. 86*

15 *सावा बही नं. 16, राजगढ़, वि.सं. 1885/1828 ई., पृ. 135ब*

16 *सावा बही नोहर नं. 1, पृ. 61ब*

 ISSN 2321-1288

नारी संघर्ष के विभिन्न आयाम राजस्थान इतिहास के आइने में

शिवरतन सिंह यादव

राजपूताना की रियासतों में किसान आन्दोलन हो या स्त्रतंत्रता का संघर्ष या पर्यावरण बचाने के लिये संघर्ष सभी में महिलाओं की भूमिका अतुलनीय रही, राजपूताना की रियासतों में मध्यकाल एवं आधुनिक काल में नारी ने हमेशा सक्रियता से कार्य किया, चाहे रणभूमि में बलिदान का क्षेत्र हो, या अपने स्वाभिमान के लिए बलिदान का क्षेत्र हो, या प्रशासन में अपनी भूमिका निभानी हो चाहे किसान आन्दोलन हो या प्रजामण्डल आन्दोलन हो चाहे पर्यावरण बचाने के लिये किया गया आन्दोलन हो महिलाओं की भूमिका हमेशा अग्रणी ही रही है, यद्यपि राजपूताना में नारी शिक्षा का अभाव रहा लेकिन इसके बावजूद इतिहास में उन्हें जागृत नारी के रूप में स्थापित किया परन्तु जिस प्रकार के ऐतिहासिक कार्य महिलाओं ने किये उनका उतना ऐतिहासिक योगदान इतिहास की पुस्तकों में नहीं दर्शाया गया है।

(अ) वीरता एवं त्याग की मूर्ति के रूप में नारी

राजस्थान की अनेक वीरांगनाओं में अपने राज्य के सम्मान एवं स्वाभिमान के लिए अपना सर्वोच्च योगदान दिया ऐसी ही वीरता की प्रतिमूर्ती थी कर्पूरी देवी, जो दिल्ली के अंनगपाल तोमर की पुत्री थी तथा अजमेर के शासक सोमेश्वर की रानी थी पृथ्वीराज तृतीय में वीरता एवं बलिदान के गुण उनकी माता कर्पूरी देवी ही की देन है। 11 वर्ष के पृथ्वीराज चौहान के संरक्षिका के रूप में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[1]

रणथम्भौर के चौहान शासक-राजा हमीरदेव की पत्नी रंगदेवी थी, रंगदेवी ने अपने पति हमीर का उत्साह बढ़ाया तथा अलाउद्दीन खिलजी के सामने डटे रहने के लिये प्रेरित किया, जब 1301 ई. में अलाउद्दीन से संघर्ष करते हुए हमीर वीरगति को प्राप्त हुए तो रंगदेवी ने जल जौहर किया यह राजस्थान का एकमात्र जल जौहर था तथा राजपूतना का प्रथम साका भी रंगदेवी के नेतृत्व में ही हुआ था।[2]

रानी कर्मवती महाराणा सांगा की पत्नी थी, कर्मवती के कहने पर ही सांगा ने विक्रमादित्य को रणथम्भौर का क्षेत्र सौंप दिया और बूंदी के राजा सूरजमल को रणथम्भौर का संरक्षक नियुक्त किया तथा 1533 ई. में जब बहादुरशाह ने मेवाड़ पर आक्रमण किया तब डटकर मुकाबला किया। 1534-35 ई. में सुल्तान ने पुनः चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण किया तब कर्मवती ने वीरतापूर्वक मुकाबला किया। रावत बाघसिंह, राणा सज्जा एवं सिंहा वीरगति को प्राप्त हुये और कर्मवती ने जौहरव्रत का पालन किया।[3]

मेवाड़ के प्रतापी एवं वीर शिरोमणी महाराणा प्रताप की माता जैवन्ताबाई ने प्रताप का पालन-पोषण इस प्रकार किया कि उनमें मातृभूमि के प्रति समर्पण, सर्वोच्च त्याग एवं बलिदान की भावना कूट-कूट कर भर दी। यह उनका प्रभाव ही था कि अकबर के सामने प्रताप आजीवन ताल ठोकते रहे कभी झुके नहीं।[4]

अजब दे पंवार का इतिहास में उतना नाम नहीं लिया जाता, जितना कि वे उसकी हकदार है। अजबदे पंवार महाराणा प्रताप की धर्मपत्नी थी, जो हाड़ौती की थी। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन अपने पति प्रताप के साथ-साथ जंगलों में व्यतीत किया और हमेशा प्रताप को प्रोत्साहित किया, अपने पति का मनोबल बढ़ाने के लिये सभी ऐश्वर्यों को त्याग कर जंगलों में कष्टों को सहा।[5]

पन्नाधाय हरकचन्द हांकला की पुत्री थी और सूरजमल चौहान की पत्नी थी। पन्नाधाय ने अपने पुत्र चंदन का बलिदान देकर महाराणा उदयसिंह के (कर्मवती के पुत्र) को दासी पुत्र बनवीर से बचाया, वह उदयसिंह को लेकर कुम्भलनेर पहुंची और वहां पर किलेदार आशा देवपुरा ने उन्हें अपने पास रखा और 1537 ई. में महाराणा उदयसिंह का कुंभलगढ़ में राज्याभिषेक किया गया। इस प्रकार पन्नाधाय ने स्वामीभक्ति के लिये अपने पुत्र का बलिदान देकर इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में अपना नाम लिखवाया।[6]

वीरता एवं सर्वोच्च बलिदान की एक और प्रतिमूर्ति थी गोराधाय जो जोधपुर के रतना टांक की पुत्री थी तथा मनोहर झालावत की पत्नी थी। 1679 ई. में मारवाड़ के महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद उनकी रानियों एवं राजकुमारों को औरंगजेब ने कैद कर लिया था तब गोराधाय ने मेहतराणी (सफाईकर्मी) का वेशधारण करके कुँवर अजीतसिंह की जगह पालने में अपने पुत्र को सुला दिया और अजीतसिंह को कालबेलिया का रूप धारण किये मुकुन्ददास खींची को सौंप दिया। इस प्रकार गौरा ने अजीतसिंह के समवयस्क अपने पुत्र को मातृभूमि पर न्यौछावर कर दिया। यही कारण है कि मारवाड़ के राष्ट्रीय गीत 'धूंसों' में गोराधाय का नाम गाया जाता है फिर भी जो स्थान गोराधाय को मिलना चाहिए वो राजस्थान के इतिहास में नहीं मिल पाता।[7]

वीरता की एक मिसाल के रूप में राजपूताना की वीर भूमि को पुष्पित करने वाली एक और रानी का उल्लेख किया जा सकता है, सलूम्बर की रानी हाड़ी रानी सलहकंवर जो बूंदी के जागीरदार संग्राम सिंह की पुत्री थी तथा चूड़ावत सरदार रतनसिंह की नव विवाहिता पत्नी थी, नव वधु के कांकड़, डोरे, मोड़ भी नहीं खुले थे ऐसे समय में राव रतनसिंह चूड़ावत को मेवाड़ के शासक राजसिंह की तरफ से औरंगजेब की सेना

को परास्त करने का आदेश मिला था। इस आकस्मिक आदेश एवं नववधू के प्यार एवं लावण्य ने रतनसिंह चूण्डावत को दिगभ्रमित कर दिया था। रतनसिंह चूंडावत ने रानी से कोई सैनाणी (निशानी) के रूप में मांगा, रानी ने सोचा कि मेरी याद ने मेरे वीर पति को मातृभूमि की रक्षा हेतु गये रणक्षेत्र में कमजोर बना दिया है तो रानी अपनी निशानी के रूप में अपना सिर काटकर सेवक को दे दिया, रानी की निशानी देखकर रतनसिंह चूडावत भी दंग रह गया कवियों ने रानी की वीरता का बखान करते हुए लिखा-

चूड़ावत मांगी सैनाणी, सिर काट दे दियो क्षत्राणी

संसार के इतिहास में इस प्रकार के बलिदान का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है। हाड़ीरानी के बलिदान को राजस्थान के इतिहास को गौरवान्वित कर दिया है।[8] ऐसी वीरता की एक और मिसाल किशनगढ़ राज्य में भी मिलती है। किशनगढ़ के महाराजा रूपसिंह की पुत्री चारूमती से औरंगजेब विवाह करना चाहता था लेकिन चारूमती औरंगजेब से विवाह नहीं करना चाहती थी। उसने अपनी आन-बान और शान की रक्षा करने के लिए मेवाड़ के महाराणा राजसिंह को विवाह के लिए आमंत्रित किया, जिसको महाराणा राजसिंह ने स्वीकार कर लिया। उसकी सूझ-बूझ के आगे औरंगजेब भी पस्त हो गया।[9]

रानी जसवन्त दे जो बूंदी के हाड़ा शासक शत्रुशाल की पुत्री थी जब जसवन्त सिंह 'धरमत युद्ध' में युद्ध भूमि से वापस लौट आये थे तो रानी जसवन्त दे ने किले के दरवाजे नहीं खोले थे परन्तु जब जसवन्तसिंह ने उनको विश्वास दिलाया कि युद्ध सामग्री लेने के लिये वो मारवाड़ आये हैं तो रानी जसवन्त दे ने उनसे वचन लिया कि वो मारवाड़ की संस्कृति व धर्म की रक्षा करेंगे तब जाकर किले के दरवाजे खोले तथा चांदी बर्तनों की जगह लकड़ी के बर्तनों में भोजन दिया।[10]

अपने मान-सम्मान के लिये भी राजपूत रानियां हमेशा तत्पर रहती थी, ऐसा ही एक उदाहरण मारवाड़ राज्य के शासक मालदेव की पत्नी 'उमादे' का है जो कि जैसलमेर के शासक लूणकरण की पुत्री थी। राव मालदेव की अपनी अपनी पत्नी से कहा-सुनी हो गयी तो रानी ने ठान लिया कि वह जीवन भर मालदेव से बात नहीं करेगी और अपना सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचारिणी के रूप में रहेगी, रानी आजीवन मालदेव से रूठी रही इसलिये रूठी रानी के रूप में प्रसिद्ध हुयी।[11]

(ब) वास्तु शिल्प में महिलाओं की भूमिका

प्रेमलदेवी डूंगरपुर राज्य के शासक आसकरण की रानी थी। वास्तुकला में बड़ा योगदान रहा, जल संरक्षण एवं पेजयल के लिए इन्होंने नौलखा की बावड़ी का निर्माण करवाकर प्रतिष्ठा प्राप्त की।[12]

डूँगरपुर राज्य की शुभकुँवरी जो बीरमदेव मेड़तिया की पुत्री थी तथा महारावल बैरीशाल की रानी थी, जिन्होंने मुरली मनोहर मंदिर का निर्माण करवाया जो आज भी प्रसिद्ध है।[13] वास्तुकला का अनुपम उदाहरण केला बावड़ी है इस बावड़ी का निर्माण गुमानकुंवर ने करवाया, गुमानकुंवर डूँगरपुर के महारावल जसवन्तसिंह की महारानी थी बावड़ी के निर्माण कार्य में लगे मजदूरों के लिये बड़े पैमाने पर राहत कार्य भी करवाये।

भवन निर्माण के क्रम में ही सिरोही की महारानी चंपाकुंवरी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने 1582 ई. में सिरोही के पास चंपावती बावड़ी का निर्माण करवाया। सामन्तों के विरोध को दर किनार करते हुए राजकुमारियों एवं रानियों के स्नान एवं ध्यान भवन करने की व्यवस्था भी बावड़ी के किनारे की थी। तत्कालीन समय में रानियों, पटरानियों को महलों के बाहर मंदिरों में भजन-कीर्तिन करने की अनुमति नहीं थी।[14] प्रतापगढ़ राज्य के शासक महारावत जसवंतसिंह की रानी चंपाकुंवरी ने अपने पुत्र व तत्कालीन शासक महारावत हरिसिंह को समझाया कि महिलाओं की आन-बान-शान बाहर के मंदिरों एवं देवालयों में पूजा अर्चना करने से कोई फर्क नहीं पड़ता और उन्होंने राजघराने की महिलाओं को महलों से बाहर के मंदिरों में पूजा-अर्चना करने के लिये प्रेरित किया तथा 1648 ई. में गोर्वधन मंदिर का निर्माण करवाया। महिलाओं के स्नान के लिये बावड़ी का निर्माण करवाया।[15]

तत्कालीन समय में शासकों की भाँति रानियों में भी नवनिर्माण के प्रति गहरी प्रतिस्पर्धा होती थी। इस सन्दर्भ में मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह की पुत्री व कोटा राज्य के तत्कालीन शासक महाराव दुर्जनशाल सिंह हाड़ा की रानी बृजकंवर ने उदयपुर के लैक पैलेस की तर्ज पर कोटा में किशोरसागर तालाब का निर्माण करवाया एवं इस तालाब में जगमंदिर का निर्माण भी करवाया। इनके द्वारा निर्मित बृजविलास भी प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।[16]

(स) प्रशासन में नारियों की भूमिकाः-

रानिया वास्तुकला में भवन निर्माण तक ही सीमित नहीं होती थी, अनेक ऐसे उदाहरण मिले हैं, कि रानी महारानियों ने अपने राजनीतिक हस्तक्षेप के स्पष्ट प्रमाण दिये हैं। इस सन्दर्भ में अजमरे के शासक अजयराज चौहान की पत्नी सोमलेखा का उल्लेख किया जा सकता है, सोमलेखा ने अपने नाम से सिक्के ढलवाये थे।[17]

मध्ययुगीन इतिहास में अनेक उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं कि जब पासवान रानी ने अपनी योग्यता के बलबूते पर सर्वोच्च पर प्राप्त लिया है तथा शासक को अपनी कठपूतली बना लिया हो, ऐसा ही एक उदाहरण जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के कार्यकाल में देखने को मिलता है, जब गुलाबराय नामक एक बडारण ने विजयसिंह के समय में अनेक बार राजनीतिक हस्तक्षेप किया, लगभग 30 वर्ष मारवाड़ की राजनीति

का केन्द्र बिन्दु रही उसी के नाम से 'गुलाब सागर' एवं 'महिला बाग का झालरा' बनाया गया, जो वास्तुकला का अद्‌भुत नमूना है।[18] अलवर राज्य में भी एक ऐसा उदाहरण प्राप्त होता है कि एक पासवान ने अपने बलबूते पर सर्वोच्चता प्राप्त की तथा राजनीतिक हस्तक्षेप किया।

अलवर के शासक बख्तावर सिंह की पासवान-मूसी महारानी थी, इन्होंने अपने पुत्र को न सिर्फ राव-राजा बनवाया बल्कि अपने काल में राज-अधिकारियों की नियुक्ति से लेकर दण्ड व्यवस्था तक के मामले में हस्तक्षेप किया, यहीं कारण है कि बलवन्तसिंह ने अपनी माता मूसी महारानी की याद में तिजारा में मूसी महारानी 'जनाना महल' का निर्माण करवाया और विजयसिंह ने मूसी महारानी की स्मृति में 80 खम्भें की विश्वप्रसिद्ध 'छतरी' का निर्माण करवाया।[19]

जयपुर राज्य में भी एक ऐसा उदहारण प्राप्त होता है जयपुर के महाराजा जगतसिंह रसकपूर से अथाह प्रेम करते थे, उन्होंने 'रसकपूर' के नाम से सिक्के चलवाये, रसकपूर बहुत ही प्रभावशाली थी। उसने महाराजा जगतसिंह को बाध्य कर दिया था कि वह दासियों एवं पासवानों के साथ अच्छा व्यवहार करें लेकिन बाद में षड़यन्त्र द्वारा रसकपूर को चरित्रहीन बताकर नाहरगढ़ के किले में कैद कर दिया गया था।[20]

(द) सैन्य संघर्ष में नारी की भूमिकाः-

राजपूताना की महिलाओं ने न केवल राजनीतिक व प्रशासन में अपनी सर्वोच्चता स्थापित की बल्कि अपनी वीरता एवं साहस के किस्से भी सुनने को मिलते हैं इस सन्दर्भ में आलणियावास ठिकाने की वीरांगना बजरंगदे की वीरता उल्लेखनीय है। बजरंग दे ठाकुर विजयसिंह की धर्म पत्नी थी अपने पति की मृत्यु के बाद ठिकाने का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया, वीर दुर्गादास राठौड़ ने आलणियावास ठिकाने की बन्द रेख को पुनः प्रारम्भ करने का प्रयास किया तो बजरंगदे ने रेख देने से मना कर दिया, जिससे दुर्गादास राठौड़ ने युद्ध की धमकी दी। इस चुनौती को बजरंगदे ने अपने स्वाभिमान को चुनौती माना और दुर्गादास से संघर्ष के लिये तैयार हो गयी। फलतः दोनों के मध्य संघर्ष हुआ जिसमें दुर्गादास को पीछे हटना पड़ा।[21]

मेवाड़ राज्य तो वीरांगानाओं की भूमि था विक्रमादित्य के समय मेवाड़ पर गुजरात के शासक ने आक्रमण कर दिया जिससे विक्रमादित्य भयभीत हो गया उसकी रानी जवाहर बाई ने दुश्मनों को न सिर्फ ललकारा बल्कि सभी रानियों को दुश्मनों से संघर्ष करने के लिये प्रेरित किया और कहा कि ''वीरांग्नाओं हम जौहर करके केवल अपने सतीत्व की रक्षा कर सकते हैं देश की रक्षा नहीं, हमें मरना है तो हम अपने दुश्मनों से लड़कर मरेंगे।''[22] मध्यकालीन राजपूताना के मारवाड़ के परबतसर परगने की रहने वाली रानाबाई ने अकबर के सेनापति हाकिम खान को सबक सिखाया। जब हाकिम

खान ने रानाबाई के पिता को बंदी बना लिया था तो रानाबाई वीर जाटों की सेना लेकर न सिर्फ हाकिम खान को मौत के घाट उतार दिया बल्कि अपने पिता जालमसिंह चौधरी को भी आजाद करवा लिया।[23]

(य) किसान एवं प्रजामण्डल आन्दोलन में नारियों की भूमिकाः-

मध्यकालीन राजपूताना एवं आधुनिक काल की राजपूताना की रियासतों में किसानों ने शोषण के खिलाफ आन्दोलन छेड़ दिया। भारत के सबसे लम्बे समय चले बिजौलिया किसान आन्दोलन में भी महिलाओं की भूमिका रही। बिजोलिया के ठिकाने में कृष्णसिंह ने 1903 में कन्या विवाह पर 5 से 13 रुपिया चंवर कर लगा दिया था बिजौलिया की कन्याओं ने 2 वर्ष तक विवाह का बहिष्कार कर दिया, यह भारत के आज तक के इतिहास में अनूठा उदाहरण है।[24]

1905 में बिजौलिया में कन्याओं ने अपने माता-पिता के साथ बिजौलिया ठिकाने के महलों के समक्ष प्रदर्शन किया और चंवरी कर समाप्त करवाने की मांग की जिसको ठिकानेदार ने ठुकरा दिया और कहा गया 'इन लड़कियों को बाजार में बेचकर कर अदा कर दो' इस अपमानजनक कथन से नाराज होकर स्वाभिमानी किसानों ने अपनी कन्याओं के साथ जमीनों को छोड़कर पड़ोसी रियासतों में पलायन करने लगे तो बिजौलिया ठिकानेदार को झुकना पड़ा एवं चंवरी कर समाप्त कर समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार बिजौलिया की महिलाओं ने सामन्तवाद के खिलाफ प्रथम लड़ाई जीतने में सफल हो गयी।[25]

बेगू किसान आन्दोलनों में महिलाओं की अग्रणी भूमिका रही-बेगू आन्दोलन में आदिवासी लोगों की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण रही और इन आदिवासी आन्दोलनों में महिलाओं ने पुरूषों के साथ कन्धे से कंधा मिलाकर साथ दिया-गोविन्द गिरी ने सम्प सभा का गठन किया उसमें उनकी पत्नी की महत्वपूर्ण भूमिका थी, दीपा गमेती, दिव्या कटारा जैसी महिलाओं ने भी भील आन्दोलन में महत्वपूर्ण निभायी।[26]

नारायणी देवी माणिक्यलाल वर्मा की पत्नी थी, प्रजामण्डल आन्दोलन के दौरान नारायणी देवी अपने 6 माह के बालक के साथ में रही, ऐसा उदाहरण अन्य कही नहीं मिलता है, स्नेहलता शर्मा, भगवती देवी, रमा देवी, जेल में भी गयी।[27]

जब सूअर किसानों की फसल उजाड़ रहे थे उनको मारने की अनुमति नहीं थी, 1921 में शान्ता द्विवेजी के नेतृत्व में 'सूअर विरोधी' आन्दोलन चला। शेखावटी में भी महिला किसान आन्दोलन की गूंज तो इंग्लैण्ड की संसद तक सुनाई दी। 1932 में जाट महासभा में हजारों महिलाओं ने भाग लिया। यहां उत्तमोदवी (ठा. देशराज की पत्नी) महिल संगठन का निर्माण किया। इस महिला संगठन की प्रमुख नैत्री थी उत्तमादेवी,

किशोरी देवी, भामरवासी, फूलादेवी, रमादेवी, मोहरी देवी, रामप्यारी, गोरादेवी, अनुसूइया देवी, विमला देवी आदि 'महिला संघ' ने निर्णय किया कि किसी भी प्रकार के शोषण के खिलाफ जमकर संघर्ष किया जायेगा।[28]

सिहरोट के ठाकुर के अत्याचारों के विरूद्ध 24 अप्रेल 1934 को कटरा स्थल में शेखावटी का महिला किसान आन्दोलन शुरू हुआ। इसमें 10,000 महिलाओं ने भाग लिया, इस सम्मेलन की संयोजिका-उत्तमादेवी थी तथा अध्यक्षा-किशोरी देवी। 21 जून 1934 डूडलोड में ईश्वरी सिंह खेतों में काम कर रहे किसानों पर गोली चलवाई। खूडी एवं कून्दन गांव में व्यापक नरसंहार 'कूंदन गाँव के हत्याकाण्ड' का महिलाओं ने जकर विरोध किया। यह हत्याकाण्ड इतना वीभत्स था कि इसकी गूंज ब्रिटेन की संसद 'कॉमन हाउस' में हुई।[29]

प्रजामण्डल आन्दोलन में भी महिलाओं की उल्लेखनीय भूमिका रही। भरतपुर प्रजामण्डल में देवो देवी ने, मेवाड़ प्रजामण्डल में नारायणी देवी आदि जोधपुर सत्याग्रह गिरजादेवी, सावित्री देवी, राजकौर व्यास की महत्वपूर्ण भूमिका रही, वहीं बांसवाड़ा में विजय बहन भावसार के नेतृत्व में 'महिला मण्डल' का गठन हुआ, नगेन्द्र बाला ने कोटा में किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया, जानकी देवी बजाज ने लक्ष्मणगढ़ सीकर में रचनात्मक कार्य किये।[30]

शिक्षा के लिये भी महिलाओं ने संघर्ष किया ऐसा एक उदाहारण डूंगरपुर में मिलता है। नाना भाई खांट कालीबाई के गुरु थे जब डूंगरपुर राज्य की पुलिस ने स्कूल बंद करने के लिए कहा, न मानने पर गुरुजी को जब पुलिस घसीटने लगी तो कालीबाई गुरु जी को बचाने के लिए आगे आयी और अपने प्राण 19 जून 1947 को न्यौछावर कर दिये। शिक्षक के लिए प्राण न्यौछावर करने वाली राजस्थान इतिहास में प्रथम महिला थी।[31] निष्कर्षत: कह सकते हैं राजपूताना की महिलाओं का विभिन्न क्षेत्रों में अतुल्यनीय योगदार रहा। बलिदान में पन्नाधाय, गोराधाय ने अपने पुत्रों का बलिदान किया, वही हाडी रानी सलह कंवर ने अपने पति को शीश भेट किया चारूमती ने सम्मान के लिए राजसिंह से शादी की वही रंगदेवी ने अपने बलिदानी पति हमीर की वीरगति के उपरान्त जल-जौहर किया यह राजपूताने के इतिहास का प्रथम जौहर था।

सन्दर्भ

1. *राजस्थान के नारी रत्न, डॉ. शिवचरण मनोरिया पृष्ठ 32*
2. *तारीखे अलाई, सम्पादित वॉल्यूम-3 पृष्ठ 75*
3. *मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, डॉ. गोपीनाथ शर्मा पृष्ठ 57-58*
4. *राजस्थान इतिहास कोष, डॉ. सुखवीरसिंह गहलोत*
5. *राजस्थान के नारी रत्न, डॉ. शिवचरण मेनारिया पृष्ठ 7-8*

6. *वही, पृष्ठ 10-11*
7. *राजस्थान इतिहास कोष, डॉ. सुखवीरसिंह गहलोत*
8. *हाड़ा राजवंश, राव गणपतसिंह पृष्ठ 141*
9. *राजस्थान इतिहास कोष, डॉ. सुखवीरसिंह गहलोत*
10. *वही*
11. *राजस्थान इतिहास, संस्कृति, इनसाइक्लोपीडिया, डॉ. हुकमचन्द जैन व नारायण श्रीमाली*
12. *राजस्थान में नारियां, डॉ शिवचरण मेनारिया*
13. *राजपूताने का इतिहास, डॉ. जी.एच. ओझा*
14. *राजस्थान की नारियां, डॉ. शिवचरण मेनारिया*
15. *राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लो-डॉ. हुकमचन्द जैन*
16. *राजस्थान थ्रू दी एजेज-वोल्यूम, 2 पृष्ठ 55-56*
17. *वही*
18. *राजस्थान इतिहास कोष, डॉ सुखवीरसिंह गहलोत*
19. *मूसी महारानी छतरी शिलालेख, अलवर (प्रत्यक्ष भ्रमण व शोध पर आधारित)*
20. *राजस्थान इतिहास कोष, डॉ सुखवीरसिंह गहलोत*
21. *राजस्थान में नारी की स्थिति, डॉ. शशि अरोड़ा, पृष्ठ 91*
22. *राजपूत नारिया, डॉ. विक्रमसिंह राठौड़, पृष्ठ 82*
23. *जाट वीरांग्नायें, सुखवीरसिंह दलाल पृष्ठ 57-58*
24. *राजस्थान का इतिहास, डॉ. कमलेश माथुर, पृष्ठ 89*
25. *वही, पृष्ठ 89*
26. *वही, पृष्ठ 92*
27. *वही, पृष्ठ 95*
28. *राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, डॉ. बृजकिशोर शर्मा, पृ. 149*
29. *वही पृ. 149*
30. *राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, बी.एल. पानगड़िया, पृ. 56*
31. *वही, पृ. 167*

 ISSN 2321-1288

ग्रामीण पर्यटन के प्रेरक राजसमन्द के प्रमुख मेले एवं उत्सव

डॉ. दिग्विजय भटनागर

सभ्यता के आदिकाल से ही उत्सव, त्यौहार और मेले[1] आदि मनाये जाते रहे है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ इन उत्सवों और मेलों में भी वृद्धि हुई है।[2] उनका मनाने का समय और क्रम भी नियत किया गया है। तथा मनाने का विधि-विधान भी बताया गया है। ये उत्सव, मेले किसी देश की संस्कृति के परिचायक है। इनके साथ सामाजिक परम्पराएँ जुड़ी रहती है। ये त्यौहार और मेले सांसारिक उलझनों में फंसे मनुष्यों को कुछ समय के लिए शारीरिक एवं मानसिक विराम तथा आनन्द प्रदान करते है। उनका मनोरंजन करते है और उन्हें सामाजिक सुख का एहसास कराते है। इन उत्सव त्यौहारों व मेलों का धार्मिक दृष्टि से भी महत्व है।[3] कई उत्सव व मेले उन महापुरूषों की पावन स्मृति में मनाए जाते है जिन्होंने मानवीय आदर्शों का पालन करते हुए जनकल्याण के निमित्त स्वयं को न्यौछावर कर दिया था। उन्होंने लोगों के भौतिक कष्टों का निराकरण किया तथा गौरक्षा एवं मातृभूमि की रक्षा में अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। इन मेलों में छोटी बड़ी हर वस्तु मिलती हैं। स्त्री, पुरूष, बच्चे, जवान, बुढ्डे सभी के उपयोग की वस्तुएं मिलती है। सौन्दर्य प्रसाधन की वस्तुओं के अलावा पशुओं का क्रय-विक्रय भी इन मेलों में होता है।

राजसमन्द के मेले एवं त्यौहार राजस्थान के जीवन्त सांस्कृतिक विरासत के उदाहरण है।[4] इन मेलों, त्यौहारों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन के माध्यम से जिले में पर्यटकों को प्रदेश में आगमन हेतु आकर्षित कर पर्यटन को प्रोत्साहित किया जाता हैं। कुछ लोग व्यापार के उद्देश्य से आते है तो कई लोग लोक देवताओं एवं आदर्श महापुरूषों के दर्शनों का लाभ उठाते हुए आते है। जिसमें राजसमन्द वासियों के साथ इनका मेलजोल बढ़ता है भाईचारा, धार्मिक सहिष्णुता, भक्ति भाव, श्रृद्धा विश्वास, दान-पुण्य, परोपकार, सामाजिक समानता और राष्ट्रीय एकता के साथ दर्शन इन मेलों में होते है।[5]

उत्सव एवं मेले:-

मेले सांस्कृतिक धरोहर के वाहक है। मेले, उद्यमियों व ग्राहकों को एक दूसरे से मिलने का अवसर उपलब्ध करवाते है। इससे जहां उद्यमियों को ग्राहकों की जरूरते जानने का मौका मिलता है वहीं ग्राहकों को भी नई उत्पादों की जानकारी मिलती है। मेलों ने ही परम्परागत उत्पादों को लोगों के बीच स्थान बनाने में सहायता दी है। मेलों में ग्राहक सीधे माल खरीदने के कारण ग्राहकों को उचित मूल्य में माल मिल जाता है और उत्पादक भी सही मुनाफा कमा पाते है। राज्य सरकार की ओर से बिना लाभ-हानि के सिद्धान्त पर लगाये जाने वाले ऐसे मेलों का सभी को लाभ उठाना चाहिए। इन मेले की संस्कृति व परम्पराओं को जीवन्त रखने के लिए जन जागरण की आवश्यकता है। ग्रामीण पर्यटन, पर्यटन का ऐसा उत्पाद है जो ग्रामीण क्षेत्रों को पर्यटकों से परिचर्चा करवाने के उद्देश्य से तैयार किया जाता है, जो स्थानीय निवासियों के लिए वैकल्पिक आप का स्त्रोत होता है और स्थानीय संस्कृति और प्रकृति को सुरक्षित रखने में सहायक होता है। ग्रामीण पर्यटन निश्चित रूप से ग्रामीणों के लिए रोजगार की संभावनाओं को बढ़ाता है। ग्रामीण पर्यटन में मेले और उत्सव पारम्पारिक सामूहिक पर्यटन का एक वैकल्पिक रूप है।

कुवारिंया पशु मेला जोहिड़ा भैरू पशु मेले से विख्यात है। इसमे हजारों किसान भाइयों व पशु पालकों की आस्था जुड़ी हुई है। इसके लिए राजसमन्द पंचायत समिति मेला आयोजन से पूर्व अगर जोहिड़ा भेरू की शोभायात्रा निकालकर मेले का आयोजन करे तो नई जागृति आएगी। मेले का मुख्य उद्देश्य आर्थिक लाभ कमाना नहीं होना चाहिए अपितु उन्नत नस्ल के पशुओं का क्रय विक्रय कर पशु धन को संजोया जाना चाहिए क्योंकि मनुष्य की महानता पशु प्रेम में ही दिखाई देती है।

ग्रामीण पर्यटन की वर्तमान में भी कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है। विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार 'कोई भी क्रियाओं का समूह जो ग्रामीण परिवेश में किया जाता है तथा आवास की सुविधा प्रदान करने से बढ़कर हो, ग्रामीण पर्यटन कहलाता है।

यूरोपीय पर्यटन के अनुसार (1986) कोई भी पर्यटकीय गतिविधि जो ग्रामीण क्षेत्र में सम्पादित हो, ग्रामीण पर्यटन कहलाती है। लेन के अनुसार ऐसी पर्यटकीय गतिविधियां जो ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पादित की जाती है तथा जो विशेषताओं क्रिया में ग्रामीण पर्यावरण को प्रदर्शित करे तथा वहां की परिस्थिति की अर्थव्यवस्था व इतिहास को परिलक्षित करें।

ग्रामीण पर्यटन बढ़ाते उत्सव और मेले-

1. गणगौर का मेला- गणगौर का मेला कांकरोली व नाथद्वारा में आयोजित किया जाता है। यह मेला प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ल तीज को आयोजित होता है। इसमें हजारों नर नारी भाग लेते है।

2. प्रताप जयंति मेला- जिले के प्रसिद्ध पर्यटन स्थल हल्दी घाटी एवं कुम्भलगढ़

में प्रतिवर्ष ज्येष्ठ माह शुक्ल पक्ष तीज से पंचमी के बीच मेला भरता है। इन तीन दिवसों में भव्य समारोहों का आयोजन किया जाता है। महान मेवाड़ी सपूत महाराणा प्रताप की जयंति अवसर पर बादशाह बाग में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले विशाल महाराणा प्रताप जयन्ती समारोह में हजारों देशभक्त शामिल होते है। विगत कुछ वर्षों से महाराणा प्रताप के प्रिय अश्व चेतक की स्मृति में खमनोर में महाराणा प्रताप खेल मैदान में विशाल अश्व मेले का आयोजन होता है। चेतक समाधि के सामने महाराणा राष्ट्रीय स्मारक बनने से व यहाँ आयोजित होने वाले इन समारोहों से स्थानीय ग्रामीण पर्यटन को विशेष महत्व मिला है।[7]

3. जोहिड़ा भैरूजी पशु मेला – अश्विन माह शुक्ल पक्ष नवरात्रि से एकम से पंचमी तक पांच दिवसीय इस पशु मेले का आयोजन पंचायत समिति राजसमन्द द्वारा निकटवर्ती गांव कुवारियां में आयोजित किया जाता है। वर्ष 2008 में आयोजित कुवारियां पशु मेले में मेला प्रशासन को सवा दो लाख रुपये की राजस्व आय हुई।[8]

4. करणीमाता का पशु मेला – अश्विन माह शुक्ल पक्ष में पंचमी से त्रयोदशी तक देवगढ़[9] में नगरपालिका द्वारा यह पशु मेला आयोजित किया जाता है। पशु विपणन आवश्यक खरीददारी एवं मनोरंजन की दृष्टि से यह बड़ा मेला है। इस मेले में देशी पर्यटकों के साथ-साथ विदेशी पर्यटक भी मेले का खूब आनन्द लेते है।

5. जन्माष्टमी मेला – श्री कृष्ण के जन्म दिवस पर भाद्रपद माह कृष्ण पक्ष अष्टमी को नाथद्वारा में यह मेला आयोजित होता है। जिसमें गुजरात प्रांत सहित हजारों श्रृद्धालु भाग लेते है। इस दिन मंगला चार बजे प्रातः खुलती है। उसमें श्रीकृष्ण प्रभु के सभी उपकरण तथा लाग पाग वाला श्रृंगार रहता है।[9] कृष्णमय वातावरण दर्पण करने, जन-जन के मन में कृष्ण भक्तिभाव विकसित करने हेतु विभिन्न स्पर्द्धाओं का खुला आयोजन किया जाता है। जैसे लीलाओं का चित्रांकन, भजन, आलेखवाचन आदि। श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर सांय कृष्ण लीलाओं से सम्बन्धित भव्य एवं अनूठी झांकियां, विराट शोभायात्रा निकलती है।

6. अन्नकूट मेला – कार्तिक माह कृष्ण पक्ष अमावस्या को दीपावली के अगले दिन श्रीनाथद्वारा में अन्नकूट महोत्सव का आयोजन होता है। अन्नकूट के दिन दोपहर के बाद गोवर्द्धन पूजा का मुर्हूत होता है। तब सभी गोवर्द्धन को श्रीनाथजी की नन्दवंश की प्रमुख गाय को साथ लेकर गोवर्द्धन पूजा के लिए मन्दिर के चौक मे ले जाया जाता है। गोवर्द्धन पूजा के बाद रात को आठ बजे के लगभग प्रभु श्रीनाथजी के अन्नकूट के दर्शन खुलते है और लगभग 4 घंटे तक चलने वाले इन दर्शनों के बाद रात को 12 बजे अन्नकूट लूटने के लिए बाहर से आने वाले सैकड़ों आदिवासी भील परम्परानुसार अपने बदन पर धोती लपेट कर कपड़े की पोटली बनाने के लिए कपड़ा बांध कर लूटने के घी,

घी, घी कर दौड़ते हुए सहस्त्रों श्रृद्धालुओं के बीच आदिवासियों द्वारा पके चावल से लूट का मनोहारी एवं हिम्मतपूर्ण दृश्य देखने योग्न है।[10] यह श्रीनाथजी का सबसे बड़ा उत्सव है। वल्लभ सम्प्रदाय के इस तीर्थ श्री नाथद्वारा में श्रृंगार, राग और भोग का विशेष महत्व है।

7. कुम्भलगढ़ – विश्व पर्यटन मानचित्र पर ऐतिहासिक कुम्भलगढ़ दुर्ग अपनी अलग ही पहचान रखता है। यहां का दुर्ग तथा इसका परकोटा अपने आप में किसी अजूबे से कम नहीं है। पर्यटन सर्किट के रूप में यहां के धार्मिक स्थल, पारम्परिक उत्सव व मेले भी पर्यटकों को आकर्षित करते है। यहां की माटी की खुश्बू स्थानीय लोगों के साथ साथ यहां आने वाले विदेशियों तथा देशी पर्यटकों के दिलों दिमाग में भी इस कदर भर जाती है कि यहां बार-बार आने को लालायित रहते है। उदयपुर आने वाले अधिकतर पर्यटक कुम्भलगढ़ की सैर किये बिना नहीं लौटते है।

8. कुम्भलगढ़ फेस्टीवल – कुम्भलगढ़ दुर्ग पर पर्यटन विभाग की ओर से प्रतिवर्ष कुम्भलगढ़ फेस्टीवल मनाया जाता है। इसमें देशी विदेशी पर्यटक बड़ी संख्या में आते है। तीन दिवसीय उत्सव के दौरान विविध प्रतियोगिताए व सांस्कृतिक कार्यक्रम होते है। पर्यटकों की सुविधा के लिए निशुल्क बसों का संचालन भी होता है।

9. झलझूलनी मेला – क्षेत्र में छोटे-बड़े कई मेले लगते है। इनमें भादवी एकादशी को चारभूजा नाथ का झलझूलनी एकादशी मेला खास स्थान रखता है। इसमें देश भर से हजारों श्रृद्धालु आते है और भगवान को स्नान कराने के लिए दूध तलाई सरोवर ले जाते है।

10. आमज माता – उपखण्ड क्षेत्र में विख्यात शक्तिपीठ आमज माता मन्दिर पर प्रतिवर्ष ज्येष्ठ सुदी नवमी को मेले के लिए एक दिन पहले रात्रि जागरण होता है। मुख्य मन्दिर पर ध्वजा चढ़ाने के साथ ही विविध अनुष्ठान होते है। रात्रि को भजन संध्या में हजारों श्रृद्धालु उमड़ते है।

11. जरगाजी का मेला – कुम्भलगढ़ क्षेत्र के वावदा के समीप जरगाजी धाम पर शिवरात्री को मेला लगता है। यहां जरगाजी के दो स्थान है। वावदा के पास वाला जूना जरगा के नाम से जाना जाता है जबकि पदमनाथ की तरफ से आने वाला रास्ता सीधे नये शिवालय पहुंचता है। दोनों स्थानों के बीच एक पहाड़ है। दोनों ओर आने-जाने का मार्ग है। मेले में आसपास क्षेत्र से हजारों श्रृद्धालु उमड़ते है। यहां रात्रि जागरण के अलावा विविध अनुष्ठान भी होते है।

12.परशुराम महादेव – प्रमुख तीर्थधाम परशुराम महादेव में प्रतिवर्ष श्रावणी छठ को मेले में देश भर से श्रद्धालु उमड़ते है। एक माह तक कुंड धाम, अमर गंगा और फूटा

देवल पर मेला लगता है।

13. वेरो का मठ - क्षेत्र के सुदूर आदिवासी अंचल और बनास नदी के उद्गम स्थल वेरो का मठ स्थित महादवे मन्दिर में मेले में बड़ी संख्या में ग्रामीण उमड़ते है। आकर्षक रंग-बिरंगे परिधानों में सजे ग्रामीण महिला-पुरूषों ने मेले का जमकर लुत्फ उठाया। इस अवसर पर उन्होंने मेले की परम्परा के अनुसार मिट्टी के बर्तन तथा भोजन पकाने की केलड़ियों की जमकर खरीदारी की। महिलाओं ने मनिहारी और साज-श्रृंगार के सामान की खरीददारी के साथ मेले में लगे डोलर चकरी का खूब मजा उठाया। जानकारी के अनुसार बरदड़ा पंचायत के इस धार्मिक स्थल की स्थापना लगभग 150 सौ वर्ष पूर्व हुई थी। प्रतिवर्ष रंग तेरस को यहां विशाल मेले का आयोजन किया जाता है। जिसमें राजसमन्द सहित उदयपुर जिले के 12 व 16 चोखला गांव के सभी वर्ग के लोग विशेष रूप से आदिवासी ग्रामीण भाग लेते है।

14. श्री गढ़बोर के चारभुजाजी का मेला - प्रत्येक भाद्रपद शुक्ला एकादशी को गढबोर में विशाल मेला लगता है। जिसमें मेवाड़ के अतिरिक्त शेष राजस्थान, गुजरात तथा मध्यप्रदेश के लोग भी भाग लेते है। मनोकामना सिद्धि के लिए चारभूजाजी को इन क्षेत्रों में पूरी मान्यता प्राप्त है।

हल्दीघाटी व कुम्भलगढ़ में लोक नृत्यों की रंगारंग प्रस्तुतियों के बीच देशी-विदेशी पर्यटकों का अभिनन्दन किया गया। वहीं जिले के ऐतिहासिक स्थलों की झांकी दर्शाती फोटो एलबम भी पर्यटकों को निशुल्क प्रदान की गई। पर्यटन दिवस पर देशी-विदेशी सैलानियों के अलावा स्थानीय लोगों ने राजसमन्द पर्यटन विकास कॉपरेटिव सोसाइटी के तत्वावधान में राजसमन्द झील में नि:शुल्क नौकायन का आनन्द भी लिया। पर्यटन दिवस पर नौ चौकी स्थित आम्बामाताजी, गेवर माताजी मन्दिर में विविध धार्मिक अनुष्ठानों के साथ दीपयज्ञ किया गया।

वैष्णव नगरी में कैसे बढ़ेगा पर्यटन-

नाथद्वारा, वल्लभ सम्प्रदाय की इस प्रधान पीठ नगरी में यू तो वर्ष भर वैष्णव श्रृद्धालुओं की आवाजाही बनी रहती है किन्तु ऐसा कोई धार्मिक मेला या आयोजन नहीं होता जिसे सम्भाग अथवा राज्य स्तर का दर्जा मिला हो। धार्मिक पर्यटन के साथ ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए आज तक राज्य के पर्यटन विभाग की ओर से कोई योजनाबद्ध प्रयास नहीं किए गए। मन्दिर मण्डल के भी स्थानीय स्तर के मेला व उत्सव आयोजन से आगे बढ़ने के प्रयास न्यून ही रहे।

वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख उत्सव-

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी द्वारा प्रतिपादित पुष्टिमार्ग का प्रथम उत्सव माना जाता है

पाटोत्सव इसके साथ जी जन्माष्टमी, गणगौर, शरद पूर्णिता एवं होली को प्रमुख उत्सवों में गिना जाता है।

वैष्णव सम्प्रदाय की प्रथम पीठ होनेके कारण वैष्णव उत्सवों का अयोजन योजनाबद्ध व बड़े स्तर पर हो ताकि नगर के धार्मिक पर्यटन और ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा मिल सके। इन वैष्णव उत्सवों के साथ नृत्व व संगीत कला, चित्रकला, मल्लकला जैसी विधाओं को जोड़कर राष्ट्रीय स्तर के आयोजन किये जा सकते है। इसी प्रकार दीपावली से गोपाष्टमी की अवधि में ठाकुर जी की गौशालाओं में गौ सज्जा व गौ क्रिड़न से आयोजलन की भव्यता प्रदान की जा सकती है। राजस्थान पर्यटन विकास निगम एवं मन्दिर मण्डल की संयुक्त भागीदारी से वैष्णव उत्सवों का आयोजन कर देश विदेश के श्रद्धालुओं को आकर्षित कर धार्मिक पर्यटन को बढ़ाया जा सकता है। मचीन्द गांव में महाराणा प्रताप के राजमहल के खण्डहर स्वरूप पुरास्थल [11], राणा चौराहा[12], मायरा की गुफा[13] मोलेला गांव[14] की टेरीकोटा कला खमनोर[15] आदि ऐसे गांव है जहां ग्रामीण पर्यटन की भावी संभवनाएँ है।

राजसमन्द के मेलों का महत्व-

1. राजसमन्द में मेलों का आयोजन धर्म, लोकदेव, लोकसंत, संस्कृति से जुड़ा हुआ है। मेलों में नृत्य, गायन, तमाशा, प्रदर्शन, हाट, बाजार आदि से प्रेम, उल्लास, मेल-मिलाप, शिल्प कला आदि को बढ़ावा मिला है।

2. मेलों में वर-वधू का चयन होता है जातिगत झगड़ों का निपटारा होता है।

3. मेलों में सर्व धर्म सद्भाव की भावनाओं का विकास होता हैं

4. आज आधुनिक युग में औद्योगिक एवं शिल्प मेलों का भी आयोजन होता है। जिनमें शिल्प कला, दस्तकारी, नवीन प्रोद्योगिकी का परिचय एवं क्रय-विक्रय का अवसर मिलता है।

5. मेले हमारी संस्कृति की झांकी प्रस्तुत करते है जिन्हें देखने के लिए देश-विदेश से पर्यटक आते है और आनन्द प्राप्त करते है।

6. राजसमन्द में धार्मिक महत्व के मेले के साथ-साथ पशु मेले भी काफी संख्या में आयोजित किये जाते है।

इस प्रकार भारत में ग्रामीण पर्यटन की असीम संभावनाएँ है, ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा देने से जहां गांवों की आर्थिक दशा बदलेगी वहीं सामाजिक विषमता के कारण बनपी बुराईयों से निजात मिलेगी। ग्रामीण पर्यटन गांवों में आप का अतिरिक्त स्त्रोत हो सकता है वहीं शहरों की तरफ जनसंख्या के विस्थापन को भी रोका जा सकता है। स्थानीय गौरव, स्थानीय संस्कृति के संरक्षण में सहायक हो सकता है। ग्रामीण पर्यटन को

सबसे बड़ी संभावना पर्यावरण संरक्षण की भी है, यदि जनसंख्या के विस्थापन को रोकने में समर्थ हुए शहरीकरण के लिए वनों को काटना नहीं पड़ेगा। देश में विकसित हो रही परिवदक्ष, संचार क्रान्तिऔर ठहराव व्यवस्था का लाभ ग्रामीण पर्यटक के विकास को मिल सकता है।

सन्दर्भ

1. *डॉ. नन्दलाल कल्ला, राजस्थानी लोक साहित्य एवं संस्कृति प्रकाशन राजस्थानी, ग्रन्थागार, जोधपुर प्रथम संस्करण, 2000।*
2. *डॉ. मनोहर प्रभाकर, आज का राजस्थान, अरविन्द बुक हाऊस, जयपुर 1992*
3. *डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, भारतीय वास्तुकला, नवभारती प्रकाान, इलाहाबाद*
4. *एच. भीष्ण पाल, पर्यटकों का आकर्षण राजस्थान, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली 1997*
5. *कमल कुमार झोटा, म्हारो राजस्थान प्रकाशन, हमारा हिन्दुस्तान, राजसमन्द 2009*
6. *मोहनलाल गुप्ता, राजस्थान ज्ञानकोश, जोधपुर 2007, पृ.568*
7. *राजस्थान पत्रिका, 29 जनवरी 2009, पृ. 2*
8. *रमा कान्त शर्मा, पाथेयकण प्रकाशन, पाथेयकण संस्थान, जयपुर 2008*
9. *देवगढ़ उदयपुर से 135 किमी और कांकरोली से 65 किमी दूर स्थित तहसील है। देवगढ़ की नींव रावत द्वारकादास ने वि.सं.1726 वैशाख शुक्ल पंचमी को रखी थी।*
10. *गो श्री ब्रजभूषण लालजी, जन्माष्टमी महोत्सव पुष्टिपथ, जून 1996, बड़ोदरा, पृ. 34*
11. *हुकमचंद जन एवं नारायण माली, राजस्थान, इतिहास एवं संस्कृति, जयपुर, 2013, पृ. 296*
12. *देव कोठारी, प्रताप स्मृति ग्रंथ-प्रताप से सम्बन्धित स्थल, उदयपुर, पृ. 217*
13. *राजस्थान पत्रिका (लेख), 19 जनवरी 2009*
14. *देव कोठारी (सं), उपरिवत्, पृ. 216*
15. *ओ.पी. जोशी, लोक मूर्तिकला : पृ. 76 (जयसिंह नीरज, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, जयपुर)*

राजस्थान में भक्ति साहित्य में निदर्शित आधुनिक युगीन परिवर्तन

डॉ. ओंकार नारायणसिंह

साहित्य, इतिहास के समान ही समय एवं परिवेश सापेक्ष होता है अत: उसके माध्यम से युगीन इतिहास तथा समाज से सम्बद्ध महत्वपूर्ण तथ्यों का अनुसंधान संभव प्रतीत होता है। इसके अंतर्गत लोक जीवन परक परिवर्तनों और युगीन संक्रमण का निरूपण सहज रूप से उपलब्ध होता है। राजस्थान का भक्ति साहित्य इस क्षेत्र में विशेष समृद्ध रहा है; जिसमें जनकल्याणकामी भक्तों-संतों की अंतदृष्टि से आचार-व्यवहार का कोई भी पक्ष असंपृक्त नहीं रहा।

प्रस्तुत शोध-आलेख के अंतर्गत प्रधानत: 19 वीं शती के राजस्थान के भक्ति-साहित्य में युगीन इतिहास विशेषत: आधुनिक युग से संबंधित अभिनव प्रवृत्तियों एवं तत्प्रसूत जीवन शैली तथा लोक व्यवहारगत परिवर्तनों निर्देशों के निदर्शन का प्रयास किया गया है।

(क) राजनीतिक क्षेत्र

इसके अंतर्गत प्रशासन में अराजकता के प्राधान्य और कुपात्रों की प्रभाव वृद्धि के सामानांतर अपव्यय के कारण बढ़ती ऋणग्रस्तता तथा पारस्परिक संघर्ष-फूट से देश-दुर्दशा का जीवन चित्रण प्राप्त होता है साथ ही व्याभिचारियों के राज्य में प्रजा की दुर्गति, राजन्य वर्गों के समान ही अधिकारियों-कर्मचारियों की उत्कोचवृत्ति, न्यायपालिका के भ्रष्टाचरण, हाकिमों-मुंशियों की लोलुपता,मनमानी तथा प्रजाशोषण का लोमहर्षणवर्णन भक्तकवियों द्वारा किया गया है। यथा-[1]

लाखाँ रुपया देखै लागा, कोई न लागी कारी रे।....
देस बिगड़सी दसा, क्यारी सूं पीगी क्यारी।
खितराड़ समै किय खत्रियाँ, बाड़ खेत नै खायगी।
रंडपोखाँ रै राज में, रुळगी भूखाँ रैत।
अदालताँ सूँ होय आगती, पिरजा रोय पुकारी रे।
सूँक दुकानाँ मंडी सरासर, धौळै दिवस अंधारी रे।।
परजा को हाकम सब पीले, बस कोल्हू कानून बसीले।

हिय ऊठत हूकाँह, सूँकाँ मुनस्याँ री सुणाँ।
किण आगे कूकाँह, लूकाँ सुणै न लोक री।।

इसी प्रकार अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में ब्रिटिश कुशासन के फलस्वरूप राष्ट्र की दुरवस्था, अंग्रेजों की दुरभिसंधियों के प्रति देशी राजाओं की गफलत, अशिक्षा तथा स्वार्थी मनोवृत्ति के कारण उनके खिलौने बनकर अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने का निदर्शन प्राप्त होता है। यथा–[2]

दुख दूर हुवै सब देस रौ.....दुसह दसा इण देस री।
अंग्रेज मुलक टाबण अड़ै, ऐ जूंवां सूं आथड़ै।
ध्यान न विद्या धरै, ध्यान नहिं देश सुधारै।

इन विषम परिस्थतियों में भक्त कवियों द्वारा देशवासियों को राष्ट्रसेवा हेतु सनद्ध होने का आह्वान करते हुए आलस्य त्यागकर प्रजापालन में तत्पर होने हेतु उद्‌बोधित किया गया है। इस संदर्भ में अंग्रेजों की नीतिमत्ता तथा व्यवहार कुशलता से प्रेरणा लेकर फूट और लड़ाई छोड़कर देशोत्थान हेतु समवेत प्रयास पर बल दिया गया है।

जागो जागो रे भारत रा वीराँ जागो।
रैत पाळ रजपूती राखो, ईश्वर में अनुरागो।
अबै मती पाताळाँ पैठो, मेटो रे या फूट फजीती मेटो।
छोरू माइत बंधु मित्रगण, एक एक नें वेठो।।
अंग्रेजों री अक्कल सीखो, अवगुण छोड़ो आगो।[3]

इसके समानान्तर देश में राजनीतिक आंदोलन एवं स्वातंत्रय संघर्ष के प्रतीक चरखे का भी उल्लेख हुआ है।

रहँट फरै चरख्यो फरै, पण फरवा में फेर।[4]

(ख) शैक्षणिक क्षेत्र–

इसमें जहाँ आधुनिक शिक्षा–प्रणाली के प्रवर्तन समानान्तर उसके समाज–आधारित होने के स्थान पर राज्याश्रिम रूप में परिवर्तन के निर्देश हैं। वहीं शिक्षा–प्रसार के परिणामस्वरूप पुस्तक–लेखक, काव्य–श्रवण तथा पुस्तक–संग्रहण की प्रवृत्ति की ओर भी संकेत किया गया है। यथा–

मेवाड़ा मेवाड़ बनाई राजवटरी पटशाला।[5]
बहु पढ्‌या सीख्या सुण्या, वाच्या ग्रंथ अनेक।
नाना विद्य पुस्तक लिख्या, ग्रंथां भर्या भंडार।
लिखि लिखि पुस्तक मोकळा, वाच सुणावै और।[6]

इसी क्रम में भक्त कवि चतरसिंह बावजी ने अपनी रचना 'बालकाँ री वार' के अन्तर्गत समकालीन शिक्षा–पद्धति में सुधार एवं विकास हेतु अनेक उपयोगी परामर्श

निर्दिष्ट किये हैं। यथा–शिक्षा का प्रारंभिक माध्यम मातृभाषा को बनाना, शिक्षा हेतु दंडात्मक प्रावधान हटाना, सुधार हेतु स्वयं गुरू द्वारा आदर्श आचरण करना आदि।[7]

साथ ही फारसी के स्थान पर अंग्रेजी शिक्षा की अभिवृद्धि तथा नारी–शिक्षा की ओर भी संकेत प्राप्त होता है–[8]

पढ़े फारसी प्रथम....अंग्रेजी पढ़ अवल।
पाई नहिं पाई पाटी पढ़ियोड़ी।

(ग) सामाजिक क्षेत्र–

आधुनिक युग की पदपाच से समाज भी असंपृक्त नहीं रहा। समाज में खुलेपन की बयार, बाल–विवाह के निषेध, व्यस्क–विवाह, मंगेतर के साथ घूमने–फिरने, सती होने से इंकार, नारी शिक्षा तथा उनके द्वारा रोजगार क्षेत्र में कदन रखने और एकल परिवारों के प्राधान्य के रूप में प्रकट हुई। यथा–[9]

सब मिल कियो मेल विचार, सगपण जोड़ वर सम नार।
लाड कोड के दिवस हैं, वालो सगपण क्वाँर।
जलो न पिव की लार, एम विधवा मुख गांई।

इसका दूसरा पक्ष पुत्र के माता–पिता के विमुख होकर पत्नी तथा ससुराल के प्रति अनुरिक्त, वधु द्वारा सास–ससुर के प्रति पारम्परिक मर्यादा की अवहेलना और तिरस्कार, पति–द्रोह, व्यभिचार गर्भपात एवं संबंध विच्छेद प्रवृत्ति आदि के रूप में सामने आया। यथा–[10]

माता पिता की सेव न कर ही, नारि आज्ञा में नित अनुसरही।
साला महा सासर्या भावै, यो है जगत वुहारा।
ऐ वडाँ बूढाँ नाँहि लाजै। कवन देवर जेठ रे।
ऐ सास सुसरो हाथ जोड़ै, बहू थारी रैंत रे।
नारी पूठ तक भरतार, वड लुग गो कर विभचार।
नारी गर्भ्ज बीजण जाय।
बोयो पीहर सासरों जाराँ सूँ हुई भाँड।
खाय प्रीतम तणो गीत लूंडाँ गवै, रांड कर'' भांड पीहर पधारी।

इसी के समानान्तर सास की दामाद से चुहलबाजी, लाज के आवरण में निर्लज्जता दर्शा वाचनिक विलास–प्रवृत्ति, सामाजिक उत्सवों में महिलाओं का 'गाली'', गाना, फागुन में अश्लील फाग तथा होली पर ''डोरी'' गायन की भी चर्चा प्राप्त होती है। यथा–[11]

देखो इचरज जगत में ज्वाँई रमावै संत।
थानक लाज अलाज मन, वचनों भोग–विलास।।

गार गीत मुख उच्चरै, नारी जनम अकाज।
होरी डोरी गात है, रावण रोज विशाल।

इतर सामाजिक कुरीतियों के अंतर्गत कन्यावध, कन्या-पुत्र विभेद, कन्या का मूल्य लेना, कन्याओं से अनैतिक पत्र व्यवहार, विवाह-पूर्व संबंध, सगोत्र विवाह, अगम्यागमन, लम्पढता के कारण वर्ण संकरता का प्रसार, परिणीता पत्नी का विक्रस, वर्ण व्यवस्था का विश्रृंखलन-पतन इत्यादि के निर्देश उपलब्ध होते हैं। यथा-[12]

कन्या भई लार सों लारै, कलियुग ठाकुर जन्मत मारै।
जन्मत कन्या मारदे, चाहत सुत कुशलात।
कन्या बेच खादी बाप, ऐसो नेह कुल सन्ताप
कुचाग्र चित्र पत्र पेषि
बालक जायो कोड कर, कूंण पिता को नाम।
किन्या गोत रत मत होय।
मामी कहा चाची सास, दासी सुपच अन्त घर वास।
बैंन भाणजी को व्रतगामी।
माता बहनी घी कहैं, फिर ताही रत होय।
लम्पट हुयगा लोग लुगाई
मोटा घराँ मजादा मिटगी, बंगलाँ रै सौ बारी रे।
रूळ्या खल्या रजपूत बिराँमण मिळगा बिटळा।
वैश्य मिळ गया विकन्द, शूद्र कुळ रळगो सिटळा।
अन्त कदे नह आपरा, बिना बाप रा बेम।
करणी रा खोटा कुटिल, बिन परणी रा बेम
बनिता बनितावत निजला नर बेचै।
विप्र दोषी बेचै गऊ गरीबाँ नैं खोस खावै।
विप्र दोषी बेचै गऊ गरीबाँ खोस खावै।
हई रजपूताँ थाँरौ का सूँ होसी हवाल।

अकर्मण्यता के समानान्तर धन-लिप्सा एवं स्त्रैणता के फलस्वरूप पत्नी की स्वच्छन्दता तथा विवाहोत्तर संबंधों को सहज रूप में लेने की क्लीव वृत्ति भी अस्तित्व में आ रही थी।

आग लागी बुझा लेवौ ई में छै आपाँ की आछी।
रात की रात में ओढ़ा आ जाज्यो खूसड़ी तौ पैर जाज्यो।

(अ) आर्थिक क्षेत्र में-

औद्योगिक क्रांति के कारण औद्योगीकरण की प्रवृत्ति बड़े पैमाने पर देश-देशान्तर

व्यापार, मुद्रा-प्रणाली, समुद्रपारीय यातायात, विकसित सूचना एवं डाक व्यवस्था के निर्देश उपलब्ध होते हैं। यथा[13]-

उठिया उद्योगी उद्यम उमगाया।
लाखाँ पाइसाँ भाव में, वस्तु दिसन्तर जाय।
अरबाँ खरबाँ तकै दाम पैदास कर।
सिंध अठार व्यपार विध-विस्तरण
रूपौ रूपयौ असल धुर, असल असलन टकसाल।
हजारहाँ दिसावराँन नोट हालते नहीं।
चहुँ दिसा समुद्र बीच बोट चालते नहीं।
फोगट फोनोग्राफ ज्यूँ, बाताँ रा वैवार।
कारड तो कहतौ फिरै, हरकीनैं हक नाक।
जींरौ हवे बींनै कहै, हियै लिफाफो राख।।

इसके अतिरिक्त अर्थव्यवस्था की आधार भूत नगर सेठ, गुमाश्ता, हुण्डी, पखाड़ा, खत्त, मुचलका बीजक, पगार, व्यापारिक शब्दावली का भी उल्लेख है। यथा[14]-

नगर सेठ तन सहर में.....मन के फिरै गुमासता
परवाड़ा नृप राज का, हूँडी चालै शाह।
लिखो मुचरको एह.....कागद में रूपिया नहीं खतावत दाम।
बीजक साचा पाइयाँ, द्रिब्ब बतावै सोय।
मूल खोय शिर ब्याज बढ़ायो।
प्रजा पुकार द्वार पै, पगार पावती नहीं।

(ड़) धार्मिक क्षेत्र में-

उत्तर मध्यकालीन राजस्थान के धार्मिक संप्रदायों के अंतर्गत पूर्ववर्ती ''गुरु-गरिमा'' अब ''गुरुवाद'' के रूपमें परिणत होकर साधकों को ''मुक्ति'' के स्थान पर ''मुक्ति'' पथ पर अग्रसर कर रहा था। साथ ही अपवाद स्वरूप ही महिलाओं को दीक्षित करने की परम्परा अब उन्हें अपवादत: ही ''कंठी-दीक्षा'' से अछूती रखने के रूप में प्रकट हो रही थी। समाज की अधिसंख्य नारियाँ विविध मठों, संप्रदाय-स्थलों, दादू द्वारों एवं रामद्वारों से सम्बद्ध होकर ''चेली परंपरा को विकसित कर रही थीं। इस सन्दर्भ में पति सहित अथवा पति-विमुख रूप में भी वे गुरु समर्पिता बन रही थीं। चाहे उन्हें गृहस्थी के दायित्व की अवेहलना ही क्यों न करनी पड़े। इस भेड़-चाल में मासूम कुमारिकाओं विशेषत: नवयुवती विधवाओं के सम्मिलित होने के कारण मठ-मन्दिर ''योग-साधना'' की ओट में ''भोग-वासना'' के केन्द्र बन रहे थे। भक्त कवियों द्वारा उपर्युक्त पतन-प्रवाह के प्रति अनेकश: सचेत किया गया है। यथा-[15]

तन लंगोट मन खूब है, टोपी चोळा खूब।
हाथ मेकळा झालकर, माँगण मन मैबूब।
रोडमोड विवसाँ त्रिया, जुग ठाकुर इक गाम।
रामा मढ़ियाँ रंडियाँ, भंडिया बारै मास।
मिनख लुगायाँ होकर गैली ह्वै चेली हरखाई।
बुगला कर बैन पोटाय पती, कर चेलिय कन्थ बनें कुमती।
रिझावै लुगायाँ पीव इम्या में हमार
नारी गुरू गवन करन्त, सासू चित्त काम धरन्त।
दे छांटा नारी परबोधै, खसम बतावै खोटा।
माता पिता सूं सतगुरू मोटो, बरसनी बहुत बड़ाई।
विधवावाँ ठेकै ले बैठा, ठीक ठई ठकुराई।
रन्तीपत को वास है, एकांयत श्री संग।
नारी वैरण पुरूष की, पुरूष नार धी भंग।।

इसी प्रसंग में तथाकथित गुरुओं की भोग, धन और अधिकार-लिप्सा के दुष्परिणामों के संबंध में भी भक्ति साहित्य में निर्देश प्राप्त होते हैं। यथा[16]-

वोपाराँ अनेक भाँत, आनावारी लेऊँ ब्याज।
दूणा करै वट्टा सट्टा जोड़ता स दाँम।।
प्रब्बता गमाई सारी लीयायो, कठा सूँ प्यारी।
रांड सांड जैम बोलै कुटा ऊँली रोड।।

आज काल रा साध रौ, ब्याज बुहारण बेस।
राज माँड झगड़ै रूगड़, लाज न आवै लेस।।
अंगरेजाँ सूं काँक दूधका बंगला लेय बणाई।
अरजी देय कचेड़याँ ऊंधा, लाज छोड़ैं लड़िया है।
है गादी री खाच हुई हद, तन खिण खिण तड़भड़िया है।

नागा साधुओं की जमातों ने तो इस धार्मिक संक्रमण को सर्वभक्षी आचारहीनता युक्त रीति-नीतियों, द्वंद्वात्मक प्रवृत्ति, संघर्ष-प्रियता, शस्त्रीकरण तथा दुर्दमनीयता के कारण आतंक का रूप दे दिया था। उनके अखाड़े सैनिक छावनी का स्वरूप ग्रहसा कर रहे थे। यथा[17]-

मूडणाँ में श्रब भखी रसोई आचार माँन,
जटाजूट नागा कोई खागाँ साई जोध।
आवधाँ छत्तीसों लियाँ दलाँ में फिरै अगेता।

वहंता दुवाराँ घाटाँ लड़न्ता वखाँण।
अखाड़ाँ रा नाँम वडा महाकलू कहा आँखूँ।
मरन्ता होवन्ता भूत जागन्ता मसाँण।

(च) इतर क्षेत्र में-

उपर्युक्त परिवर्तनों के अतिरिक्त आधुनिक काल की अभिवन जीवन शैली के विविध प्रतिमान यथा होटल संस्कृति, रेस कोर्स में घुड़ दौड़ तथा पोलों के प्रति बढ़ती अभिरूचि के उल्लेख प्राप्त होते हैं। साथ ही नवीन अविष्कारों के अन्तर्गत परिवहन के क्षेत्र में रेल-व्यवस्था, जलदाय-प्रणाली एवं संचार संबंधी विकास की भी चर्चा हुई है-

होटलाँ में हिळ जावै।
रामा रास चौगान बिच लागी मारोमार।
रात दिवस के रेसकोस मेंबाजी लाव बनावै।
जाकी पर कोई हुय जावै, वेनिंग पोष्ट बतावै।।[18]

टिगट टैम री खबर खोजनी, रेली घणी दौड़ाकी।
आयो कठूँ कठै उतरेगा, कतरा टेशण बाकी।।
टेशण रा दीवा परे, ज्यूँ टेशण रो नाम।
अंजण आवै देखनै, सिंगल रौ सत्कार।
नल में जल तो मोखळौ, फेर फेर वा नाँय।[19]
बढ़ती शिक्षित बेरोजगारी के भी निर्देश उपलब्ध होते है।
भणिया मांगै भीक।[20]

सारांशत राजस्थान के भक्ति साहित्य में आधुनिक युगीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों के विषय में पर्याप्त साक्ष्य सम्प्राप्त होते हैं। इनके विश्लेषण एवं व्याख्या से समकालीन लोक-इतिहास के विविध पक्षों के संबंध में नवीन जानकारी संभव है।

संदर्भ

1. *ऊमरदान ग्रंथावली, संपा. शक्तिदान कविया, पृ. 250/3, 187/47, 190/56, 196/2, 249/5, 251/7, 255/2 राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर 1991 ई.*
2. *ऊमर, पृ. 178/9, 179/14, 181/20, 186/40*
3. *मेनारिया, पुरूषोत्तमलाल-राजस्थानी संत साहित्य, पृ. 68-69, जयपुर 1988 ई.*
4. *उपरिवत्।*
5. *वही, पृ. 67-68*
6. *दयालदास की वाणी भाग-1, पृ. 367/1, 234/10, 245/10, खेड़ापा, जोधपुर,*

1981 ई.

7. *राजस्थानी संत साहित्य, पृ. 74-75*
8. *ऊमर पृ. 169/2, 218/84*
9. *दयालदास की वाणी, भाग 5 पृ. 27/283, भाग/488/20, भाग 6/190/1 भाग 5/143/85 ऊमर, 197/2*
10. *दयाल, भाग 3 135/53, भाग 5/143/86, 5/124/11, 5/125/12, 5/74/813, 5/72/801, भाग-6, 392/6, 6/190/1*
11. *दयाल 1/489/24, 1/489/22*
12. *दयाल, 3/196/9, 6/189/1, 5/29/292, 1/118/10, 5/70/55, 5/60/640, 3/135/52, 1/268/73, 6/486/6, उमर, 17/2, 55/56, 248/1, 169/3, 105/10*
13. *ऊमर 234/181/, दयाल 1/349/20, 6/28/3-4, 1/446/10, ऊमर, 23/39, राजस्थानी संत, 67-70*
14. *दयाल 1/165/36-38, 241/25, 156/207, 85/93, 276/10, भाग 7/177, ऊमर 23/28*
15. *दयाल 1/296/18, 297/20, 295/9, ऊमर 115/12, 111/27, दयाल 6/490/15, 5/74/812, ऊमर 115/3, 116/4, 114/8, दयाल, 1/266/57*
16. *दयाल 6/491/12, 492/16-17; ऊमर 88/5, 115/14, 117/6*
17. *दयाल 6/493/22-23*
18. *ऊमर 169/2, 135/4, दयाल 1/434/91*
19. *राजस्थानी संत साहित्य, पृ. 67-70*
20. *ऊमर, 253/6*

थार मरुस्थल के लोक कलाकार- लंगा मांगणियारों के विशेष सन्दर्भ में

पंकज चांडक

थार मरूस्थल जलवायु की दृष्टि से जितना शुष्क है उतना ही यहां के लोग सरस है। यहां के गीत, यहां का संगीत, यहां के वाद्य तथा यहां के कंठों में सुरीलापन है। तन-मन को कल्पना लोक में पहुंचाने वाली मोहिनी शक्ति है, विष का प्याला पिलाकर नचाने वाली अन्यत्र भक्ति है, रूला देने वाली विरहणी के व्यथा से भरी झोरवो की अनुभूति है। आज जिधर देखों उधर थार मरूस्थल के लोक गायकों का नाम है लोक संगीत के क्षेत्र में अपने देश और सात समुद्र उनकी साख है अपनी विशिष्ट पहचान है। इन गायकों का गायन, लय-ताल के प्रकारों का प्रयोग, मुर्कियां एवं छोटी-छोटी तानों का उपयोग, गीत में बंदिश सा आभास इसे लोक-संगीतात्मक अवस्था से निकालकर कुछ उन्नत रूप प्रदान करता है। यह शास्त्रीय संगीत की अपभ्रंश अवस्था है[1] ऐसा प्रतीत होता है कि इन गीतों को गाने वाले, लोक वाद्यो को बजाने वाले लोक संगीतकार कभी राज-दरबारों में गायक थे। उनकी अपनी गायन शैली थी, जो शास्त्रीय संगीत पर आधारित थी। राजपरिवारों से संरक्षण हटने पर अपने यजमानों के लिए गाकर आजीविका कमाने से इनका शास्त्रीय तत्व जाता रहा।[2]

थार क्षेत्र में लंगा, मांगणियार, हिन्दू ढोली, मुसलमान ढोली, ढाढी, मिरासी, दूम तथा पाबूजी के भोपे आदि मुख्य पेशेवर जातियां निवास करती हैं[3] ये पेशेवर जातिगत समूह अपने यजमानों के यहां धार्मिक, मांगलिक तथा जन्म विवाह, आदि के अवसरों पर गायन वादन का कार्य करते है, इन पेशेवर जातियों में से कुछ जातियों में केवल पुरूष, किन्हीं में पुरूष व महिलाऐ दोनों तथा कुछ में केवल स्त्रियां ही गाती है।[4] इनके गीतों, दूहों, छन्दों, कविताओं, लोक प्रथाओं तथा प्राचीन ऐतिहासिक, सामाजिक गीतों के संग्रह में पश्चिमी राजस्थान, धाट व सिंध का इतिहास समाहित है।[5] प्रस्तुत शोध पत्र में इन जातियों में से दो प्रमुख पेशेवर जातियां लंगा व मांगणियारों के इतिहास, परम्पराओं तथा वाद्य यंत्रों का अध्ययन किया है।

लंगा गायक

लंगा जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर तथा पाकिस्तान के उमरकोट, थार-पारकर, नगर-पारकर में रहते हैं। इनका जन्मस्थान मुल्तान के लोकत नामक स्थान था। ये

जैसलमेर के भाटी शासकों के साथ जैसलमेर आये थे।[6] ये युद्ध भूमि में वीरों को जोश दिलाने हेतु शहनाई बजाया करते थे। जैसलमेर में साके के समय एक लंगे ने शहनाई बजाकर दुश्मनों को भेद दिया था तब से जैसलमेर क्षेत्र में लंगों को विश्वासी नहीं मानते है।[7] इनमें सोलंकी, भाटी, पंवार आदि खांपे है जो मुगल बादशाह औरंगजेब के समय मुसलमान बने थे। ये लोग आज मुसलमान है, मगर इनके रीति-रिवाज, वेशभूषा खान-पान तथा वैवाहिक रीति-रिवाज हिन्दुओं जैसे हैं इन्होंने अपने पूर्वज देवीदास के समय से गायन वादन सीखा था। देवीदास जी सुरणाई या शहनाई बजाया करते थे बाद में इनके वंशजों ने सांरगी बजाना प्रारम्भ कर दिया। सांरगी लोक-वाद्य बजाने वाले सांरगिया अथवा सुरणाइया लंगा व शहनाई बजाने वाले शहनाइया लंगा कहलाने लगे।[8]

सुरणाइयां लंगा : यह केवल वादन का कार्य करते है, गाते नहीं है। यह शहनाई के अलावा मुरला (पूंगी जैसा), सुषिर वाद्य, सुरिन्दा तंतु वाद्य (जो गज से बजाया जाता है) व मोरचंग का वादन करते है। यह खुद को प्रारम्भ से मुस्लिम मानते हैं, इनके रीति-रिवाज, वेशभूषा सिंधी मुसलमानों की तरह सफेद साफा व अखरख है

सारंगिया लंगा- ये सांरगी वाद्य बजाने के कारण सारंगिया लंगा कहलाते है ये आजकल हिन्दुओं के समान रहते है इनकी स्त्रिया चूडा पहनाती है, हिन्दू त्यौहार मनाते है, जोगमाया को पूजते है।[10] इन दोनों खांपों में परस्पर खान-पान का सम्बन्ध है मगर वैवाहिक संबंध नहीं है।[11] लंगों के विवाह, बीमारी, मृत्यु भोज आदि पर होने वाले व्यय भी इनके जजमान चुकाते हैं। इन लोगों को अपनी आजीविका की किसी भी तरह की कोई चिंता नहीं थी, ये अपनी संगीत साधना में तल्लीन रहते थे। अब यह परम्पराएं बदल रही है, इस कारण इनका संगीत व पारम्परिक संबंध पीछे छूटते जा रहे हैं।

लंगा लोग गुरू शिष्य परम्परा में रूप में संगीत सिखने की परम्परा को अपनाते है। पिता के अच्छे गायक होने पर पुत्र पिता को ही अपना गुरू बनाता है। शिष्य बनाने के लिए समारोह आयोजित किया जाता है जिसमें मित्र, रिश्तेदार सभी इकट्ठे होते हैं। इसमें मिश्री को पानी में घोला जाता है। मंत्र पढ़ा जाता है, यह मंत्र की प्रक्रिया 'दरूद' कहलाती है।[12] इस समारोह में उपस्थित सबसे वृद्ध व्यक्ति गुरू को पवित्र मीठा पानी पिलाता है। गुरू आधा पानी पीकर अपने शिष्य को दे देता है शिष्य के परिवार वाले गुरू को उनी पटुया शाल देते है उसके बाद कठिन साधना अभ्यास से गुरू शिष्य को संगीत में पांरगत करता है। लंगों के वाद्य यंत्रों में मुख्यत: सिंधी सारंगी, गुजरातण सांरगी, सुरिन्दा, मुरला, शहनाई, सतारा है। सिंधी सांरगी का निर्माण टालची की लकड़ी से किया जाता है तथा इसके नीचे का भाग बकरे की खाल से मढ़ा जाता है। पैदें के ऊपरी भाग में भैंस के सींग की बनी होती है जिससे 29 तार निकले होते हैं जिसे गज से बजाया जाता है।[13]

गुजरातण सांरगी-यह सिंधी सांरगी से थोड़ी छोटी होती है इसे गुजरात प्रदेश में रोहिड़े की लकड़े से बनाया जाता है इसमें चार बाज के और आठ झील के तार होते है जिन्हें गज से बजाया जाता है।[14]

सुरिन्दा- इस विशिष्ठ यंत्र को सुरण्इया लंगा बजाते है इन वादकों का मुख्य कर्तव्य मुरले की संगत करना है इसमें आठ तार होते है जिन्हें घुंघरे लगे गज से मात्र स्पर्श कर वादन किया जाता है।[15]

मुरला- यह एक सुषिर वाद्य है जिसका कलेवा ताम्बे व बांस का बना होता है जिस पर मरूस्थल में उगने वाले कंगुर की पताली रीटें लगाई है। प्रत्येक नली में सरकंडा लगा रहता है। एक नली में केवल ध्वनि निकलती तथा दूसरी से स्वर बजता है, स्वर वाली नली में तीन छेद होते है, जो मोम की सहायता से निश्चित स्वरों में मिला दिए जाते है।[16]

शहनाई - इस लोक वाद्य को सुरनइया लंगा व मांगणियार ढोली मांगलिक अवसरो पर बजाते है। इसे रोहिडे, टाली तथा शीशम की लकड़ी से बनाई जाती है।[17] जैसलमेर में लंगे राजदरबार में मांगलिक अवसरों, बारातों, उत्सवों पर इसका वादन करते है।[18]

सतारा (अलगूंजा)- यह लंगों का वाद्य यंत्र है मगर वर्तमान समय में मांगणियार, मेघवाल, भील तथा सांरगिये व सरनइये लंगे इसको बजाते है समारा को सौराष्ट्र में पावा तथा मरूप्रदेश में अलगोझा कहते है यह टाली व कंगूर की लकड़ी से बनाये जाते है जो पाकिस्तान के सिंध प्राप्त में बहुतायत में उगते है।[19]

मांगणियार

पश्चिमी राजस्थान में एक गाने बजाने वाली विशेष जाति मांगणियार निवास करती है। सामान्त: इन्हें दमामी, डूम और ढाढी आदि नामों से भी पुकारते हैं इनका मुख्य व्यवसाय गाना-बजाना है 'मांगणियार' का अर्थ मांगने वाला होता है ये कभी कोई खेती बाड़ी, उद्योग-धन्धा या व्यापार नहीं करते मांग कर खाते है तथा अपने परिवार को पालते है। मांग कर खाने के कारण इन्हें 'मंगत' भी कहा जाता है। यह एक स्थान पर बैठकर खाना या रहना अपना अपमान समझते है।[20]

ये अपने संबंध में यह विचार रखते हैं-

घरे बैठो मंगतो, तीन औगुण थाथ
कपड़ फाड़े ऋण चढ़े, विद्या बीसर जाय।।

अर्थात् घर पर बैठकर रहने पर मांगणियारों में तीन अवगुण आ जाते है यानी बैठे-बैठे कपड़ा फाड़ना, कर्ज चढ़ाना और विद्या को भूल जाना[21]। यह जैसलमेर,

उमरकोट, बाड़मेर, बीकानेर क्षेत्र में निवास करते है गाड़िये लौहारों की भांति एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते फिरते नजर आते है, कभी सरोवर की पाल पर, कभी पेड़ की छाया में, बस स्टेण्ड पर रेलवे स्टेशन पर, विवाह व उत्सव पर गाते बजाते नजर आते है जो कुछ इनको इसमें मिलता है। यह उसी से अपना संतोष कर लेते है।[22] इनकी अनेकों उपजातियां और नखे हैं। इस जाति के लोग किसी एक धर्म सम्प्रदाय अथवा जाति के नही है। इनमें अनेक जातियों व सम्प्रदायों का सम्मिश्रण है, विशेष कर भाटी राजपूत, पंवार, चौहान, पालीवाल ब्राह्मण व मुसलमानों आदि का।[23]

मांड क्षेत्र में (जैसलमेर जिला) में रहने वाली इस जाति के लोगों के नख या उपजातियां इस प्रकार है गेला (पालीवान ब्राह्मणों से निकले) खारेड़ (राजपूतों से निकले) देधड़ा (मेघवालो से निकली बोधर-सीधर (चौहान राजपुतों से निकले) बाबर (मुसलमानों से निकले) इसके अलावा और भी कई उपजातियों के लोग इनमें है।[24]

इनके गांव-

गेला- एक भोले पालीवाल द्वारा ढोल बजाने पर न्यात बाहर करने पर उसकी शादी ढोलियों में हुई उससे गेला नख की उत्पति हुई। इनके प्रमुख गांव खेड़ी गांव, लोद्रवा व खांभा गांव है वर्तमान में अकबर सबजो, खीयो, रोंणो, बेरसी व रमझो आदि गेला मांगणियार इन गांवों में रहते है।[25]

खारेड़- यह नख खारेड़ राजपूत द्वारा हाबूर गांव में कमायचा बजाने के कारण न्यात बाहर करने के बाद दैवीय आशीर्वाद से कमायचा बजाने, गाने व कविता लिखने में प्रवीण होने से बनी। यह नख संतो, ऊंडे, सुन्दरा गांव में रहती है।

देधड़ा- यह नख के लोग मेघवालों से निकली है झिनयाली, बईया, जोगीदास, रणधा, मोढ़ा, सियड़ा आदि गांवों में रहती है।

बोधर-सीधर- यह नख चौहानों से निकली है छायण, सोनू, छतीगढ़ आदि गांवों में रहती है।

बाबर- यह मुसलमानों से निकले है, यह खुड़ी म्यालजार, सत्तो आदि गांवो में रहती है। मांगणियारों के अन्य नख जैसे डगा-धोला, गुणसार, थईम, डौसा-वषी, भट्टिका, जीण, फुलवाणी, वामणिया, कटु, भेट, कालेट है, जो थार मरूस्थल के जैसलमेर, बाड़मेर, उमरकोट, धाट आदि क्षेत्रों में निवास करती है।[26]

मांगणियारों की परम्पराएं

लगमान-मांगणियार हिन्दू परिवारों के यहां विवाह, जन्म, खुशी तथा अन्य उत्सवों पर गाते बजाते है इन गायकों को समय-समय पर लगमान दिया जाता है।

धम- मांगणियारों का धम करने की प्रथा थी पर अब परिस्थितियों वश धम नहीं होता है। धम एक प्रकार का ओसर होता है। सभी मांगणियार जाति जो जैसलमेर, बाड़मेर, पोकरण, धाट, उमरकोट तक में फैली हुई धम में आते थे। एक मांगणियर सबको अपने गांव में बुलाता और परम्परानुसार सात टंक (खाना) तक उनको अपने गांव में रखकर स्वगत-सत्कार करता था। प्रथम टंक (समय) खीच, दूसरे टंक में खांड़ का सीरा, तीसरे टंक में गुड का सीरा, चौथे टंक में पुलाव (खीचड़ी+घी), पांचवे टंक में आटा घी, छठे् टंक में चनों की घुघरियां बनाकर दी जाती थी। सातवें समय गिरोल गुड़ घी देकर सीख दी जाती थी।

सातवे दिन धम करने वाले मांगणियार की पत्नी श्रृंगार कर सिर पर कलश रख घुमती थी जिसमें सभी लोग पैसा डालते थे। यदि इक्ट्ठे रुपये से ज्यादा खर्च होता था तो बकाया पैसा पालीवाल ब्राह्मण करते थे।[27]

सामाजिक जीवन- मांगणियार कभी भी एक स्थान पर नहीं रहते है। एक गांव से दूसरे गांव मांगते फिरते है। शुक्ल पक्ष चौदस, दूज व चौथ को माताजी के थान के आगे ढोल तथा कमायचा बजाते हैं हिंगलाज माता, जोगिणयां का थान, जूंझार का देवल, सती स्थान आदि पर ढोल बजाते है और चढ़ावा प्राप्त करते है। हिन्दू व मुसलमान दोनों प्रकार के मांगणियार समस्त हिन्दू देवताओं को पूजते है, हिन्दुओं के त्यौहार मनाते है तथा देवताओं के गीत गाये जाते है व हिन्दू वेशभूषा रखते है पुरूष को सिर पर साफा पहनना अत्यावश्यक होता है इसके बिना गांव में प्रवेश निषेध होता है पुरूष कमीज, तेवटा व धोती पहनते हैं स्त्रियां लहंगा, कुर्ती, कांचली तथा ओढ़णा ओढ़ती है। नीला रंग यह काम में नहीं लेते हैं। 'शराब व मांस का सेवन खुब करते है।[28]

विवाह-इनके विवाह पर निकाह पढ़ाई जाती है। बाकी सारा कार्य हिन्दू पद्धति से होता है। गाना-बजाना, अमल, रयाण, सामेला, तोरण, चंवरी आदि हिन्दू वैवाहिक विधि से होती है एक नख में कभी शादी नहीं करते है। मुसलमानों की तरह एक ही परिवार में शादी/निकाह नहीं करते हैं।[29]

शुभराज- मांगणियारों का स्वागत करने का अपना विशेष तरीका है। यह खड़े होकर काव्य में अपने यजमानों के वंश व उल्लेखनीय कार्यों का बखान करते है। शुभराज हर जाति के अलग बने होते है दो से सौ पंक्तियों तक का होता है।

भाटी राजपूतों को शुभराज इस प्रकार करते हैं-

जिण दिन कृष्ण जन्मियो, कारण पृथ्वी कलंक।
वंश छतीसौ उपरै, कुळ जादम निकळंक।।
कृष्णावतार जादम धणी धणी खमा अन्नदाता।[30]

मांगणियारों की स्त्रियां भी शुभराज करती है बड़ी बड़ी ठकुरानियों व सेठानियों के पास खड़ी होकर पीहर व ससुराल दोनों पक्षों का शुभराज कर ईनाम पाती है। इसके अलावा भजन, खमा, गीत, हालरिया, बधावा गीत गाती है।[31] मांगणियारों के विशेष वाद्य यंत्र कमायचा, ढोलक, करताल, मोरचंग, अलगूंजा, सांरगी, मुरली, सुरूमंडल आदि है। झींझा, तंदूरा, मोरध्वज, इकतारा, तम्बूरा व नड़, शहनाई का भी उपयोग करते हैं। 'कमायचा व सांरगी बजाने में यह प्रवीण होत हैं करताल, मोरचंग, अलगूंजा थार धरा के वाद्य यंत्र है।[32]

निष्कर्ष

इस प्रकार लंगा व मांगणियार थार प्रदेश के इतिहास, संस्कृति व कला को जीवित रखने वाली जाति है। ये लोग अनपढ़ होते हुए भी श्रुति परम्परा के आधार पर गाने, बजाने व कविता पढ़ने में दक्ष होते है। वीरों, प्रेमियों, तीज-त्यौहारों, रीति-रिवाजों, लोक कथाओं, वार्ताओं आदि से जन मानस को इन्होंने बहुत लम्बे समय तक प्रभावित किया है। वाद्य-गायन, कला व संस्कृति का प्रचार इनके माध्यम से हुआ है इनके वाद्य भी अलग व अनोखे है। इन लोग समय के गीत अलग-अलग रागनियों से गाकर इतिहास को जीवित रखा है।

सन्दर्भ

1. *शर्मा नंदकिशोर, मांड प्रदेश की सुनहरी विरासत, सीमांत प्रकाशन, जैसलमेर*
2. *शर्मा नंदकिशोर, जैसलमेर का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, सीमांत प्रकाशन, जैसलमेर*
3. *लक्ष्मीचंद, तवारीखे जैसलमेर, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, वि.सं. 1948*
4. *महकमा खास जैसलमेर, फाईल नं. 1087, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
5. *गढ़वीर, डॉ. एम.आर., जैसलमेर राज्य का सामाजिक इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 2002, पृष्ठ 48*
6. *शर्मा, नंदकिशोर, सिन्ध-हिन्द का इतिहास, सीमांत प्रकाशन, जैसलमेर वर्ष 2014, पृ. 187-188*
7. *लक्ष्मीचंद, पूर्वोक्त*
8. *राजहंस, सुधा, चिरमी-लंगो की गायन शैली*
9. *प्रत्यक्ष अवलोकन*
10. *साक्षात्कार, भाट वीरचंद*
11. *साक्षात्कार, भाट वीरचंद*
12. *साक्षात्कार, सरूपों लंगा*
13. *प्रत्यक्ष अवलोकन*
14. *वही*

15. *वही*
16. *वही*
17. *वही*
18. *लक्ष्मीचंद, पूर्वोक्त*
19. *प्रत्यक्ष अवलोकन*
20. *व्यास, डॉ कैलाशनाथ, राज की जातियों का सामाजिक और आर्थिक इतिहास*
21. *साक्षात्कार, बेरसी मांगणियार*
22. *प्रत्यक्ष अवलोकन*
23. *महकमा खास जैसलमेर, फाईल नं. 1087, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
24. *लम्मीचंद, पूर्वोक्त, पृ. 228*
25. *साक्षात्कार, अकबर सबली (गेला मांगणियार)*
26. *साक्षात्कार, भाट वीरचंद*
27. *साक्षात्कार, नंद किशोर शर्मा (मरू सांस्कृतिक केन्द्र, जैसलमेर*
28. *परिहार, डॉ. जगमोहनसिंह, सांस्कृतिक राजस्थान*
29. *साक्षात्कार, रमझो व रोणो मांगणियार*
30. *साक्षात्कार-डॉ. भंवरसिंह भाटी*
31. *मेहता, रघुनाथसिंह, जैसलमेर के लोक गीत*
32. *लक्ष्मीचंद, पूर्वोक्त, पृ. 140*

मारवाड़ की चित्रकला : भारत कला भवन के विशेष सन्दर्भ में

कु. ज्योति

मारवाड़ को मरूस्थल, मरूभूमि आदि नामों से जाना जाता है। राजस्थान में बालुकामय हैं, उसे मारवाड़ कहा जाता है। राजनीतिक पटल पर मारवाड़ मेवाड़ के समकक्ष राजस्थान का महत्वपूर्ण राज्य रहा है।[1]

राठौड़ राजपूतों ने मारवाड़ की स्थापना की, कालान्तर में उसी राजवंश ने क्रमशः बीकानेर और किशनगढ़ दो और प्रमुख राज्यों को बसाया। राठौड़ वंश के राजपूतों के अधिकार में राजस्थान का जितना भाग है, उतनी भूमि को मारवाड़ कहा जाता है। मारवाड़ की शौर्य गाथाएं अधिक प्रसिद्ध है, मारवाड़ के शूरवीर राठौड़ों की अनेक शबीहें बनी है। मारवाड़ की राजधानी जोधपुर मुख्य रूप से चित्रकला का केन्द्र थी, मारवाड़ के महाराजाओं, उनके दरबारियों के साथ मारवाड़ के ठिकानों में भी चित्रकला को प्रश्रय मिला। बीकानेर व किशनगढ़ चित्रशैलियों की जन्मदात्री मारवाड़ शैली है। राजनैतिक संघर्ष काल में भी इन राजपूत शासकों ने सांस्कृतिक विकास पर अत्यधिक ध्यान दिया, विभिन्न राजपूत राज्य के शासकों ने न केवल विद्वानों एवं कवियों तथा चित्रकारों को आश्रय दिया वरन् पूरी तरह से साहित्य व कलाओं के विकास में अपना योगदान दिया।

मारवाड़ के चित्रों के अध्ययन से दरबार के रीति-रिवाज, धर्म, सामंती-व्यवस्था, वेशभूषा, रहन-सहन, आमोद-प्रमोद व लोकशैली के चित्र भी देखने को मिलते है। हम देखते हैं कि मारवाड़ की चित्रकला पर मुगलों का प्रभाव अधिक पड़ा, इनका मुगलों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। फलतः मारवाड़ में दरबार में मुगल कला एवं संस्कृति आई तथा वैवाहिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप में मुगल राजपूत कला एवं संस्कृति का आदान-प्रदान हुआ। मारवाड़ के कई शासकों ने समय-समय पर गुजरात के कई क्षेत्रों को जीता अतः गुजरात के चित्रों का गहरा प्रभाव भी मारवाड़ी चित्रों पर पड़ता है। मारवाड़ के शासक लम्बे समय तक मुगलों की सेवा में दक्कन में नियुक्त रहें, इसलिए मारवाड़ी चित्रों पर स्पष्टतः पृष्ठभूमि एवं वृक्षों के अंकन में दक्कनी प्रभाव दिखाई पड़ता है। औरंगाबाद से प्राप्त मारवाड़ के कुछ चित्र दक्कन के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं।

मारवाड़ की चित्रकला में हम लोककथाओं पर अधिक चित्र बने देखते है, लोककथाएं मारवाड़ के लोगों के जीवन का हिस्सा रही है। ये यहां के सामाजिक जीवन का वास्तविक दर्पण है। इसलिए इस पर अत्यधिक चित्र बने है, ढोला, मारू, कृष्ण-रूकमणि वेली, आदि प्रसिद्ध है।[2]

राजस्थान के इतिहास में मारवाड़, राजनीतिक,आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। सामान्यतः यही मान्यता है कि यहां के शासकों ने भी मेवाड़ आदि राज्यों की ही भांति प्रारम्भिक 17 वीं सदी से निश्चित रूप से चित्रकला को प्रश्रय दिया। यद्यपि मारवाड़ चित्रशैली के अपेक्षाकृत कम उदाहरण सामने आये है, पर फिर भी राजस्थानी चित्रकला के इतिहास में मारवाड़ शैली का उल्लेखनीय स्थान है। मारवाड़ शैली की अपनी विशिष्टतायें उसे बूंदी, कोटा आदि चित्र शैलियों से भी अलग करती है। यद्यपि मारवाड़ अवश्य ही पश्चिमी भारतीय चित्रों का प्राचीन केन्द्र रहा होगा, पर निश्चित प्रमाणों के अभाव में यहां मुख्य रूप से सत्रहवीं सदी से 19 वीं सदी के चित्रों का अध्ययन किया गया है। 19वीं सदी में जब मेवाड़, बीकानेर आदि केन्द्रों पर चित्र शैली का पतन हो रहा था, उस समय मारवाड़ से उत्कृष्ट, तिथियुक्त, लेखयुक्त चित्र बड़ी संख्या में मिलते है। चित्रों के लेखों पर विभिन्न चित्रकारों के नाम मिलने से चित्रकार विशेष की शैली उभरकर आती है।

चित्रकारों के सन्दर्भ में जानने का एकमात्र स्त्रोत चित्रों पर मिले लेख है। बहियों आदि में मारवाड़ के चित्रकारों से सम्बन्धित कोई भी साक्ष्य नहीं मिलता, मारवाड़ के मरदुमशुमारी रिपोर्ट से वहां के चित्रकारों के बारे में थोड़ी जानकारी होती है, निम्न चित्रकारों के बारे में पता चलता है, जैसे-वीर जी, छज्जू, साहबद्दीन, हैबुद्दीन, मथेन चित्रकार, मथेन रामकिसन, मथेन सीवराम, भाटी चित्रकारों में भी बहुत से चित्रकार है। प्रायः 19 वीं सदी के तीसरे हिस्से तक इन चित्रकारों की परम्परा बरकरार रही। जब हम मारवाड़ के लोक शैली के चित्रों का अध्ययन करते हैं, तो चित्रों में सामान्य जनजीवन की संस्कृति भी उभरकर आती है, ये चित्र सिर्फ कला परम्परा ही नहीं वरन् वहा की संस्कृति के भी अमूल्य दस्तावेज हैं।

यू.पी.शाह. डॉ.मोतीचन्द्र एवं अन्य विद्वान ने 11 वीं सदी से 15वीं-16वीं सदी तक के गुजरात के पश्चिमी भारतीय शैली के चित्रों के अन्तर्गत मारवाड़ के चित्रों को माना है।[3] मारवाड़ के कई शासकों ने समय-समय पर गुजरात के कई क्षेत्रों को अपने अधीन किया।[4] बड़ी संख्या में प्राप्त लोक शैली के चित्रों के आधार पर विद्वानों ने मारवाड़ को मुख्यतः लोकशैली के चित्रों का प्रमुख केन्द्र माना है। मारवाड़ लोक साहित्य का भी सर्वाधिक समृद्ध केन्द्र रहा है। हम देखते है कि मारवाड़ जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र रहा है।[5] जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए सम्पन्न जैन धर्मानुयायियों ने बड़ी संख्या में धार्मिक जैन ग्रंथों का चित्रण करवाया। आरम्भिक विद्वानों ने मारवाड़ शैली के बहुत कम चित्र प्रकाशित किये और ये प्रकाशित सामग्री भी मुख्य रूप से अठारहवीं सदी

के अंत एवं उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ की है। गजसिंह राजा सूरसिंह की मृत्यु के बाद 1620 ई. में गद्दी पर आते हैं, ये मुगल दरबार में जहांगीर के बहुत निकट थे।[6]

1678 ई. में जसवंत सिंह की मृत्यु के बाद 1707 ई. तक राठौर शासकों का कोई उत्तराधिकारी नहीं था और मारवाड़ पर प्रत्यक्षत: मुगलों का शासन था।[7] सम्भवत: इस कारण इस समय संरक्षण के अभाव में चित्र बनने की प्रक्रिया धीमी होगी, परन्तु मारवाड़ चित्रशैली के इस काल में जो थोड़े बहुत चित्र मिले है, वे उत्कृष्ट एवं परिपक्व है, तथा स्थापित शैली को दिखाते है। पहली बार ए.के. कुमार स्वामी ने 1927 ई. में दक्षिण राजस्थानी चित्र शैली के अन्तर्गत राधाकृष्ण का चित्र प्रकाशित किया।[8] जिसे गोयट्ज आदि विद्वानों ने मारवाड़ का माना है, पर यह पहचान गलत है। वास्तव में यह चित्र मालवा शैली का है। ऑस्थन एल. ने 1948 ई. में अठारहवीं सदी के तीन महत्वपूर्ण चित्रों को प्रकाशित किया, तथा कुछ अन्य चित्रों की सूची दी। ओ.सी. गांगुली द्वारा बड़ौदा म्यूजियम संग्रह के कैटलॉग में 56 चित्रों की सूची दिये जाने एवं कुछ चित्रों के प्रकाशित करने से पहली बार उपर्युक्त संख्या में मारवाड़ शैली के चित्र सामने आये।[9]

भारत कला भवन संग्रहालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के चित्रकला विथिका में कुछ मारवाड़ चित्र हैं जो निम्न है-

1. हाथी पर सवार अजीतसिंह एवं जुलुस तिथि 1722

इस चित्रण में आकृतियों के चित्रण में अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में प्रचनित होने वाले अंकनों का पूर्वाभास मिलता है। इसमें लम्बे अंडाकार चेहरे वाली स्त्री आकृतियाँ है। इनके नीचे का धड़ ऊपरी भाग से अधिक लम्बा है। बीकानेर एवं जयपुर में भी इसी प्रकार की आकृतियाँ चित्रित हुई हैं जुलुस के दृश्य में भीड़ का चित्रण अत्यन्त कुशलतापूर्वक हुआ है। रंग योजना आकर्षक है। यह चित्र आकार में सत्रहवीं एवं अठारहवीं सदी के अन्य पूर्व विवेचित चित्रों की तुलना में बड़ा है। चित्र के पीछे की आरे दो पंक्तियों का लेख है, जिसमें तिथि एवं अजीतसिंह का नाम है।

2. अभयसिंह की शबीह-

यह अभयसिंह के युवावस्था का चित्र है। 1724 ई. में जब अभयसिंह गद्दी पर बैठते है, उस समय उनकी उम्र 22 वर्ष थी। इस चित्र पृष्ठभूमि का अंकन जोधपुर शैली से प्राप्त पहले के चित्रों से भिन्न है। यहां वृक्षों के अंकन में स्पष्ट रूप से दक्कनी शैली का प्रभाव देखा जा सकता है। संभवत: यह प्रभाव मारवाड़ शैली पर बीकानेरी चित्रशैली से आया। इसमें बादलों को गोल घेरों से लटकता हुआ चित्रित किया गया है, जो देखने में बहुत सुन्दर लग रहा है। अभयसिंह की वेशभूषा विशिष्ट है, वे बन्द गोल गले का कढ़ाई जामा पहने है, जो बहुत कम शबीहों में देखने को मिलता है।

3. संगीत सभा में राजा

इस चित्र का संयोजन रूढ़िबद्ध है, पर बीच में खुली रेलिंग, दातेदार लम्बी पत्तियाँ, अपेक्षाकृत घनी पंखुड़ियों वाले फूलों के चित्र में नयापन देखने को मिलता है। लम्बी पतली आकृति की लम्बी गर्दन का चित्रण रामसिंह की आकृति पर आधारित चित्रों में देखने को मिलता है। अग्रभूमि में स्वाभाविकता से परे फूलों की क्यारियों में बूंटों का चित्रण हुआ है।

4.मानसिंह की शबीह-

इसमें इनको आँखे भाटी चित्रकारों की परम्परा में लम्बी, नुकीली नहीं है पर बड़ी पलकों वाली ऊपर की ओर घुमी, आंखों का अंकन उनकी शैली के निकट हैं। मानसिंह इस चित्र में अपेक्षाकृत अधिक युवा दिख रहे है। ऊपर गुच्छेदार झाड़ियों जैसे बादलों में नवीनता है।

5. ढोला मारू जोधपुर, 19 वीं शती

इसमें एक स्त्री व एक पुरूष पारम्परिक वेशभूषा में दिखाए गए हैं, दोनों पूरी तरह से आभूषणों व रंगीन वेशभूषा में दिख रहे हैं। लम्बी आकृतियों का ढालुवां माथा, नुकीली नाक, त्रिभुजाकार, गलमुच्दे, ढोलकनुमा पगड़ी आदि का चित्रण अब तक की प्रचलित परम्परा में है। बड़ी पलकों एवं घनी बरौनियों वाली ऊपर की ओर खिंची नुकीली आँखे अत्यधिक सुन्दर लग रही है। इसी परम्परा में उन्नीसवीं शती में हमें आँखों का चित्रण मिलता है, इनके वस्त्रों द्वारा मुगल प्रभाव भी चित्रित होता है।

6. अर्धनारीश्वर-मारवाड़ शैली प्राय: 18 वीं शती, Acc. No.204

इसमें एक चित्र में आधा स्त्री व आधा पुरूष का चित्रण हुआ है, जो अर्धनारीश्वर के समान है। हाथी है, हाथी पर हिरण के तरह का एक पशु चित्रित है, उस पर राजा एवं रानी विराजमान है। ऊपर सुन्दर-सुन्दर वृक्षों का चित्रित किया गया है, तथा एक तरफ नदी का चित्र भी बना है।

7. जोधपुर नरेश मानसिंह व चौरासी सिद्ध, राजस्थानी शैली 19 वीं शती BKB, Acc. No. 5362

इसमें राजा मानसिंह एक सिद्ध महात्मा के आगे हाथ जोड़कर खड़े है व चारों तरफ चौरासी सिद्ध महात्मा दिखाये गए हैं, महात्माओं के चित्रों के पास कुछ लिखा भी गया है, ये चित्र देखने में बहुत सादगीपूर्ण है।

8. महाराजा जोधपुर एवं रानी, जोधपुर 19 वीं शती ACC. No. 10690

राजा-रानी साथ में बैठे हुए हैं, व एक दूसरे को निहार रहे है, वृक्षों का चित्रण बहुत सुन्दरता से किया गया है, पक्षियों का चित्रण भी बहुत ही सुन्दर है। घोड़े पर सवार

अजीतसिंह का एक चित्र मिला है, यह चित्र बड़ौदा म्यूजियम एण्ड पिक्चर गैलरी संग्रह में है। इस पर लेख भी है। इस प्रकार का चित्र (दृश्य) जिसमें घुड़सवार राजा सेवकों के साथ जाता अंकित किया गया है, ये मुगल प्रभावित संयोजन था, जो राजस्थान में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। काल खंडालावाला, मोतीचन्द्र ने खजांची कैटलॉग में मारवाड़ शैली के अन्तर्गत चित्रों की सूची एवं कुछ चित्रों को प्रकाशित किया।[10] प्रकाशित चित्रों में अधिकांश की पहचान गलत थी, सभी चित्र मालवा शैली के है। कुं. संग्रामसिंह ने भी अपने निजी संग्रह के कैटलॉग में भी मारवाड़ के चित्रों का उल्लेख किया है।

नेशनल म्यूजियम नई दिल्ली, कुं. संग्राम सिंह जयपुर के व्यक्तिगत संग्रह एवं जोधपुर महाराजा के निजी संग्रह उम्मेदभवन में मारवाड़ शैली के अधिकांश चित्र है। एक अज्ञात राजा का रानी एवं सेविका के साथ चित्र है, यह चित्र उम्मेदभवन संग्रह में है। इलाहाबाद संग्रहालय में प्राय: 1750 ई. का मारवाड़ शैली का एक सुन्दर चित्र है, इसमें ऊँट पर सवार राजा रानी एवं उसकी प्रेमिका का चित्रण है। सिन्धु राग सत्रहवी सदी के अन्त का महत्वपूर्ण चित्र है इस चित्र पर मुगल शैली का गहरा प्रभाव है। तलवार चलाती, तीर चलाती, सांग से निशाना मारती आकृतियों की सफल मुद्राओं का चित्रण हुआ है।[11] जब हम मारवाड़ शैली पर मुगलों के प्रभाव की बात करते है। तो देखते है कि मारवाड़ के शासकों ने लगातार पांच-छ: पीढ़ी तक अपनी बेटियों का विवाह मुगल शाहजादों से किया तथा लम्बे समय तक मुगल दरबार में प्रमुख मनसबदार के पद पर रहे। इन सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप मारवाड़ के चित्रों पर मुगल चित्रों का गहरा प्रभाव स्पष्ट होता है।

बीकानेर व किशनगढ़ चित्र शैलियाँ भी पूरी तरह मुगल प्रभावित है। यद्यपि कुछ समान मुगल तत्व पूरे राठौर क्षेत्र (मारवाड़-बीकानेर-किशनगढ़) से स्पष्ट होते हैं। इसके बावजूद मारवाड़ शैली के मुगल तत्व बीकानेर के चित्रों से भिन्न प्रकार के है। मारवाड़ के चित्रों में वृक्ष, संयोजन, पसपेक्टिव की तकनीक आदि मुगल प्रभावित हैं, पर तेज रंग, वेशभूषा आदि पूरी तरह स्थानीय विशिष्टताओं के अन्तर्गत है, जबकि बीकानेर के चित्रों के हल्के सूफियाने रंग, नाजुक आकृतियों का बारीकी से अंकन आदि तत्वों पर अपेक्षाकृत अधिक गहरे से मुगल एवं दक्कनी प्रभाव है। जब हम प्रारम्भिक राजस्थानी शैली की बात करते है तो डॉ. रमन परिम ने 14 चित्रों की एक भागवत प्रकाशित की जो इसी वर्ष की है। चौरपंचासिका की परम्परा से जुड़े होने के बावजूद भी उससे मुक्त है। लेकिन 1578 ई. में अकबर द्वारा तथा 1679 ई. में औरंगजेब द्वारा जोधपुर के किले की लूट में चित्रों की महत्वपूर्ण सामग्री के नष्ट होने की भी पूरी संभावना है।[12] इसलिए अधिक चित्र नहीं मिल पाते। जब हम मुगल दरबार की बात करते हैं, तो मुगल दरबार में भी शाही चित्रकारों ने जोधपुर के राजाओं के चित्र बनाए। इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी के

संग्रह में मुगल चित्रकारों द्वारा बनाये राव जोधा एवं राजा उदयसिंह के चित्र है। अशोकदास ने जहाँगीरी चित्रकार बिसनदास द्वारा मारवाड़ के राजाओं के चित्र बनाने का उल्लेख किया।[13]

मारवाड़ शैली पूरी तरह मुगल प्रभावित थी। सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में मारवाड़ के दरबार से मिलने वाले चित्र मुगल चित्रों का ''प्रोटोटाइप'' है। अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में मारवाड़ शैली पर मुगल प्रभाव काफी बढ़ जाता है। धीरे-धीरे मुगल तत्वों पर मारवाड़ी तत्व हावी होते है। 1770 ई. के आस-पास बीकानेर से साहबद्दीन, हैबुद्दीप आदि चित्रकार मारवाड़ में स्थानान्तरिक होते है। जो मुगल एवं दकनी प्रभाव लिए हुए है। अठारहवीं सदी के आस-पास मुगल तत्वों से परे मारवाड़ के चित्रकारों के बहुत से तत्वों को बीकानेर के चित्रकारों ने अपनाया। भारी-भरकम पगड़ियाँ, घेरदार जाता, लम्बे ढोंको वाली पहाड़ियाँ, पुरूषों के मांसल कमनीय चेहरे आदि।

राव मालदेव, मारवाड़ का महत्वपूर्ण शासक था, इसने चित्रकला को प्रश्रय दिया, राजा मानसिंह ने भी मारवाड़ चित्रकला को फलनू फूलने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मारवाड़ शैली का प्रारम्भिक ज्ञात उदाहरण पाली ठिकाने से मिलने के अतिरिक्त अठारहवीं सदी के अत्यन्त महत्वपूर्ण लेखयुक्त चित्र मारवाड़ के घानेराव ठिकाने से मिलते रहे है। घानेराव ठिकाने से अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में चित्रकार 'छज्जू' व 'कृपाराम' की बनायी महत्वपूर्ण कृतियां मिलती है। घानेराव ठिकाने के चित्र प्रचुर संख्या में कुं. सग्रामसिंह जयपुर के संग्रह में है।

मारवाड़ के महावीर मंदिर में मिले सचित्र पट्ट को देखकर यह प्रमाणित होता है कि मारवाड़ एवं गुजरात दोनों ही प्रदेशों में एक साथ व्यापक स्तर पर एक ही शैली (अप्रभंश शैली) में जैन धर्मी चित्र बन रहे थे।[14] 16वीं सदी के अन्त एवं 17 वीं सदी के प्रारम्भ में गुजरात में प्राक् राजस्थान प्रकार की चित्र शैली के दो वर्ग दिखलाई पड़ते है। प्रथम वर्ग के चित्रों की शैली 1573 ई. के संग्रहणीयसूत्र से साम्य रखती है तथा दूसरे वर्ग के चित्रों की शैली 1587 के संग्रहणीय सूत्र के निकट है। इन दोनों वर्गों की शैली में अन्तर है। रागमाला की सम्पूर्ण सचित्र प्रति भारत कला भवन वाराणसी संग्रह में है। इसे सर्वप्रथम डॉ. आनन्द कृष्ण ने प्रकाशित किया। मारवाड़ शैली की प्रारम्भिक प्रति पाली रागमाला के वेगपूर्ण आकृतियाँ, कोणीयता, वस्त्र, विन्यास, चोरपंचारिका, परम्परा वाले कक्ष संयोजन आदि कला भवन रागमाला के अत्यन्त निकट है। अन्तत: मुगल प्रभाव देखे तो विट्ठलदास के जहांगीर के दरबार में रहने के कारण चित्रों पर जहांगीरी प्रभाव है। मुगल चित्रों के प्रभाव में ही राजस्थान में शबीह चित्र की परम्परा आरम्भ हुई। मारवाड़ चित्रशैली पर मुगल चित्र शैली का प्रभाव व मुगल चित्र शैली पर मारवाड़ चित्रशैली का अत्यधिक प्रभाव पड़ और मारवाड़ के जो भी चित्र उपलब्ध है वे उच्च कोटि के है। डॉ. हरमन गायट्स के अनुसार यह जयपुर शैली की जन्मदात्री रही है।

सन्दर्भ

1. *डे. उपेन्द्रनाथ, मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास, एक ऐतिहासिक विवेचना, परम्परा, भाग 49-50, 1979, पृ. सं. 62।*
2. *प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संग्रहीत सचित्र पोथियां, तिवारी, रघुनन्दन प्रसाद, भारतीय चित्रकला एवं उसके मूल तत्व, पृ. सं. 50*
3. *मोतीचन्द्र एवं शाह, यू.पी., न्यू डाक्यूमेंट ऑफ जैनपेंटिग, अहमदाबाद, 1975, पृ. सं. 10*
4. *गहलोत, सुखवीरसिंह, राजस्थान के इतिहास का तिथिक्रम, जयपुर, 1960, पृ. सं. 53, 57, 58*
5. *कृष्ण, चैतन्य, हिस्ट्री ऑफ इंडियन पेंटिग, राजस्थान ट्रेडीशन, दिल्ली, 1982, पृ. सं. 96*
6. *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द्र, जोधपुर राज्य का इतिहास, अजमेर, 1938, पृ.सं. 388-411*
7. *गोयट्स, हरमन, ''मारवाड़ स्कूल ऑफ पेंटिग'', बड़ौदा म्यूजियम बुलेटिन, वा. 5, 1947-48, पृ. सं. 43-53*
8. *कुमारस्वामी, ए.के. हिस्ट्री ऑफ इंडिया एण्ड इण्डोनेशिन आर्ट, लन्दन, 1927, फिगर 278*
9. *गांगुली, ओ.सी., क्रिटिकल कैटलॉग ऑफ मिनिएचर पेंटिग, इन द बड़ौदा म्यूजियम, बड़ौदा, 1961, पृ. सं. 67*
10. *खंडालावाला, कार्ल, मोतीचन्द्र एवं चन्द्र, प्रमोद, मिनिएचर पेंटिग, दिल्ली, 1960*
11. *एबलिंग क्लॉस, रागमाल पेंटिग, दिल्ली 1973, पृ. सं. 183*
12. *गांगुली, कल्याणकुमार, कल्चरल हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, दिल्ली, 1983, पृ.सं. 209*
13. *दास, अशोक, जहांगीर एलबम फोलियो, 226 बर्सिन*
14. *दोसी, सरयू, मास्टर पीसेज ऑफ जैन पेन्टिग, बम्बई, 1985 पृ. सं. 15*
15. *भारत कला भवन संग्रहालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संग्रहीत मारवाड़ी चित्रकला से सम्बन्धित चित्रों का अवलोकन किया।*

हाड़ौती धरा में वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव

डॉ. श्रीमती संगीता गुप्ता

राजस्थान की अपेक्षा हरी-भरी हाड़ौती की भौगोलिकता जहां इसे जीविकोपार्जन के साधन सुलभ कराती है वहीं इसे धर्मोन्मुख भी करती है। प्रागैतिहासकालीन कपिलधारा[1] के शैल चित्र हाड़ौती धरा में प्राचीन काल से बहती धार्मिक धारा क प्रतिमान है, 238-39 ई. के बड़वा यूप अभिलेख[2], 423 ई के गंगाधार अभिलेख[3] से प्राप्त साक्ष्य, 825-50 ई. के बीच निर्मित श्रीविष्णु मंदिर एवं श्रीनृसिंह अवतार की प्रतिमाऐं[4] हाड़ौती में वैष्णव धर्म के विकास की धारा प्रवाहित करती रही। श्रीवल्लभाचार्यजी द्वारा स्थापित वल्लभ सम्प्रदाय[5] की धारा हाड़ौती में स्थानीय तत्वों के साथ 17-18 वीं शताब्दी में जनप्रिय रही।

1671 ई. में कोटा राज्य में श्रीनाथजी[6] व 1684 ई. में बूंदी राज्य में वल्लभ सम्प्रदाय के प्रथम विग्रह श्रीमथुरेशजी[7] के आगमन के बाद हाड़ा राज्य में वल्लभ सम्प्रदाय सभी घटनाओं का केन्द्र बिन्दु बना रहा। आलोच्य काल में अनेक वैष्णव मंदिरों एवं वल्लभ सम्प्रदाय की हवेलियों का निर्माण हुआ। वल्लभ सम्प्रदाय की उपासना में राग, भोग एवं श्रृंगार की प्रधानता रही है। 1719 ई.8 में कोटा के महाराव भीमसिंहजी ने श्रीबृजनाथजी को तथा 1743 ई. में बूंदी के महाराव राजा उम्मेदसिंहजी ने श्रीरंगनाथजी[9] को अपना ईष्ट बना लिया तथा उनके दासरूप में राज्य पर शासन किया। अध्ययनकाल में हाड़ौती में प्रमुख उपासित प्रतिमाओं में बहुलता श्रीकृष्ण प्रतिमा की ही रही है जैसे श्रीसांवलाजी, श्रीजी, श्रीमधुसूदनजी, श्रीबृजनाथजी, श्रीगिरधारीजी, श्रीमथुरेशजी, श्रीकेशवजी, श्रीरंगनाथजी, श्रीचतुर्भुजजी, श्रीविष्णुजी। साधारण तौर पर वैष्णव धर्म में तांत्रिक प्रतिमाओं और क्रियाओं का कोई स्थान नहीं है पर स्थानीय विशेषताओं का प्रभाव के रूप में तांत्रिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जिसका सशक्त प्रमाण बूंदी से प्राप्त गजलक्ष्मी व कोटा के कोटड़ी ठिकाना में स्थित श्रीकृष्ण की तांत्रिक प्रतिमाऐं[10] अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

1669 ई. के औरंगजेब क धार्मिक आदेश[11] के बाद भी कहीं-कहीं शिखरयुक्त वैष्णव मंदिरों का निर्माण जारी रहा, साथ ही हवेलियों में स्थानान्तरित वल्लभ प्रतिमाए भी उपासित होती रहीं।

'महाराव भीमसिंहजी सदैव अपने साथ श्रीबृजनाथजी की प्रतिमा रखते थे, पर

दक्खन में हैदराबाद के निजाम से युद्ध क समय यह प्रतिमा युद्ध मैदान में ही रह गयी, जिन्हें हैदराबाद के निजाम ने हैदराबाद के ही एक सेठ द्वारिकानाथ व्यासजी को रखने की इजाजत दे दी। श्रीबृजनाथजी की प्रतिमा की अनुपस्थिति में महाराव अर्जुनसिंहजी ने श्रीगिरधारीजी की नवीन प्रतिमा श्रीबृजनाथजी मंदिर में प्रतिष्ठित करवायी। कालान्तर में महाराव दुर्जनसालजी के अथक प्रयत्नों से प्रतिमा को पुनः प्राप्त किया गया। जयपुर मुकाम पर पहुँचने पर सवाई जयसिंहजी ने श्रीबृजनाथजी प्रतिमा के साथ श्रीलक्ष्मीजी की प्रतिमा का विवाह करवा कर धार्मिक के साथ-साथ राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति की। महाराव दुर्जनसालजी स्वंय कोटा राजधानी से 25 कोस की दूरी पर श्रीबृजनाथजी के स्वागत के लिए आए। श्रीबृजनाथजी के कोटा रियासत आगमन क उपरान्त श्रीबृजनाथजी मंदिर में पूर्व में प्रतिष्ठित श्रीगिरधारीजी की प्रतिमा को गढ़ में ही हवेली सादृश्य नवीन मंदिर बनवाकर प्रतिष्ठित करवाया गया।'[12]

बूंदी राज्य में राव शत्रुसालजी ने भव्य केशव मंदिर का निर्माण प्राचीन महादेव मंदिर में करवाया[13]। राव भावसिंहजी के काल में केशव मंदिर गिराने हेतु औरंगजेब के आदेश पर शाही फौज आई परन्तु कुंवर कृष्णसिंहजी के विरोध स्वरूप मंदिर पूर्ण क्षतिग्रस्त होने से बच गया।[14] जिसे राव राजा बुद्धसिंहजी द्वारा जीर्णोद्धार करवाया गया व नवीन स्वर्ण कलश स्थापित किया गया।[15]

वल्लभ सम्प्रदाय को कोटा महाराव दुर्जनसालजी के समय मिला राज्याश्रय अतुलनीय है। उन्होंने वल्लभ सम्प्रदाय से संबंधित उत्सवों को मनाने की एक निश्चित विधि का निर्माण किया। उत्सव किस प्रकार का हो, शासन उसे किस प्रकार मनाये, सामन्त एवं दरबारी किस पोशाक में आये, किस प्रकार का दरीखाना लगाया जाये आदि सभी बातों का निर्धारण राजकीय आदेशों स किया। यह परम्परा राजस्थान के एकीकरण तक चलती रही।[16]

1741 ई. में नादिरशाह के आक्रमण के कुछ समय बाद महाराव दुर्जनसालजी ने नाथद्वारा में सप्तस्वरूप का एकत्रण करवाया[17], जो उनकी धार्मिक निष्ठा के साथ राजनीतिक सूझबूझ को भी दर्शाता है। महाराव दुर्जनसालजी के प्रयास से बूंदी राज्य में गुप्तरुप से उपासित श्रीमथुरेशजी की प्रतिमा का 1744 ई. में कोटा राज्य में आगमन हुआ।[18] 1746 ई. में महाराव दुर्जनसालजी द्वारा नाथद्वारा में आयोजित सम्मेलन में मेवाड के महाराणा जगतसिंहजी जयपुर के कुंवर माधोसिंहजी के साथ महाराव दुर्जनसालजी से मिलने आये।[19]

श्रीवल्लाभाचार्यजी ने प्रतिमा उपासना के साथ चित्र उपासना का भी प्रावधान किया। इसका प्रारम्भ कोटा चित्र शैली में 1640 ई. में चित्रित हस्तलिखित भागवत ग्रन्थ से माना जाता है।[20] चित्रोपासना पर समयानुकुल मेवाड़ व मुगल शैली के प्रभाव

परिलक्षित होते हैं। हमें शेरगढ़ के अर्जुनमहल, झाला झालिमसिंह की हवेली, तारागढ़ की रंगविलास चित्रशाला, झालावाड़ क मंगलगढ़ में अपार चित्रण मिलता है। चित्र उपासना प्रवृति ने जहां बूंदी व कोटा चित्रशैली को निखारा वहीं वातावरण को आध्यत्मिक व दार्शनिक भी बनाया। स्थानीय तत्वों से प्रेरित लीला मंचन उपासना[21] पद्धति में रूकमणि मंगल एवं ध्रुव मंगल हाडौती की ही देन है।

झालावाड़ रियासत में चार प्रतिमाऐं क्रमशः श्रीद्वारिकानाथजी, श्रीगोपीनाथजी, श्रीरामनिकजी एवं श्रीसंतनाथजी की मिली थी, जिन्हें क्रमशः श्रीद्वारिकाधीशजी व श्रीगोपीनाथजी वल्लभशैली मंदिर, श्रीरामनिकजी वैष्णवशैली मंदिर व श्रीसंतनाथजी जैनशैली मंदिर का निर्माण करवाकर प्रतिष्ठित किया गया।[22] 1806 ई. में श्रीद्वारिकाधीशजी को एवं वहाँ बाद में प्रतिष्ठित श्रीनवनीतप्रियाजी को राज्य स्वामी मान लिया गया यद्यपि झालवाड का रियासत का दर्जा 1838 ई. में मिला।[23]

हाड़ौती में वल्लभ सम्प्रदाय की सरल उपासना पद्धति ही वैष्णव धर्म का पर्याय बन गई। उपासना पद्धति की उत्सव आयोजन विधि ता हाड़ौती क जनमानस से इस भांति जुड़ी थी कि अगर हाड़ौतीवासी वैष्णव धर्म में आस्था नहीं भी रखता हो, तब भी वह आयोजित उत्सव में भाग ले अपने उल्लास को प्रकट करता था।

17-18वीं सदी में वल्लभ सम्प्रदाय के आवश्यकता अनुसार शिखरविहीन विशालकाय प्रांगण एवं सादगी की परम्परा युक्त हवेलीस्वरूप मंदिरों में उपास्य प्रतिमा की छवि को प्रमुखता दी गई। केशवरायपाटन क श्रीकेशव मंदिर, बारां के श्रीसांवला मंदिर एवं झालावाड़ के श्रीसूय मंदिर को छोड अन्य मंदिरों को देखें तो वे सभी शिखरविहीन एवं विशाल प्रांगणयुक्त है जिनमें चित्र उपासना हेतु वृहत स्तर पर चित्रण हुआ जैसे श्रीमथुरेश हवेली, श्रीब्रजनाथजी मंदिर, श्रीरंगनाथजी मंदिर, श्रीगिरधारीजी मंदिर इत्यादि जिनके अवाक्ष उपर प्रदर्शित हैं।

यद्यपि परिस्थितियोंजन्य हाड़ौती में हवेली मंदिर की स्थापना हुई परन्त धीरे-धीरे 17-18वीं सदी में केन्द्रीय व क्षेत्रीय शक्तियों के बीच धार्मिक आस्थाओं में विभेद हुआ जिससे पूर्व में बनने वाले नागर शैली के भव्य शिखरयुक्त मंदिरों जिनमें मण्डप व गर्भगृह, मंदिरप्रांगण में एक से अधिक देवप्रतिमाऐं, पौराणिक व धार्मिक आख्यानों युक्त उत्कीर्ण दीवारों वाली विशेषताओं के स्थान पर निज धर्म संरक्षण हेतु समकालीन शासकों ने कुलीन वर्ग के निवास स्थान सादृश्य हवेली मंदिरा का निर्माण करवाया। विशेषरूप से तोड़ेदार भव्य किले, सादृश्य प्रवेशद्धार, शिखरविहीन सपाट छत व दीवारें जो कि विशाल प्रांगण में स्थित थी। इन हवेलियों में मुख्य कक्ष के आस-पास व दाऐं-बाऐं समानान्तर कक्ष थे जिन्हें चित्रों स सुसज्जित किया जाता था।

संदर्भ

1. *डा. गिरिराज कुमार, हाड़ौती के शैलाश्रय-हाड़ौती का पुरातत्व, संपादक-गुप्ता भारद्वाज व जैन, वर्ष 1989 पृ. 23*
2. *डा. मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 1, वर्ष 1939, पृ.सं. 23*
3. *डा. बेनी गुप्ता, हिस्ट्री ऑफ द रिलीजन इन राजस्थान, 600-1200 ए.डी., वर्ष 1977, पृ. 48*
4. *डा. गोपीनाथ शर्मा, सोशल लाईफ इन मिडीवल राजस्थान, 1500-1800 ई., वर्ष 1968, पृ. 46*
5. *डा. बाबूलाल शर्मा, राजस्थान में कृष्ण भक्ति का सम्प्रदाय पुष्टि मार्ग-राजस्थान में धर्म, सम्प्रदाय व आस्थायें संपादक, डा. पेमाराम', वर्ष 2004, पृ. 31*
6. *डा. पेमाराम, मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आंदोलन, वर्ष 1977, पृ. 198-199*
7. *श्री कण्ठमणि शास्त्री, कांकरोली का इतिहास, वर्ष 1969, पृ. 171*
8. *दृष्टवय, कागजात संवत 1775 व 1776, राजकीय पुराभिलेखागार कोटा*
9. *डा. अरविन्द सक्सैना, बूंदी राज्य का इतिहास, वर्ष 1992, पृ. 227 व 241*
10. *श्री जोगेन्दर सक्सैना, बूंदी में प्राप्त कुछ दुर्लभ तांत्रिक प्रतिमाऐं - हाड़ौती का पुरातत्व, 'संपादक-गुप्ता भारद्वाज व जैन', वर्ष 1989, पृ. 66*
11. *डा. यदुनाथ सरकार, औरंगजेब भाग-3, वर्ष 1992, पृ. 303*
12. *दृष्टव्य, कागजात संवत 1801, राजकीय पुराभिलेखागार, कोटा*
13. *डा. जगदीश सिंह गहलोत, बूंदी का इतिहास, वर्ष 1960, पृ. 23*
14. *वही, पृ. 24*
15. *वही, पृ. 26*
16. *दृष्टव्य, कागजात संवत 1798, राजकीय पुराभिलेखागार, कोटा*
17. *डा. मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, वर्ष 1939, पृ. 404*
18. *वही, पृ. 407*
19. *दृष्टव्य, कागजात संवत 1801, राजकीय पुराभिलेखागार, कोटा*
20. *डा. जमनेश कुमार ओझा, मेवाड का इतिहास पृ.सं. 153 अप्रकाशित शोध प्रबंध'*
21. *माइलो सी बीच, राजपूत पेंटिग एट बूंदी एंड कोटा, वर्ष 1974, पृ. 9*
22. *डा. सोनकंवर हाड़ा, बूंदी राज्य की कला व संस्कृति का शास्त्रीय अध्ययन अप्रकाशित शोध प्रबंध, पृ. 291*
23. *डा. गदाधर भट्ट, सांस्कृतिक झालावाड़, वर्ष 2000, पृ. 12*
24. *डा. गदाधर भट्ट, सांस्कृतिक झालावाड़, वर्ष 2000, पृ. 16*

मालानी क्षेत्र के कृषक समाजों में सामुदायिकता एवं सहकारिता (सन् 1818 से 1947 तक)

शंकरसिंह पोटलिया

मालाणी मारवाड़ रियासत का पश्चिमी सीमान्त परगना था, जो अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण मारवाड़ रियासत के 'राठौड़ राजवंश का पालना' कहलाता था। ब्रिटिश सर्वोच्चता की कालावधि (1818 से 1947 ई. तक) में मालाणी क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन कृषि एवं कृषि सहायक क्रियाएं, जैसे-पशुपालन आदि ही थे। कृषि मुख्यत: भूमि एवं सिंचाई के साधनों की उपलब्धता पर निर्भर होती है। भूमि की पर्याप्त उपलब्धता के बावजूद दुर्भाग्य से इस क्षेत्र में भूमि का उपजाऊपन बहुत ही कम था तथा सिंचाई के साधनों का नितान्त अभाव था। सिंचाई के साधनों के अभाव में कृषि मानसून से होने वाली बारिश पर निर्भर थी। यही कारण है कि मालाणी क्षेत्र में आलोच्य कालावधि में सामान्यत: खरीफ की फसलों जैसे-बाजरा, ग्वार, मूंग, मोठ, तिल आदि की खेती ही की जाती थी। जिन्हें सावणू अथवा बरसालू फसलें कहा जाता था। पिछले 3-4 दशकों में सरकारी एवं निजी प्रयासों से इस क्षेत्र में सिंचाई के कुछ साधनों जैसे-कुओं (बेरों) तथा नहरों आदि का विकास होने से खरीफ के साथ-साथ रबी की फसलों की खेती भी की जाने लगी है। इस क्षेत्र की प्रमुख कृषक जातियां जाट, बिश्नोई, कलबी, रेबारी आदि थी। इस शोध-पत्र में इन्हीं जातियों में पायी जाने वाली सामुदायिकता व सहकारिता की भावना का आलोच्य अवधि के सन्दर्भ में ऐतिहासिक विश्लेषण करने का प्रयास किया जायेगा।

मालाणी क्षेत्र की राजनीतिक व कृषिगत परिस्थितियां

राजस्थान राज्य के वर्तमान बाड़मेर जिले का अधिकांश भाग मध्यकाल में लगभग 14वीं शताब्दी से लेकर देश की स्वतंत्रता के समय तक 'मालाणी' नाम से जाना जाता था। इस खेत्र का यह नामकरण इसी इलाके के 14वीं सदी के एक राठौड़ सरदार एवं सन्त श्री मल्लिनाथ के नाम पर हुआ था।[1] मध्यकाल में मालाणी क्षेत्र मारवाड़ रियासत के कभी पूर्ण अधीन तो कभी आंशिक अधीन एक परगना हुआ करता था। सन् 1818 ई. में जब जोधपुर राज्य तथा ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मध्य सहायक सन्धि हुई तब मालाणी क्षेत्र को भी जोधपुर राज्य का ही भाग मान लिया गया था। इस प्रकार राजस्थान की अन्य रियासतों के साथ-साथ जोधपुर राज्य तथा मालाणी क्षेत्र पर भी

ब्रिटिश सर्वोच्चता स्थापित हो गई। सन् 1947 में देश को आजादी मिलने के साथ ही अन्य देशी रियासतों की भांति जोधपुर राज्य पर से भी ब्रिटिश सर्वोच्चता समाप्त हो गई। सन् 1949 ई. में जोधपुर रियासत संयुक्त राजस्थान के साथ एकीकृत कर दी गई। तदुपरान्त मालाणी क्षेत्र को जोधपुर से अलग करके राजस्थान का एक जिला बना दिया गया।

1818 से 1947 तक की समयावधि में मालाणी क्षेत्र के कृषक समाजों की सामाजिक स्थिति राजस्थान की अन्य रियासतों तथा मारवाड़ के अन्य परगनों के कृषक समाजों की सामाजिक स्थिति से कुछ भिन्न थी। इस क्षेत्र के कृषक समाजों की विशिष्ट सामाजिक स्थिति का एक उत्कृष्ट नमूना उनमें पायी जाने वाली सामुदायिकता एवं सहकारिता की भावना थी। इसके अनेकानेक दृष्टान्त मालाणी क्षेत्र के कृषक समाजों के दैनिक जीवन में आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। इन समाजों की अधिकांश कृषि एवं गैर-कृषि गतिविधियां आस-पड़ोसियों, सगे-संबंधियों एवं रिश्तेदारों द्वारा मिल-जुलकर सामुदायिक तथा सहकार की भावना से सम्पन्न की जाती थी। कृषक एवं गैर कृषक समुदायों जैसे कुम्हार, लौहार, सुथार, नाई आदि के मध्य आपसी सम्बन्ध भी घनिष्ठ तथा प्रगाढ़ थे। जहां कृषक समुदाय इनके खाद्यान्न सम्बन्धी आवश्यकता पूरी करते थे, वहीं ये समुदाय कृषकों को अपने द्वारा उत्पादित वस्तुएं एवं सेवाएं उपलब्ध करवाते थे।[2]

लाह एवं बड़िया प्रणाली

मालाणी क्षेत्र में भूमि की पर्याप्त उपलब्धता के कारण इस क्षेत्र का एक साधारण किसान परिवार भी लगभग 40 से 50 बीघा खेत में अलग-अलग फसलों की खेती करता था। इतने बड़े खेत में एक परिवार के सदस्यों द्वारा सूड़ (बुवाई से पहले की जाने खेत की सफाई), बुवाई, निदाण (खरपतवार निकालना), खूंटाई (बाजरी के सिट्टे निकालना), लाटा लाटना तथा कटाई जैसे कार्य करने में बहुत मुश्किल होती थी। इन सब कार्यों के लिए मजदूर भी उपलब्ध नहीं थे क्योंकि अव्वल तो इस क्षेत्र में भूमिहीन खेत-मजदूरों का नितान्त अभाव था। दूसरा स्वयं का खेत होते हुए भी दूसरे किसान के खेत में मजदूरी करना, यहां शर्म एवं लज्जा की बात मानी जाती थी। ऐसी स्थिति में कई किसान मिल-जुलकर खेती की उपर्युक्त गतिविधियां सम्पन्न करते थे। इस प्रकार मिल-जुलकर सामुदायिक सहकारी रूप से खेती करने के मुख्यत: 2 तरीके प्रचलित थे। पहली लाह प्रणाली व दूसरा बड़िया प्रणाली।

बड़िया प्रणाली खेती एवं पशुपालन के उन कार्यों में प्रचलित थी जिसमें अपेक्षाकृत कम लोगों की आवश्यकता होती थी, जैसे-सूड़ करना, खेत जोतना, लाटा लाटना, पशुओं की ऊन उतारना आदि। बड़िया प्रणाली में लगभग 5 से 10 किसान, जिनके खेत लगभग आस-पास हुआ करते थे, मिल-जुलकर बारी-बारी से एक-दूसरे

के खेतों में कार्य किया करते थे। बारी-बारी से काम करने वाले इन किसानों को बड़िया कहा जाता था। उदाहरणार्थ-यदि 5 किसान बड़िये के रूप में कार्य करते हैं तो वे पहले दिन पांचों एक साथ किसी एक किसान के खेत में काम करेंगे, फिर दूसरे दिन सभी पांचों दूसरे किसान के खेत में तथा फिर इस प्रकार पांचों दिनों तक एक-एक दिन पांचों के खेतों में काम करेंगे। इस प्रकार मिल-जुलकर कार्य करने से कार्य जल्दी पूरा हो जाता था। हल जोतने के लिए बड़िये के रूप में कार्य करने वाले किसान अपना-अपना ऊंट तथा हल साथ लेकर आते थे। बड़ियों के खाने तथा ऊंटों के लिए चारे-पानी की व्यवस्था उस किसान को करनी पड़ती थी, जिसके खेत में बड़िये कार्य करते थे। वास्तविकता में बड़िया प्रणाली मजदूरी का ही एक ऐसा रूप थी, जिसमें किसी खेत में काम करने वाले दूसरे किसान को वापस उसी के खेत में काम करके रकम-दिवस के रूप में मजदूरी चुकायी जाती थी।

मालाणी क्षेत्र में सामुदायिक एवं सहकार की भावना से खेती करने का सर्वाधिक प्रचलित तरीका लाह की परम्परा थी। यह परम्परा मालाणी क्षेत्र के साथ-साथ लगभग सम्पूर्ण मारवाड़ रियासत में प्रचलित थी। लाह को ल्हास, ला, लास आदि नामों से भी पुकारा जाता था। सीतारामजी लालस द्वारा सम्पादित राजस्थानी हिन्दी शब्दकोश में लाह का अर्थ सामूहिक एवं समुदाय की भावना से कार्य करना बताया गया है। लाह का आयोजन केवल एक दिन के लिए किया जाता था। जिस परिवार के खेत में निदाण, खूंटाई अथवा कटाई करनी हो उस परिवार का मुखिया आस-पड़ोस के किसानों की लाह बुलवाता था। लाह में आने वाले किसानों को लासिया, लाहिया तथा लाह का आयोजन करने वाले किसान को अजीत कहा जाता था। लासियों की संख्या काम के अनुसार 10-20 से लेकर 80-100 तक हुआ करती थी। लाह भी कई प्रकार की होती थी जैसे भलाऊ लाह, उठाऊ लाह, सगा लाह, सिरोळी लाह आदि।[3]

खेती के काम के लिए जब केवल सगे-सम्बन्धियों एवं रिश्तेदारों की लाह बुलाई जाती थी, तो उसे सगा अथवा हगा लाह बोला जाता था। जब खेत का मालिक अपने खेत में काम करवाने के लिए किसी अन्य किसान सामान्यत: अपने किसी रिश्तेदार के माध्यम से लाह बुलवाता था तो उसे भलाऊ कहा जाता था। उठाऊ लाह में सभी लासियों को व्यक्तिगत रूप से नहीं बुलाया जाता था, अपितु जिन लासियों को बुलाया जाता वे अपने साथ 2-4 अन्य किसानों को भी लाह में ले आते थे अथवा किसान स्वयं ही लाह की खबर सुनकर आ जाते थे। बिन बुलाये लाह में आने वाले किसान को लपासिया कहा जाता था। जब 2-3 किसानों के खेत आसपास होते थे तो वे दोनों अथवा तीनों किसान मिलकर लाह बुलाते थे, इसे सिरोळी लाह कहते थे। लाह में आने वाले सभी किसान खेती के कार्य में प्रयोग होने वाले आवश्यक उपकरण, जैसे-सूड़ करने के लिए कुल्हाड़ी, निदान करने के लिए 'कइ', खूंटाई एवं कटाई करने के लिए दातिया

(हंसिया) आदि स्वयं अपने साथ लेकर आते थे। लाह बुलाने वाला किसान परिवार लाह में आने वाले लासियों की बहुत अच्छे तरीके से सेवा-चाकरी एवं खातिरदारी करता था। लासियों को बाजरे की रोटी के साथ घी, गुड़ एवं स्थानीय साक-सब्जी परोसकर बहुत अच्छा भोजन करवाया जाता था।

दरअसल, लाह एक इकाई के रूप में कार्य करती थी। सभी लासिये कतारबद्ध रूप से एक साथ चलकर धार्मिक व सामाजिक सन्देश देने वाले तथा कौतुहल पैदा करने वाले लोकगीत गाते हुए नियत कार्य करते थे।[4] ये लोकगीत स्थानीय भाषा में भणत अथवा भिणत कहलाते थे। भणतें लाह की प्राण तत्व होती थी। भणत गाते हुए काम करने से लासियों की श्रमशक्ति कई गुना बढ़ जाती थी। भणत के शोर से उनकी थकावट दूर हो जाती थी तथा उनके शरीर में नई ऊर्जा तथा नए जोश का संचार हो जाता था। भणतें शक्ति देने के साथ-साथ लासियों का मनोरंजन भी करती थी तथा कुछ भणतें धार्मिक व सामाजिक सन्देश भी देती थी। धार्मिक भणतें स्थानी लोक देवताओं को समर्पित होती थी, जैसे-गोगाजी की भणत में गोगाजी का गुणगान किया गया है। सामाजिक सन्देश देने वाली भणतों में अमलिड़ो व समईयो भणत प्रमुख है। कुछ भणतें कौतुक प्रधान होती है, जिसमें आमोद-प्रमोद, हंसी-मजाक व बेतुकी बातों से लासिये स्वयं का मनोरंजन करते हैं। 'डोकरियो' इसी प्रकार की एक भणत थी। महिलाओं की भणतें सामान्यत: अपने ससुराल के गांव के किसी खेत में काम करते हुए अपने भाई को याद करने वाली होती थी। कुछ भणतों में स्थानीय पालतू पशुओं जैसे ऊंट आदि का गुणगान किया जाता था। मालाणी क्षेत्र के कृषक समाजों में सामुदायिकता एवं सहकारिता के उपर्युक्त लगभग सभी दृष्टांत न्यूनाधिक बदलावों के साथ आज भी जारी है। इस क्षेत्र की विशिष्ट भौगोलिक, राजनीतिक एवं कृषिगत परिस्थितियों ने यहां विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया, जो परस्पर सहयोग व सौहार्द तथा खेतीबाड़ी व पशुपालन के साथ-साथ स्वयं के रहने के लिए झूंपे बनाने पशुओं के लिए बाड़ा बनाने, खेत के चारों ओर बाड़ लगाने जैसे कार्य भी मिल-जुल कर ही किया करते थे।

सन्दर्भ

1. *नगर, महेन्द्रसिंह, राड़धरा के जैतमालोत राठौड़ों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, जोधपुर, 2012, पृ. 15*
2. *भाटी, डॉ. हुकमसिंह, मारवाड़ के ठिकानों की पुरालेखीय सम्पदा, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, 2002, पृ. 14*
3. *जैन, भुवनेश, ओरण हमारा जीवन, सोसायटी टू अपलिफ्ट रूरल इकोनोमी (श्योर), बाड़मेर, 2005, पृ. 96*
4. *वही, पृ. 97*

अठारहवीं शताब्दी के मारवाड़ के इतिहास में धायभाई (मुत्सद्दियों) की भूमिका

अजय शंकर

भारतीय संस्कृति में 'धाय' अर्थात 'धात्री' को माता के समान आदर दिया गया है। मेवाड़ की पन्नाधाय का बलिदान जगत प्रसिद्ध है। मारवाड़ राजघराने में 'धाय माता' के साथ-साथ 'धाय-भाई' को भी समुचित सम्मान दिये जाने की परंपरा स्थापित हुई। समकालीन ऐतिहासिक स्रोतों में जिन धायभाइयों का उल्लेख मिलता हैं उनमें धायभाई जग्गू, शिंभुदान, देवकरण, रामकिसन, परतापकरण एवं भेरूदान आदि ने मारवाड़ रियासत में विभिन्न पदों पर रहते हुए राजा-प्रजा की सेवा की। रामसिंह के धायभाई देवकरण ने बिना किसी पद पर रहते हुए भी राजपरिवार के सच्चे हितैषी की भूमिका निभाई। महाराजा विजयसिंह के समय में धायभाई जग्गू जी ने समय-समय पर विभिन्न उपद्रवी सामन्तों, सरदारों और ठाकुरों को साम दाम-दण्ड-भेद नीति अपनाकर नियंत्रण में किया। धायभाय जग्गू ने किसी भी सैन्य पदाधिकारी के ओहदे पर नहीं रहते हुए भी उसी प्रकार सैन्य अभियानों का संचालन किया जैसे कोई युवराज कुमार या महासेनापति कर पाता। महाराजा विजयसिंह ने जगनाथ के पुत्र सिंभुदान (धायभाई) को 'किलेदार' और 'मुसाहिब' (प्रमुख सलाहकार) पदों पर नियुक्ति प्रदान की। धायभाई सिंभुदान ने महाराजा विजयसिंह और महाराजा भीमसिंह दोनों के शासनकाल में 1792 ई. से 1809 ई. तक अपनी कुशल सलाह प्रदान की। महाराज भीमसिंह ने धायभाई रामकिसन और धायभाई सिंभुदान दोनों को प्रशासनिक निर्णयों एवं राजनीतिक अभियानों में सहभागी बनाया। इसी प्रकार धायभाई देवकरण ने मादा उष्ट्रशाला विभाग और धायभाई प्रतापकरण ने सुतरखाना दारोगा (उष्ट्रशाला अधिकारी) के रूप में मारवाड़ के डाक विभाग और सैन्य संगठन में सहायता प्रदान की। धायभाई देवकरण (द्वितीय) उसके पिता खींची सुरता दोनों ने गढ़ जोधपुर किलेदार के रूप में अपनी सेवाएं प्रदान की।

भारतीय संस्कृति में 'जननी' के साथ ही 'धात्री' को भी सम्मान भाव से निरूपित किया गया है। 'धात्री को लोकजीवन में 'धाय' नाम से भी जाना जाता है। राजघरानों में भी 'धाय' को समुचित आदर दिया जाता रहा है। हम इतिहास के 'पन्नाधाय (मेवाड़ को साक्षात् त्यागमूर्ति के रूप में पढ़ते हैं। धाय उस स्त्री को कहा जाता है जिसने भावी शासक की बाल्यावस्था में पुत्रवत् लालन-पालन किया हो और स्तनपान करवाया

हो।[1] इस प्रकार धाय के दूध का ऋण उन राजपुत्रों के हिस्से में आ जाता है। वे 'धाय माता' को पूर्ण सम्मान प्रदान करते थे। मारवाड़ के राठौड़ राजवंश में गौरां धाय का उल्लेखनीय स्थान है। शासकों ने उनके नाम पर गौरां धाय की बावड़ी एवं एक स्मारक छत्री का भी निर्माण करवाया।[2] मारवाड़ राजघरानले के शासकों ने धाय माता के पुत्रों को भी 'धाय भाई' की पदवी देकर उनके साथी आत्मीय व्यवहार बनाये रखा। विभिन्न ख्यात ग्रन्थों एवं बहियों में समकालीन शासकों एवं धायभाइयों के मध्य मधुर संबंधों की प्रकीर्ण संदर्भ सूत्रावली मिलती है। इनमें धायभाई जग्गू, सिंभुदान, देवकरण, रामकिसन, परक्षापकरण एवं भैरूदान आदि धायभाइयों को शासकों ने प्रशासिनक अधिकारी बनाया।

महाराजा रामसिंह ने 13 जुलाई 1749 ई. को राजसिंहासन संभाला। उन्होंने धायभाई देवकरण को पचास हजार रुपये आमदनी वाली जागीर का पट्टा हाथी-घोड़े, पालकी, सोने चांदी की मूठ जड़ी हुई तलवार, मोतियों की कंठी माला किलंगी-सिरपेच आदि प्रदान किया, साथ ही 'ऊठण-बैठण रो कुरब' तथा 'सिरोपाव' जैसे पारंपरिक सम्मान भी प्रदान किये।[3] धायभाई देवकर ने बड़ी गहराई से अनुभव किया कि महाराजा रामसिंह के प्रति सरदारों का व्यवहार अनुकूल नहीं रहा। जब बीकानेर महाराजा गजसिंह के सहयोग से नागौर महाराजा बख्तसिंह ने रामसिंह से जोधपुर हस्तगत करने के लिए आक्रमण किया जब धायभाई देवकरण ने पहले तो खूब बचाव कार्य किया परंतु अंतत: स्थिति बिगड़ते देखकर रामसिंह जी की माता नरूकी रानी के साथ गंभीर विचार विमर्श कर गढ़ का भार महाराजा बख्तसिंह को संभलवाया।[4] धायभाई ने विभिन्न सरदारों ने भी सलाह मशवरा देकर मारवाड़ के राजघराने का भारी गृहयुद्ध से बचाने के लिए यह कदम उठाया था। कतिपय विद्वानों की मान्यता है कि उसे अपने पक्ष में करने के लिए बख्तसिंह ने धायभाई को 'मुसाहिब' (प्रधान सलाहकार) का पद देने का प्रलोभन दिया होगा। वस्तुत: धायभाई देवकरण को बख्तसिंह ने केवल 'ऊठण-बैठण रो कुरब' सम्मान ही प्रदान किया। कांलातर में धायभई ने वि.सं. 1808 (1751 ई.) में जोधपुर छोड़ दिया।''[5] इस प्रकार स्पष्ट है कि धायभाई के रूप में देवकरण एक पारिवारिक सलाहकार अवश्य रहे परंतु उनको किसी ओहदे की ललक नहीं थी।

आगे चलकर महाराजा विजयसिंह के शासनकाल में खाटू के ठिकाने के जोधा राठौड़ों ने सत्ताविरोधी प्रयत्न किये तब भी 'मुसाहिब' गोरधन खींची के परामर्शानुसार धायभाई जग्गू ने अपनी चतुराई और योजना से उपद्रवियों को दण्डित कर खाटू पर अधिकार कर लिया था। महाराजा के विरोध करने वाले पोकरण, आसोप और रास आदि ठिकानों के ठाकुरों (1760 ई.) में को बन्दी बनाने में भी धायभाई जग्गू की अग्रणी भूमिका रही।[6] धायभाई जगनी ने नींबाज ठाकुर कल्याणसिंह के स्वर्गवास उपरांत पट्टेदारी संबंधी राजनीतिक हलचलें बढ़ गई। विभिन्न सरदारों ने दीवान फतहसिंह

सिंघवी की वार्ता से नकारते हुए कहा कि यदि धायभाई जगजी यहां (बखतसागर) आकर हमें वचन प्रदान करें तो हम जोधपुर की हवेलियों में आएंगे। धायभाई जगजी ने उन सबको समझा-बुझाकर उनको महाराजा के पक्ष में कर लिया।[7] खाटू अभियान के दौरान धायभाई जगजी ने अनूठी प्रशासनिक कुशलता का परिचय दिया।[8]

जब महाराजा विजयसिंह के स्वयं द्वारा भी उपद्रवी सरदार संतुष्ट नहीं हुए तब 1760 ई. में स्वामी आत्माराम के स्वर्गलोक होने के अवसर पर धायभाई जगजी ने अपने सूझबूझ से रास, आसोप, पाल, पोकरण एवं अन्य गुटबंदी करने वाले ठाकुरों को बन्दी बनवा लिया।[9] जगजी धायभाई ने महाराजा रामसिंह के विरोधी सरदारों को समझाने के लिए मेड़ता अभियान किया जहां उन्होंने छोटे-बड़े 30 विवादों का निस्तारण किया।[10] इसी प्रकार मारवाड़ में चांपावतों के उपद्रव को शांत करने में भी धायभाई की सराहनीय भूमिका रही।[11] धीरे-धीरे धायभाई जगजी का वर्चस्व बढ़ता चला गया। बल्लूजी जोशी और मोहणोत सुरतराम आदि अनय ओहदेरारों ने धायभाई जगजी की उप-पत्नी (खवास) और अन्य खर्चों की विगत के साथ चुगलियां खाई फलस्वरूप महाराजा ने धायभाई को बुलाकर सारी अतिरिक्त सुविधाएं वापस ले ली।[12]

जब महाराजा विजयसिंह विवाह के लिए बूंदी पधारे तब उनके साथ धायभाई जगजी भी थे। जगजी के रथ के ठाटबाठ को देखकर बूंदी के लोगों ने भ्रमवश धायभाई को ही महाराजा समझ लिया। इन सभी घटनाओं के पश्चात् महाराजा ने धायभाई के व्यय पर रोकथाम लगाकर उससे संपर्क तोड़ लिया।[13] अपनी फिजूलखर्ची पर पश्चाताप करते हुए जुलाई 1764 में धायभाई स्वर्गवासी हुए। इस प्रकार धायभाई जगजी ने प्रशासनिक अधिकारी नहीं रहते हुए भी उल्लेखनीय ओहदेदारी निभाई।

महाराजा विजयसिंह के शासनकाल में 1791-1793 ई. में धायभाई सिंभुदान का उल्लेख मिलता है। ओहदाबही में धायभाई सिंभुदान को वि.सं. 1849 (1792 ई.) में 'किलेदार' बनाये जाने का संदर्भ मिलता है।[14] जिस समय महाराजा विजयसिंह रूठे हुए ठिकानेदारों को मनाने के लिए दिगाड़ी गांव गये, तब पीछे से भीमसिंह ने गढ़ पर अधिकार कर लिया। ऐसी नाजुक स्थिति में विजयसिंह ने किले में स्थित ठिकानेदारों को समझाने के लिए धायभाई सिंभुदान को ही भेजा।[15] इससे स्पष्ट होता है कि धायभाइयों के प्रति महाराजा कितने अधिक आश्वस्त रहे। ओहदाबही में उल्लेख है कि महाराजा ने जगनाथ के पुत्र सिंभुदान को वैशाख पूर्णिमा 1849 वि.सं. के दिन 'मुसाहिब' (राजा का मुख्य सलाहकार) पद पर नियुक्त किया।[16] इसी प्रकार धायभाई सिंभुदान ने महाराजा विजयसिंह के स्वर्गवास उपरांत भीमसिंह के राज्यारोहण से लेकर भीमसिंह की मृत्यु (1803 ई.) तक राज्य को अपनी बेहतर सेवाएं प्रदान की।[17]

महाराजा भीमसिंह ने सिंहासनारूढ़ होने पर धायभाई रामकिसन को भी सम्मान

प्रदान किया।[18] धायभाई रामकिसन ने भी राज्य के लिए सेवा करते हुए महाराजा भीमसिंह के राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। देवीसिंह मेड़तिया नीबोद को वि.सं. 1852 में लिखे एक पत्र से पता चलता है कि धायभाई रामकिसन विभिन्न परगनों के प्रबंध के लिए सक्रिय रहता था। इस पत्र में धायभाई ने देवीसिंह को दौलतपुर क्षेत्र की विशेष व्यवस्था के लिए महाराजा की तरफ से खुशी अभिव्यक्त की।[19] महाराजा भीमसिंह के स्वर्गवास (1803 ई.) के उपरांत धायभाई सिंभुदान और धायभाई रामकिसन की उपस्थिति में गढ़ के कारखानों (विभागों) एवं कोठारों (भण्डारों) के बन्दोबस्त हेतु राजकीय मोहरें लगाई गई।[20] इस प्रकार मारवाड़ के राजघराने में विभिन्न राजपुत्रों के धायभाइयों ने परस्पर सौहार्दभाव से कार्य किया।

'मारवाड़ री ख्यात' में धायभाई रामकिसन की उल्लेखनीय सेवाओं का विवरण मिलता है।[21] इसी ख्यात में धायभाई भेरूदान का भी नामोल्लेख है।[22] ओहदाबही और ख्यात ग्रंथों में धायभाई देवकरण और परतापकरण के उल्लेख भी हैं।

जहां महाराजा रामसिंह के राज्यारोहण (जुलाई 1749) के समय धायभाई देवकरण को सम्मान दिया गया, वहीं पर ओहदाबही में मादा उष्ट्रशाला के अधिकारी पद पर धायभाई देवकरण को पोष सुदी षष्ठी विक्रमी संवत् 1895 (1838 ई.) के दिन नियुक्ति का उल्लेख मिलता है।[23] इस प्रकार यह देवकरण द्वितीय है। मारवाड़ राज्य के लिए 'सांडियां रे कारखाना दरोगा' का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। क्योंकि ऊंट ही मरुभूमि का सार्थक वाहन रहा। ओहदाबही में ही पौश एकादशी वि.सं. 1895 (1838 ई.) के दिन धायभाई देवकरण एवं मुहता बछराज को 'गढ जोधपुर किलादार' पद पर नियुक्ति का उल्लेख है।[24] धायभाई देवकरण के पिता खीची सुरता स्वयं 1855 वि.सं. में किलेदार रह चुके थे।[25] इस प्रकार मारवाड़ के इतिहास में दो अलग-अलग धायभाई देवकरण हुए हैं। इसी प्रकार मारवाड़ के शासकों ने धायभाई परतापकरण को भादवा वद बीज वि.सं. 1880 के दिन सुतरखाना दरोगा (उष्ट्रशाला का मुख्य अधिकारी) पद पर नियुक्त किया।[26] कहा जा सकता है कि मारवाड़ के राजघराने में समय-समय पर धायभाइयों ने अलग-अलग महत्वपूर्ण पदों पर सेवाएं प्रदान कर अपने चारित्रिक बल के प्रभाव और सूझबूझ भरी कूटनीतिक सलाह मशविरा द्वारा मारवाड़ के प्रशासनिक संगठन में अहम् भूमिका निभाई है। इसी प्रकार डॉ. जितेन्द्रसिंह भाटी ने ठीक ही लिखा है कि बिना पद पर रहते हुए भी उनका प्रभाव शासक पर रहता था।[27]

समग्रत: कहना ही होगा कि मारवाड़ के इतिहास में मुत्सद्दियों की भूमिका का अध्ययन करते समय धायभाइयों की भूमिका को भी ध्यान में रखना अनिवार्य है। इतना ही नहीं, बल्कि मारवाड़ के इतिहास में धायभाइयों की भूमिका पर और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता भी अनुभव की जा सकती है।

सन्दर्भ

1. *भाटी, डॉ. जितेन्द्रसिंह, राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था, राजस्थानी ग्रन्थागार, 2011, पृ. 126*
2. *भाटी, डॉ. विक्रमसिंह (सं.), मुरारीदान की ख्यात, रॉयल पब्लिकेशन्स, जोधपुर, 2014, पृ. 274*
3. *भाटी, डॉ. हुकमसिंह (सं.), राठौड़ां री ख्यात (द्वितीय खंड), राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर, 2007, पृ. 487*
4. *भाटी, डॉ. हुकमसिंह, राठौड़ां री ख्यात (द्वितीय खंड), पृ. 510-511*
5. *वही, पृ. 517*
6. *भाटी, डॉ. जितेन्द्रसिंह, वही, पृ. 126*
7. *भाटी, डॉ. विक्रमसिंह, मुंदियाड़ा री ख्यात, इतिहास अनुसंधान संस्थान, चौपासनी, 2005, पृ. 266-267*
8. *भाटी, डॉ. हुकमसिंह, राठौड़ां री ख्यात, तृतीय खंड, पृ. 546-549*
9. *वही, पृ. 556-559*
10. *वही, पृ. 564-565*
11. *वही, पृ. 571-575*
12. *वही, पृ. 578-579*
13. *भाटी, डॉ. जितेन्द्रसिंह, वही, पृ. 127*
14. *भाटी, डॉ. हुकमसिंह, मारवाड़ के ओहदेदारों का इतिहास में योगदान, पृ. 109*
15. *वही, पृ. 128*
16. *ओहदाबही संख्या 1, राज.रा.अभि. बीकानेर, ग्रंथ 220, पृ. 2*
17. *भाटी, डॉ. हुकमसिंह, राठौड़ां री ख्यात, तृतीय खंड, पृ. 656, 663 एवं 687*
18. *वही, पृ. 672*
19. *भाटी, डॉ. हुकमसिंह, मारवाड़ के ओहदेदारों का इतिहास में योगदान, पृ. 380*
20. *भाटी, डॉ. हुकमसिंह, राठौड़ां री ख्यात, तृतीय खंड, पृ. 687*
21. *मारवाड़ री ख्यात (संपा.) डॉ. हुकमसिंह भाटी, राज. शोध सं. चौपासनी, पृ. 134, 136, 138*
22. *मारवाड़ री ख्यात, वही, पृ. 157*
23. *भाटी, डॉ. हुकमसिंह, मारवाड़ के ओहदेदारों का इतिहास में योगदान, पृ. 270*
24. *वही, पृ. 257*
25. *वही, पृ. 109*
26. *वही, पृ. 271*
27. *भाटी, डॉ. जितेन्द्रसिंह, वही, पृ. 127*

 ISSN 2321-1288

मारवाड़ के स्वतंत्रता सेनानी स्व. श्री उदयराज पुरोहित

डॉ. तेजेन्द्र वल्लभ एवं मुनीराज

उदयराज पुरोहित का जन्म 17 अगस्त 1907 में जोधपुर में हुआ था। आपके पिताजी का नाम स्व. श्री आनन्दी लाल जी पुरोहित व माताजी का नाम श्रीमती पांचीबाई था। आपके पूर्वज मेडमे वाले पुरोहित थे। आपके पिताजी मारोठ में हवलदार के पद पर कार्यरत थे। आपके पिताजी का मेड़ता सिटी में एक पुस्तेनी मकान सिपाहियों के मौहल्ले में था। मुंगफली के खेत थे जो जागीरदारी प्रथा समाप्त होने पर जब्त हो गये थे। आपके पिताजी का छोटी उम्र में ही प्लेग महामारी से स्वर्गवास हो गया था। तब आपके पीछे 3 पुत्र व पत्नी थी। आपकी उम्र उस समय 9 वर्ष की थी व छोटे भाई जुगलराज पुरोहित की उम्र 7 वर्ष की थी व सबसे छोटे भाई पुखराज पुरोहित की उम्र 5 वर्ष की थी। इनके दो मामा थे, भोलाराम व्यास व रूपराम व्यास। दोनों शादी शुदा नहीं थे। दोनों का कामकाज ब्याज-बट्टा, मणिहारी आदि से होता था। विनायक राव फाठक (जो जसवन्त सराय में रहते थे व रेलवे में अच्छे पद पर कार्य करते थे) उनकी पत्नी का देहावासन कम उम्र में ही हो गया था। आप उनके घर में कामदार की हैसियत से रहते थे। घर का सारा कामकाज आपके जुम्मे था। दोनों मामा ने अपने तीनों भानजों व बहिन का लालन-पालन के लिये अपने घर छोटी चतानियों की गली में रहने लग गये थे। तब उदयराज सन् 1927 में दसवी पास की तब विनायक राव ने उन्हें जोधपुर-बीकानेर रेलवे में अस्थायी बाबु के रूप में 35/- माहवारी में रख लिया था। इसके अलावा आप छोटे बच्चों को पढ़ाने का भी कार्य करते थे। नौकरी लगने के बाद अपने माताजी व दोनों भाईयों के साथ रहने लगे। दोनों छोटे भाईयों को पढ़ाया लिखाया व घर का खर्चा उठाते थे। उनका स्वावलम्बी बना दिया। सन् 1954 में आपने बारहवी कक्षा पास की थी।

आपके छोटे भाई जुगलराज पुरोहित जब 10 वीं पास की तब आपने विनायज राव के सहयोग से रेलवे में नौकरी लगवा दी थी। आप समाज सेवी थे। गरीबों का तन,मन,धन से सहायता करते थे। अपने पैसों से गरीबों की शादी करते थे। समाज में किसी का स्वर्गवास हो जाता था तो परिवार में कोई सदस्य नहीं होता या परिवार के सदस्य छोटे होते तब आप अपने पैसों से मृतक व्यक्ति कर्मकाण्ड का खर्चा उठाते थे। मौहल्ले के लोगों की हर समस्या का समाधान करते थे। किसी के घर में सर्प निकलता था तो आप उसे पकड़ कर जंगल में छोड़ आते थे। आप कुछ इलाज के विशेषज्ञ थे। इकातरा बुखार की गोली बनाते थे व नि:शुल्क लोगों में बांटते थे व बुखार जड़ से चला जाता था। इसी प्रकार किसी भी प्रकार की खांसी के लिये वो गोलिया बनाते थे व नि:शुल्क बांटते थे जिससे उनकी खांसी जड़ समेत समाप्त हो जाती थी। स्वतंत्रता सैनानी जब जेल में होते थे व छिपते रहते थे। तब आप व आपके भाई उदयराज उनको व उनके परिवार का हर सम्भव सहायता करते थे। आपका छोटी उम्र में ही देहावसान हो गया था।

आपके सबसे छोटे भाई पुखराज पुरोहित जो सर्व प्रथम औसियां गांव में स्कूल खोली गई थी तब आप प्रथम अध्यापक बनकर गये थे। बाद में चिकित्सा स्वास्थ्य विभाग में विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए पब्लिसिटी ऑफिसर के पद से सेवानिवृत हुए गोल्ड मेडल मिला था। आपके साथ सुप्रसिद्ध वीर नोपत (शहनाई) वाला साज बनाने का काम करते थे। पं. जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रधानमंत्री ने आपकी पार्टी की भूरी-भूरी प्रशंसा की थी। नेहरूजी ने रात्री भोज दिया था व आप व अन्य पार्टी के सदस्यों के साथ फोटोग्राफ खिंचवाया था।

शिक्षाविद् व अवैतनिक कार्य

आपके विभिन्न सामाजिक संस्थाओं, सांस्कृतिक क्लबों व मण्डलों में सचिव, लेखाकार व ऑडिटर के पदों पर कार्य किया था। आप थ्रिप्ट सोसायटी के चैयरमेन थे। सचिव, मैंनेजर, जय कन्या पाठशाला, सदस्य मैंनेजमेंट कमेटी, छात्र व छात्राओं की स्कूल, ऐडिसनल मैंनेजमेंट, श्री सुमेर पुष्टिकर हायर सैकेण्डरी स्कूल एवं जय कन्या पाठशाला (मिडिल स्कूल; के पद पर अवैतनिक कार्य किया।)

आप पुष्करणा एज्युकेशन ट्रस्ट के ट्रस्टी, बिल्डिंग कमेटी के सदस्य, वाईस प्रेसिडेन्ट पुष्पकरणा एज्युकेशन ट्रस्ट के पदों पर भी कार्य किया। आप कन्जूमर स्टोर वार्ड. नं. 17 के डाईरेक्टर भी रह चुके है। उष्ट्रवाहिनी देवी कमेटी (चांदपोल) के अवैतनिक मंत्री थे। आप व आनन्दसिंह कच्छावाहा व परसराम कल्ला ने जोधपुर जिला केन्द्रीय सहाकारी उपभोक्ता होलसेल भण्डार लिमिटेड जोधपुर की स्थापना के लिये भरसक प्रयत्न किया। आप व्यासजी के कर्मवाटिका एवं व्यास पार्क बनवाने में भी जी जान व लग्न के साथ काम किया।

लेखक व प्रकाशक

आप बसंतोपहार के प्रकाशक थे आप विभिन्न जनरल समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में समय-समय पर अपने विचार व्यक्ति करते रहते थे। आपने रेलदूत साप्ताहिक में व्यासजी के बारे में लेख लिखा था जिसमें आपने व्यासजी को होरो के रूप में दर्शाया था।

आपने जोधपुर में भारत के गृह मंत्री चव्हाण की आमसभा में कांग्रेस विरोधी तत्वों द्वारा किये गये पथराव से घायल होते हुए भी आपने अध्यक्ष नवचौकिया मंडल की हैसियत से जनता ने कांग्रेस की बहुमत से विजयी बनाने की अपील की बढ़त चरण दिनांक 13 फरवरी 1967 में की थी। राजपूताना हेराल्ड दिनांक 12 मार्च 1964 लेख लिखकर व्याजी को बहुमुखी प्रतिभा के धनी कहकर विचार व्यक्त किये थे। हाई स्कूल मैग्जिन में हमारी स्कूल लेख लिखकर पूरा ब्यौरा व्यक्त किया।

राजनैतिक

व्यास जी ने सन् 1919 में पुष्करणा नवयुवक मंडल की स्थापना की थी। आप इसके सदस्य थे। व्यासज जी ने सन् 1921 में मारवाड़ हितकारिणी सभा की स्थापना की आप इसके भी सदस्य थे। 1934 में लोक परिषद व 1937 में प्रजा परिषद की व्यासजी ने स्थापना की थी। आप इन दोनों के सदस्य थे। लोक पषिद के बाद में जाकर कांग्रेस का रूप ले लिया था। आप आजनम व्यासजी के साथ रहकर कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्ता रहे व व्यासजी के पक्के भक्त थे। स्वतंत्रता संग्राम में कुछ लोगों ने शहीद होकर तो कुछ जेल जाकर व कुछ जेल के बाहर रहकर आन्दोलन कर्ता व उनके परिवारों को हर संभव मदद करते थे उनमें आप का नाम भी लिया जाता है। आप इतने व्यवहार कुशल व लोकप्रिय थे कि नवचौकिया मंडल कांग्रेस के सर्व समिति के अध्यक्ष चुन लिये गये। आपने जीवन प्रयन्त कांग्रेस पाटी का तन मन धन से सहयोग दिया एवं कांग्रेस की नींव मजबूत करने में सहयोग किया। आपको कांग्रेस दल से नींव का पत्थर कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

चिकित्सक

सन् 1957 में ओपन रायल होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेज अमृतसर से M.Sc. (Home) व M.D. गोल्ड मेडेलिस्ट की उपाधी ग्रहण कर गरीबों को मुफ्त चिकित्सा करते थे व गरीबो के प्रति पूर्ण दया व श्रद्धा रखते थे। आपका स्वर्गवास 15 जनवरी 1971 में हृदयगति रूकने से हो गया था। आप अपने पीछे 5 पुत्र 3 पुत्रियां व पत्नी से भरापुरा परिवार छोड़कर चले गये।

आप परोपकारी समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ शिक्षाविद लेखक, पकोथक दार्शनिक एवं ईमानदार कार्यकर्ता की अभिन्न पक्ति में थे। आप द्वारा समाज व अन्य क्षेत्रों में किये गये कार्य सदैव भावी पीढ़ी को प्रेरणा देते रहेंगे तथा उनका मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे।

जोधपुर राज्य का विशेषाधिकार प्राप्त नींबाज ठिकाना

डॉ. दिनेश राठी

मारवाड़ के इतिहास में यहाँ के राठौड़ शासकों एवं उनके वंशजों का असाधारण योगदान रहा है। राठौड़ शासकों की संतति से अनेकानेक ऐसी प्रबल शाखाओं का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने न केवल मारवाड़ के भू-भागों को आबाद करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, बल्कि राठौड़-राज्य की सुरक्षा और राज्य-विस्तार की प्रक्रिया में सेवाएं अर्पित कर कर्त्तव्य-परायणता का परिचय दिया और समय आने पर उन्होंने प्राणों की आहूतियां देकर हर प्रकार से राठौड़ राजवंश के गौरव को प्रकाशमान भी किया। मारवाड़ में राठौड़ों का मूल पुरूष राव सीहा का आगमन 13वीं शताब्दी के मध्य में हुआ था। इसका प्रमाण पाली में बीठू गांव से मिले शिलालेख वि.सं. 1330 से स्पष्ट होता है। यह राठौड़ मूलत: राष्ट्रकूट के नाम से जाने जाते थे। प्रारंभ में सभी राठौड़ अपने को राठौड़ ही लिखते थे परन्तु बाद में इनकी विभिन्न शाखाओं का प्रादुर्भाव हुआ, तब यही राठौड़ अलग-अलग शाखाओं में विभक्त होकर उदावत, कूंपावत, मेड़तिया, चांपावत, करणोत, जैतमालोत आदि लिखने लगे। मारवाड़ के राठौड़ राजवंश से अनेक शाखाओं का प्रादुर्भाव हुआ जिनमें उदावत राठौड़ भी एक है। मारवाड़ के राठौड़ों के मूल पुरुष राव सीहा की पन्द्रहवीं पीढ़ी में राव सूजा के पुत्र उदा हुए थे। इसी उदा के वंशज उदावत राठौड़ के नाम से विख्यात हुए। इन उदावत राठौड़ों का जैतारण, रायपुर जैसे बड़े भू-भाग पर आधिपत्य रहा। इसके अतिरिक्त इनको कई ठिकाने पट्टे में मिले थे, जिनमें नींबाज ठिकाना भी एक था। इन ठिकानेदारों की राज्य के विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सोपानों में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी। उदावत राठौड़ों की राज्य के प्रति पूर्ण निष्ठा का ही सुपरिणाम था की इनके वंशजों को समय-समय कुरब ताजिम का सम्मान मिला।[1] नींबाज जोधपुर संभाग के पाली जिले की जैतारण तहसील के अन्तर्गत स्थित है। यह ठिकाना जोधपुर का सिरायत प्राप्त ठिकाना था, जो कि जोधपुर से लगभग 110 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यह स्थान अजमेर से दक्षिण-पश्चिम 56 मील और जैतारण से पूर्व में 6 मील है। यह प्रदेश अरावली पहाड़ से घिरा हुआ है। ऐसी किवदन्ती है कि गांव का नामकरण नींबाज नीम के वृक्ष की अधिकता व पानी का संसर्ग होने के कारण पड़ा था। इसी गांव में करीब चार सौ वर्ष प्राचीन गढ़ के अवशेष भी दृष्टिगोचर होती है।

नींबाज ठिकाने की ख्यात से ज्ञात होता है कि राव सीहा के 15 पीढ़ी पश्चात् जोधपुर के राव सूजा के पुत्र उदा से उदावत राठौड़ का प्रादुर्भाव हुआ। उदा के वंशक्रम में

खीवकरण, रतनसिंह, कल्याणसिंह हुए। कल्याणसिंह का उत्तराधिकारी विजयराम था। राव विजयराम का पुत्र जगरामसिंह था। जगरामसिंह महाराजा अजीतसिंह के समकालीन थे। महाराजा अजीतसिंह ने वि.सं. 1765 के आश्विन वदि 10 को नींबाज ठिकाने का पट्टा 10 गांवों सहित इनायत करने के साथ ही प्रथम श्रेणी का खिताब जगरामसिंह को दिया गया।[2] नींबाज ठिकाने की कुल रेख 35100 रु. थी।[3] महाराजा अजीतसिंह के विपत्तिकाल में इन्होंने अपना सहयोग निरन्तर देकर महाराजा की ओर से पीपाड़ भी अर्जित किया था। अपनी समधर्मिता राज्य के प्रति दिखाते हुए वे वि.सं. 1767 परलोकवास हुए। इनकी अन्त्येष्टि पीपाड़ में स्थित सांपा तालाब के तट पर की गई। उस स्थान पर लाल पत्थर की छतरी बनाई गई। जो वर्तमान में जगराम भवन के नाम से प्रसिद्ध है। महाराजा के विश्वासपात्रों में इनका नाम अग्रणी था। उनके निधन की सूचना पाकर महाराजा ने राजरीति के अनुसार एक दिन के लिए नकारखाना बन्द रखा। महाराजा अभयसिंह के शासन काल में भी नींबाज ठिकाना अपनी महत्वपूर्ण भूमिका में था। महाराजा अभयसिंह के शासन काल में राजपूत सरदारों व भण्डारियों के मध्य पद-प्रतिष्ठा को लेकर संघर्ष में नींबाज ठिकाने की भी प्रमुख भुमिका थी।[4] तत्पश्चात महाराजा अभयसिंह को मुगल दरबार द्वारा मिली अहमदाबाद की सूबेदारी, अहमदाबाद का युद्ध, सरबुलंद खां की संधि के लिए याचना इत्यादि घटनाक्रम में भी नींबाज ठाकुर ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।[5]

जगरामसिंह के पश्चात् क्रमशः कुशलसिंह, अमरसिंह, कल्याणसिंह, दौलतसिंह, शम्भुसिंह, सुरताणसिंह, सावंतसिंह, सवाईसिंह, गुलाबसिंह और छत्तरसिंह हुए। नींबाज के उपर्युक्त सभी जागीरदारों ने समय-समय पर जोधपुर राज्य की ओर से लड़े जाने वाले युद्धों में अपने तलवार के जौहर दिखाए।[6] जागीरदारों के द्वारा ठिकाने का प्रशासन चलाने हेतु कामदार, वकील, दरोगा नामक पदों का भी उल्लेख ठिकानों की बहियों से ज्ञात होता। इन कर्मचारियों के द्वारा ठिकाने के शासन प्रबन्ध में जागीरदारों को सहयोग किया जाता था। उस समय राज्य की ओर से उनको विभिन्न अदालती अख्तयार मिले हुए थे, जिसके परिणामस्वरूप वे अपने जागीरी गांवों में इसका प्रयोग कर सकते थे उसका उल्लेख भी तत्कालीन हस्तलिखित बहियों में जिनमें मुख्य रूप से हाकम रै दफ्तर री बही के अलावा सनद परवाना बही के साथ ही खांपवार फेरिस्त बही में इसकी जानकारी मिलती है। ठिकाने में लगान वसूली में ठिकानों के कामदार, मुसाहिब व कणवारियों का महत्वपूर्ण स्थान था। मुख्य रूप से ठिकानेदारों की ओर से सेरीणो, जोड, हल लाग, पान चराई, गीण लाग, सीगोटी, मापो, छपर बछी, धीयायीबाब आदि कर गांव वालों से वसूल किये जाते थे। नींबाज के अलावा उसके अधीनस्थ गांवों में सांगावास, विसावास, वीरवासणी, पीपाड़ और खांगटा प्रमुख थे।[7] नींबाज ठिकाने के जागीरदारों के सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों की प्रशंसा करते हुए समय-समय पर चारण भाटों ने इनके स्मृति सूचक वीरगीतों की रचना की। इनमें चारण उम्मेदजी, खिड़िया तेजसी, चारण मोतीराम,

चारण वनजी, भाट दौलत के नामोल्लेख मिलते हैं। ठिकाने के चारण भाटों के अलावा आस-पास के गांवों के चारणों ने भी नींबाज के उदावत राठौड़ों की प्रशस्ती में डिंगल गीतों की रचना की। जिसके बदले में उन्होंने जागीरदारों से भू-खण्ड प्राप्त किये थे जिसका उपभोग इन कवियों ने पीढ़ी दर पीढ़ी किया। नींबाज ठिकानें में बने विभिन्न आवास गृहों के साथ ही रसद कोठार, सिलेहखाना विभाग के अलावा कारागृह आदि तत्कालीन स्थापत्य कला के सुंदर उदाहरण है। नींबाज ठिकानेदार वैष्णव मतावलम्बी थे जिसके परिणामस्वरूप ठिकाने में कई मन्दिरों का निर्माण कार्य हुआ यथा राधा मुकन्दजी का मन्दिर, गोपालजी का मन्दिर, सीतारामजी का मन्दिर, राधामोहनजी का मन्दिर, सिरेबिहारीजी का मन्दिर, गोरधननाथजी का मन्दिर, नरसिंहजी का मन्दिर।[8] इसके साथ ही नींबाज ठिकानें में विभिन्न संतों के मठ, ईदगाह एवं अन्य धार्मिक स्थल भी विद्यमान हैं। धार्मिक पहलुओं के साथ-साथ ठिकाने में ही ठिकानेदारों के दग्ध स्थल में छत्तरियां एवं देवलियां भी विद्यमान हैं। ठिकानें में बनी इमारतों, मन्दिर, मठों और छत्तरियों के वास्तु-शिल्प के उत्कृष्ट नमूने है।

नींबज ठिकाने की कुलरेख 35100 रू. थी।[9] जिसमें जागीरदारों को रेख के हिसाब से सेवाऐं देनी पड़ती थी, वही राज्य की ओर से इन्हें अदालती अख्तियार भी प्राप्त थे। इन जागीदारों को अव्वल दर्जे का विशेषाधिकार प्राप्त था जिसमें जागीरदार अपराधी को 6 माह की कारावास की सजा दे सकता था। अपराधी को सजा सुनाने के दो केन्द्र बिन्दु नींबाज एवं पीपाड़ प्रमुख रूप से थे।[10] इस प्रकार से नींबाज ठिकाना मारवाड़ का एक विशेष ठिकाना था। कुरब ताजिम, अदालती अख्तियार जैसी विशेषाधिकार लिए हुए ठिकाना था। तत्कालीन मारवाड़ के राजनीतिक परिदृश्य में भी नींबाज ठिकाना अपना विशेष स्थान रखता है। महाराजा अजीतसिंह एवं महाराज अभयसिंह के शासन काल में व तत्पश्चात् भी नींबाज ठिकाने ने अपनी महत्वपूर्ण सेवाएं प्रदान की।

सन्दर्भ

1. *प. रामकर्ण, इतिहास नींबाज पृ. 256*
2. *महाराजा अजीतसिंह का पट्टा क्रमांक 1, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर; नीबाज ख्यात 17/110 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
3. *प. रामकर्ण, इतिहास नींबाज पृ. 271*
4. *डॉ. दिनेश राठी, अठारहवी सदी के प्रारम्भ में मारवाड़ पृ. 45-47*
5. *डॉ. दिनेश राठी - अठारहवी सदी के प्रारम्भ में मारवाड़ पृ. 70-75*
6. *नीबाज ख्यात 17/110 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।*
7. *नींबाज तवारीख 17/108 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
8. *पं. रामकर्ण, वही पृ. 258-59*
9. *पं. रामकर्ण, वही पृ. 271*
10. *पं. रामकर्ण, वही पृ. 258*

भूगोल की बदलती समझ : राजस्थान के विशेष संदर्भ में एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

मयंक कुमार

यह कहना गलत नहीं होगा कि किसी भी क्षेत्र या प्रांत का भूगोल तत्कालीन सामाजिक सरोकारों से निर्मित और निर्धारित होता है। अर्थात् भूगोल की अपनी एक स्वतंत्र सत्ता तो होती है परन्तु उसकी सामाजिक समझ या परिकल्पना को समझने के लिए उसको नितांत भौतिक अव्ययों के समुच्चय की समझ मात्र मानना पर्याप्त नहीं हैं। यह जरूरी हैं कि हम तत्कालीन समाज की पर्यावरणीय चेतना, उसके आर्थिक ढांचे की रचना संरचना, तकनीकी विकास और वृहद् सांस्कृतिक इतिहास के संदर्भ में भूगोल की समझ की व्याख्या करें। प्रस्तुत लेख इसी उद्देश्य से राजस्थान के भूगोल की बदलती समझ पर चर्चा करने का एक प्रयास हैं।

डेनियल बोटकिन अपनी पुस्तक डिस्कोर्डेंट हार्मोनीस में कहते हैं कि प्रकृति की मानवीय परिकल्पना बदलती रही है[1] और भौगोलिक क्षेत्रों की सामाजिक कल्पनाओं को समझने के लिए वहां के भूगोल की प्रकृति और उसकी भौतिक स्थिति की चर्चा एक आधार प्रस्तुत करने के लिए जरूरी और महत्वपूर्ण होता है। सामाजिक प्रक्रियाओं में आते बदलाव और परिवर्तनों को समझाने के लिए बहुत लंबे समय तक इतिहासकार भौगोलिक पृष्ठभूमि की भूमिका को कमतर आंकते रहे थे। सामाजिक प्रक्रियाओं में भूगोल की प्रकृति और उसकी भौतिक स्थिति की महत्वपूर्ण भूमिका को शायद ही कभी महत्व दिया गया था। बहराल, हाल ही के दिनों में इतिहासकारों नें ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को आकार देने में भूगोल की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करना शुरू कर दिया है। भूगोल को मात्र प्रदत्त या स्थैतिक के रूप में नहीं माना जा रहा है, बल्कि अंतर्निहित तरलता और भौगोलिकता की गतिशीलता को मान्यता दी जा रही है। साथ ही साथ भूगोल से अनुकूलन से सामाजिक प्रयासों को स्वीकार करके उसको उचित महत्व भी दिया जा रहा है। प्रस्तुत लेख उन तरीकों को समझने की कोशिश करता है कि किन ऐतिहासिक वजहों ने भूगोल के चित्रण के विशिष्ट स्वरूप निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया, अर्थात् जिस तरह से भूगोल को हमारे स्रोतों में चित्रित किया गया है। मेरे अधिकांश साक्ष्य प्रारंभिक आधुनिक राजस्थान के परिदृष्य से संबंधित है।

राजस्थान, एक बहुत विविध भौगोलिक क्षेत्र है: उत्तर और उत्तर पश्चिमी भाग

 ISSN 2321-1288

की रेगिस्तानी भूमि से लेकर मेवाड़ पर्वत श्रृंखलाओं तक। यह कहना कि यह इलाके एक दूसरे से अलूफ रहे भी गलत होगा। भौगोलिक विविधता का विवरण साहित्यिक स्रोतो में भी उतना ही विविध देखने को मिलता है। इसलिए, हम तात्कालिक साहित्यिक स्त्रोतों और स्थानीय समझ में भौगोलिक स्थितियों और भूगोल की सामाजिक कल्पनाओं के जटिल संबंधों को समझने की कोशिश करेंगे ।

इस बहस पर ध्यान आकर्शित करने का मेरा उद्देश्य मौखिक/क्षेत्रीय भाषाओं में व्यक्त की गई साहित्यिक रचनात्मक जो काफी हद तक स्थापित साहित्यिक (canonical) परंपराओं से प्रभावित रही है, के जटिल संबंधों पर चर्चा करने का एक प्रयास है। अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए दो रचनाओं के बीच तुलना करने की कोषिष करूंगा: पहला जैन कवि, हेम द्वारा लिखित मेदपाट प्रशस्ति है : अर्थात् मेवाड़ क्षेत्र :

मेद पाट वर्णन प्रशस्ति

स्वस्ति श्री अवनि तिलक, मेद पाट विख्यात।
देश सबे सिर सेहरौ, रोग नहीं तिलमात।1।
देबां में सुरपति बड़ो, तारां में जिम चन्द।
सरिता में गंगा बड़ी, गिर में मेरू गिरन्द।2।
सबल देश में दीपतो, मोटो देष मेवाड़।
सरबर तरवर अति घणा, प्रोढ़ा अनल पहाड़।3।
पग-पग पाणी पंथ सिर, पग पग अम्बा रूंख।
पग पग दीसै सेलढी, चखीयां जावै भूख।4।
देष देषना मानवी, आबै जुगतै जात।
चाबो चिहुँ, दिसद्ध देशां मई, चतुर्भुज विख्यात।5।[2]

(शुभ शब्द के उच्चारण के साथ, मैं मेदपाट-मेवाड़ की महिमा का वर्णन करना शुरू करता हूं। यह एक भी दोष के बिना, सभी भूमि का मुकुट है। जिस प्रकार इंद्र देवताओं के राजा हैं: सितारों के बीच चाँद, नदियों के बीच गंगा, पहाड़ों के बीच मेरू, इसी तरह मेवाड़ देशों के बीच चमकता हैं। यह कई तालाब, तलाई हैं और जंगल और वनस्पति से आच्छादित हैं। साथ ही यहां सुंदर और सबसे प्राचीन पर्वत श्रृंखला हैं । इस भूमि में पानी और पेड़ों की उपलब्धता काफी हैं। गन्ने का उत्पादन इतनी अच्छी मात्रा में किया जाता है कि यह आसानी से उपलब्ध हो जाता हैं और यह इतना मीठा होता है कि प्यास बुझाने के लिए पर्याप्त होता हैं। ये बहुत प्रसिद्ध हैं। क्षेत्र की महिलाएं बहुत सुंदर हैं।)

समकालीन साहित्य में हमें थार का साहित्यिक विवरण जिसे स्थानीय तौर पर थल या थली के रूप में जाना जाता है, प्राप्त होता है।

थली वर्णन

थली सिरदार वर्णन
दसे दिस चावउ भोलो देस।
उंफडा जल पीवइ बुरि असेस।।
कहइ जे बोल मिलई सुखकार।
सहु सिरि देस थली सिरदार।।
जिहां नहीं कूड़ कलेस बजार।
गिणहीं नहिं किणसूँ द्रोह लिगार।।
धन थोड़े धर करइ साधर।
सहु सिरि देस थली सिरदार।। [3]

(यह दुनिया का सबसे अच्छा देश है। पानी बड़ी गहराई पर उपलब्ध हैं, लेकिन मन के लिए बहुत अच्छा है। यह बहुत प्रसिद्ध है, और हर कोई जानता हैं, कि थली विश्व की भूमि में राजा है। इस जमीन पर कोई मुसीबत नहीं है। कोई नहीं लड़ता। समृद्धि सीमित हैं, हालांकि लोग धार्मिक है। थली भूमि का राजा है।)

भौगोलिक ज्ञान की साहित्यिक परंपरा में गहरी पकड़ रखने वाले जैन कवि हेम ने मेरू और गंगा नदी के व्यापक संदर्भ में मेद पाट की चर्चा की। अगर हम विभिन्न पुराणों में भौगोलिक विशेषताओं की चर्चा करें तो इसका महत्व बेहतर समझा जा सकता हैं। पौराणिक भूगोल के अनुसार, मेरू या ब्रह्मा का वास दुनिया की अथवा दूसरे शब्दों में पुराण के भूगोल की धुरी है। मेरू को पुराणिक भूगोल या पौराणिक समझ, पर्वतीय प्रणालियों के केन्द्र के रूप में व्याख्यायित करते हैं। पर्वत परिसीमन करते हैं और उन क्षेत्रों और देशों के साथ निकटता से जुड़े होते हैं, जो सामुहिक रूप से पौराणिक महाद्वीपों से हैं।..... वेदों में मेरू का उल्लेख नहीं है। इसे एतरेय अरणयक में महामेरू या 'महान मेरू' के रूप में जाना जाता हैं, लेकिन इसके स्थान या आकार का कोई संकेत नहीं है। महाकाव्यों, बौद्ध और जैन षास्त्रों और पुराणों में दुनिया के महाद्वीपों या प्रमुख क्षेत्रों के संबंध में मेरू के आकार और सीमा और उसके केन्द्रीय स्थान के बारे में व्यावहारिक रूप से धारणाएं समान है।[4]

इसके अलावा, नदियों के संदर्भ में, पुराणिक भूगोल या पौराणिक समझ में यह सुझाव दिया गया है कि, जम्बू द्वीप के प्रमुख पर्वत श्रृंखलाओं के पैटर्न के अनुरूप, पुराण इसके जल निकासी व्यवस्था का एक विवरण देते हैं, जो केंद्रीय धुरी : मेरू को केंद्र मानकर व्यवस्थित है। पुराण, सबसे पहले, मुख्य नदियों की उत्पत्ति का लेखा देते हैं जो मेरू में उठती हैं और निकलती हैं और चारों दिशाओं में प्रवाहित होती है। फिर वे इन नदियों में से प्रत्येक के प्रवाह के रास्ते में पड़ने वाले विभिन्न स्थलाकृतिक विशेषताओं

का उल्लेख करते हैं जो नदी के उद्गम से विलय तक के रास्ते में नज़र आते हैं। गंगा का दुनिया की नदी-प्रणालियों से वैसा ही संबंध है जितना मेरू की पर्वत श्रृंखलाओं से हैं। गंगा एक खगोलीय नदी है, जिसकी पुराणों में आकाष गंगा के साथ बहुत ही सुदंर तुलना की गयी हैं।[5]

यह सुझाव देना गलत होगा कि क्षेत्रीय साहित्यिक परंपराओं में भौगोलिक विवरण आमतौर पर पुराणिक भूगोल के संदर्भ से रहित हैं। हेम कवि अपने लेखन में संस्कृत साहित्य से मुहावरों और उपमाओं को बड़े पैमाने पर उधार लेते हैं। वहीं दूसरी ओर थल देश-वर्णन के गुमनाम लेखक ने क्षेत्रीय भाषा में लिखते हुए स्थापित संस्कृत साहित्य से उधार नहीं लिया हैं, बल्कि अधिक यथार्थवादी होने का विकल्प चुना हैं। दूसरे शब्दों में, स्थापित संस्कृत साहित्य विहित परंपराओं के साहित्यिक विमर्श में आत्मसात किए हुए साहित्यिक चित्रणों के साथ-साथ हमें भौगोलिक रूप के बहुत यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करने वाली साहित्यिक कृतियां भी मिलती हैं। इस प्रकार, ये दोनों परंपराएं एक-दूसरे की पूरक हैं और हमें व्यापक के साथ-साथ भौगोलिक विशेषताओं का सूक्ष्म वर्णन भी प्रस्तुत करती हैं।

अपने तर्क को और पुख्ता करने के लिए, यह ध्यान दिलाना दिलचस्प होगा कि किसी भी क्षेत्र के भूगोल का मौखिक चित्रण क्षेत्र के 'गुण और अवगुण' का एक साथ चित्रण करता है। इस प्रकार, जहाँ हमें स्थापित संस्कृत साहित्य विहित परंपराओं में भौगोलिक स्थितियों का एक निश्चित परिपाटी पर बंधा हुआ वर्णन देखने को मिलता हैं वही इसके विपरीत क्षेत्रीय भाषा साहित्य में उक्त क्षेत्र की खामियों के विभिन्न पहलुओं के साथ वास्तविक जीवन में मानव की भौगोलिक विशेषताओं और स्थितियों की समझ की झलक देखने को मिलती है।

उदाहरण के लिए अब मैं थली सम्बंधित अवगुणों के चित्रण को उद्धृत करना चाहता हूँ। सद्गुणों को पहले ही उद्धृत किया जा चुका है।

थली दोस वर्णन

उड़ई जिहां खेह न थंभि रहइ।
वज्जई जिहां पवन न किउही सहइ।।
जल खारउ सोइ पावेइ वली।
पिफट देस कुदेस कुखंड थली।।
पट मासे नीर निवाण लहइं।
जिहां चउपद जीवति स्याइ रहइ।।
जहां त्रास जलइ नर आस पफली।

पिफट देस कुदेस कुखंड थली।।
जिहां सूरख लोग पिसाच जिसा।
काला अति भूछ कि भूत जिसा।।
भरी रीवड छाछि पिवंति रली।
पिफट देस कुदेस कुखंड थली।।[6]

(यह एक ऐसी जगह हैं जहां रेत बिना किसी प्रतिबंध के उड़ती है। यहाँ हवा बड़ी गति से चलती है। पानी खारा है, इसलिए यह पीने योग्य नहीं है, इसलिए थली रहने के लिए इतनी खराब जमीन है। तालाब केवल छह महीने के लिए पानी बरकरार रखते हैं, और पशुधन पानी की सीमित उपलब्धता से विकल रहते हैं, इसलिए थली रहने के लिए इतनी खराब जमीन हैं। यहां लोग पिचाश–भूत की तरह है और भूत की तरह काले है। लोग खूब छाछ पीते हैं, इसलिए थली रहने के लिए इतनी खराब जमीन है। लोग दाढ़ी और मूंछ रखते हैं और उनका चेहरा धूल से भरा होता हैं, जो यहां लगातार उड़ती रहती है। यह यमराज–मृत्यु के देवता की तरह हैं, इसलिए थली रहने के लिए इतनी खराब जमीन हैं।)

अंत में जलवायु परिवर्तनशीलता के प्रभाव को भौगोलिक विवरणों के सन्दर्भ में देखना भी दिलचस्प होगा, विशेषकर उन क्षेत्रों को जोकि 'पौराणिक भूगोल' की परिधि पर स्थित थे। मैंने किसी और जगह पर तर्क दिया है कि प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में बढ़ती हुई शुष्कता के युग के दौरान, हम नदियों के किनारों से काफी दूर रेगिस्तान के अंदरूनी इलाकों में बस्तियों के उद्भव का प्रमाण पाते हैं।[7] इस बदलाव को पुरालेखीय विवरणों में निम्न रूप में परिलक्षित किया गया था। इस काल में हम अब नदीमातृक (नदी के पानी से सिंचित) की जगह देवमात्रक (बारिश के पानी से सिंचित) शब्द का बढ़ता उपयोग पाते हैं।[8] जैसा कि बाबर द्वारा वर्णित है कि मानसून की बारिश का अधिक से अधिक इस्तेमाल, कृषि उत्पादन के लिए किया जाता है। इसकी वजह से कृषि उत्पादन के लिए नदियों, बारहमासी और/या मौसमी द्वारा सिंचित न हो सकने वाले क्षेत्रों में मानव बस्ती के विस्तार के प्रमाण पाते हैं। अर्थात् संस्कृत निष्ठ साहित्य द्वारा चित्रित क्षेत्र की परिधि पर स्थित भूगोल का चित्रण भी देखने को मिलता है। इसलिए, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि नैणसी ने अपनी विगत में देवमातृक के माध्यम से सिंचित की जा रही भूमि का ग्रामवार विवरण प्रस्तुत किया हैं।[9] अंत में यह कह कर अपनी बात पूरी की जा सकती है कि भूगोल अथवा भौगोलिक परिस्थियों का चित्रण समाज के सरोकारों से निर्धारित होता रहता है जोकि संस्कृत निहित विवरण को भी पुनर्भाषित करता रहता है और ऐसा ही बदलाव क्षेत्रीय साहित्य में भी देखने को मिलता है।

सन्दर्भ

1. *Daniel B. Botkin, Discordant Harmonies: A new Ecology for the Twenty-First Century, Oxford University Press, New York, 1990.*
2. *'देश वर्णन' [Desh Varnan], Maru Bharti, (ed., Agarchand Nahata), Vol. 2, no.2, 1954 p. 49.*
3. *थली वर्णन [Thali Varnan], Maru Bharti, Ed. Agarchand Nahata, year 2, no. 1, 1954, p. 81-83.*
4. *S M Ali, The Geography of the Puranas, People's Publishing House. New Delhi, Third Edition 1983, p. 47.*
5. *Ali, The Geography of the Puranas, p.60 & 63.*
6. *थली वर्णन [Thali Varnan], Maru Bharti, Ed. Agarchand Nahata, year 2, no. 1, 1954, p. 81-83.*
7. *Mayank Kumar, Monsoon Ecologies: Irrigation, Agriculture and Settlement Patterns in Rajasthan during the Pre-Colonial Period, Manohar, Delhi, 2013*
8. *B. D. Chattopadhyaya, 'Irrigation in Early Medieval Rajasthan' in Chattopadhyaya, B. D. ed., The Making of Early Medieval India, Delhi: Oxford University Press, 1997, pp. 38-56.*
9. *Munhta Nainsi, Marwar-ra-Pargana-ri-Vigat, (ed. Narain Singh Bhati), Vol. I-III Jodhpur: Rajasthan Oriental Research Institute, 1968, 1969 & 1974.*

सारांश/Summary

A Cenotaph (Chhatri) for Pet Animal from Jodhpur: A Study in Cultural and Historical Context

Ms Garima Chaudhary

In this paper, an attempt is made to study the pet cenotaph at Jodhpur in historical and cultural context. Moreover, the study of cenotaphs architecturally has also been targeted. In this context, it is very imperative to trace the history of chhatris. Pets are not human but display a lot of human qualities like strong personality, emotions, presences etc. While pets are mere domesticated animal for those who do not posses them, for those few who do they are not just dogs, cats or birds, they are family.

If one has been the receiver of unconditional love and affection from a pet and has enjoyed a pet's understanding companionship then one is addicted for life and can do his best for their pet even after his/her death. In this paper, the unconditional affection between a dog and his master who was a tribesman has been discussed do that even after the death of his dog he made a chhatri in his memory in Ratanada near Ganesh temple in Jodhpur. Some major and important Chhatris of Western Rajasthan are also discussed in this paper.

Chhatris are elevated, domed shaped pavilions used as an element in Indian architecture. The usual and more widely understood meaning is of a memorial, usually very ornate, built over the site where the funeral (cremation) of an important personage was performed. Such memorials usually consist of a platform girded by a set of ornate pillars which hold up a stone canopy. Chhatris are commonly used to depict the elements of pride and honour in Rajput, Maratha and Jat architecture. They are widely used in palaces and forts or to demarcate funerary sites.

❊ ❊ ❊

Conservation of National Heritage of Rajasthan: Jaigarh Fort

Ms Anu Sharma

Jaigarh fort or Victory fort is one of the prominent historic fort situated to the north east of the city of Jaipur. The alluring fort is on the spurs of Aravalli range beyond Amber palace which incorporates to its beauty. It was known as Cheekl ka Teela (Hills of Eagles) because of the reason that it is located on hill where eagle flocked grant in numbers. Conventionally, it is also believed that king kakildeva of the Kachawaha rules wrenched this territory from Minas, which was a powerful local tribe in 13th century. So, basically foundation was led by kakildeva in 13th centurybut the present structure's credit goes to Swai Jai Singh II. However after Kakildeva, Mirza Raja Jai Singh also contributed to the building of Jaigarh fort but eventually the acclamation goes to Swai Jai Singh II as he with his Bengali Diwan, Vidyadhar Chakravati benefitted the existing fort in 1726 AD. The fort is at a height of 500 feet above sea level and gives a panoramic view of the city. One of the main motive behind the construction was the protection of Ajmer fort and it is clearly visible along with the Maota lake from Jaigarh fort. This majestic stronghold has also served as the residential building of the kings but latter served as artillery warehouse. While travelling to Rajasthan, i visited this beautiful and astonishing fort. Jaigarh fort was built by Swai Jai Singh II in 1726. The fort was built in order to protect the Amber fort and the complex of the fort as well. It got it name after the Amer fort. The fort is spread in area of three miles and have a width of more than a mile. Fort is visited by hundreds of visitors and the architecture is appreciated a lot. It also contributes the Indian economy. The fort needs to be preserved as it is of national heritage and a part of our ancient history. When I visited the monuments of Rajasthan, I was really amaze by the astonishing beauty of the forts and palaces. The architecture is sumptuous. These forts need to be preserved for future for, it is adding grace to the great Indian history and a add a national as well as international ppeal. But, the fort needs attention of the government as well as of the local people.

❊ ❊ ❊

Merchants, Mutsaddis and the Princely State of Bikaner

Ms Kavita Jotoliya

There are so many works on the history of Rajasthan but most of these works have portrayed the history of Rajasthan as just the history of Rajputs. Historiography over Rajasthan is very much focused on, and obsessed with, Rajputs and it has forgotten the role played by the other groups in the history of the region. This partial nature of the history of Rajasthan or Rajputana is the product of the colonial understanding of this region which came into its shape in the 19th century. This kind of historiography was started by the colonial official to glorify and strengthen the Rajput identity but it was very partial. When we go through the vernacular primary sources and contemporary writings, then we can clearly see that other non-Rajput groups also have played the equally crucial role as the Rajput played in the history of Rajasthan. Thus, in this paper i have tried to trace out the role of merchant communities, which had a very profound and glorious role in the history of Bikaner as well as Rajputana. In this paper we can see that the merchants were the founding stones of the Bikaner state. They were holding the responsible positions in all the spheres of the Bikaner state such as administration, military, diplomatic relations, law and order, society and economy. They were not just traders or money leaders but also the administrators, military commanders (warriors), diplomats, advisors, judge etc. All of these duties confirm their multiple and crucial roles in the state.

❊ ❊ ❊

महाराजा जसवंतसिंह : पट्टा परगना हाँसी-हिसार मध्यकालीन हरियाणा परगनों का आर्थिक-प्रशासनिक विश्लेषण

निशा

महाराजा जसवंतसिंह (1638-1678ई.) ने 11साल की आयु में मारवाड़ देश की हुकूमत प्राप्त की थी। महाराजा जसवंतसिंह ने मुगल मातहत के रूप में बादशाह शाहजहाँ से 5000 का मनसबदार पद और मारवाड़ देश के जोधपुर, सिवाना, मेड़ता,

सोजत, फलोधी, सातलमेर, जालोर और सांचोर परगना हक प्राप्त किया था। मुगल मनसबदार के रूप में अपनी सैन्य सेवाओं से बादशाह शाहजहाँ और औरंगजेब को संतुष्ट करके दिल्ली सूबा के उपजाऊ परगने हाँसी-हिसार, रोहतक, कैथल, नारनोल और रेवाड़ी प्राप्त कर मेहरानगढ़ किला राजकोष धन में वृद्धि की थी। दिल्ली सूबा के हरियाणा परगना, हाकिम और प्रशासक : इतिहासकार अबुल फजल की आईने-अकबरी अनुसार वर्तमान हरियाणा दिल्ली सूबा के अन्तर्गत आता था। मध्यकालीन 17वीं सदी में हरियाणा का रोहतक, झज्जर, सोनीपत, पानीपत, करनाल, हिसार-फिरोजा, गोहाना, सिरसा, महम, जीन्द और रेवाड़ी परगना दिल्ली सूबा के समृद्ध कृर्षिय क्षेत्र थे। यहाँ की भूमि गंगा-जमुना और घग्घर नदी के पानी से सिंचित होकर साल में तीन फसलों द्वारा बादशाह को राजस्व प्रदान करती थी। जोधपुर राज्य री ख्यातानुसार महाराजा जसवंतसिंह ने 1641-55 ई. में मनसब वृद्धि के तहत बादशाह शाहजहाँ से रेवाड़ी और रोहतक परगना प्राप्त किया था। रेवाड़ी परगना की कुल रेख 2,92,500 रुपये और रोहतक से 2,92,625 रुपये का हासल राजस्व प्राप्त होता था। जोधपुर हुकूमत री बही अनुसार 1658ई. में मुगल बादशाह औरंगजेब ने राठौड़ राजा जसवंतसिंह को प्रतिद्वन्द्वी भाई दारा-शिकोह से विमुख करने के लिए 7000 का मनसबदार बनाकर एक करोड़ के वेतन रूप में हरियाणा का नारनोल, कैथल, रोहतक, महम और अठवाड़ा परगना प्रदान किया था। 1661ई. में रबी की फसल से हाँसी-हिसार परगना प्रदान किया था हाँसी-हिसार के तहत टोहाणा, सिरसा, साहाबाद, जींद, वेहणीवाल, अठखेड़ा, खांण्डों, जमालपुर, सोराण, महम, अहरोई, घातराठ और रोहतक परगना आते थे। इन 13 परगनों की कुल रेख 62,40,6100 दाम थी।

इतिहासकार मुहणोत नैणसी ने मारवाड़ परगना री विगत में रेवाड़ी और रोहतक परगना का आर्थिक विवरण कुछ इस प्रकार दिया हैं। बहुत बड़े क्षेत्रफल वाले रेवाड़ी परगने में से साबी नदी निकलती थी। बरसात के मौसम में परगने के आधे गांवों में बाढ़ आ जाती थी। बाढ़ग्रस्त गांवों में रबी की फसल बहुत अच्छी होती थी। रेवाड़ी परगना गांवों में पेयजल स्रोत साधन कुएँ थे। इस उपजाऊ भूमि से बड़ी मात्रा में कर प्राप्ति के लिए 1641 ई. में पृथ्वीमल तथा बाद में मुहणौत सुंदरदास जयमलोत को परगना हाकिम नियुक्त किया था। जबकि रोहतक परगना ग्रामीण इलाका था। यहाँ की प्रजा घमंडी और झगडालू थी। पंड़ित हरीदास राघवदास को परगना हाकिम नियुक्त कर सालाना हासल राजस्व 1,51,500 रुपये वसूल किया गया था। 13-14 लाख रुपये के र्षिय राजस्व क्षेत्र हाँसी-हिसार परगना हाकिम मुहणौत कर्मसी और पंचोली बछराज थे। इस प्रकार रेवाड़ी और हाँसी-हिसार परगना की भूमि उपजाऊ और प्रजा झगडालू थी। जिनसे तलवार के बल पर राजस्व प्राप्त किया जाता था।

❊ ❊ ❊

जोधपुर शासक महाराजा गजसिंह जी प्रथम (1619-1638) का स्थापत्य कला में योगदान

उपासना दाधीच

जोधपुर शासक महाराजा गजसिंह जी प्रथम का राजस्थान की स्थापत्य कला में महत्वपूर्ण योगदान रहा क्योंकि इनके द्वारा बनाये गये स्थानों में हिन्दू परम्परा की झलक नजर आती है, जबकि महाराजा का मुगलों से अत्यधिक मधुर सम्बन्ध रहा था। महाराजा गजसिंह जी प्रथम राजा सवाई सूरसिंह जी के उत्तराधिकारी एवं ज्येष्ठ पुत्र जन्म वि.स. 1652 कार्तिक सुदी 8 गुरूवार (ई.सन् 1595 की 11 नवम्बर) को लाहौर में हुआ था। वि.स. 1676 को आसोज सुदी 10 (8 अक्टूबर ई. सन् 1619) को राज सिंहासन पर बैठे। ये बड़े ही दानी और वीर स्वभाव के थे। इन्हें घोड़ों और हाथियों का बड़ा ही अत्यधिक शौक था। उस समय इनका बड़ा ही मान-सम्मान हुआ करता था। उस समय इनके बराबर कोई सरदार हिन्दुओं और मुसलमानों में नहीं था। बादशाही दरबार में इनका अत्यन्त मान-सम्मान रखा जाता था। ख्यातों के अनुसार इन्हें छोटे-बड़े 52 युद्धों में भाग लिया था और इनमें से प्रत्येक युद्ध में वह सेना के अग्रभाग के सेनापति रहे थे।

महाराज गजसिंह जी प्रथम ने निम्न स्थानों का निर्माण करवाकर स्थापत्य कला में अपना योगदान दिया -

1. सवाई राजा सूरसिंह का देवल - मण्डोर
2. श्री आनन्छधन जी का मन्दिर - मेहरानगढ़
3. सूरसागर का कुआ, बगीचा और महल
4. जोधपुर के दुर्ग में तोरनपोल, सभामण्डप, दीवानाखाना, बीच की पोल, कोठार, रसोईघर आदि।
5. तलहटी के महलों में अनेक नये महल।

वर्तमान में केवल संवाई राजा सूरसिंह जी का देवल जी की मण्डोर में स्थापित है, वो विद्यमान है, जिसका निर्माण महाराजा गजसिंह जी ने 1622 ई. में करवाया था। उसके अलावा अन्य स्थानों का पूरी तरह से पता लगाना कठिन है। क्योंकि इनमें से कुछ गिरा दिये गये हैं और कुछ के रूप बदल गये है।

सवाई राजा सूरसिंह जी का देवल (1622 ई.)

मण्डोर बाग - सवाई राजा सूरसिंह जी (वि.सं. 1652-76, 1595-1619 ई.) के देवल का निर्माण महाराजा गजसिंह जी ने 1622 ई. में करवाया था। सूरसिंह जी को

मुगल शासक अकबर ने उनकी वीरता व सवाया होने के कारण संवाई राजा का खिताब दिया। ये संवाई राजा सूरसिंह कहलाए। यह मुगल सेना के सेनापति भी रहे हैं। संवाई राजा सूरसिंह का स्वर्गवास वि.सं. 1676 ई. सन् 1619 की भादो सुदी 9 वी को दक्षिण में 'महकर थाणे' में हुआ था।

यह देवल जोधपुरी ला पत्थरों से निर्मित है, गुम्बदुनमा, सुन्दर कलाकृति, स्थापत्य कला का नमूना, अनेक छोटे-छोटे गुम्बदों एवं झरोखें से निर्मित।, जमीन से ऊपर उठा, सीढ़ियों से निर्मित आयताकार चबूतरा, देवल के पीछे की तरफ सुन्दर छतरी बनी है जो कि अन्दर से लाल पत्थरों एवं बार की तरफ गुम्बद में सफेद संगमरमर से बनी है जो कि अत्यन्त ही सुन्दर झालीनुमा दीवारों पर बनी है, महत्वपूर्ण बिन्दू यह है कि इस देवल में हमें मुगल स्थापत्य की झलक भी नजर नहीं आती, यह पूर्णत् हिन्दु परम्पराओं पर आधारित है - जैसे-फूल, पत्तियों और तारों की आकृतियाँ।

श्री आनन्दघनजी का मन्दिर

श्री आनन्दघनजी के मन्दिर का निर्माण महाराजा गजेसिंह जी (1619-1638 ई.) ने करवाया था। यह महल कवरपदा के महल के ऊपर बनाया गया, ऐसी मान्यता है अर्थात् पूर्व में भी कंवरपदा के महल इसी पट्ठे के ऊपर रहे होंगे। वर्तमान में इसी पट्ठे पर फतह महल और उसके आगे का महल कंवरपदा का महल कहलाता है। संभवत: पहले भी यहां मन्दिर इन्हीं महलों के पास बनाया गया था।

जोधपुर जिले में निर्माण कराये गये स्थान

महाराजा गजसिंह प्रथम द्वारा जोधपुर किले में -

- ⋆ तोरनपोल
- ⋆ दीवानखाना
- ⋆ कोठार
- ⋆ उसके आगे सभामण्डप
- ⋆ बीच की पोल
- ⋆ रसाईघर आदि

❊ ❊ ❊

उहड़ राठौड़ों के इतिहास लेखन में शिलालेखों का महत्व

सपना कुमारी

शिलालेख इतिहास की जानकारी प्राप्त करने का प्राथमिक स्रोत रहे हैं। शिलालेखों के माध्यम से तिथिबद्ध राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। शिलालेखों के द्वारा तत्कालीन समय का समग्र इतिहास लिपिबद्ध करना संभव है। उहड़ राठौड़ों के सन्दर्भ में यदि बात की जाए तो यह मारवाड़ के राठौड़ों की एक प्राचीन 'खांप' है। मारवाड़ के राठौड़ों के मूलपुरुष राव सीहा के सुयोग्य पुत्र राव

आस्थान के पौत्र व जोपसा के पुत्र उहड़ से 'उहड़' शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। राव सीहा का मृत्यु शिलालेख 1273 ई. का है जो पाली के बीठू ग्राम से प्राप्त होता है जिसके अनुसार उहड़ के गद्दीनशीनी का समय 1313 ई. के आसपास का प्राप्त हुआ है। उहड़ राठौड़ों के कोरणा, वाघावास जैसे अनेक ठिकाने एवं इनके पट्टे में 32 जागीरी के गांव रहे थे। कोरणा उहड़ राठौड़ों का प्रथम श्रेणी का ठिकाना रहा। वर्तमान में कोरणा जोधपुर से 60 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां की शोध यात्रा करने पर उहड़ राठौड़ों से सम्बन्धित 4 शिलालेख प्राप्त हुए जिसमें उहड़ राठौड़ों के सन्दर्भ निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है-श्री गुलाबसिंह का मृत्यु स्मारक शिलालेख, उहड़ खेतसी का देवली अभिलेख, उहड़ संदसजी का मृत्यु स्मारक शिलालेख, ठाकुर बलवंत सिंह का मृत्यु स्मारक। इसके अलावा बाघावास में उहड़ सुंदरदास का मृत्यु स्मारक शिलालेख, उहड़ अखेराज का मृत्यु के शिलालेख मिलते हैं।

❊ ❊ ❊

नागौर एवं मूण्डवा मेलों की व्यवस्था तथा कतिपय प्रसंग (18वीं शताब्दी के संदर्भ में)

कामिनी जांगिड़

समाज को अनवरत चलायमान रखने हेतु जनसमुदाय एवं आर्थिक निरूपता का चलवती होना आवश्यक है। जनसमुदाय रूपी घटक सभ्यता के जिस अंग का निर्माण करती है उसका मूलभूत भाग संस्कृति है जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से लोकानुरंजन से प्रभावित रहती है। ठीक इसी प्रकार आर्थिक व्यवस्था वस्तु-व्यापार एवं क्रय-विक्रय से पुष्ट होती है। लोकानुरंजन एवं आर्थिक क्रियान्विति को सामाजिक स्तर पर एक पटल पर प्रारूपित करने की परिणिति ने मेलों को स्वरूप प्रदान किया है। यद्यपि यह चिरकाल से भिन्न स्वरूपों एवं स्तर पर आयोजित किये जाते थे परन्तु 18वीं सदी में इनका उन्नत स्वरूप विकसित हो गया था जो वर्तमान में भी निरन्तर है। राजस्थान की रंग बिरंगी जीवन-शैली में तो मेलों का महत्व और भी बढ़ जाता है जहां हर वर्ग, धर्म, जाति एवं स्तर के लोग समकक्ष स्तर पर आकर सामाजिक सौहार्द एवं सामूहिक आर्थिक विकास के साक्ष्य बनते थे। यद्यपि सम्पूर्ण राजस्थान मेलों की विविधता एवं विशेषता कदाचित विश्व प्रसिद्ध है परन्तु इनमें मुण्डवा एवं नागौर के मेले अपनी मान्यताओं, उद्देश्यों, व्यवस्था एवं लौकिक सामंजस्यता के आधार पर अनूठे है। रियासत काल की 18वीं सदी में स्थानीय एवं पड़ौसी शासक इनके आयोजन एवं व्यवस्था को सुनिश्चित करते थे। धर्म जाति एवं आध्यात्मिक भावनाओं के संयुग्मन में इन्हें आर्थिक गैर व्यावसायिक पटल पर भी विकसित किया गया था। इनकी सांस्कृतिक विरासत के तथ्य कंठ लोक किंवदंतियों,

शिलालेखों, मंदिर स्थापत्य पर मिलते हैं परन्तु विस्तृत वर्णन एवं सटीक पृष्ठभूमि का आकलन, राजकीय बहियों से प्राप्त होता है जिनमें नागौर, बीकानेर तथा मारवाड़ अंचल की बहियां श्रेष्ठ स्रोत के रूप में ऊभर कर आती है। इनमें पदाधिकारियों का चयन एवं नियुक्ति, सुरक्षा सैन्य व्यवस्था, आर्थिक प्रबंधन, लोक सहभागिता आदि व्यवस्थाएं प्रत्यक्ष राजकीय स्तर पर नियंत्रित होती थी। उपरोक्त समस्त व्यवस्थाओं के लिए राजा आदेश पत्र निकालता था जिनका विस्तृत वर्णन बहियों एवं लेखा-जोखा पुस्तकों में प्राप्त होता है। मेलों में जनभागीदारी को बढ़ाने हेतु व्यापारियों को और ग्राम मुखिया स्तर पर परवाने भेजने की व्यवस्था थी। राजा विशेषाधिकार के रूप में कर नियंत्रण एवं उनमें छूट द्वारा भी मेलों का महत्व एवं आयोजन सफलता सुनिश्चित करता था।

नागौर तथा आसपास के परगनों में भरने वाले इन मुख्य मेलों के साथ ही अन्य उर्स तथा समारोहों का आयोजन बड़े हर्षोल्लास के साथ होता था। मुस्लिम समुदाय के विशिष्ट आयोजनों की जानकारी मजमुन-ए-हालात बही में संदर्भित है। मेलों का आयोजन एवं व्यवस्था की समेकित समीक्षा - शासकीय स्तर पर इन मेलों को सफल बनाने के लिए विशेष प्रयास किये जाते हैं। स्थलन उपलब्धता सुनिश्चयन से आरम्भ होकर, तिथि निर्धारण, संदेश प्रेक्षण, पदाधिकारी कार्य वितरण, आर्थिक सुनिश्चयन, डेरों का प्रबंधन, यातायात, सुरक्षा, मवेशियों की सुरक्षा एवं प्रोत्साहन योजनाओं आदि में राजा का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रकट होता है। इस प्रकार 18वीं शताब्दी में नागौर तथा मूंडवा के मेलों का स्वरूप एवं व्यवस्था अपने चरमोत्कर्ष पर थी। यह लोक मनोरंजन के साथ-साथ आर्थिक सुदृढ़ता, धार्मिक सौहार्द के ध्येय को पूरा करने में पूर्ण रूप से सम्बल थी। इन मेलों के विस्तृत अध्ययन से नागौर के तत्कालिक सामाजिक संगठन, आर्थिक स्थिति तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं की सटीक रूपरेखा प्राप्त होती है।

❊ ❊ ❊

सूरदास और उनकी गोपियाँ

बिनिता श्रीवास्ताव

सूरदास जी ने अपनी रचनाओ में नारी जीवन से जुड़े नवीन प्रसंगों का उद्घाटन किया है जो समाज के साथ-साथ सामंती सोच को चुनौती देता हुआ आता है जिसमे स्त्रियाँ न केवल सामाजिक बंधनों को तोड़ती हुई आती है वरन् व्यवस्था, नागरी समाज प्रबुद्ध वर्ग के समक्ष प्रश्न भी उठाती है जो उस समय के समाज ने दुर्लभ था। इसका कारण है कि सूरदास जी ने न तो नारी को दुर्गम घाटी कर कर सर्वत्र निंदा की है न ही विशिष्टि आदर्शीकरण करके उनके लिए कोई प्रतिमान गढ़ने का प्रयास किया है और न ही सूफी कवियों की भांति नारी को सातवे आसमान पर बिठाकर 'परमात्मा' बनाया है।

सूरदास ने जिस नारी को अपने काव्य में सृजित किया है जिसके माध्यम से नारी जीवन से जुड़े प्रसंगों को मार्मिकता से उठाया है वह है केवल गोपियाँ, उसका एक परिचय है कि वह ब्रजनारी है। गोपिकाएँ व्यक्ति नही है एक समुदाय है जो बेजोड़ तरीके से जीवन जीती है और तमाम सामाजिक प्रतिबन्धों को धत्ता बताकर छिन्न-भिन्न कर देती है।

सूर की गोपिकाएँ मात्र गोपिका नही है वरन् वे नारी है प्रणयिनी एवं प्रणयवंचिता। सूर की गोपियाँ कृश्ण से प्रेम करती है जो सहज व स्वाभाविक है। प्रेम के आगे वे समाज के सभी बंधनों, वेदविहित आदर्शो, गुरूजनों द्वारा बनाए मूल्यों की परवाह नही करती वरन कृश्ण के प्रेम में अपना सब कुछ न्यौछावर कर देती है। गोपिकाएँ राधा व यशोदा की उपेक्षा मुखर है वे स्वाभिमानी है जिस प्रेमी ने उनकी हृदय भंजित किया, उनसे कटु मजाक किया, उससे अपनी दीनता की व्यथा नही कहती है। पर चुटिला हृदय मौन नही रहेगा। और वे कृष्ण के चरित्र का कच्चा चिट्ठा, उद्धव को मूर्ख बनाने की चाल-उद्धव के समक्ष कह उठती है। अपने आक्रोष में वे कृश्ण मथुरा, कुब्जा उद्धव, मथुरा के सम्पूर्ण परिवेश को घसीट लेती है। अपने प्रेम को लेकर गोपिकाओ में न कही, अपराध भावना है और न ही कुछ छिपाने की भावना। वे अपनी भावना के साथ सत्य से जीती है और उसी सत्य की दूसरे पास से अपेक्षा भी करती है। वह बराबरी के प्रेम में विश्वास करती है। गोपिकाओं ने उस कृश्ण से प्रेम किया था ब्रज की गलियों में घूमा करता था न कि मथुरा के राजा कृष्ण से। सूरदास का गोपिका वर्णन अप्रतिम है उनमें जो नारी चित्रित हैं वह युग काल की सीमाओं को रौदकर प्रतिष्ठित है। वह नारी एक सम्पूर्ण नारी है जिसके पास जितनी गहरी आस्था है उतनी गहरी विश्लेषण षक्ति। जो जितना डूबकर प्रेम कर सकती है, उतना ही तड़पकर चौट ली कर सकती है।

❊ ❊ ❊

बीकानेर में लोक नाट्य : ख्याल एवं रम्मत परम्परा - एक परिचय

डॉ. महेन्द्र पुरोहित

लोक-नाट्य, लोक-साहित्य का अभिन्न अंग है। कथा, कहानियों, गीतों और विभिन्न प्रकार की लघु-वार्ताओं की तुलना में, यद्यपि लोक-नाट्यों का कोई सुव्यवस्थित रूप हमें नही दिखाई देता, फिर भी लोक-जीवन के सामूहिक उल्लास और सुख-दुख की अभिव्यंजना की दृष्टि से इनका अपना एक बहुत ही महत्व है। ऋतु-उत्सव, पर्वोत्सव, यज्ञानुष्ठान एवं मनोरंजन के अन्य विविध अवसरों पर लोक-समुदाय (लोक-जन) इन नाट्यों का बड़े ही हर्ष के साथ आयोजन करता है। 'रम्मत', 'ख्याल', 'तमाशा' आदि सभी विधाएं इसी लोक-नाट्य के अंतर्गत आती है। विस्तृत राजस्थान

प्रदेश में इस प्रकार के और भी अनेक लोक-नाट्य प्रचलित है। जन-साधारण के लिए 'रम्मत' और 'ख्याल', मनोरंजन के लिए एक ही वस्तु है। वे इसमें किसी भी प्रकार के भेद जैसी कोई बात नहीं देखते है, लेकिन बीकानेर के लोक-नाट्य में इसका बहुत ही बड़ा भेद देखने को मिलता है। यहां के लोक-नाट्यों में 'रम्मत' का तात्पर्य एक ऐसे बंधे-बंधाए खेल से रहा है, जिसका कथानायक कोई ऐतिहासिक, सामाजिक अथवा धार्मिक व्यक्ति होता है तथा उसके जीवन को लेकर पद्य-ब) कथा का ग्रंथन किया जाता है। 'रम्मतों' में पहले सफाई करने के लिए सफाई वाला आता है, फिर छिड़काव करने के लिए भिश्ती आता है और फिर क्रमश: हलकारा, प्रधान-पात्र आदि आते है, लेकिन 'ख्याल' की अपनी अलग ही परम्परा रही है। 'ख्यालों' में किसी भी प्रकार की सर्ग-बद्ध कथा नहीं रहती। इसमें पहले-पहल श्री गणेश जी की स्तुति-प्रार्थना रहती है, फिर श्री रामसापीर (बाबा रामदेव जी) की स्तुति, फिर लावणी, चौमासा और अंत में ख्याल रहता है।

'रम्मतें' और 'ख्याल' आदि, लोक नाट्य, फाल्गुन (होली) के महीने में ही हुआ करते है। ख्यालों में उस समय की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि कुरीतियों को लेकर उस पर तीखा व्यंग्य किया जाता है। ख्यालों में दो घोड़ों पर दो 'सवार' और दो 'मैरियां' (स्त्री पात्र) प्रधानत: रहते है। ख्याल लोक नाट्य का एक प्रकार, गीत की एक शैली, हास्य प्रधान मालवी गीत अथवा चित्र के लिए प्रयुक्त लोक-प्रचलित शब्द है। ''..... गाने की शैली और धुनों के अनुसार ढाड़ा या खड़ी रंगत का ख्याल, लंबी रंगत या तावील का ख्याल, सिक्स्ता ख्याल या लंगड़ी रंगत का ख्याल, लावनिया ख्याल, डेढ-रंगती ख्याल, छोटी रंगत का ख्याल।'' आदि भेद-उपभेद भी उल्लेखनीय है। लोक-नाट्यों के इन 'ख्यालों' और 'रम्मतों' की लोक-प्रियता पर तथा इनकी प्रमुख विशेषताओं पर भी हम यहां थोड़े में विचार कर लेना समीचीन समझते है। नाटकों के लिए एक सुनियोजित मंच की आवश्यकता रहती है। मंच के अभाव में कोई भी नाटक नहीं खेला जा सकता, लेकिन इन रम्मतों के लिए इस प्रकार की कोई आवश्यकता नही रहती। गांव में या शहर में कहीं भी खुले मैदान में रम्मत खेली जा सकती है। इसमें एक तरफ खिलाड़ी लोग बैठ जाते है और वृताकार में जन समुदाय बैठ जाता है तथा आंनदपूर्वक देखता रहता है, यह सब। नाटकों के तरह इनमें पर्दे आदि किसी प्रकार के झंझटों की आवश्यकता भी नहीं रहती। नाटकों के लिए किसी संस्थान या कमेटी की आवश्यकता रहती है जो व्यवस्था, खर्च आदि अपने पर ले सके, लेकिन रम्मतों में ऐसा कुछ भी नही होता।

बीकानेर में इस समय हमें रम्मते और ख्याल सब मिलाकर आठ-दस स्थानों पर ही देखने-सुनने को मिलते है। जिनमें स्व. मेघराज जी आचार्य (मेघसा उस्ताद),

आचार्यों का चौक: रम्मत अमरसिंह की, स्व. जीतामल सेवक, मरूनायक जी का चौक: रम्मत हेड़ाऊमैरी की, श्री फागूजी व्यास, भट्टड़ों का चौक, श्री तनसुख जी रंगा और श्री सूवा महाराज, बारह गुवाड़, श्री रजंदर महाराज, दम्माणियों का चौक, श्री हीरालाल जी बिस्सा और बाद में श्री रमणसा बिस्सा, बिस्सो का चौक, श्री कालू जी सूरदासाणी पुरोहित, बारहगुवाड़, दरजियों की गुवाड़, स्व. श्री खाजू महाराज, भादाणियों की प्रोळ, बड़ा बाजार (अब बंद हो गई), श्री जमनादास जी कल्ला, कीकाणी व्यासों का चौक, श्री मणिराम जी पुरोहित सूर-दासाणी,सत्यनारायण जी का चौक, हनुमान-हत्था, सिकलीगरों का मुहल्ला, जेसोळाई-बड़ी इत्यादि प्रमुख है।

❊ ❊ ❊

नागौर अधिपति : राव अमरसिंह

कमलेश राठी

भारतीय इतिहास के अध्ययन में राजस्थान के इतिहास का अध्ययन महत्वपूर्ण सर्ग रहा है और राजस्थान का ऐतिहासिक अध्ययन बिना मारवाड़ के अध्ययन सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। मारवाड़ (जोधपुर रियासत) में राठौड़ राजपूतों का शुरू से आधिपत्य रहा, राठौड़ वंश के शासकों ने मारवाड़ द्धजोधपुरऋ के विकास का आधुनिक रूप प्रदान किया। वीर प्रसूता राजस्थान की धरती पर अनेक वीरों ने अपने राष्ट्र धरती, मर्यादा, धर्म आत्मसम्मान की रक्षा हेतु अपने प्राणों की आहूतियां देकर राजस्थान ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष के इतिहास में अपना अलग ही मुकाम हासिल किया, जिनमें राव अमरसिंह राठौड़ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ज्ञातव्य है कि अमरसिंह महाराजा गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। राव अमरसिंह राठौड़ ने न केवल अपनी धरती पर अपितु सुदूर प्रदेशों में भी अपनी वीरता, प्रतिभा, कर्त्तव्यपरायणता, स्वामीभक्ति, रणकुशलता की ऐसी मिसाल कायम की, ऐतिहासिक अध्ययन की कड़ी में राव अमरसिंह, जो कि जोधपुर के महाराजा गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे, नागौर के अधिपति के रूप में प्रसिद्ध हैं। ज्ञातव्य है कि मिणियारी गांव जसवन्त सोनगरा के बेटे जगन्नाथ को पट्टे में मिला हुआ था। जगन्नाथ ने यहीं पर अपनी बहन का विवाह बड़ी धूमधाम से किया था। राजघराने में यह परम्परा रही है कि विवाह होने के पश्चात् रानी का नाम बदल दिया जाता है। अत: भगवती बाई का नाम बदलकर मनसुखदे रखा गया। मारवाड़ रा परगना री विगत के अनुसार इसी मनसुखदे रानी की कोख से वि.सं. 1670 पोष सुदि 11 रविवार (दिसम्बर 12, 1613 ई.) को अमरसिंह का जन्म हुआ। गजसिंह ने दक्षिण के समय जितने भी युद्ध लड़े थे, उन सभी में अमरसिंह ने अपने शौर्य का परिचय दिया था। संवत् 1690 (1634 ई.) वैशाख के मास में गजसिंह की मृत्यु के पांच वर्ष पहले मारवाड़ के समस्त

सरदारों की सभा में अमरसिंह को उत्तराधिकार से वंचित करने और देश निकाला की सजा सुनाई गई। आगे चलकर राव अमरसिंह नागौर का शासक बना पर अपने वतन में कम समय ही भोग पाया और शाही सेवाओं में रहते हुए ही अपने शासन-प्रबन्ध को सम्भाला।

जोधपुर से अमरसिंह राठौड़ को विलग कर देने के पश्चात् महाराजा गजसिंह की सिफारिश से उसे शाही अधिनता में रहकर विभिन्न युद्ध अभियानों में भाग लेने का सुअवसर मिला। उसकी सैन्य शक्ति और वीरता से बादशाह शाहजहाँ इतना प्रभावित था कि उसे समय-समय पर खिलअत का सम्मान और मनसब वृद्धि कर उसका मान बढ़ाया। शाहजहां के समय के नागौर से ही प्राप्त 1 मुहर्रम 1040 हि., 31 जुलाई 1630 ई. के एक फारसी अभिलेख से स्पष्ट है कि शाहजहां ने बृहस्पतिवार 24 रमजान 1014 हि. 5 अप्रेल ई. सन 1632 को नागौर के प्रान्तपति नवाब सिपहसालार खान-ए-खानां महावत खां को दक्षिण और खानदेश का सूबेदार नियुक्त किया। किन्तु नागौर की जागीर अमरसिंह के पास रहने दी गई जो उसके पूर्व जीवनकाल में उसी के अधिकार में रही। अमरसिंह को 4,37,500 रुपये (17500000 दाम) की जागीर मिली। शाहजहाँनामा के अनुसार 29 जमादि-उस-सानी (पौष सुदि 1, गुरूवार, दिसम्बर 11, 1634 ई.) को अमरसिंह पांच सदी जात 200 सवारों के इजाफे से ढाई हजार जात-डेढ़ हजार सवारों का मनसबदार हुआ। उसको झंडा, घोड़ा और हाथी भी मिला।

अमरसिंह निसंदेह स्वाभिमानी प्रवृति का होने के साथ ही हठी स्वभाव का था। यही कारण रहा कि महाराजा गजसिंह ने जसवंत सिंह को जोधपुर का उत्तराधिकारी नियुक्त किया। अमरसिंह ने अपने तलवार के बल पर नागौर का शासन प्राप्त किया। अमरसिंह ने न केवल मारवाड़ में ही अपनी वीरता का प्रदर्शन किया अपितु मुगल दरबार में और मुगल सैन्य अभियान में भी अपनी वीरता का लौहा मनवाया। निरंतर स्वामी भक्ति कर्त्तव्य परायणता, रणकुशलता आदि गुणों के कारण मुगल बादशाह के साथ अच्छे संबंध बने रहे और निरंतर उनके मनसब और सम्मान में वृ) होती गई।

❊ ❊ ❊

प्राच्य संस्कृति में दान का स्वरूप

डॉ. रक्षा कंवर

दान देने की परम्परा हमारे यहां अतिप्राचीनकाल से चली आ रही है, जो हमारी धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना का अंग है। भारतीय संस्कृति की मूल विशेषता ही उसके भोगमूलक ना होकर त्यागमूलक होने में है। ऋग्वेद की अनेक ऋचायें दान की महिमा से भरी पड़ी है। राजस्थान में दानशीलता की इस अतिशय समृद्ध और गौरवशाली

सांस्कृतिक परम्परा का संक्षिप्त परिचय देने के साथ-साथ दान के विविध रूपों का भी उल्लेख कर देना असंगत न होगा क्योंकि सभी प्रकार के दान दिए जाने की परिपाटी रही है। यों तो देय वस्तु के अनुसार दान के भी अनन्त भेद हो जाने से उनकी संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती परन्तु प्राचीन काल से क्षत्रिय नरेशों द्वारा हमारे धर्माशास्त्रानुसार जो दान दिये जाते रहे हैं, उन्हें हम विवेचन-सुविधा के लिए निम्न स्वरूप से प्रस्तुत कर सकते है-1. अन्नदान, 2. पशुदान, 3. भूमिदान, 4. जलदान, 5. महादान, 6. विशिष्ट अवसरों पर देय दान, 7. धनदान: 'लाख पसाव', 8. छायादान।

मध्ययुग में भी राजाओं द्वारा इस परम्परा का बड़ी निष्ठापूर्वक पालन किया जाता था, जो न्यूनाधिक रूप से आज तक चली आ रही है। राजघरानों की और से सदाव्रत की स्थायी व्यवस्था करने हेतु मन्दिर के नीचे जागीर निकाले जाने के भी उदाहरण मिलते हैं, जैसाकि सन् 1719 के गडबोड गांव के ताम्रपत्र से पता चलता है, जो महाराणा संग्रामसिंह के समय कार है। 1900 रु. की आय का यह गांव चारभुजा के मन्दिर में सदाव्रत के लिए बाईराज तथा कुंवर जगतसिंह ने वहां दर्शनार्थ आने के समय पुण्यार्थ दिया।

❊ ❊ ❊

मेवाड़ की मृणशिल्प-मोलेला के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. ममता पूर्बिया

मेवाड़ के हस्त कलाओं का भण्डार है, जो स्वदेशी, स्वाश्रयी और स्वावलम्बन की भावना को पुष्ट करती है। मेवाड़ की ये हस्तकला देश में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में अपने ज्ञान का परचम फहरा चुकी है। गौरवमयी इतिहास और इन्द्रधनुषी सांस्कृतिक परम्पराओं के साथ ही लगनशील परिश्रमी हस्त-शिल्पियों की वंशानुगत कला भी मेवाड़ की विशिष्ट पहचान रही है। काष्ट कला क्षेत्र में बस्सी गांव की जो प्रतिष्ठा है वहीं प्रतिष्ठा लोक देवी-देवताओं की मृणशिल्प की दृष्टि से मोलेला गांव की है। मोलेला गांव के कुम्हारों ने तो मिट्टी से जीवन निर्माण के यर्था को ही साकार कर दिया, देवी-देवताओं की मूर्तियों की दृष्टि से अब इस गांव की प्रसिद्धि विदेशों में फैल चुकी है। मोलेला की प्राचीनता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि पहले यहां जैगढ़ नामक गांव था। इसे 'जूना नाथद्वारा' भी कहते थे। आज भी यहाँ विट्ठलनाथ जी का मन्दिर है, जिसकी सेवा-पूजा की व्यवस्था नाथद्वारा के श्रीनाथजी की ओर से ही होती है। जैगढ़ बिखरने के बाद मोलेला अस्तित्व में आया। मोड़ पर बसे होने के कारण प्रारम्भ में इसे 'मोडेला' कहते थे। धीरे-धीरे मोड़ेला से बिगड़ते-बिगड़ते मोलेला हो गया। मोलेला की पारम्परिक मृणशिल्प कला हाथों द्वारा टाइल्स के रूप में किया गया सृजन बेहद

खुबसूरत और बेजोड़ होता है। कभी-कभी चाक का प्रयोग भी किया जाता है। परन्तु प्लेटवर्क ही इसकी मूलत: शैली है। हस्तशिल्प हाथ के कौशल से तैयार किए गए रचनात्मक उत्पाद हैं जिनके लिए किसी आधुनिक मशीनरी और उपकरणों की मदद नहीं ली जाती है।

यहाँ के कुम्हारों द्वारा बनाई गई देवी देवताओं की रंग-बिरंगी कलात्मक मूर्तियों को हिंगाड़ कहा जाता है जो विशेष संस्कारों के साथ भोपे ले कर जाते है, और गांव-गांव में उनकी स्थापना कर अपनी मनोकामना पूर्ण करते हैं। अलग-अलग देवी-देवता, उनकी पूजा-प्रतिष्ठा और मान-मनौती, उनकी लम्बी परम्पराएँ, लम्बी गाथाएँ, यशगान-भारत, रात्रि-जागरण और जन्म से लेकर परण-मरण के हर महत्वपूर्ण संस्कारों के साथ इनकी आवश्यकीय भूमिकाएँ होती है। लोकजीन में इनका वर्चस्व कितना है, इनके प्रति कितनी अडिग बलवती-फलवती आस्थाएं है। ये समृद्धि-खुशहाली के प्रतीक है। इनका रूठना, रोग, शोक, दु:ख का उमड़ना इनका प्रसन्न होना, खेती लहलहाना, शान्ति और अमन चैन की वर्षा होना जैसा है। जीवन में इन्हीं देवी-देवताओं के आशिष होने से संबंल, सहारा, विश्वास और भरोसा मिलता है।

मोलेला गांव दशकों से मृणशिल्प कला को अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति और हुनर के दम पर जिंदा रखे हुए है। इसी कारण भारत सरकार ने मोहनलाल कुम्हार को पद्मश्री प्रदान कर सम्मानित किया है। एक ग्रामीण कलाकार को ऐसा सम्मान मिलना गर्व की बात है। राजसमंद के तीसरे गौरव के नाम से प्रसिद्ध मोहनलाल कुम्हार जिले के तीसरे शख्स हैं। इससे पहले लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत को राजस्थानी साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए और पुरूषोत्तम पखावज को वाद्यकला का बेशुमान अनुभव बांटने के लिये पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानीन किया है।

❊ ❊ ❊

पूर्व मध्यकालीन मत्स्य की एक मन्दिर-नगरी राज्यपुर (राजगढ़)

आशिद खान

राजोरगढ़ अथवा राजगढ़ जिसे यहां से प्राप्त अभिलेख में राज्यपुर कहा गया है, प्रतिहार शासकों के अधीन वह क्षेत्र था जहां प्रतिहार मन्दिर-कला का समुचित विकास हुआ। यहां पर स्थित शैव मन्दिर के कारण ही आज इसे नीलकण्ठ के नाम से जाना जाता है। अलवर शहर से 45 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में यह स्थान अरावली की ऊँची पहाड़ियों के मध्य में स्थित है। यह एक समय में अभेद्य दुर्गीकृत नगर था। दसवीं

शताब्दी ई. में यह राज्यपुर के नाम से बड़े-गुर्जर राजपूतों की राजधानी हुआ करता था। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की एक विशाल मूर्ति होने के कारण मध्यकाल में इस नगर को परानगर (पार्श्वनगर) कहा जाने लगा। बड़-गुर्जरों के शासनकाल में जो कि प्रतिहारों के ही सामन्त थे और शायद उन्हीं की एक शाखा थे यहां पर शैव एवं जैन दोनों ही मतों का विकास हुआ।

बड़गुर्जरों के बाद राजोरगढ़ (राजगढ़) पर खानज़ादों का शासन स्थापित हुआ जिन्होंने मुगलों के अधीनस्थों के रूप में शासन किया। मुगलों ने यह क्षेत्र कच्छवाहों को प्रदान कर दिया। आज तब हम नीलकण्ठेश्वर मन्दिर की ओर जाते हैं तब एक द्वार से होकर प्रवेश करना पड़ता है इस द्वार का निर्माण कछवाहा शाह जयसिंह ने 1686 ई. में कराया था। इस क्षेत्र को दुर्गीकृत करने का श्रेय माधोसिंह को जाता है जिसने 1760 से 1773 ई. तक शासन किया। यहां उसने एक तालाब का भी निर्माण कराया जिसे मधु ताल के नाम से जाना जाता है। जब राजधानी अलवर में कर दी गई तब इस स्थान ने ध ीरे-धीरे अपना राजनीतिक महत्व खो दिया। हालांकि इसका धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व काफी बाद तक बना रहा।

राज्यपुर अथवा राजगढ़ के अधिकांश शैव और जैन मंदिरों का सम्बन्ध निश्चित रूप से गुर्जर प्रतिहार काल से ही है। इन सभी मंदिरों का निर्माण लगभग आठवीं सदी से लेकर बारहवीं सदी के मध्य हुआ था। गुर्जर प्रतिहारों ने मन्दिर निर्माण कला एवं सौन्दर्यशास्त्र को गुप्तों से ग्रहण किया परन्तु गुर्जर प्रतिहारों ने गुप्त कला को एक नई गति एवं ऊर्जा प्रदान की। पूर्व मध्यकालीन स्थापत्य की दृष्टि से राजगढ़ के ये मंदिर खजुराहों की कला के प्रेरक स्वीकारे जा सकते हैं। राजगढ़ के इन मंदिरों जिनमें शैव मंदिरों की अधिकता थी, एक विशेषता यह भी है कि यहां के जैन मंदिर शैव मंदिरों से पूर्व के ज्ञात होते हैं, जबकि अन्य स्थानों पर जैन मंदिरों पर शैव मंदिरों की नकल की गई है।

❊ ❊ ❊

दादू के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का विश्लेषण : मध्यकालीन राजस्थान के ऐतिहासिक सन्दर्भ में

अमृता जायसवाल

मध्ययुगीन भारतीय समाज में अनेक संतों का उद्भव हुआ। भक्तिकालीन संतों की इस कड़ी में, 16वीं शताब्दी के भारतीय समाज में एक ऐसे संत का प्रादुर्भाव हुआ जिनकी भूमिका राजस्थान के भक्ति आन्दोलन में बड़ी अहम रही है। निर्गुण मार्ग के संत कवि दादू का पोषण मध्ययुग की उन परिस्थितियों में हुआ, जिससे उनको सामाजिक

राजनैतिक व धार्मिक रूढ़ियों एवं आडम्बरों का सामना करना पड़ा, जिससे उनके व्यक्तित्व एवं काव्य को एक विशेष दृष्टि मिली। दादू ने मध्ययुगीन समाज की इसी अव्यवस्था के विरोध में अपना स्वर मुखर किया और अपनी विचारधारा एवं सिद्धान्तों के द्वारा समाज में प्रचलित समस्त बुराईयों का खण्डन-मण्डल करते हुए समाज में एक नई चेतना जागृत कर समाज में समानता एवं मानवता की प्रतिष्ठा बढ़ाने में अपना अतुलनीय योगदान दिया। उनकी रचनाओं में तात्कालीन समाज की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थितियां किस पर प्रकार प्रतिबिम्बित होती है तथा निम्नवर्ग, छुआछूत व जांत-पांत पर उनकी प्रतिक्रिया ने किस प्रकार समाज को प्रभावित किया तथा वर्तमान समय में उसकी प्रासंगिकता किस प्रकार बनी हुई है और साथ ही साथ उस समय के कृषक एवं शिल्पी जीवन का भी चित्रण मिलता है। जो उनके रचनाओं में निम्न वर्गीय स्थिति एवं आर्थिक व्यवस्था के रूप में उभरकर सामने आता है।

16 वीं शताब्दी में मध्यकालीन राजस्थान तथा समाज को समझने के लिए सूचनाओं के स्त्रोत के लिए हिन्दी साहित्य के रूप में तथा इससे बढ़कर एक गैर सरकारी स्त्रोत के रूप में अतुलनीय है तथा आधुनिक समाज उन समस्त बुराइयों (विकृतियों) अथ्वा मिथ्याचारों से आज भी रहित नहीं हो सकता है जो दादू के समय विद्यमान थे। इसलिए उनके निवारण के सम्बन्ध में दादू ने जो विचार प्रस्तुत किए हैं वे आज भी उन परिस्थितियों में उपयोगी है क्योंकि समस्त संस्कृतियाँ एवं मानवीय मूल्यों की आचार संहिता मनुष्य को केन्द्र में रखकर रची जाती है। इसलिए उनके विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितने मध्यकालीन समाज में था।

❊ ❊ ❊

पश्चिमी राजपूताना में डाक व्यवस्था के संचालन में निरन्तरता एवं परिवर्तन:मारवाड़ के विशेष सन्दर्भ में (1750-1900 ई.)

सोनिया शर्मा

किसी भी राज्य की डाक व्यवस्था उस साम्राज्य की सुदृढ़ता का आधार स्तम्भ होती है। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् देशी रियासतों में अंग्रेजी डाकखानों की स्थापना की गई जो देशी रियासतों में प्रचलित व्यवस्था से अधिक श्रेष्ठ और उन्नत अवस्था में थी। प्रत्येक राज्य की अपनी अलग व्यवस्था थी, जिसका संचालन हलकारों के माध्यम से किया जाता था राज्यों की डाक में सरकारी पत्र-व्यवहार, एक-दूसरे राज्यों के साथ पत्रों का आदान-प्रदान, शासकों के राजधानी से बाहर रहने पर

सम्पर्क बनाऐ रखना शामिल था। एक तरह से डाक व्यवस्था राज्य की सूचना तंत्र का मुख्य आधार स्तम्भ थे। राजपुताना के शासक अपनी राज्य का एक निश्चित भाग डाक पर खर्च करते थे जोकि अपने सूचना तंत्र को सुदृढ़ बना सके। देशी रियासतों द्वारा अपनी डाक को एक जगह से दूसरी जगह भेजने के लिए अलग-अलग साधन काम में लिए जाते थे, ताकि आवश्यकतानुसार सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जा सके।

डाकघरों की स्थापना से ब्रिटिश सरकार और राज्य सरकार को तो प्रशासन चलाने में सहायता मिली ही, पर आम जनता भी उससे लाभान्वित हुई। व्यापार वाणिज्य के विकास में भी संचार व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा। डाक व्यवस्था के कारण व्यवसायिक केन्द्र आपस में जुड़ गये, जिससे आयात-निर्यात व्यापार तीव्र गति से होने लगा। तारघरों की स्थापना से संचार व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। 1889 ई में मारवाड़ राज्य में आधुनिक तार व्यवस्था प्रारम्भ की गई।

❊ ❊ ❊

पश्चिमी राजपूताना में दशनामी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मठ व अखाड़े

श्रीमती पंकज परमार

'दशनामी सम्प्रदाय' सन्यासियों का एक ऐसा वर्ग जो अपनी उत्पति ब्रह्म से जोड़ते है और मकरान की हिंगलाज माता व शैव मत के अनुयायी है। इस सम्प्रदाय को दशनामी कहने का कारण यह है कि सर्वप्रथम जगतगुरू शंकराचार्य ने धर्म और दर्शन के विस्तार हेतु चार दिशाओं में चार मठों (श्रृंगेरी मठ, शारदा मठ, गोवर्धन मठ औरा ज्योति मठ) की स्थापना कर वहां पर अपने चार शिष्यों को पीठाधीश नियुक्त किये। मारमण्डिय, दत्रातेय, पारासर, भारद्वाज गौतम आदि ऋषि इसी सम्प्रदाय के हुये है। जगतगुरू शंकराचार्य के इस शिष्यों के नाम से दस भेद चले जिन्हें दशनामी कहा गया ये 'तीर्थ', 'आश्रम', 'वन', 'आरण्य', 'गिरी', 'पर्वत', 'सागर', 'पुरी', 'भारती', 'सरस्वती' है। आचार्य शंकराचार्य के 7 अखाड़े व 52 मढ़ी है। तदन्तर इस सम्प्रदाय की बढ़ती लोकप्रियता ने मठो व अखाड़ों की स्थापना की गई जहां पर सन्यासियों के द्वारा शास्त्र ज्ञान और अस्त्रों का अभ्यास करते थे।

दशनामी घरबारी भी होते है। 'नागे सन्यासी मठ' और अखाड़ों में रहते है अपने साथी साधुओं के पास 'नागों' की पदवी 'निहंग' और 'अवघूत' है। ये अपने पास केवल मृगचर्म, कमण्डल तथा एक चिमटा और लम्बे केश रखते है। इतिहास के किसी काल-खण्ड में सनातन धर्म रक्षार्थ माठ (सीमा) पर स्थापित मठ रक्षक चौकियों के रूप में स्थापित किये गये थे। कभी सैन्य गतिविधियों की गहमागहमी से भरपूर तो कभी धर्म और दर्शन के गूढ़ रहस्यों की व्याख्या तथा शास्त्रार्थ के दंगल का केन्द्र रहे ये मठ व अखाड़े भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

वस्तुत: हम कह सकते है कि पश्चिमी राजपूताना में दशनामी सम्प्रदाय के मठों की स्थापना अधिक विशिष्ट रही है। जिनका उल्लेख ऐतिहासिक पुस्तकों में मिलता हैं तथा जिनके आधार पर ही तथ्यों को उजागर किया गया तथा इन्हीं साधु सन्यासियों के कारण ही ये मठ अस्तित्व में आये और इन मठों व अखाड़ों में युद्ध अभ्यास व शास्त्र ज्ञान भी प्राप्त किया गया है।

❊ ❊ ❊

धौलपुर राज्य के सांस्कृतिक परिदृश्य में लोक संगीत

धीरेन्द्र कुमार

धौलपुर राज्य की संस्कृति बृज के माधुर्य और राजस्थान के अक्खडपन के लिए मशहूर है। बृज प्रदेश के करीब होने के कारण बृज प्रदेश की सांस्कृतिक परम्पराओं का यहां काफी समावेश हुआ है। इसलिए यहां के लोक कलाए एवं लोक गीत भी परम्परागत रूप से जीवित चली आ रही है। रियासत के लोक गायन नौंटकी, भेंटगीत, ब्यावले गीत, भटनी गीत, लांगुरिया, ढोला, रसिया, मल्हार होरी, बारह मासी कजरी आदि की प्रधानता है। धौलपुर संगीत व गायन को लोकप्रिय बनाने का श्रेय जाता है स्वर्गीय मास्टर बब्बू खां को जिन्होंने धौलपुर में संगीत कला मंदिर की स्थापना की तथा उसके माध्यम से बच्चों को नृत्य, वादन तथा गायन की शिक्षा के साथ-साथ धौलपुर में और भव्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा नाटकों की प्रस्तुति की। संगीत कला मंदिर के अनेक विद्यार्थियों ने विभिन्न प्रतियोगिताओं में शीर्ष स्थान प्राप्त किया है। महमूद ध गौलपुरी, धौलपुर के गौरव है जो भारत के प्रसिद्ध हारमोनियम वादकों में से एक है। आपके कार्यक्रम रेडियो व टेलीविजन पर आते रहते हैं तथा आप देश में प्रसिद्ध कलाकारों परवीन सुल्ताना, उस्तावद खां, पं. जसराज, मंगूबाई हंगल, गुलाम मुस्तफा खां, शराफत खां आदि के साथ संगत कर चुके हैं। आपको धौलपुर गजट की ओर से सांस्कृतिक एवं कला क्षेत्र में 1985 ई. का विशिष्ट नागरिक घोषित किया एवं उनका सम्मान किया गया।

धौलपुर के पं. विष्णुदत्त शर्मा धौलपुर के प्रसिद्ध गायक वादक तथा कत्थक नर्तक है। हारमोनियम पर आपको विशेष महारथ हासिल हैं। आप इस समय धौलपुर के सबसे वयोवृद्ध संगीतज्ञ है। श्री कोमलसिंह धौलपुर के प्रसिद्ध ठुमरी गायक हैं। आपको राजस्थान के ब्रजभाषा ऐकेडमी द्वारा सम्मानित किया जा चुका हैं। श्री नारायण सिंह

बैगनिया धौलपुर के प्रसिद्ध लोक नर्तक है। श्री बैगनिया का कद केवल 32 इंच हैं तथा शारीरिक रूप से कुछ अपंग भी हैं। परन्तु इन सब कठिनाइयों के बावजूद अपनी साधना व लगन से आज अच्छे कलाकरों की श्रेणी में आते हैं। आपके पास लोकगीतों व लोक नृत्यों का भण्डार हैं। आपका नाम राजस्थान पर्यटन विभाग की कलाकारों की सूची में अंकित है आप दिल्ली में आयोजित 'अपना उत्सव' कार्यक्रम में धौलपुर के लोक कलाकारों के साथ इस सम्मान का प्रतिनिधित्व कर चुके हैं।

इस प्रकार धौलपुर राजा के सांस्कृतिक परिदृश्य में लोक गीतों की विशिष्ठ भूमिका रही है। जो वर्तमान में यहां के कला और संस्कृति के जीवन्त उदाहरण हैं।

❊ ❊ ❊

महाराजा भीमसिंह का प्रशासनिक संगठन (1793-1803 ई.स.)

ममता रानी

प्राचीन काल से ही न्यास प्रक्रिया प्रशासनिक तंत्र का अभिन्न अंग है। राजा कितना भी शक्तिशाली हो परन्तु उसकी प्रशासनिक व्यवस्था पर उसकी शक्ति निर्भर करती है। राजा अपने न्याय पद्धति से ही महान बनता है।

मारवाड़ के ओहदाबही में प्रशासनिक अधिकारियों का क्रमबंद्ध अध्ययन किया गया है। मारवाड़ में छत्तीस कार्यालय थे। प्रत्येक ओहदेदारों के लिए अपने कार्यालय संबंधी समस्त कार्यों का तत्परता एवं निष्ठा के साथ दायित्व का निर्वाह किया गया है। प्रशासनिक कार्यों का वर्गीकरण विभिन्न विभागों की स्थापना करके और उनके ओहदेदार और सहायक ओहदेदारों की नियुक्ति की गई है। जैसे-जैसे राज्य का विस्तार और महाराजा की नियुक्ति होती गई ओहदेदार के पद व संख्या दोनों की बदलती गई। महाराजा का कर्तव्य होता था कि वह अपने राज्य में प्रशासनिक व्यवस्था बनाये रखे। इसके लिए किले के बाहर व अन्दर सभी प्रकार के कार्यालय व विभाग थे। प्रत्येक विभाग का मुख्य अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। वे प्रशासनिक अधिकारी मुसायब, दीवानी, बख्सर, परधानगी, किलादार, गढ़ जोधपुर किले मुसरफ, श्री हजुर री दफ्तर री दरौगाई, व्यास पदवी, मरदानी दोढ़ी दरोगा, पुरोहित, अनरै कोठार रवानसंभा, प्याद बख्शी, चौकीनवेस, तबेले घोडे रै मुसरफ, सुतरखाना दरोगा, सुतरखाना मुसरफ, खासे खजाने दरोगा, कमठे कली रो कोठार पोतदार, बारूद खानो का दरोगा, हाथियों के फील खाने मुसरफ इत्यादि हुआ करते थे।

❊ ❊ ❊

महेचा राठौड़ों का इतिहास

महेन्द्रसिंह राठौड़

महेचा राठौड़-राव मल्लीनाथजी (रावल मल्लीनाथजी मालावत मालाणी के वंशज महेचा राठौड़ कहलाते है। 12 वीं शताब्दी में किसी समय राठौड़ राजवंश के इतिहास में विरानीपुर प्रमुख गांव था। इस गांव का नाम मल्लीनाथ जी के नाम पर ही महेवा नगर पड़ा जो कि कालान्तर में मेवा नगर हो गया। मल्लीनाथजी (रावल मल्लिनाथ मंडलीक) का जन्म मारवाड़ के रावल सलखा तथा माता जाणीदे के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में सन् 1358 में हुआ था। मल्लीनाथ जी एक कुशल शासक थे। उन्होंने सन् 1378 में मालवा के सूबेदार निजामुद्दीन को हरा कर अपनी वीरता का लोहा मनवाया था। मल्लीनाथ जी ने लगभग सन् 1389 में संत उगमसी माही की शरण में जाकर उनको अपना गुरू बनाया तथा दीक्षा प्राप्त की। दस वर्ष बाद 1399 में ही चैत्र शुक्ला द्वितीया को उनका देवलोकगमन हुआ।

❊ ❊ ❊

भक्ति और कला का संगम : रणकपुर जैन मंदिर

खुशबू जैन

मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म का बहुआयामी वैभव सम्पन्न इतिहास राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य धरोहर है। मध्ययुगीन जैन मंदिर, मूर्तियां एवं स्मारक तत्कालीन धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति के दर्पण हैं। मंदिर सांस्कृति वैभव की पराकाष्ठा के प्रतीक है। धर्म दर्शन उनकी आधारशीला है। स्थापत्य कला के वे सिरमौर है। राजस्थान में स्थित 'रणकपुर' जैन धर्म के पांच प्रमुख तीर्थ स्थलों में से एक है। यह स्थान खूबसूरती से तराशे गए प्राचीन जैन मंदिरों के लिए प्रसिद्ध है। 'रणकपुर' मंदिर जैन धर्म में आस्था रखने वालों के साथ-साथ वास्तुशिल्पी रखने वालों को भी यह बहुत जगह भाती है। यह मंदिर 600 साल पुराना महाराजा कुंभा के काल में उनके मंत्री धरणाशाह के द्वारा निर्माण करवाया गया जिसके लिए उन्हें 48000 वर्ग जमीन राणा कुम्भा द्वारा भेंट स्वरूप मिली। रणकपुर मंदिर का नक्शा मुण्डारा के निवासी शिल्पी के देपा द्वारा बनवाया गया यहां के संगमरमर का पत्थर सोनना खेतड़लाजी से आया जो रणकपुर से 40 किमी दूर है। मंदिर के नीचे 84 कमरे है जो वर्तमान में बंद किए गए है। साथ ही 84 शिखर है जिस पर 84 ध्वजा चढ़ाई जाती है तथा कुल 1444 स्तम्भ है। 'रणकपुर मंदिर' में पुजारी क्रमशः पृथ्वीराज की 18 वीं पीढ़ी के कुल 9 परिवार के 10 से 12 पुजारी पीढ़ी दर पीढ़ी मंदिर के रख-रखाव प्रभु आदिनाथ की सेवा अर्चना में कार्यरत है इन्हें

मंदिर या ट्रस्टी की ओर से कोई मूल्य अथवा तनख्वाह नहीं मिलता है बल्कि जो पूजा अर्चना के समय भक्तों द्वारा चढ़ावा चढ़ाया जाता है वे उन्हें आपस में बांट लेते है। इसके अलावा भी 'आनन्द जी कल्याण जी पेढ़ी' द्वारा कुछ अन्य पुजारी भी नियुक्त किए गए है जिन्हें हर महीने तनख्वाह दी जाती है। तीर्थ के यात्रिक सुविधा से रह सके इस हेतु एक पुराने ढंग की व तीन आधुनिक ढंग की धर्मशालाएं भी बनी हुई है। भक्ति और परम्परा के संगम का यह बेजोड़, अद्‌भुत व आश्चर्यजनक प्रभाव 'रणकपुर मंदिर' में देखने को मिलता है। 'रणकपुर जैन मंदिर' राजस्थान की कला व संस्कृति का अद्‌भुत प्रदर्शन करवाता है।

❊ ❊ ❊

अतीत का उज्जवल पृष्ठ सिन्धु देश

डॉ. सूरजमल राव

प्राचीन काल से ही सिन्ध-प्रदेश और सनातन सिन्धु संस्कृति भारतीय संस्कृति का संवाहक होने के साथ उसका रक्षक भी रहा हैं। रामायण, महाभारत जैसे सनातन जीवन मूल्यों को अक्षुण्ण रखने वाले महाकाव्यों में सिन्ध प्रदेश का उल्लेख प्राप्त होता हैं। तो पौराणिक वांडमय में सिन्ध प्रदेश एवं यहां आबाद नगरों का उल्लेख मिलता हैं। संस्कृत-साहित्य में ऐसे प्रमाण भी प्राप्त होते हैं कि सिन्ध प्रदेश एक सांस्कृतिक-प्रदेश रहा हैं, जहां भारतीय सनातन जीवन मूल्य और धर्माचरण अत प्राचीनकाल से ही लोक व्यवहारिक रहा हैं। यहां प्रवाहित सदानीरा नदी सिन्धु का उल्लेख ऋग्वेद में भी प्राप्त होता हैं। त्वंसिन्धों कुभयां गोमती मूमेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे इसी वेद में सिन्धु नदी के प्रवाह की सुन्दर व्याख्या दृष्टिगत होती हैं। इस सिन्धु नदी के मातृत्व भाव और पवित्र वात्सल्य को सुन्दर उपमा से प्रस्तुत करते हुए कहा गया है ''अभित्तवा सिन्धो शिशुभिन्नमातरों वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनव: जिस प्रकार गायें अपने बछड़ों से मिलने को आतुर होकर दौड़ती हैं। सिन्धु नदी भी उसी गति और भाव से प्रवाहित हो रही हैं। इसी वेद में सिंधु नदी के संदर्भ में कहा गया है कि ''दिवि स्वनो यतातेभूम्यो पर्यनन्तं शुष्ममुदियर्तिभानुना। अभ्रादिव प्रस्तननयन्ति वृष्टय: सिंधर्यदेति वृषभो न रोरूवत' सिन्धु प्रदेश में इस नदी का नाद् आकाश तक गुंजायमान हो रहा हैं। जिस प्रकार मेघों से पृथ्वी पर घोर निनाद के साथ वर्षा होती हैं, उसी प्रकार सिन्धु दहाड़ते हुए वृषभ की तरह चमकदार जल को उछालती हुई आगे बढ़ती जाती हैं। भारतीय जीवन मूल्यों की शाश्वतधारा महाकाव्य रामायाण में और जीवनदायिनी देव सरिता गंगा में युगों-युगों से साथ-साथ बह रही हैं। बाल्मिकी रामायण में सिन्ध का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता हैं, जहां कहा गया है कि 'सुचक्षुश्चैव सीता च, सिन्धुश्वैच महानदी, तिस्त्रश्चैता दिशं जग्मु: प्रतीची सु दिशं शुभा: सिन्धु प्रदेश में

कहा गया है कि 'सिन्धु की सुचक्ष (वक्षुं) तथा सीत (तरिम) के साथ गंगा की पश्चिमी धारा माना गया है।

ब्रह्मणावाद के पराभव के पश्चात् सिन्धु देश अगले पन्द्रहसौ वर्षों तक युद्ध एवं आक्रान्ताओं का दंश सहन करता रहा गजनी गौरी से लेकर दिल्ली सल्तनत पर काबिज होने वाले समस्त गुलाम वंशों ने यदाकदा सिंध देश को रौदने का कृत्य करते रहे। मुगल काल में सिन्ध देश में धर्मातरण और सत्ता संघर्ष साथ-साथ चलता रहा जिससे सिन्ध की मूल सांस्कृतिक चेतना क्षीण होती गई। सिन्धु संस्कृति एवं पहनावे पर इस्लाम का व्यापक प्रभाव हो गया। सिन्ध देश में इस इस्लामिक राज्य 1845 तक कायम रहा। जब जनरल नेपियार ने मियानी के युद्ध में सिन्ध सहजादों को हराकर सिन्ध देश को ब्रिटिश राज्य का अंग बना लिया। लगभग इसके सौ वर्ष पश्चात् सनातन संस्कृति का संवाहक सिन्ध प्रदेश एक इस्लामिक सिद्धान्तों पर विकसित कट्टर इस्लामी राज्य का अंग बन गया। इस विभाजनोपरान्त वहां से निर्वासित व्यापक जन समुदाय को अपनी मातृभूमि से विलग होना पड़ा। यह मानवीय संस्कृति का सबसे बड़ा एवं दुखद प्रवजन था, जो राजनीति में धर्म के दुरूपयोग के परिणाम स्वरूप घटित हुआ। परन्तु सिन्ध के मूल रहवासी सिन्ध-देश की उस सनातन संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु पुन: मातृभूमि पर लौटने के संकाय के साथ आज दुनियां भर में सिन्धियत को जीवित रखने का उपक्रम सृजित कर रहें। आज भी वह सिन्ध देश की मूल धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना को अपने घर-परिवार के संजोय रखने का जतन और प्रयत्न कर रहें हैं, पुन: सिंध देश की स्थापनार्थ।

❊ ❊ ❊

राजस्थान में 1857 के विद्रोह के कारण एवं आमजन की भूमिका

सतीश महला

सन् 1848 में लार्ड डलहौजी भारत का गर्वनर जनरल बनकर आया। उसने भारत में अंग्रेजी राज्य के विस्तार हेतु एक नये सिद्धान्त 'डाक्टरिन ऑव लेप्सेज' का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि कोई राजा या नवाब नि:सन्तान मर जाता तो उसकी रियासत जब्त की जाकर उसे ब्रिटिश-भारत का अंग बना दी जाती थी। इस नीति के फलस्वरूप सतारा, झांसी, नागपुर, अवध और कर्नाटक आदि रियासतों अंग्रेजों द्वारा जब्त कर ली गई। देशी राज्यों के शासकों में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। इसी बीच विदेशी और भारतीय सैनिकों के बीच भेदभाव के कारण सेना में अंसतोष बढ़ता गया। ब्रिटिश हस्तक्षेप का परिणाम यह था कि देशी नरेश ब्रिटिश सरकार से असन्तुष्ट हो गए

और इन्ही असन्तुष्ट नरेशों ने 1857 के महान संग्राम में अपना अमूल्य योगदान देते हुए ब्रिटिश शासन को हिला दिया। दुर्भाग्य से 1857 की क्रांति के इस पुनीत यज्ञ में राजस्थान के अधिकांश राजाओं ने राष्ट्रीय शक्तियों का साथ न देकर अंग्रेजों की सहायता की। इसका कारण उनका यह विश्वास था कि अंग्रेजी शासन की बदौलत ही उन्हें मराठों पिण्डारियों और उनके स्वयं के जागीरदारों से राहत मिली है। जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह बीकानेर का शासक सरदारसिंह तो गदर में अंग्रेजों की सहायता के लिये सबसे अग्रणी थी और ब्रिटिश सरकार को पूर्ण सहयोग दिया।

❊ ❊ ❊

मेवाड़ और गुजरात का रामसेतु : उदयपुर हिम्मतनगर रेलवे लाई

मनोज कल्याणा

मेवाड़ के महाराणा श्री फतेसिंहजी ने सन् 1920 में उदयपुर, ऋषभदेव, खेरवाड़ा को रेलमार्ग द्वारा जोड़ने का विचार किया था तथा इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए अनेक गुफाओं, पुलों व वायडक्ट आदि को ध्यान में रखते हुए उदयपुर से खेरवाड़ा तक सड़क मार्ग के पास-पास ही रेल लाईन बनाना निश्चित किया गया। लेकिन इस रेल लाईन के निर्माण में बाधाओं व खर्च की अधिकता के कारण निर्माण कार्य प्रारम्भ नहीं किया गया। साथ ही सन् 1928 में मावली-मारवाड़ रेलवे लाईन के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो जाने से महाराणा फतेसिंह के काल में इस लाईन का निर्माण उपेक्षित रह गया। तत्कालीन रेलमंत्री श्री जगजीवन राम के कर कमलों द्वारा 10 जनवरी 1961 को उदयपुर हिम्मतनगर रेलवे लाई के निर्माण कार्य का उद्घाटन किया। इस उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया द्वारा की गई। उद्घाटन समारोह में श्री माणिक्यलाल वर्मा भी उपस्थित थे, जिन्होंने इस रेल लाईन के निर्माण के लिए अथक प्रयास किये थे। उदयपुर-हिम्मतनगर रेलवे लाईन के निर्माण के तहत ही उदयपुर सिटी रेलवे स्टेशन का निर्माण किया गया तथा, उदयपुर सिटी स्टेशन को पुराने उदयपुर रेलवे स्टेशन (वर्तमान राणा प्रताप नगर रेलवे स्टेशन) से जोड़ा गया। मई 1962 तक उदयपुर सिटी स्टेशन का निर्माण व कर्मचारियों के लिए रेलवे क्वाटर्स का निर्माण कार्य पूर्ण हो गया। 214 किलोमीटर लम्बी 'उदयपुर-हिम्मतनगर मीटरगेज रेलवे लाईन का निर्माण कार्य अक्टूबर 1965 में पूर्ण हो गया। 14 नवम्बर को नेहरू जयंती के अवसर पर इस लाईन को माल परिवहन के लिए प्रारम्भ कर दिया गया।

❊ ❊ ❊

List of Members

Founder Members

Late Dr. A.L. Srivastva
Late Dr. S.P. Srivastva
Late Shri R.S. Kapur
Shri L.P. Vaisya
Late Dr. M.S. Jain
Late Rao Narayan Singh Of Masooda
Late Shri N.R. Khadgawat
Late Dr. Dasharatha Sharma
Late Shri N.N. Acharya
Late Prof. G.N. Sharma
Late Dr. R.P. Vyas

Patrons

Shri G.C.Kanungo, Managing Director, Alcobex Ltd., Jodhpur
Shri S.R. Mehta, Mehta Vanaspati Products, Chittorgarh
Shri Hemendra Singh, Banera, District Bhilwara
Dr. S.S. Bhandawat, Bhandawat Foundation, Manak Chowk, Jodhpur
Dr. Nagendra Singh, Justice, International Court Of Justice, The Hague
United Books Traders, Ratanada, Jodhpur

Life Members

The Bank Of Rajasthan(Ltd.), Jaipur
Principal, Dr. Bhimrao Ambedkar Govt. P.G. College, Nimbahera
Shri K.K. Purohit, Jodhpur
Dr. Manohar Singh Ranawat, Natnagar Sodh Sansthan, Sitamau
Professor Mananori Sato, Faculty Of Economics, Asia University, Tokyo-Iso-(Japan)
Professor D.C.Shukla,'Parijat'c-38,Krishna Nagar,Pali Road, Jodhpur
Shri Om Prakash Mohta House, 29-Srand Road, Calcutta
Shri Mullapudi Timmragugaru,Tanuka{Andhra Pradesh}

Shri Prasanna Mal Mohnot, 67, Mahaveer Nagar, Pali

Shri C.P. Mathur, E-27, Chanakya Place (I), Pankha Rad, New Delhi-110059

Shri Sajjan Singh Ranawat,Udaipur

Dr. V.K.Trivedi, 26, Shanti Nagar, Sirohi

Dr. Arvind Parihar, Dept.Of History, JNV University, Jodhpur

Dr. B.L.Upmanyu, Mahavir Colony, Housing Board Road, Beawar

Dr. Girish Nath Mathur,1 Gh 41,Gayatri Nagar, Hiran Magri, Sector-5,Udaipur

Dr. Ishwar Singh Ranawat, Research Officer,Pratapsodh Pratisthan,Udaipur

Dr. J.K.Ojha,Near Post Office, Kanore, Udaipur

Dr. M.R.Choudhary,Dept.Of History,JNV University, Jodhpur

Dr. Manoramaupadhyaya, 128, Nehru Park, E Road, Sardarpura, Jodhpur

Prof. Meena Gaur,19-Gokul Nagar, Near Bohra Ganesh Temple, Udaipur

Dr.Mohabat Singh Rathore, Research Office,Pratap Sodh Pratisthan, Udaipur

Dr. Mrs. Shashi Arora, B-9, Flat No. 403, Saumya Enclave, Dhurva Marg, Tilak Nagar, Jaipur

Dr. N.K. Upadhayay, Lecturer In History, Govt. College Ajmer, Ajmer

Dr. Pramila Singhvi, Pranjal, Sector 3, Hiran Margi, Udaipur

Dr. S.C. Agarwal, E-108, Shastri Nagar, Ajmer

Prof. S.K. Purohit, Behind Bannath Temple, Sukhanand ki Bagechi, Siwanchi Gate, Jodhpur

Prof. S.P.Vyas, Asop ki Pole, Near Juni Mandi, Jodhpur

Dr. S.S. Bais, C-217, Krishna Nagar, Pali Road,Jodhpur

Prof. Vinita Parihar, B-16, Shatri Nagar, Jodhpur

Dr. Mrs. Digvijay Bhatnagar, E 27, University Qtrs., Durga Nursury Road, Udaipur

Dr. Mrs. Usha Purohit, Lecturer In History, Mahila Mahavidyalaya, Jodhpur

Mr. C.S. Sharma, Lecturer In History, Govt. College, Sheoganj

Mr. Dinesh Rathi, Hariom Bhawan, Bada Bas, Mathania, Jodhpur

Mr. F.K. Kapil, Secretary, Jaya Kapil Poort Nyas, Pakon Ka Bas, Jodhpur

Dr. Raju Ram, V & P Rarod, Via Asop, Jodhpur

Mrs. Kamla Jain, 26, Sharda Nagar, Near Bohra Ganesh Temple, Udaipur

Mrs. Pawan Maru, C/O Manish Agency, Kala Khet, Mandsore, Mandsore (M.P.)

Mrs. Shashi Kala, C-71, Dharam Narayan Ka Hatha, Paota, Jodhpur

Prof. G.S.L. Devra, B-9, Flat No. 403, Saumya Enclave, Dhurva Marg, Tilak Nagar, Jaipur

Prof. V.K. Vashishtha, 195-B, Univrsity Marg, Bapu Nagar, Jaipur

Prof. Nilima Vashishtha, 195-B, Univrsity Marg, Bapu Nagar, Jaipur

Dr. Usha Shah, Govt. College Pali, Pali-Marwar

Dr. Shobhagya Goyal, C/O Ram Goyal, Advocate, H.M. Mohalla, Ghaseti Bazar, Ajmer

Dr.Hukum Chand Jain, 19,Basant Vihar Special, Kota

Prof. K.G. Sharma, Deptt. Of History, University Of Rajasthan, Jaipur

Mrs. Tara Jain, W/O U.C. Jain, G-34, Shastri Nagar, Jodhpur

Dr. Seema Garg, Opp. 107, Vallabhbari, Kota

Dr. Usha Vyas, 1 Gha Sabarmati Clny., Kota

Mrs. Nidhi Sharma, D-299, Ktps, Sakatpura, Kota

Mrs. Seema Gupta, A-9, Gayatri Vihar, Police Line, Kota

Dr. Karuna Joshi, 150, Pwd Quarter, New Colony, Dungarpur

Dr. Shankar Goyal, 41, Sardar Club Scheme, Jodhpur

Dr.Anila Purohit, 'Kamla Kunj', 5th D/76, Hudgo, J.N.Vyas Colony, Bikaner

Dr. Meghna Sharma Paliwal, Asst.Prof. Deptt. Of History, Maharaja Ganga Singh University, Bikaner

Dr. Neelam Sharma, Near Water Works, Old City, Kishangarh

Dr. Satish Kumar Trigunayat, B 48 A, Jawahar Nagar, Bharatpur

Dr. Pushpa Dullar, 52- Arvind Niwas, Banasthali Vidyapeeth, Basasthali

Ms. Urmila Parihar D/O Shri Mool Chand, Behind Adarsh Vidya Mandir, Sheoganj, Sirohi

Dr. Alok Kumar Gupta, Lecturer In History, R-398, Padam Vilas, Bharatpur-321001

Dr. Sharda Sharma, E-47, Khaturia Colony, Bikaner

Dr. Meenakshi Sharma, Shri Ram Swaroop Bohra, 12- Inder Nagar, Sunderwas, Udaipur

Ms Iti Mograkaran Singh Mogra, C/O Phool Chand Mehta, 382/B, Ashok Nagar, Moksh Marg, Udaipur

Dr. Neelam Gaur, Near Govt. Hospital, Von Girls College, Hanumangarh Town

Dr. Anita Kavdia, 202, Kutumb, 17-C, Madhuban, Udaipur

Ms Pratibha, A-342, Chandvardai Nagar, Ajmer

Dr.(Mrs.) Nirmal Kashyap, House No. 30, Type III, MD university, Rohtak

Dr. Sushila Shaktawat, 21 Ghati magri, Penariyon ki Madri, Holi Chowk, Udaipur

Avinash Parek, Savitri Villa, Kishan Hostel, Sardarsaher, Churu

Dr. Aashish Chouhan, Aashish Sadan, Godon Ka Chowk, Jodhpur

Ms Shikha Choudhary Charan Singh Girls Hostel, Tilak Nagar, Bikaner

Dr. Anju Suthar, 3/46, New Officer's Colony, Opp. Police Line, Barmer

Mahendra Chudhary, Stadium Road, Nehru Nagar, Barmer

G.S. Gupta, 4/267,Malviya Nagar, Jaipur-302017

Dr. Dinesh Bhargava, R-399,Padam Villa, 1 G.P. Office, Bharatpur-321001

Sowrabh Sharma, 8-Bapuji Marg, opp.State Motor Garge, 22-Gogam, Jaipur

Kailash Songara, 2 Sa 35, UIT Colony, Pratap Nagar, Jodhpur

Om Prakash Bhati, D-137, Kirti Nagar, P.Mandore Mandi, Jodhpur

Dr. Aruna Soni, 'Aashirwad', Near Ladnun Bus Stand, Naya Bas, Sujangarh

Dr.Mukesh Harsha, Harsho ka Chowk, Bikaner

Dr. Mahendra Purohit, Joshiwada, Bikaner

Dr. V.N. Singh, South Extn. Pawanpuri, Bikaner

Rajshekhar Purohit,3/18, Mukta Prasad Nagar, Bikaner

Dr. Jagdish Narayan Ojha, Barah Guward Ka Chowk, Nahtaniyo ki Saray Ke Pas, Bikaner

Mrs. Champa Agarwal, Sona Devi Sethia Girls' College, Sujangarh

Dr. Prabhat Swami, N.M.P.G. College, Hanumangarh

Gyarsi Swami, Vill.Tedi via Jaswantgarh, T.Ladanun, Nagaur

Ms. Nayna Acharya, 72-Amarnath Bhawan, opp. M.G. Hospital, Jodhpur

Mrs. Sonal Purohit, C/o Sunil Bora, Near Tapi Baori, Nathawaton Ki Gali, Jodhpur

Dr. Nidhi Srivastava, Sona Devi Sethia Girls' College, Sujangarh

Dr. Vikram Singh Gundoj, 160, Teacher's Colony, Chopasani, Jodhpur

Mrs. Santosh Vyas, Principal, Sona Devi Sethia Girls' College, Sujangarh

Ms. Asha Bhargava, Vice-Principal, Sona Devi Sethia Girls' College, Sujangarh

Dr. Anju Jain, w/o Jatan Kumar Jain, Mertawari, Nagaur

Mrs. Darshana Joshi, Rai Bahadur Gali, Daga Chowk, Bikaner

Dr. Pradeep Singh Rathore, Govt. College Dhorimanna, Barmer

Ms Rashami Meena, Asst. Prof.,Department of History, JNV University, Jodhpur

Nand Kishore Bhutra, Jaiselmerion ki Gali, Navchowkiya, Jodhpur

Dr. T.V.Vyas, Nathawaton ki Bari, Near Nyon-ka-Bar, Navchowkiya, Jodhpur

Dr. O.N. Singh, Purohiton ka Bas, Samdari Rly. Station,-344021

Sh. K.R. Choudhary, Kolari Mohalla, Navchokiya, Jodhpur

Dr. Deepa Kaushik, D-5, Mota Campus, Pilani Road, Rajgarh, Churu

Dr. Anil Purohit, 21/143, Chopasni Housing Board, Jodhpur

Dr. Sadhna Meghwal, W/o Dr. B.R. Meghwal, IPS, JH-7, Bhaghat ki Kothi Extn. Scheme, Jodhpur

Dr. Sajjan Poswal, 97-A, Gali No. 3, Krishna Nagar, Bajrang Nagar, Kota

Vijesh Gandhi, Foz-ka-Bada, Dungarpur-314001

Ms Anuradha Srivastava, Govt. Girls College Pali, Pali

Rajni Sharma, C-211, Gautam Marg, Hanuman Nagar, Jaipur

Dr. Pushpa Sharma, 1262/12, Near Durga Temple, Shastri Nagar, Krukhshetra

Dr. Ramji Lal Kohli, Aman Vihar, Behind Gas Godam, Dausa

Dr. Sunita Mehta, C/o Rakesh Mehta, C-3, Sir Pratap Colony, 5-Batti Circle, Ratanada, Jodhpur

Ms Nirmala Meena, 64, Prem Nagar, Jagatpura, Jaipur

Savita Choudhary

Reenu Meena, 85, Bhagwati Nagar 1st ,Kartarpura, Jaipur

Dr. Preeti Sharma, 4, Vivekanand Niwas, Banasthali Vidyapeeth, Banasthali

Dr. Sulekha Shekhawat, opp. Khuchaman College, 13 Venkatesh Nagar, Kuchaman City

Dr. Neekee Chaturvedi, 3-Da-14, Jawahar Nagar, Jaipur-302004

Dr. Manju Gupta, 24/59, Swarn Path, Mansarowar, Jaipur

Dr.(Mrs.) Vibha Upadhayaya, B-38, Prabhu Marg, Tilak Nagar, Jaipur-04

Mrs. Bindu Tiwari, Deptt. Of History, SD Govt. College, Beawar

Dr. D.P. Goswami, 131, Shastri Nagar, Beawar Road, Ajmer

Mrs. Minakshi Deviratam, 2, Virendra Nagar, Near Mandore, Jodhpur

Dr. Ravindra Tailor, 79-B, Munot Nagar, Out Side Nehru Gate, Beawar

Virendra Sharma, 54-A, Jawahar Nagar, Near Glass Factory, Tonk Road, Jaipur

Dr. Anita Surana, D-19-B, Meera Marg, Bani Park, Jaipur-302016

Dr. Anuradha Mathur, H-619, Shalimar, Tijara Road, Alwar

Dr. Smita Mishra, 284- Arya Nagar, Scheme No.1, Alwar-301001

Dr. Rakesh Kumar Sharma, E-327, Ambedkar Nagar, Alwar-301001

Dr. Satyendra Sharma, H-30, Shastri Nagar, Meerut City(U.P.)

Mrs. Meera Ambesh, D-79, Hasan Khan Mewat Nagar, Alwar-301001

Dr. Tafique Hussain, E-26, Civil Line, Shriganganagar-355001

Surendra D.Soni, Lecturer in History, C/o Prem Khandelwal, Advocate, Shiv Mandir, Naya Bas, Churu 331001

Dr. Jyotsana Vyas, Plot no. 150, Patrakar Colony, NPH Road, Jodhpur

Dr. B.N.Benjamin, 934, Faith Cottage, 9th D Road, Sardarpura, Jodhpur

Yogwati Pareek, 2243-A, Sec-3, Faridabad-121004

Dr. Alpanas Dubhashe, III, Ganga Nagar, AB Road, Dewas (M.P.)

Rajesh Panwar, C/o Ambica cosmetics, Shop No. 271, Ganpati Plaza, KEM Road, Bikaner

Sushil Kumar Moyal, Near Ramdeo Temple, Otside Jassusar Gate, Bikaner

Gopal Krishna Vyas, Near Samta Bhawan, Chabili Ghati, Bikaner

Dr. K.R. Motsara, Kamla Sadan, Sir Chotu Ram Marg, Maharaja Jhujarmal Nagar, Hanumangarh Road, Sangaria

Dr. Tamanna Singh, Kamla Sadan, Sir Chotu Ram Marg, Maharaja Jhujarmal Nagar, Hanumangarh Road, Sangaria

Dr. Shilpa Mehta, R-4, AbhayBagh, Sardarpura, Udaipur

Dr. Ambika Dhaka, H.No. 67, Bajrang Niwas, Near Durgapura Ral. Station, Jaipur

Rakesh Kumar Yadava, VPO- Sirohe, The. Khetri, Jhunjunu

Dr. Pranay Dev, 2 D 23, Housing Board Colony, Jhalawar

Sunita Sawmi, Swami Mohalla, Inside Jasussar Gate, Bikaner

Sharmila Swami, 6 B 04, JNV Colony, Bikaner

Dr. Suman Dhakha, 224, Dr. Rajendra Prasad Nagar, Near Rani Sati Nagar, 200 Feet Byepass, Ajmer Road, Jaipur

Dr. Archana Kalra, 56, Pratap Nagar Colony, Near Glass Factory, Tonk Road Jaipur

Shri Harphool Singh, H.No. 67, Bajrang Vihar, Near Durgapura Rly. Station, Jaipur

Dr. Rahul Tripathi, 94/4, Agarwal Farm, Mansarovar, Jaipur

Meena Bhaskar, VPO- Ghassu via Khudi Badi, Sikar

Sukharam, C/o H.R. Choudhary, 23, Lavkus Nagar 1st , Tonk Fatak, Jaipur

Dr. Kulwant Singh Shekhawat, A-17, Marudhar Vihar, Khatipura, Jaipur

Mahendra Jalwaniya, 23/29, Chopasani Housing Board, Jodhpur

Dr. Vishnu Prasad Sharma, Plot no.4, Patel Nagar, Gopalpura Byepass, Jaipur

Dr. Vidhi Sharma, 7, Janakpuri II Exetension, Imli Fhatak, Jaipur

Smt. Rekha Jorwal, ARG-40, Near Collector Residence, Alwar

Dr. Rakhi Yadav, B-2/493, Chitrakoot Scheme, Jaipur

Jayantilal Khandelwal, 634 B, Brkat Nagar, Tonk Fhatak, Jaipur

Dr. Sangeeta Sharma, B-141, Kirti Nagar, Near Gopalpura Byepass, Jaipur

Dr. Anuradha Rathore, A-5, Shastri Nagar, Opp. SBI, Jaipur

Rajesh Arya, Plot no.-147, Shripuram Colony, Gurjar ki Thadi, New Sanganer Road, Jaipur

Dr. Alok Kumar Chaturvedi, 82/139, Near Giri Marg, Mansarovar, Jaipur

Dr. Gyaneshwar Meena, Ganesh Colony, Udai Mode, Gangapur City, Swaimadhopur-322201

Rajeshwari Devi Rathore, HH's Flat No. 5, C Scheme, Tilak Marg, Jaipur

Mrs. Sarika Kaul,408, Ground Floor Lane No. 2 Raja Park, Jaipur - 302004

Dr. Ankan Garg, 41/6 Near Varun Parth, Mansarovar, Jaipur - 302020

Dr. Geeta Singh, 44, Vardhaman Nagar-B, 200 Feet Byepass, Ajmer Road, Jaipur

Ms Twinkle Sharma, Lecturer History, Govt. Lohiya College,

Dr. Kalpana Sharma, 2 CH 14, Sector 5, Shanti Nagar, Hiran Magri, Udaipur

Kamal Singh Kothari, Kothari Sadan, Chacha Nehru Marg, Behind The Fort, Churu-331001

Dr. Tarun Pratap Yadav, 307, Pragati Nagar, Nagla Battu Road, Meerut

Dr. Amrita Choudhary, E-205, Shiv Park, Amba Bari, Jaipur

Dr. Jeewan Singh Kharakwal, 18, Prem Nagar, C Block, Near Arihant Vatike, Roop Sagar Road, Udaipur

Rahul Pareek, Ward No.13, Cheta Kheri, Chhapar, Churu

Dr. Madan Lal Meena, Bagwala Kuwan, P.Hasampur, T.Neem-ka-Thana, Sikar

Dr. Vineet Godhal, Agrasena Colony, Opp. BPRV Mandir, Near Power House, Delhi Darwaja, Kotputli, Jaipur

Bhagwan Singh Sekhawat, 70-71 Shiv Shakti Nagar, Out Side Mahamandir 3rd Pole, Paota, Jodhpur

Bhawani Singh Rajpurohit, In Side Siwanchi Gate, Jodhpur

Dr. Suresh Kumar Choudhary, A-4, Krishna Nagar, New Pali Road, Jodhpur

Bharat Deora, III /B, Sector-2, University Staff Colony, Residency Road, Jodhpur

Lalit Kumar Panwar, III/F-19, Sector-2, University Staff Colony, Residency Road, Jodhpur

Dr. Peeyus Bhadviya, D-16, Adarsh Nagar, University Road, Udaipur

Dr. Harish Chandra, 311, Ashapurna Valley, Near New High Court, Pali Road, Jodhpur

Dr.T.C.Bairawa, 22 Mahaveer Nagar II, Durgapura, Jaipur

Dr. Archna Dwivedi, 2 D 23, Housing Board Colony, Jhalawar

Dr. Kalpana Malik, Sector - 4, Dwarka, New Delhi, New Delhi-110075

Shri Pankaj Chandak,Opp. Soni Building,Nehru Nagar, Barmer

Dr. Pooran Lal Meena,18-C, Pocket- B,Ashok Vihar II,Delhi-110052

Dr.Mamta Yadav,Plot No. A-58-59,Nandpuri Colony, 22 Godown,Hawa Sarak,Jaipur

Dr. Jagruti Upadhayaya,128, Madhukunj,Behind Nehrupark,Sardarpura E Road,Jodhpur

Shri Nitin Goyal,17-C Block, Near Muthagujari School,Rai Singh Nagar,Sriganganagar-335051

Ms Kusum Rathore,76/II/I, Dak Bangalow Campaus,Sirohi

Shri Achala Ram Choudhary,Vill & P. Luni Nadi Dudho,T. Dhorimanna, Disst. Barmer

Dr.Manisha Parmar, 304 'A', Devnandan House, Near Nagar Palika Office,

Chandkheda, Ahmedabad-382424

Shri Aidan Singh,310, Kesariya Ji Nagar, Falna-306116

Dr. Shilpi Gupta,702, ramanujan Niwas,Banasthali Vidyapeeth, Banasthali-304022

Dr. N.S. Rao, Department of History, MGSU, Bikaner

Dr. Manjulata Parihar, 2A, Gayatri Nagar, Prabhat Niketan Street, Badgaon, Udaipur

Dr. Balberer Choudhary, 31-32, Vakil Colony, Paota 'C' Road, Behind RTO, Jodhpur

Dr. Sandeep Prajapat, D-188, Saraswati Nagar, Basni-I, Jodhpur

Dr. Sanjeev Kumar, VPP Bakara, Dostt. Jhunjhunun-333001

Dr. Etee Bahadur, B-22, Dukadev Vihar, New Delhi-25

Dr. Hemendra Choudhary, 17-18, Madar Colony, Kalka Mata Road, Udaipur

Pramod Kumar, Village Bhagwan, Ward No. 1, T. Nohar, Hanumangarh

Dr. Rajesh Kumar, Director JP&L, ICHR, 35 Ferozeshah Road, New Delhi

Dr. Suresh Kumar Sandu, Govt. girls College, Ajmer

Dr. Rajendra Singh, Deptt of History, IASE, Deemed to be Universtiy, Sardarsahar

Dr.Mahesh Kumar, 11/MB/488, Indira Gandhi Nagar, Jagatpura, Jaipur

Dr. Someshwar Kumar Singh, 35-36, Zadin Nagar-B, Durga pura, Jaipur

Dr. Yashveer Singh,Near Satyam Dharam Kanta, Old Jhajjar Road, Charhi Dadri-127306

Dr. Kanchan Lawaniya, CAS, Department of History, AMU, Aligarh

Dr. Pankaj Gaur, 9 V I T Quarter, Pratap Nagar, Mayo Link Rooad, Ajmer

Mrs. Praveen Choudhary, 170, Krishna Mandir, 2nd Street, Bhagat ki Kothi, Jodhpur

Dr. Sammer Vyas, C-15, Staff Quarter, VBRIPG College, Udaipur

Gajendra Singh Rajpurohit, 202,Sri Achaleshwar Market, Opp. JNVU Old Campus, Jodhpur

Ms Vandana Choudhary, 4E-483, Jai Narain Vyas Colony, Bikaner

Mahendra Singh Rathore, V&P Janadeshar, Tehsil Luni, Jodhpur

Dilip Kumar, Meghwalon ka Bas, V&P Tinwari, Tehsil Tenwari, Jodhpur

Shiv Ratan Singh Yadav,VPO Jhonakha (Khurd), Neemarana, Alwar

Veer Singh, Village Tabniyar, Post Fogera, Tehsil Gadra Road, Barmer

Dr. Snageeta Gupta, 69, Shri Akanksha LIC Colony, Vaishali Nagar, Ajmer

Members

Ms Upasana Dadhich, 25th Shiv Shakti Nagar, Street No. 3, Out Side 3rd pole, Mahamandir, Jodhpur

Ms Khushbu Jain, Opp. Old SBBJ Bank, Bilara

Surya Prakash Vyas, Rawaton Ka Bas, Behind Behari Ji Temple, Inside Sojati Gate, Jodhpur

Ms Sapna Kumari, 6-K-470, Kudi Bhagtasani Housing Board, Jodhpur

Mrs. Kamini Jangid, 8/105, DDP nagar, Madhuban, Basani, Jodhpur

Dilip Kumar, Meghwalon ka Bas, V & P Tinwari, Tehsil Tinwari, Jodhpur

Shama Bano, 32, J.K. Nagar, Pal Road, Jodhpur

Manoj Kalyana, B-603, Dwarika Apartment, Manwa Kheda, Udaipur

Dinesh Gehlot, Mata ka Than, Magra Punjala, Mandore, Jodhpur

Shiv Ratan Singh Yadav, VPO-Jonakha (Khurd), Neemrana, Alwar

Shyam Sunder Thenwan, Department of History, MGSU, Bikaner

Ghanshyam Chouhan, UIT-E-61, Pratap Nagar, Jodhpur

Ajeet Singh Choudhary, 51, Mahaveer Vistar Colony, Kartarpura, Jaipur

Professor Nirmala Upadhyaya, Madhu Kunj, 128, Nehru Park, Sardarpura E Road, Jodhpur

Mamta Rani, E-4, Police Line, Sriganganagar

Mamta Sharma, 21/45, CHB, Jodhpur

Seema Mena, 21/45, CHB, Jodhpur

Nirmala Daiya, 18/404, CHB, Jodhpur

Shankar Singh Potila, V&P Shri Ramwale, Tehsil Choutan, Barmer

Veer Singh, V. Tibniyar, P.Fogera, Tehsil Gadra Road, Barmer

Dhirendra Kumar, V&P Jarga, Basari, Dholpur

Hansraj Soni, Shri PSB Government College, Shahpura, Bhilwara

Mansingh Meena, Plot No.5, Surya Nagar, Swaimadhopur

Dr. Manisha Choudhary, Fellow IIAS, Rasthpati Niwas, Shimla

Soniya Sharma, Quarter No. 57, Chankya Nagar, Jodhpur

Professor K.L. Mathur, A-179, Vinayak Vihar Colony, Near Birla School, Near Dali Bai Circle, Jhanwar Road, Jodhpur

Pankaj Parmar, 476, Indra Colony Vistar, Pali

Manju Chouhan, Sardarpura, 1st C Road, Jodhpur

Kamlesh Gehlot, Maharana Pratap Nagar, Ajmer

Dr.Mamta Purabia, Manikya lal Verma Shramjivi College, Udaipur

Bhanwar Singh Bhati, Karni Kirana Store, Opp. Police Line Gate, Barmer

Ajay Shankar, 2/488, KBHB, Jodhpur

Dr.Kanika Bhanot, Jai Narain Vyas Colony, Bikaner

Professor S.K. Bhanot, Jai Narain Vyas Colony, Bikaner

Dr.Santosh Gadhveer, Barmer

Gajendra Singh Asiya, 73-D, A, Paota, Polo, Jodhpur

Professor R.P. Bahuguna, Department of History, Jamia Millia Islamia University, New Delhi

Dr. Mayank Kumar, Satyawti College, Delhi

Dr.(Ms) Sumit, Maharaja Mansingh Pustak Prakash, Mehrangarh Fort, Jodhpur

Mrs.Roshan Gehlot, Cahinpura, Mandore, Jodhpur

Prateek, B-902, New Rajput CGHS, Dwarka, New Delhi-78

Priyanka, V&P Sotwara, Via Doomra, Tehsil Nawalgarh, Jhunjunu-333707

Dr. raksha Kanwar, Teja Chowk, Ajmer

Presis Lotika Das, Sophia Girls College, Ajmer

Akshita M, Sophia Girls College, Ajmer

Jigisha M, Sophia Girls College, Ajmer

Shreya,Sophia Girls College, Ajmer

Varsha,Sophia Girls College, Ajmer

Tripti,Sophia Girls College, Ajmer

Ayushi,Sophia Girls College, Ajmer

Nabeel, Sophia Girls College, Ajmer

Apurva, Sophia Girls College, Ajmer

Varalika, Sophia Girls College, Ajmer

Shubhangi, Sophia Girls College, Ajmer

Shubhangi M, Sophia Girls College, Ajmer
Aishwarya C, Sophia Girls College, Ajmer
Avantika R, Sophia Girls College, Ajmer
Himansha, Sophia Girls College, Ajmer
Sunaina, Sophia Girls College, Ajmer
Gunjan H, Sophia Girls College, Ajmer
Alisha Syed, Sophia Girls College, Ajmer
Manuraj R, Sophia Girls College, Ajmer
Palak Rathore, Sophia Girls College, Ajmer
Alidhi Jain, Sophia Girls College, Ajmer
Nishta Agarwal, Sophia Girls College, Ajmer
Kirti Chouhan, Sophia Girls College, Ajmer
Aditi Singh, Sophia Girls College, Ajmer
Harshita Sharma, Sophia Girls College, Ajmer
Amlika Sharma, Sophia Girls College, Ajmer
Priyanshi Jain, Sophia Girls College, Ajmer
Syed Aiman, Sophia Girls College, Ajmer
Bhavyta Bhati, Sophia Girls College, Ajmer
Seema Singh, C-12, Krishna Nagar, New Pali Road, Jodhpur
Kavita Jatolia, University of Delhi, Delhi
Atul Kumar Meena, Room No. 313, Brahmaputra, JNU, Delhi
Neha Kanwar, Room No.242, Kanya Hostel, JNU, Delhi
Kamini Jangid, Sabji Mandi, Madhuban, Basani, Jodhpur
Kamlesh Rathi, Shiv Nagar, Mahamandir, Jodhpur
Suraj Bhan Bhardwaj, New Delhi
Shiv Kumar Vyas, Bikaner
Kusum, 17E/750, CHB, Jodhpur
Daraksha Siddiqui, Vill. Gauspur, Post Buzurga, Ghazipur
Amrita Jaiswal, Chittupur, BHU, Varanasi
Ms Jyoti, House No. 1/402, Golaghat,
Sukirti Singh, Sector III, House No. 462, Vasundhara, Gaziabad

Amit Kumar, V&P Klothkalan, Tehsil Surajgarh, jhunjunu
Ashish Kumar Yadav, V&P Jakhrana, Tehsil Behror, Alwar
Rafiullah, CAS, Deapartment of History, AMU, Aligarh
Garima Choudhary, CAS, Department of History, AMU, Aligarh
Ashid Khan, House No. 1080, B-Block, New Ashok Nagar, Delhi
Safia Shahzad, CAS, Department of History, AMU, Aligarh
Dr.Jibraeil, CAS, Department of History, AMU, Aligarh
Syed Sumbul Arif, CAS, Department of History, AMU, Aligarh
Anu Sharma, CAS, Department of History, AMU, Aligarh
Falak Nawaz Khan, CAS, Department of History, AMU, Aligarh
Shabistan Bano, CAS, Department of History, AMU, Aligarh
Azizur Rehman, CAS, Department of History, AMU, Aligarh
Javed Ahmed Lone, CAS, Department of History, AMU, Aligarh
Shilpi Dudhwal, Government Girls College, Ajmer
Anjana Bareth, Government Girls College, Ajmer
Rajshree Shekhawat, IIS University, ICG College, Jaipur
Nisha, House No. 708, Tikri Kalan, New Delhi-41
Haider Saiphullah, CAS, Department of History, AMU, Aligarh
Fatima Bano, Naya Talab, Maliyon ki Bagechi, Inside Nagori Gate, Jodhpur
Dr. Mohammad Farooq Chouhan, C/o M S School, Jagmal Well Road, Inside Kasaiyon ki Bari, Bikaner
Tane Singh Sodha, Village Katha, Post Bansiyar, Jaiselmer
Devendra Kumar, V&P Kuharwas, Tehsil Buhana, Jhunjunu
Jai Shri Tanwar, Murlipura, Jaipur
Dr. Anna Varghese, Department of History, Banasthali Vidyapeeth, Banasthali
Dr. Pratibha Sankhala, Department of History, JNVU, New Campus, Jodhpur
Dr. Khewara Ram, V&P Dabla, Jaiselmer
Naresh Kumar Dhande, V&P Setvara, Barmer
Dr. Kailash Rani, Motilal Nehru College, New Delhi
Anil Kumar Meena, CRENIEO Universty of Madras, Chennai
Girdhari Singh, C/51/III/12, JNV Colony, Bikaner

Dr. Rajendra Kumar, 5-KH-28, Duplex Colony, Bikaner

Sanjay Sain, Meera Marg, Merta City

Sunil Bisnoi, House No. 1 Gha 14, Madhuban housing Board, Basani First Phase, Jodhpur

Tulsa Ram Seervi, 13- Gayatri Vihar, Ratanada, Jodhpur

Dr. Sumestha, Greater Noida,

Satish Kumar Mahala, V&P Bhojasar, Via Nuh, Jhunjunu

Banita Srivastava, E-31, Gandhi Vihar, Delhi-110009

Ashok Choudhary, Behind Choudhary Hostel, Bhatti ki Bawri, Chopasani Road, Jodhpur

Dr. Phool Singh Sahariya, E-195, Ambedkar Nagar, Alwar

Tarseem Sharma, JVMGRR College, Chakri Dadri, Haryana

Arun, Department of History, MD University, Rohtak

Jitendra Department of History, MD University, Rohtak

Dr. M.R. Gadhveer, D-97, Parshwanath City, Jodhpur

Dr. K.P. Singh, Department of Arccheology, JRN Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur

Chintan Thakar, Department of Archeology, Madhav University, Pindwara, Sirohi

Priyank Talasara,Department of Archeology, Madhav University, Pindwara, Sirohi

Dr. Manoj Dadheech, 180, Shri Chagan Niwas, Behind Pooja Kirana Store, Kalka Mata Road, Udaipur

Ajay Mochi, Gogunda, Udaipur

Dr. zafarullah Khan, Shekhawati Residency, 100Feet Road, Darbar School Road, Udyog Nagar, Jaipur

Dr.Reetika Meena, D -9/62, Chitrakoot Yojna, Ajmer Road, Jaipur

Dr. Ritu Punia, Department of History, University of Rajasthan, Jaipur

Madan Lal Jangid, 9/372, Milkman Colony, Pal Road, Jodhpur

Dr. Jaswant Sharma, Madhuban colony, Basani, Jodhpur

Dr. Anshul Sharma, SS Jain Subodh P G Colloege, Jaipur

Dr. Suman Yadav, SS Jain Subodh P G Colloege, Jaipur

Dr. Rakesh Kumar Dhabai, SS Jain Subodh P G Colloege, Jaipur

Dr. Rashmi Gunjan, SS Jain Subodh P G Colloege, Jaipur

Dr. Meena Kumari, 1522 A/13, Govindpuri, Kalka Ji, New Delhi

Dr.Suraj Mal Rao, MDSU, Ajmer

Dr. Hema Rajak, 106, Mridul Vihar, Dewas, Madya Pradesh

Naresh Soni, V&P Baowri, Jodhpur

Dr. Ram Chandra, F 1/7, West Patel Nagar, Circuit House Road, Jodhpur

Rukmani, F 1/7, West Patel Nagar, Circuit House Road, Jodhpur

Ms Firdose Bano, K-102, Near Silawaton Ki Massid,Sharmikpura, Masuriya, Jodhpur

Ms Nigar Khanam, K-120, Near Silawaton Ki Massid,Sharmikpura, Masuriya, Jodhpur

Ms Marzeena Bano, D/o Mohammad Iliyas, Near Ishakiya School, Kabutaron Ka Chowk, Jodhpur

Dr. Mamta Tyagi, 9/36 A, Sector 3, Rajendra Nagar, Shahibabad, Gaziabad, Uttar Pradesh

Aashutosh Pareek, Government College Ajmer, Ajmer

Rajasthan History Congress

Receipts and Payments A/c
For the Year Ending 31st March 2019

RECEIPTS		AMOUNT	PAYMENTS	AMOUNT
To Opening Balance		276,192.84	By Prize Paper Fund	3,600.00
Bank Accounts	220,282.84		By Sundry Creditors	112,682.00
Cash-in-Hand	55,910.00		By Bank Charges	68.00
			By Postage Expenses	1,670.00
To Life Membership Fund		40,000.00	By Travelling Expenses	1,540.00
To Annual Membership		45,000.00	By Website Charges	3,000.00
To Interest on Saving A/c		7,869.00	By Bank Accounts	291,769.84
To Proceding Sale Receipts		5,268.00		
To Proceeding Grant		40,000.00		
		414,329.84		414,329.84

Income & Expenditure A/c
For the Year Ending 31st March 2019

EXPENDITURE	AMOUNT	INCOME	AMOUNT
To Bank Charges	68.00	By Membership Fees	45,000.00
To Postage Expenses	1,670.00	By Interest on Saving A/c	7,869.00
To Procedding Expenses	112,682.00	By Proceding Sale Receipts	5,268.00
To Travelling Expenses	1,540.00	By Proceeding Grant	40,000.00
To Website Charges	3,000.00		
		Excess of expenditure over income	20,823.00
	118,960.00		118,960.00

Balance Sheet as on 31st March 2019

LIABILATIES		AMOUNT	ASSETS		AMOUNT
Capital Fund :		291,769.84	Current Assets		291,769.84
Fund	234,369.84		Bank Accounts	291,769.84	
Life Membership Fund	40,000.00				
Prize Paper Fund	17,400.00				
		291,769.84			291,769.84

Place :- Jodhpur
Date :- 16-12-2019

Checket and Found Inconformity with the Books of Accounts and Records Produced Before Us.

For : Rajasthan History Congress
Secretary
Rajasthan History Congress
Jodhpur

For : Rajasthan History Congress
Treasurer
Rajasthan History Congress
Jodhpur

For : Vijay Singh Co.
CA. Vijay Singh
Proprietor
M.No. 418049

OBITUARY

We, the all members of Rajasthan History Congress express our heartfelt condolences and pay tribute to the eminent historians who are no more with us. The world of historians will be always highly indebted for their contribution and will forever remember their guidance. We express our grief for the departed souls of: -

Prof. Dinesh Chandra Shukla

Prof. Ram Pandey

All Members
Rajasthan History Congress